## ट्यशास्त्र को भारतीय परम्परा <sup>श्रीर</sup>

## दशरूपक

( घनिक की वृत्ति सहित )

हजारीप्रसाद द्विवेदी पृथ्वीनाथ द्विवेदी



जिस्साम् प्रसमदान

दिस्सी : पटना

 १६६३ : रानवमल प्रवाशन प्राइवेट क्लिमिटेड, दिल् प्रथम सस्तरण, १६६३

NATYA SHASTRA KI BHARTIYA PARAMPARA Aut

DASHROOPAK

 $b_{\overline{\tau}}$ 

Hazareprasad Dusveds Prathwinath Dusveds

मूल्य १००० Price Rs 1000 PRESENTED 3 Munistry of Educat Ent of India.



प्रवासक . राजकस्तः प्रवासक प्राह्मेद लिसिटेड, ८ फ्रेंड बाजार, दिल्ली-६ राज्या : गाइण वालाव के गामन, प्रणान्ध मुख्य : भी सावप्रवास गुक्ता, मधीन प्रेस, विस्ती

क्रम ्रै

नाटपद्यान्त्र की भारतीय परम्यगुर्

द्वितीय प्रवास १४१

नृनीय प्रवास २०३

चतुर्यप्रकाम २३३ धनिक की मन्द्रति वृत्ति ३१५

प्रयम प्रकारा ७७

# नाटच-शास्त्र की भारतीय परम्परा

१. नाट्य-वेद ग्रीर नाट्य-शास्त्र

नई है। उसमे बताया गया है वि कभी धनष्याय के समय बद मरत मुनि सानत मान से बैठे हुए ये, धानेंच प्रमृति सुनियों ने उनने जाकर प्रस्त किया कि मगनन्, धापने जो वेदसम्मित 'नाट्य-वेद' प्रवित्त किया है, वह कैमे उत्तन्न हुया धौर किमके लिये बनाया गया, उसके धन, प्रमाण धौर प्रयोग किस प्रकार होते हैं, यह बताने की कृपा करें। मरत-मुनि ने बताया कि वैवस्त्तत मुनु के समय नेता मुग प्राप्त हुया धौर काम तथा लोजवदा लोग थाम्य-यम की धौर प्रमृत हो गए तथा ईय्यौ

भारतीय 'नाट्य-सास्त्र' के झारम्भ में (१-१-४२) एक कथा दी

मगे। सोक्पालो द्वारा प्रतिष्ठित जम्बूद्वीप जब देव, दानव, गग्धवं, यस, राशस धोर नागो से समात्रान्त हो गया, तब इन्द्र प्रमृति देवतायो ने इह्या से जावर बहा वि 'हे पितायह, हम ऐसा बोई 'ब्रोडनीयव' या हैस चाहते हैं जो इस्य भी हो धौर प्रयय भी हो, जो वेद-स्पवहार है

भीर श्रोप से मूद्र होकर वे बनेक प्रकार के मुल-दुस्रो के शिकार होने

हमूद्र जाति को सिखाया नहीं जा सकता, स्रतएक साय सय वर्षों के प्रोप्य किसी पांचर्य येट को कृष्टि कोजिए !" ब्रह्मा ने 'एवमन्तु' बहुकर पुष देवो को विदा किया, चारा वेदों को समाधित्य होकर स्मरण निया भीर सकत्य किया कि मैं पर्यं, सर्य सौर यज्ञ का सामन,

निया भीर गनस्य निया निर्मे पर्य, प्रयं भीर या ना साधन, कारेरायुक्त, पास्त्र-जान-समन्दित, भावी जनता नी समस्त नर्यों का मेनुदर्यन नराने वाला, समस्य धास्त्राधों से युक्त, सब शिस्से ना प्रद-धंन, इतिहासयुक्त 'नाट्य' शामक वेद बनाऊँगा। उहाँने 'ऋग्वेद' से शास-सवा तिया, 'क्षायवेद' से गीत ना भग्न, 'यजूर्वद' से मामितय ग्रीर 'प्रवर्वद' से रसों का सग्रह किया। 'नाट्य-वेद' ना निर्माण करके वहां ने प्रचार करते के उद्देश्य से उसे देनताओं नो दिया। परन्तु इन्द्र ने उनसे निर्वर्वन किया हि देनता कीय इस नाट्य-वर्ष के ग्रहण, भारण, ज्ञान ग्रीर प्रयोग से प्रसमये हैं। इस नाम नो वेदो के रहस्य जानने वाले सांतत-यत मुनियों को देना चाहिए। बहुता ने इसके वाद मर्प मुनि को बुलाकर जाजा दी कि तुम ग्रपने सी पुत्रों के माम इस जानके पर्दे के प्रयोगकत बनो पितामह नो प्राच्या पाकर सरत मुनि ने क्षाये सां प्रीप्तों के इस 'नाट्य-वेद' कुट्वी-तन पर ग्राचा।

यह कहानी कई श्रीटियो से महत्त्वपूर्ण है। प्रथम तो यह हि वेदो से जिल पांचवों वेद होते हुए भी 'नाट्य-वेद' के मुख्य अश चारो वेदों से ही लिये गए है। दूसरा यह कि यहाँप रवके पूल तत्त्व के से गृहीत है तथाएँ यह स्वतन्त्र वेद है और अपनी प्रामाणिवता के लिए विकी हत्तर को मुलापेशी नहीं। तीसरा यह कि यह वेद अन्य वेदो को तरह केवल जेनी जाति हों है विशेष सावेदायिक है, और चौधी महत्त्वपूर्ण वात यह है कि वैदिक मानार बौर किया-परम्परा के प्रवित्ति होंने के बहुत बाद त्रेता गुण में रस धारत का निर्माण हुआ। उस समय जम्मूबीय देवता, दानव, यस, रासस और नागो से समाजात्व हो चुका वा, यानी मारतवर्ष से बहुत सी नयी जातियों का प्राप्नांव हो चुका वा, यानी मारतवर्ष से बहुत सी नयी जातियों का प्राप्नांव हो चुका

भारतीय परम्परा यह है कि किसी भी नमे शास्त्र के प्रवर्तन के समय उत्तरा मूल वेदों में शवरय खोजा जाता है। वेद जान-स्वरूप है, उनमे विकास का जान बीज-रूप में सुरक्षित है। भारतीय मनीयी अपने विश्वी ज्ञान को प्रपत्ती स्वतन्त्र उद्गावना नहीं मानते । 'नाट्य-नेद' को उत्तरित की क्या में भी यह प्रवृत्ति दिलाई देती है, परन्तु इस शास्त्र मो बेद की क्यांमें भी यह प्रवृत्ति दिलाई देती है, परन्तु इस शास्त्र मो बेद की क्यांमें देते का एक भीर मर्प भी है। इसमें कुछ ऐसी बार्त 'स्वत प्रमाण' वाक्य है। विसी शास्त्र को देद कहने का मतलब यह है नि वह स्वय भ्रपना प्रमाण है, उसके लिए विसी ग्रन्य भ्राप्त वाव्य की थ्रपेक्षा नहीं । मनु न सात्मात् धर्म के कारण नो चतुर्विध बताया है---थुति, स्मृति, सदाचार भ्रौर भ्रपने-भ्रापको प्रिय लगने वाली दात **।** पेरेन्तु ये चारो समान रूप से स्वतन्त्र नहीं । स्मृति उतनी हो ग्रहणीय है जितनों कि श्रुति से समर्थित है, मदाचार उतना ही ग्रहणीय है जितना कि खुति और स्मृति से समयित है धोर अपनी प्रिय वात उतनी ही दूर तक स्वीकार्य है जिलनी दूर तक वह सृति, स्मृति भीर सदाचार के श्रविरुद्ध हो। धर्म के ग्रन्तिम सीम कारण श्रुति से मर्यादित हैं। मनु त्रिसे श्रुति समभते हैं उसमे ऐसी बहुत-सी बातो का समावेश नही रहा होगा जो नाट्य-वेद मे गृहीत हैं। इसलिये नाट्य-सास्त्र' के झारम्भ मे इसे खुति की मर्वादा दी गई है।

जय से नये दन की शोध प्रया प्रचलित हुई है तद से नाट्य वेद' के विषय में ग्राधुनिक ढग के पण्डितों में अनेक प्रकार की जल्पना-करपना चन पड़ी है। यह भी विचार का विषय बना हुआ है कि 'नाट्य शास्त्र' को पांचर्या वेद भया कहा गया। वे कीनसी ऐसी बातें थी जो इस द्यास्य ने प्रवर्तित होने के पहले बैदिक आधीं में प्रचलित थी और नौन-सी ऐसी बात है जो नयी है? फिर जो नयी हैं उनकी प्रेरणा कहीं से मिनी <sup>?</sup> क्या यवन आदि विदेशी जातियो से भी बुछ लिया गया, या यहाँ नी धार्येतर जातियो मे प्रचलित प्रयाग्रो से उन्ह ग्रहण निया गमा ? इन जल्पना-वल्पनाश्चाका साहित्य वाफी बढा स्रोर जटिल है। सबनी पुनरावृत्ति करना न तो यहाँ आवश्यक ही है और न उपयोगी ही 1 'नाट्य शास्त्र' की कथा से इतना तो स्पष्ट ही है कि नाटको मे जो पाटम-प्रश्न होता है उसना मूल रूप 'ऋग्वेद' में मिल जाता है, जो गेय ग्रदा है वह भी 'सामवेद' में प्राप्त हो जाता है ग्रौर जो रस है उसका

मृत रूप 'ग्रयव' देद मे प्राप्त हो जाता है। वस-से वम 'नाट्य शास्त्र'

नाल में माने की प्रया काफी प्रीड हो पूनी थी। इतना ही नहीं, 'ऋत्वेद' शहराथ में ऐसी दित्रयों ना उत्तेदर है जो उत्तम वस्त्र पहनकर नावती भी भीर प्रेमियों को आहुष्ट करती में। 'अपववंद' में (७१९४१) पुत्रों के भी नाचने भीर गाने का उन्लेख है। भी ए० बी० कीथ ने कार्य-कारण-सम्बन्ध को देखते हुए इस बात में कोई किल आपित उपस्थित होने वी सम्भावना नहीं देखी कि ऋत्येद-कान में लोग ऐसे नाव्येत वृदयों का जानते से जो भीमत हुआ करते वे और जिनमें ऋदिक लोग स्वर्गीय पटनामा वा पुत्रवे पर अनुकरण करने के लिए देवनामों और मुनियों की भूमिना महण करते थे। नाव्येत होने से लोग स्वर्गीय पटनामा वा प्रस्ता पर अनुकरण करने के लिए देवनामों और मुनियों की भूमिना महण करते थे।

'नाट्य-सास्त्र' के रचयिता ने जब यह सकेत किया या कि बह्या ने 'नाट्य-ेंदृंकी रचनाके समय 'पाट्य-ग्रश' 'ऋग्वेद' से लिया था तो उनका ताराय यही रहा होगा वि ऋषेद में भाएं जाने वाले वाब्यात्मक स्वाद वस्तुन नाटक के खरा ही हैं। ऐसा निष्कर्ष उन दिनों यज्ञादियो में प्रचलित नाटकीय दृश्यों को देसकर ही निकालाजा सकता है। श्रामुनिक काल के कई विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ऋग्वेदकालीन यज्ञो मे वस्तुत युख ग्रमिनय हुमा करता था। सारे ससार नौ प्राचीन जातियों में नाच-गान कौर अभिनय का अस्तित्व पामा जाता है। प्रो॰ फान शहर ने बताया या कि 'ऋग्वेद' में आए हुए सवाद प्राचीनतर मारोपीय काल के ऋायों मे प्रचलित नाच, गान थौर श्रीमनय के उत्तरकालीन रूप होने । सारे ससार मे मृस्टि-प्रक्रिया के रहस्य को प्रतीय-रूप में अभिनीत करने के लिय अनेक प्रकार के मैं पूर्तिक स्रभित्तय प्रचलित थे। प्राचीन ग्रीक लोगो में भी एक प्रकार ै चिश्त-वृत्य प्रचलित था, परन्तु इस प्रकार के छनुमान के लिये न रं मूल सहितायो म ही बोई निरियत सबूत पाया जाता है भीर न वारों वर्षों की मारतीय परम्परा में ही कोई सकेत मिलता है। लुट-नैक, पिरोल भ्रोर ग्राल्डेसवर्ग-जैसे विद्वानों ने यह बतलाने या प्रयत्न दिया है कि इन मनाद-मूलक पद्यों के भीच-बीच गद्य ना भी सम हमा करता था, जिसका कोई निश्चित रूप नही या। पद्य केवस स्यलो पर व्यवहृत होते थे जहाँ वक्ता पर भागावेग तीव्र होता । ' इन तीन भावादेश वाले स्थलों की ही इन सवाद-मूलक सूननों में र होत कर लिया गया है। 'शबुन्तला' नाटक से गद्य वाले सभी घरा ह दिए लाएँ और केवल पद्य यश ही सुरक्षित रखे जाएँ तो उसकी व स्यिति होगी जो बहुत-नुछ इन सवादमूलन सूबनो की है। प्री० पिशे ' ने इस अनुमान की धार भी आगे बढाया है। उनना धनुमान है ि संस्कृत-ताटको में जो गद्य और पद्य का विचित्र सम्मिथण मिलता है बह उसी पुरानी यज्ञ-ित्रया से सम्बद्ध नाटकीय तत्त्वो हा परवर्ती हा है। सस्द्रत-नाटक में पात्र गद्र बोलते-बोलते जब भावावेश की स्थिति में बाता है तब पदा बोलने लगता है। परन्तु इस विषय में भी विशाल भारतीय परम्परा एकदम मीन है। जो हो, इतना तो स्पष्ट ही है वि 'नाट्य-बास्त्र' के रचयिता के मन में 'ऋग्वेद' में नाटको में पाए जाने बाते पाठा-तत्त्व के मस्तित्व के बारे मे कोई सन्देह नहीं था। भा ती, परम्परया यह प्रचलित था कि 'ऋग्वेद' के सवाद-मूलक पाठ्य-ग्रदा विसी प्रकार के नाटकीय प्रदर्शन के अश हैं, या उन्होंने स्वय ही किसी धार्मिक उत्मव के प्रवसर पर इन नाट्य-प्रयो को नाटकीय रूप म चिभिनीत होने देखा था । भारत मुनि ने 'नाट्य-सास्त्र' ने प्रथम ब्रच्याय में 'रग-देवत पूजन' विधि का 'यत-सम्मत' कहा है 'यत्तीन सम्मत ह्रोतद् रगर्ववनपूजनम्'--(१-१२३)। यदि 'नाटच-सास्त्र' के इस उल्लेख को परम्परा का इनित मान लिया जाए तो प्रो॰ पिशेल क घनुमान मत्य सिद्ध हो सबता है। इतना ता निद्दितत है कि 'नाटय-शास्त्र का यह बहुना (१-१७) वि नष्टक वे पाटव-भर्म 'स्ट्येद' से लिए गण है, सापार घौर युक्तियुक्त है। भारतीय जाटको के विकास मे, हो इम तत्त्व के तिये बहुत भटकते की जरूरत नहीं है। वह निरिचत हर न महिनायों में प्राप्त है।

' । 'सामवेद' से गीत-भरा लिया गया, यह कहना ठीक ही है। ऋक् रद्य को साम की योनि कहा गया है। योनि ग्रव्यत् उत्पत्ति-स्थल। विक ग्रीर उत्तराचिक, ये सामवेद के दो भाग है। आचिक अर्पात क्षायों का सग्रह। इसमें ४०५ ऋचाएँ हैं। विटरनित्स ने कहा है में इसकी तुलना एक ऐसी यान-पुस्तक से की जा सकती है जिसमे मान में देवल एक-एक ही पद्य लय या सुर की याद दिलाने के लिये सम्रह किये गए हो। दूसरी मोर उत्तराचिक ऐसी पुस्तक से तुलनीय हो मनता है जिसमे पूरे गान सगृहीत होते हैं और यह भान लिया गया होना है नि मुर या सब पहने से ही जाने हुए हैं। कहने का बर्य है कि सामवेद एक ग्रत्यधिक समृद्ध सर्गोत-परम्परा का परिचायक ग्रन्थ है। इमलिये बास्तकार का यह कहना कि 'नाट्यवेद' मे गीत सामवेद से लिए गए हैं, युक्तियुक्त और साधार है।

शास्त्र का दावा है कि 'नाट्य-वेद' में जो ग्रमिनय है वह 'युर्वेद' से लिया गया है। 'यजुर्वेद' अध्वर्येवेद कहलाता है। पतञ्जलि ने 'महा-भाष्य' में बताया है वि उसकी १०१ बाखाएँ यी। यज्ञ में अध्वयु लोग 'यजुर्वेंद्र' के मन्त्रों का पाठ करते हैं । इस बेद की पाँच शालाएँ या पाँच विभिन्न पाठ प्राप्त हैं।

१ 'काठक' अर्थान् कठ लोगा नी सहिता, (२) 'कपिण्ठल-कठ-नहिता' दुछ योडी-सी मिन्न और अपूर्ण हस्तिविषियो में ही प्राप्त हुई है, (३) 'मैत्रायणी सहिता' अर्थात् मैतायणीय परम्परा की सहिता, (Y) 'तैत्तिरीय महिता' या आपस्तम्य सहिता (इन चारो मे बहत माम्य है। इन्हें कृटण यजुर्वेद की साखा कहते हैं।) तथा (४) 'वाज-सनेयो सहिता' झुवल यजुर्वेद की सहिता कहलाती है। इसका नाम 'याज्ञवल्वय वाजसनेयी' ने नाम पर पडा। यही इस दाखा के मादि भानायं थे। इसकी भी दो शाखाएँ प्राप्त हैं, कण्य और मार्व्यन्दिनीय।

'यजुर्वेद भाष्य' की भूमिका में महीघर ने लिखा है कि व्यास के तिष्य वैराम्पायन ने अपने याजवल्क्य इत्यादि शिष्यों को चारो वेद पहाए। एवं दिन वैदाम्पायन बुद्ध होतर याज्यस्य से बोले कि वृ मुमने जो बुछ पढा है उसे छोट दे। गुस्से में याज्ञवल्बय ने भी व पदा था, सब उगल दिया, जिसे गुर की भागा में वैद्यागायन के जिन्ने ने सीतर बनकर या निया। यही उद्गान्त ज्ञान 'तैतिरीय महिता' है। याज्ञवल्लय ने तपस्या करने सूर्य से 'शुक्त यजुनेंद' प्राप्त विया । सूर्य ह ब्राप्त होने के कारण ही इसका नाम गुक्त बहुर्वेद' पटा भीर इसके विरोध में तैतिरीय शासा' का नाम 'कृष्ण यजुर्वेद' परा । आधृति पण्डितो ने दोनो बेदो की विषय-पस्तु पर विचार करके बताया है कि बुक्त का धर्य है.. सुसम्पादित, स्पट्ट भीर साफ जदिक हरण का भर्भ है श्रम्भादित, श्रस्पट श्रीर विचिर-पिचिर। 'कृष्ण यजुर्वेद' मे ऐसे बहत-से भग हैं जो ब्राह्मण-प्रत्यों के भग्न-से जान पडते हैं। गुक्त में यह बात नहीं है । वह विगुद्ध मन्त्रों की सहिता है । बुछ विद्वानों का विस्वास है कि रावण-इत नेद माध्य इसमें मिल गया है, इसलिये इसे कृष्ण या काला कहा गया है। 'गुक्ल यजुर्वेद' की 'माध्यन्दिनीय शाला' ही सम्भवत पुराना धौर प्रामाणिय यजुर्वेद है । इसकी उक्त दोनी शाखाओ मं अन्तर बहुत कम है। माध्यन्दिनीय बाखा पुरानी मानी जानी है. उसी का प्रकार भी प्रधिक है। आधृतिक पण्डितो का दिखास है दि इसने ४० शब्याओं मे बन्तिम १५ (या २२) परवर्ती है, प्रथम भाग पुराना ।

=

यजुर्वेद' से बुळ बदा ऐसे धव'य मिस जाते है जो यज-त्रिया की बिदियों को बदाते हैं जिनसे कोट बहुत ऐसे काय होते हैं जो प्रमित्रय को नीट में प्रा सकते हैं। धापुनिक दम के बिद्धानों ने यत ने सीम-बिद्या प्रमुख्य को कि बिद्धानों ने यत ने सीम-बिद्या प्रमुख्य को कि बिद्धानों ने एक प्रमुख्य का सार्विय प्रमुख्य को कि बिद्धानों में सार्विय प्रमुख्य हो माना है। दसी प्रमार बन्त याजिय प्रमुख्यानों में भी बुळ ऐसे प्रमुख्यान मिस जात हैं जो नाटकीय प्रमित्रय की कोटि ये प्रा जाते हैं। वह सत्य है बि इन प्रमुख्यानों की नाटक कही बहुत जा प्रमुखानों की नाटक कही वहां जा प्रमुखान है की इस प्रमुख्यानों की नाटक कही वहां जा प्रमुखान है।

न्यिति नौ भूमिना में उतरता है, स्वय ग्रानन्दित होता है ग्रीर दूसरो ं<sup>ड</sup>ी ग्रानन्द देता है। 'सजुर्वेद' में इस श्रेणी ना नाटन स्रोजना व्यर्थ ना परिधम-मात्र है। दुछ विद्वानी ना अनुमान है नि याजिक त्रिया ने अनुष्ठान में ऐसी बुछ बातें भा मिली हैं जो उन दिनों ने साधारण जन-समाज मे प्रचलित नाच-गान भीर तमाशो से ली गई होगी । इसमे कोई सन्देह नहीं वि ऐसे लोक-नत्य और लोब-नाट्य उन दिनी प्रचलित :स्रवस्य **ये ।** 'नौशीतको बाह्यण' (२४३५) में मृत्य-गीत ग्रादि को कलाधी भि गिनामा गया है। 'पारस्वर गृह्यमूत्र' मे ( २-७-३) डिजातियो को ।यह सब करने की मनाही है। इसलिये यह सरलता से धनुमान किया 'जा सकता है कि उन दिनो लोक में बहुत से नृत्य, गीत, नाट्य प्रचलित में । लोग उनकी कह भी करते थे, परन्तु प्रत्यन्त मैतिक्लाबादी ब्राह्मण ः उनसे यचने का भी प्रयत्न करते थे। वेदी या बातावरण पवित्रता का वातावरण है, भीर बाह्मण-विश्वास के अनुसार ऐसा कोई काम दिजी नो नही करना चाहिए जिससे चरित्रगत पतन की सम्भावना हो। इय-लिये यद्यपि नृत्य, नाट्य बाहि की बनीरव्यकता उन्होने बस्वीकार नहीं नी, विन्तु उन्हें भले आदिमिया के योग्य भी नहीं माना । जो हो, शास्त्र में पह बताया गया है वि नाटको में जो धिभनय-तत्त्व है वह 'यजुर्वेट' से लिया गया है। इस बक्तव्य को समफते के लिये जिस प्रकार मह भावस्यक है कि हम समक्षें कि यजुर्वेद क्या है, उसी प्रकार हम यह भी समभें कि नाट्य-दास्त्र ने 'श्रिभनय' किस वस्त् को कहा है । 'नाटप-शास्त्र' मे श्राभिनय शब्द बहुत ब्यापक ग्रमों में व्यवहुत हुमा ,

'नाटप-सारल' में अभिनय सब्द बहुत व्यापक सभी में व्यवहृत हुआ है। इसमें नाटन के प्राय सभी तरल सा जाते हैं। वेश-विन्यास भी इससे प्रतग वस्तु नहीं और रामय की सवाय अने उसके प्रतग वस्तु नहीं और रामय की सवाय अने उसके प्रतगित सा जाती है। वस्तुत पाट्य-गान और रस के धितिरका जो-गुठ भी नाटक में किया जा सजता है वह सब अभिनय के धन्तर्यंत आता है भीर पाट्य-पान मौर रस के भी सभी धाव्यव और उपादान अभिनय के धन्तर्यंत पा जाते हैं, इससिये नाटद-साश्मीय परम्परा स अब धभिनय संद का

व्यवहार होता है तो यस्तुत मुख्यी पृष्टता नहीं।

षुष्ठ सोगो ने 'नाट्य-बास्त्र' वे अभिनय' बाद्द वा अर्थ 'इमिटेटर' (मनुकरण) भौर 'जेदनर' (नाव-प्रगी) विचा है जो ठीव गही है। यह समभना भूल है कि मभिनय में वेवल मगो की विशेष प्रकार ही भित्माएँ ही प्रधान स्थान प्राप्त करती हैं। ग्रामनय के चारों ग्रागी-मर्थान मानिक, वाचिक, माहार्य भीर सात्त्यिक-पर समान भाव है जोर दिया यया है। मागिव मर्यात् देह-सम्बन्धी अभिनय उन दिने चरम उत्कर्ष पर था। इसमें देह, मुख भीर चेप्टा के प्रभिनय शामिन थे। सिर, हाय, वटि, वस, पास्वं भीर पैर इन धनो वे सैवडो प्रकार को ग्रमिनय 'नाट्य शास्त्र' ने भीर 'ग्रमिनय दर्वण' भारि ग्रन्थी हैं विनाए गए हैं। 'नाटय-शास्त्र' में बताया गया है कि विस अव या उपान के म्राभिनय का वया विनियोग है, अर्थात् वह विस धवसर पर मिमनीत है सकता है। फिर नाना प्रकार की घुमकर नाचने-गाने वाली मगिमाधी। का भी विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। फिर में कि प्रधीर वचन-सम्बन्धी भ्रमिनय को भी उपेक्षणीय नहीं समभा जाता था। 'नाटप-शास्त्र' में वहा गया है (१५-२) कि वचन का प्रभिन्य बडी सावधानी से करना चाहिए, वयोकि यह नाट्य का ग्ररीर है, श्ररीर भीर पोशाक के अभिनय बाक्यार्थ को ही व्यञ्जित करते हैं। जुपयुक्त स्वनो पर उपगुक्त यति ग्रीर काकु देकर बोलना, नाम-ग्राख्यात-निपात जपसर्ग-समास तद्वित, विभवित-सन्धि आदि को ठीव-ठोक प्रकट करना छन्दो का उचित हम से प्रयोग करना, बब्दो के प्रत्येक स्वर फ्रीर व्यञ्जन का उपयुक्त रीति से उच्चारण करना, इत्यादि वातें भ्रमिनय का प्रथा भगंमानी जाती थी। परन्तु यही सब-कुछ नहीं था। केवल शारीरि भ्रौर वार्चिक श्रमिनय भी श्रपूर्णमान जाते थे। स्राहार्यभौर वस् मद्भारो की उपयुक्त रचना भी श्रिमिनय का अप्र सक्षकी जाती पं यह चार प्रनार की होती थी--पुस्त, प्रलङ्कार, श्रङ्ग-रचना और सर्ग नाटक के स्टेन को बाज के समान 'रियलिस्टिक' बनाने का ऐसा पा-

पन तो नहीं था, परन्तु पहाड, रस, विमान स्वादि को यथार्थ का कुछ स्पर् देने के लियं तीन प्रकार के पुस्त व्यवहृत होते थे। वे या तो वांस ा सरक्ष्य से वने होते थे, जिन पर क्षडा या पमडा चडा दिया जाता ।।, या फिर यन्त्र स्वादि की सहायता से फर्जी वना लिए जाते थे, या फर प्रभिनेता ऐसी 'वैष्टा' करता था जिसमें उन वस्तुमां का वोद्य सेक्स को हो जाए (२३-४-७)। इन्हें त्रमस सिच्यम, व्यञ्जिम भौर विदिय पुन्त कहते थे। यल द्वार में विविध प्रकार के मात्य, सामरण, वस्त्र प्रादि की गणना होती थी। यज्ञु-रचना में पुरूप और स्त्रियों के यहुविध वेष-विन्याम सामिन थे। प्राणियों के प्रवेश को सजीव कहते थे (०३ १५२), परन्तु इन तोनो प्रकार के प्रभिनय में प्रभिनत पा सामिनों को वाहतविक परीसा होती थी।

'यजुर्वेद सहिता' में बताए हुए याजिक विधानों में नि सन्देह प्रिज्ञिन क्षेत्र के उत्तर बताए गए प्रतेक तत्व मिल जाएँग । इनिलये शास्त्रकार ने प्रमिन्त को 'यजुर्वेद' से गृहीत बताया है । क्योंकि प्रयवंवेद में मारण, मोहन, बतीकरण प्रादि प्रतिचार पाए जाने हैं। इसमें जिन सोगो पर ये प्रयोग निए जाने हैं उनके स्थानापन्त किसी का प्रवधारण होता है जो नाटक के विभावादि के समान ही हैं प्रीर साथ है इसमें मारणादि प्रमिचारों के समय सिहरन, कम्पन प्रादि प्रतुकाद तथा पृति, प्रमिवं प्रादि सचारों भाव नी विद्यमान होते हैं। इस प्रवार विभाव अवुताव-स्थारों भाव नव थोय, जिससे रस निज्ञित हुमा करनी है इसमें मिल प्रति है। प्रमिनवगुरत का मा है कि इनीलिये इसको प्रयवंवेद से प्रहण प्रमा बताया गया है। 'अवयंवेद' से रसी के बहुण करने का मुनानों भी जिस्त और सगत है।

#### विधि ग्रीर शास्त्र

'नाट्य-वेद' के दो अग हैं--विधि और शास्त्र । भरत मुनि ने प्रयम

भ्रष्याय के १२५वें स्त्रीक में स्पष्ट वहा है कि जो व्यक्ति 'स्पार्विक' भीर 'ययादास्त्र' पूजा वरेगा यह शुक्र फल प्राप्त वरेगा भीर झन्द म स्त्रर्ग-सोक मे जाएगा--

धवाधिधि मयाशास्त्रं यस्तु पूजा वरिष्यति । स लप्स्यते श्रुमानवीत् स्यर्गेहोकं गमिट्यति ॥ (१-१२४) दूसरे से पाँचवें झघ्याय तक विधि पर वडा जोर है। विधि-दूषः क्षमी (२-६१) से सभी कार्यों को करने को कहा गया है। काष्ठ-विकि (२-७१), अत्ति-कर्म-विधि (२-०३), इतर-विधि (ई-२२), मत्त्र-विधान ( ३-४६ ), बासान्ति विधि ( ४-२८२ ), बृहामिनय-विधि (४-२१२), नृत्याभिनय-वादित सम्बन्धी वस्तुक विधि (४-२१४) ताण्डब-प्रयोग-विधि (४-३२१), गीतक-विधि (५-६०), रगसिद्धि है। परचात् काव्य-निरूपण विधि (४-१४०), पूर्व-रग विधि, (४-१७२ मीर १७६) इत्यादि प्रनेक विधियो का उल्लेख है। दर्जनो स्थानो पर विधि-लिङ्की जियाका प्रयोग है। भीमासको के घनुसार शुनिका तात्पर्य

है। नाट्य-सास्त्र इन विधियो पर बहुत जोर देता है ग्रीर स्थान-स्थान पर स्पष्ट रूप ने निर्देश देता है कि यह विधि भवश्य करणीय है। जो इस विधि को छोडवर अपनी इच्छा से इसका प्रयोग करता है वह तियाँग् मोनि को प्राप्त होता है भीर विनाश (अपवय) का शिकार होता है-यश्चेमं विधिषुरसूक्य बबेष्टं सम्प्रमोजयेत ।

नेवल विधि से है। जहाँ विधि लिङ्का प्रयोग होता है वही खुति होती

प्राप्नोत्यपचयं घोर तियंग्योगि च गच्छति ॥ (४-१७३) मीर---

> यस्त्वेवं विधिमुत्सृत्य यथेष्ट सम्प्रयोजयेत्। प्राप्नोत्वषचयं शौद्रं तियंग्योनि च गच्छति ।। (३-६८)

पाँचर्वे अध्याय के बाद निधि सब्द कम शाता है। प्रश्तिम प्रध्यामी में बह किर बहुलता से भाने लगता है। स्पष्ट ही 'नाट्य-वेद' का

भृतित्व इन विधियों में है। मई स्थानो पर अनेनेव विधानेन'नी

ाक्याशो का प्रयोग ग्राता है, जिसमे शास्त्रकार 'एव' पद देकर ग्रन्य वेधियो का तिरस्कार व रते हैं।

विधि के बाद जा बचता है, वह साहत्र है। साधारणत इसके निये नाट्यम्' सब्द ना प्रयोग हुआ है। इसमे मुक्ति-तर्क धौर प्रयोग-पाट्य हा निर्देश है। छठ धौर मातव अध्याय मे रस और आवो को समक्राया आवा है। इन सप्यायो मे विधि सब्द का प्रयोग बहुत कम हुमा है। यह साबा तो नहीं किया ना मकता कि विधि धौर साहर बिलकुल सबत क्रिके ति हिसाए जा सकत हैं, पर इतना निश्चित जान पटता है कि विधि प्राधारणत अभिनेताओं मो दृष्टि में रसकर निर्दिष्ट हुए हैं धौर साहर विभिन्न स्विधि साहर विश्व है। साहर मिनेताओं मो दृष्टि में रसकर निर्दिष्ट हुए हैं धौर साहर विभिन्न सामाजिक और कवि या नाटरकार सबको ध्यान में रसकर प्रवित हुसा है।

र्द. तुः. नाट्य-घेद मे विस्तार त्र बहा। ने जब नाट्य-बेद की सुप्टि की तो उसमे स्वय ही इतिहास

को जोड दिया और इन्द्र वो खाना दी कि इसका प्रयोग देवताओं से क्रिंग के कि कि इसके ग्रहण, धारण, ज्ञान धीर प्रयोग की शिक्ष के देवताओं मे नहीं है। केवल मुनि लोग ही ऐसा कर सकते हैं। इंदिन के क्या का ताल्पर्य यह वा कि देवता भोग-योनि है, उस योनि मे कि मा-योवित हैं होती जबकि मनुष्य मे प्रहण, धारण, ज्ञान धीर प्रयोग में सित होती है। ताल्पर्य यह है कि नाटक केवल धनुकरण मात्र नहीं, 'यह उससे प्रथिव है। उसमे मनुष्य की इच्छा, ज्ञान धीर कमें-योवित में मावदयकता होती है। यहण की हुई वस्तु को घारण करना सामा । सम्मव होता है। देवता वा चारीर और मन खिड होता है, नायक ही। उसमें इच्छा, ज्ञान धीर किया से मनुष्य द्विता है, नाटक में सकल्य होता है। इसलिये के इच्छा, ज्ञान धीर किया से मनुष्य द्विता है। इसलिये के इच्छा, ज्ञान धीर किया से मनुष्य द्विता हम् करने वाली महा-

्रावित त्रिपुरा मनुष्य पिण्ड में कुण्डलिनी-रूप में प्रकाशित होती है, दिन्तु

ŧ¥ देवता मे उसवा सभाव है। इसीतिय नाटव, जो सनुष्य वी गर्जनम्ह

या सिसुद्धा वा उत्तन रूप है, देवता लोगों की धर्वित का दिपस गरें है। देवता सिद्धि दे सबता है, माधना नहीं बाद सरमा । नाटब माधन नादिषय है। मनुष्य मे जो सर्जोच्छाया नदाबुष्ट रक्ते की की बारासा है, वह उसका विषय है। इन्द्र की बात मुनकर बह्या ने इंडि हासप्वत 'नाट्य-वेद' को भरत मुनि के दिम्म किया बिन्हों र भपने सी पुर्व को छसका उपदेश दिया । इस प्रकार इतिहास 'नाट्य-देद' में और गया । पाट्य, गीत, भ्रमिनय भीर रस के साथ क्यानक का शीन हुना शास्त्र के अनुसार नाटक का प्रथम प्रयोग इन पाँच बस्तुमा को सेवार हैं

हमा । भरत मूनि ने इसमे तीन बृतियो ना योग विया था । ये शीन वृत्तियाँ हैं, भारती, सात्वती घौर बारमदी । भारती वृत्ति वारू प्रधाना, पुरय-प्रयोज्या, स्त्रीवीजता, संस्कृत वास्य पुत्रता" वृत्ति है (२२ १ इसे भरत-पुत्रो को प्रयोग करने म कठिनाई नहीं हुई, सास्वती "हर्यों-रकटा, सहत-दोक्त वा, वाग्यगामिनपवती, सरवाधिकारपुरता वृत्ति है (१२-३८, ३६) । इसे भी विना १ ठिनाई के मन्हाल लिया गया, भारभटी नूद-भार, इह-जाल, साममण यादि को प्रवट करन वाली वृत्ति है (२२-५७, ५८), बरत-पुत्री ने इसका प्रयोग भी मासानी से कर लिया। परन्तु चौथी वृत्ति जो वैशिकी है, यह उनके दस भी नही थी। इसमें सुदुमार साज-सज्जा, स्त्री-मुलन चेप्टाएँ, कोमल भूगारोपचार (२२-४७) की मावस्यकता थी। भरत-पुत्र इसका प्रयाग नहीं कर सके। बह्याने इस कमी को महसूस किया और भरत-मुनि की प्राक्ता दी कि केशिको वृत्ति को भी इसमें जोड़ों (१-४३)। भरत मृति न वहां कि यह यति सो पूरपो ने बदा नी नहीं है इसे तो नेवल स्विया हो नर सकती हैं। प्रह्माने तब अप्सरायों की सृष्टि की, इस प्रकार 'भाटय-वेद' हैं स्त्रियों का प्रदेश हबा । इन्द्र के व्यवारीपण ने अनसर पर प्रथम बार चारो वृत्तियो है सयुक्त नाटक खेला गया और असन्त होकर देवताओं ने भरत मूनि की

त्नेन उपनरण दिए और रक्षा नरने ना आक्वासन भी दिया। नया से स्पट्ट है नि पहले नाटन में स्त्रियों ना मोग नहीं या। गद में जब यह अनुभव निया गया नि नाटन नी कुछ नियाएँ स्त्रियों।

ादमं जब यह झनुभव क्या गया कि नाटव का कुछ । त्याए । त्या हे बिना ग्रमम्भव हैं तो नाटव भे स्त्रियों के प्रवेश करने का विधान हमा ।

वैरयो ने नाटक के समय उपदव शुरू विचा । उनसे बचाव के लिये
रागूजा नी विधि ना समावेश हुआ । इसकी वधी विस्तृत विधि 'नात्य-धारत' में बनाई गई है । इस घाडम्बरपूर्ण विधान से नाटक में यह का गीरव मा गया । पहले नगाडा बजाकर नाटक घारम्म होने की सूचना हैने का विधान है । फिर गायक घौर वादक लोग यसास्थान बैठ जाते हैं, सिमालित गान घारम्म होता था । मृदग, थीणा, वेणु घादि वादों है साथ नतंकी का नपर मतनार कर उठता था और इस प्रकार नाटक

ि साथ नतंनी ना नुपुर कतनार कर उठता या और इस प्रकार नाटक के उत्थापन की विधि सम्मन्न होती थी। सामृतिक परिव्रतों में इसके गिरे में मतमेद हैं कि यह परदे के पीछे की किया है या बाहर अर्थान् रा-कृषि को। मतमेद का कारण सदा प्रीक रागम की बात सोच-सोचकर जारतीय रागम की सममने की अवाधित चंदा है। युक्त में हैं प्रकार निराल या रागवतरण का उल्लेख होने से स्पष्ट है वि यह किया राष्ट्री मैं ही होती थी। किर मुनवार का प्रदेश होता था, उसके एक भीर भिद्य में पानी किए मुनुहारबर होता था और इसरी भीर विप्ती को

े पहुँप में पानी जिए भुद्धारबर होता था आरे इसर अरेर रिने से स्वित्य करने वाली पताचा लिए जर्जरबर होता था। इन दो परिर्वित्रार्दकों के साथ सुत्रधार पाँच पण आगे बहता था। परन्तु यह बढना

र्वाधारण बात न थी, उनमे विशेष गौरवपूर्ण अभिनय हुआ करता था।

र्विद्या सुद्धार के जल केकर आव्यमन, प्रोत्तण सादि वरवे पवित्र

र्विद्या सुद्धार के जल केकर आव्यमन, प्रोत्तण सादि वरवे पवित्र

र्विद्या साथा किर एवं विशेष आडम्बरपूर्ण प्रिमास के साथ विम्त को

र्वे केवर वरने वाले जजर नामव ब्वज को उत्तोतित वरता था और इन्द्र

तथा प्रस्य देवताओं भी स्तुति वरता था। वह दाहिने पैर के प्रमिनय से

शिंद नो घौर वाम पैर के अभिनय से विष्णुको नमस्कार करताया।

र्भ दशक्षक भीर दूसरा हभी का पद माना जाता या। एक नपु सक पद का भी विधान है, इसमे दाहिने पैर वो नामि तक उत्किष्ट कर सेने का दम नपु सक पद से निर्देश है। इस नपु सक पद से नह झहाा को नमस्कार करता था, फिर यवाविदि यह सार प्रकार के पूष्पों से अनंद को पूजा

करता था। वह वाध-धन्त्रों की भी पूजा करता था घौर तब जाभर नान्द्री स्वा । वह वाध-धन्त्रों की भी पूजा करता था घौर तब जाभर नान्द्री साठ होता था। तब देवतायों को बह नमस्कार करता था घौर उनि कस्याण की प्रार्थना करता था। वह राजा की विजय-कामना करता था, वर्तों को य पर्म-बृद्धि होने को शुआशक्षा करता था, कवि या नाटकपार के प्रतावर्धन की भी वह कामना करता था। प्रत्येक द्युम कामना के बार था। पिराद्धक की की पेता हो हो (एवमस्तु) कहकर प्रतिवचन देते थे और इस जनार नान्द्री-पाठ का पाड-घरपूर्ण कार्य सम्यन्त होता था।

इस प्रसय में हम 'नाटप-जास्त्र' में से केवल मुख्य मुख्य कियायों की गम्रह कर रहे हैं। नाम्यी-गाठ तक की दिया बतुत विस्तृत है। इस नाम्यी-गाठ को 'नाटप-जास्त्र' बहुत महत्त्व देता है। अस्तु, अब नाम्यी-पाठ हो जाता था तो फिर गुष्कावकृष्टा विधि के बाद सूत्रभार एक ऐसा समोन-गाठ करता था जिससे भवसर वे भनुकूल बात होती थी, अर्थात् बहु या तो जिस देवता-वियोग की पूत्रा के भवसर पर नाटक केला आ रहा हो उस देवता की स्तुति का बलोक होता था, या किर जिस राजा के उपनय पर भिनव हो रहा था उस विशेष स्तुति का। या फिर वह बहा वे एस वा पा वा पित वह सहा वे एस वा पा वा प्रस्तुत का। या फिर वह सहा वे एस वार्य के समान के लिये भी वह

की स्त्रुति का बाठ करता थी, फिर लाजेर के सम्मान के निवे भी वह एक रनोत वहना था और फिर चारी नृत्य शुरू होता था। इसकी दिस्तृत स्थारचा और विधि 'नाटय-ग्राहन' के बारहवें प्रस्थाय से दी हुई है। यह चारी का प्रयोग पाउँती की श्रीन के उद्देश्य से किया जाता था, करीकि पूर्वकाल में शिव ने दल विश्वेयभगी से ही पाउँती के साथ त्रीहा की थी। इस मिलसात स्थाविचेटता-स्थ चारी के बाद महाचारी का दिवान भी नाटय-शास्त्र में दिया हुआ है। इस समय गूत्रपार लाजेंद्र या दिवान भी नाटय-शास्त्र में दिया हुआ है। इस समय गूत्रपार लाजेंद्र या दिवान भी नाटय-शास्त्र में दिया हुआ है। इस समय गूत्रपार लाजेंद्र , कर-जनून बातें करता या जिससे सूत्रवार के चेहरे पर स्मित हास्य छा -जाना या और फिर प्ररोचना होती थी, जिससे नाटक के विषय-वस्तु - पर्यान् किमको कोनमी हार या जीत की कहानी अभिनीत होने वाली है, य सब बातें बना दी जाती थी, भीर तब वास्तविक नाटक शुरू होता पा । शास्त्र मे ऊपर लिखी गई बार्ते विस्तारपूर्वक कही गई हैं। परन्तु माय हो यह भी कहा गया है कि इस किया को सक्षेप मंभी किया जा सकता है। अगर इच्छा हा तो और भी विस्तारपूर्वक करने का निर्देश रेन में भी बास्य चूकता नहीं। ऊपर बतायी गई कियायो से यह विश्वास केवा जाता था कि ग्रप्सराएँ, गन्धवं, दैरय, दानव, राक्षस, गुह्यक, यक्ष या भ्रन्यान्य देवगण भौर रद्रगण प्रसन्त होते है भौर नाटक निविध्न माप्त हाना है। 'नाट्य शास्त्र' के बाद के इसी विषय के लक्षण-ग्रन्थो र यह विधि इननी विस्तारपूर्वक नहीं कही गई है। 'दशकपक' तथा नाहि यदर्पण' झादि से तो बहुत सक्षेप से इसकी चर्चा नर कर दी गई । इस बात से यह अनुमान होता है कि बाद को इतने विस्तार और उदाहरण के लिए दशक्ष्यक को लिया जा सकता है। वहाँ पूर्वग्य का तो नाममात्र से उल्लेख है। पूर्वरग का विधान करके जब सूत्र-पार चला जाता है तो उसी के समान वेश वाला नट (स्थापक) काव्यार्य की स्थापना करता है। उसकी वेश-मूखा कथायस्तु के अनुरूप होती है, अर्यात् यदि कवावस्तु दिव्य हुई तो येश भी दिव्य भीर मत्यं-लोक की हुई तो वेश मूखा भी तदन्रूप । सर्वप्रयम उसे राव्यार्थ-मूर्चक मधुर इलोकों से रम स्थल के सामाजिकों की स्तुति करनी चाहिए। फिर उसे किसी ऋतु के वर्णन द्वारा भारती वृत्ति का प्रयोग करना चाहिए। भारती वृत्ति सस्कृत-बहुल बाज्यापार है। इसके चार नेद होने हैं--(१) प्ररोचना, वीयी, प्रहसन

भीर भामुन्द या प्रस्तावना। बीबी और प्रहसन तो रूपकों के मेद हैं। वैसे, दीबी मे बताबे हुए सभी भग भामुख मे नी उपयोगी हैं॥

अमेति के लिए ताण्डव का भी विघान है। फिर विदूषक प्राकर कुछ ऐसी

भाष्टम्बर के साथ यह निया नहीं होती होगी। विश्वनाथ के 'साहित्य-दर्पण' से इतना स्थाट ही हो जाता है कि उनने खमाने में इतनी दिस्हें

य देवना स्वरुष्ट हैं। स्वाप्त हैं से क्षेत्र के प्रश्नित है सामाजिकों को नार्ट्य म्यावरत्त के ब्राह्म क्ष्यावर्त्त के ब्राह्म क्ष्यावर्त्त के ब्राह्म क्ष्यावर्त के ब्राह्म क्ष्यावर्त के ब्राह्म क्ष्यावर्त के ब्राह्म क्ष्यावर्त के स्वरुप्त के स्वरुप्त के से स्वरुप्त के से स्वरुप्त के से सिव क्ष्यावर्त के स्वरुप्त के से सिव क्ष्यावर्त के स्वरुप्त के सिव क्ष्यावर्त के सित क्ष्यावर्त के सिव के

(१) उडातक (पूट प्रश्नोत्तर), (२) ध्रवसित (एक-यूसरे से सटे 'ए कार्मों के सूचक कांक्य), (३) प्रवस् (हेसाने वाली पारस्परिक मिन्या स्तुति), (४) निगठ (ध्रव्य सान्य से अनेक क्यमें की योजना), (५) ध्रतन (चिकनी-पुपधी से बहुकाना), (६) धावकेली (ब्राचा कहनर बातें कर तो, (०) गण्ड (सम्बद्ध से चिन्न का उपस्थित हो नाना), (१) ध्रवस्कीन्त्रत (सरस बात कहनर मुकरने का प्रवत्त), (१०) जाविका (ग्रह जवन), (११) ध्रसस्प्रताय (उट-पर्टान, दश्वेसला), (१२) ध्र्याहार (हेसाने के लिए कुछ का कुछ कर देना) धीर (१३) मृत्य (योष को ग्रुए और ग्रुए को कोय व्रत

देना) ।

किया≻नहीं होती थी। जो हो, सन् ईस्वी के पहले श्रीर बहुत बाद भी

इस प्रेकार की विधि रही जरूर है। यहाँ तक 'नाट्यवेद' सीघा-सादा ही था। 'नाट्य-सास्त्र' ने चौथे

प्रध्याय में इसमें एक धौर किया ने जोड़ने की कया है। वेदों से गृहीत पाठ्य, गीत, प्रभिनय ग्रीर रस वाले 'नाट्य-वेद' मे ब्रह्मा ने पहली बार इतिहास जोडा, दूसरी बार कैंझिकी वृत्ति के साथ स्त्रियों का प्रदेश तुमा भीर तीसरी बार दैत्यजनित वाथा को दूर वरने ने उद्देश्य से रग-पूजा नी विधि जोडी गई। यब इतना हो जाने ने बाद भरत ने 'स्रमृत-

मन्यन' का नाटक खेला। 'नाटप-दास्त्र' की कुछ प्रतियो मे इसे 'समवकार' महा गया है, कुछ मे नही कहा गया है । ब्रह्मा ने फिर इस नाट्य-प्रयोग शिवजी को दिखाने के लिए कहा। शिवजी ने देखा और प्रसन्त . . १। उन्होने ब्रह्मा से नहां कि तुमने जो इस नाट्य की सृष्टि की है वह में दे है, ग्रुम है, पुष्प है श्रीर बुद्धि विवर्धक भी है। परन्तु मैंने सन्ध्या-ैं में नृत्य करते समय 'नृत्त' को स्मरण किया है, जो अनेक करणो ैं समुक्त है बौर ब्रगहारों से विभूषित है। पूर्वरण की तुम्हारी विधि शृद' है, इसमे इस नृत्त को जोड दोगे तो वह 'चित्र' हो जाएगा, प्रयांत् रे उपैमे वैचित्य या जाएगा । फिर दिव ने करणो और यगहारो की विधि

बताई भीर बह्या ने ताण्डव-नृत्य का भी नाटक मे समावेश किया । यह चौथा सस्त्रार था। भारतीय परस्परा के धनुसार इन चार कक्षाधी का मतित्रमण वरने के बाद 'नाट्य-शास्त्र' पूर्णाञ्च हुन्ना । इसे ऐतिहासिक विवास यहा जा सवता है।

## ४. नाट्य-शास्त्र क्सिके लिए ?

भारतीय 'नाट्य बास्त्र' तीन प्रकार के लोगो को दृष्टि में रखकर लिला गया है। 'दशरूपन' ग्रादि परवर्ती ग्रन्थों नी तरह वह केंद्रस नाटक लिखने वाले कवियो के लिये मार्गदर्शक ग्रन्य-मात्र नहीं है। सच पूछा जाए तो वह धनिनेताओं के लिये ही अधिक है, नाटककारो और इस हप नो नही समझा नाएगा, नज तन इस विद्याल ग्रन्थ ने महस्व ना भनुभव नही किया जा सवेगा। नजसे पहने 'नार्य-सास्त्र' नाटक के प्रसिदेताओं को दृष्टि मे रखकर सिला गरा। इस ग्रन्थ में करण, प्रमाहार, चारी प्राटि की विशियों, जो विस्तारपूर्वक समलायों गई हैं नृत्य, गीत प्रीर वैद्या-स्पा का जो क्लिन्त विदेखन है, वह भी प्रभितेताकों को ध्वान में रखकर जिया गया है। रममय का जा पा। सामितेसाकों की सुविधा को ही दृष्टि म रखकर किया जाता पा। सामारणस रममझ या प्रेसाकृत सीन प्रचार के हाने था। जो बहुत

सहे होते ये वेदेवतागा के प्रेशामूह होन थे घीर १०० हाथ लग्न होने थे दूनरे राजायों के प्रेशामूह होन थे घी ६४ हाथ लन्दे घीर इतने ही कौड होने थे जीमरे प्रनार य प्रेशामूह त्रिमुजारार होने थे और जनकी तीली मुजाधा की लक्ष्माई २२ हाय कोती थी। सन्मयत दूसरी थेगों ने प्रेशामूह ही स्विय प्रचलित थ। एमा जान पडता है कि राजभवनो म श्रीर चट बट समृद्धिसाली भवतों में ऐसे प्रेशामूह स्थायी हुमा करते थे। 'प्रतिक्षा नाटक ने धारक्य में ही राजभवन म नेपण्यसाला की बात माई है। राजा रामचन्द्र के प्रक्ष्म पुरुष नेपच्यसाला थी, जहीं राम्प्रीम के लिए बल्बन सादि मामधी रखी हुई थी। साधारण नागरिक विवाह तथा खन्य उत्सवों के सम्म प्रस्थायी रूप से छोटी-कोटी प्रेशाम्यालायों, जो तीसरी थेणों की हुमा नरती यी, बत्या निया वरते थे। प्रेशाम्यालाया ना निर्माण समिनता की मुचिया के लिए हुमा वरता था। इस बात ना च्यान रहा जाता वा कि रमप्रीम मे समिनय करने वालों की सावाब सन्तिन विवारों तक

नो प्राधानी से देख सकें। प्रभिनन भारती से पता चलता है कि नाट्य-साश्य के पूर्ववर्ती टीका कार ऐमा ही मानते थे कि यह शास्त्र प्रियनेता, कवि प्रीर सामाजिक

प्रनायास पहुँच सके श्रीर सह्दय दर्शवगण उनकी प्रत्येव भाव-भगिमा

भाड्य-शास्त्र की भारतीय परस्परा

मिट्टी गुज मानी जाती थी। प्रमि को पहले हुन से जाता जाता था। हममें से मिन्द, बीस, क्याल, तृण, गुल्मादि को मारू विद्या जाना था, इसे मम म्रीन पटमर बनाया जाना था और नब में श्रीमृह के नापने की विश्व शुरू होनी थी। जाट्य-शाहन को देखने में नमा चलता है कि मेसागृह का नापना बहुन महत्वपूर्ण कार्य मम्मन जाता था। माप के ममय मूत्र का टूट जाना बहुन प्रमान-दनक ममना जाता था। सूत्र ऐसा बनाया जाता था, जो महत्व ही न टूट मुने। बहु या तो क्यान में बनता

था या बेर की छाल ने बनता था या मूंज से बनता था और किसी बृंस की छाल की मजबूत रहनीं भी नाम में लाई जा संस्ती थीं। ऐसा विस्ताम किया जाना था कि यदि मूत्र झाथे से टूट जाए तो स्टामी की

नहीं मानते । उनका बहुना है कि नास्य-सान्य बेबल बिबसी और सनिनेताओं को मिश्रिन करने में उद्देश में ही बना था । उनका मतः सारम्भ ने पांच प्रत्नों ने विश्वेषणपण साधारित है । बेबिन पूरे नास्य-सारम ने पढ़ने पर पूर्ववर्ती टीवाबारों की बात ही मान्य जान पड़नी है। 'नास्य-सान्य' रणमच के निमाण को बहुद महस्व देना है। मूमि-निर्वाचन में लेकर रणमच की निमाण कर दश्हन मालधानी से मैंमाना जाता था। सन, निक्य और कठित मुस्ति तथा काली या गीर वर्ण की

हुल्यु होती है, निहाई से दृठ जाए तो राज-कोप की प्रामक होती है, क्षीपार्ट में दूटे तो प्रमोक्ता का नाश होता है? हाय-पर में दूटे तो प्रधानना का नाश होता है? हाय-पर में दूटे तो प्रधानना का नाश होता है? हाय-पर में दूटे तो प्रधान का का में स्वयं सम्भा जाता था। तिथि, नदाव, वरण प्रादि को मुद्धि पर विशेष रूप से समान दिया जाता था। विश्व नदात का पूरा प्रधान रक्षा जाता था। कि को हो के प्रधान रक्षा जाता था। कि को हे क्या बहत्र वारी, होत कप, वा विकलान पुरुष मण्डण-स्यापना में समय मचानक प्रधान प्रधान क्षावर क्यावर क्षावर क्षावर

गमा, या वाँप गमा तो अनेव प्रकार के उपद्रवों की सम्भावना मानी

२२ दशहपक

जातो थी। रगदाला ने निर्माण की प्रत्येन त्रिया में मानाजोगी का दर सगा रहना था। पद-यद पर पूजा, प्रावित्त्वत और वाह्मण-भोतन की भावरपकता पटती थी। भिति-हमं, माप-जोत, पूना पोनना, विक-हमं, सम्भा गाठना, मूमि-शोधन प्रमृति सभी क्रियाएँ वडी साव मानो से सौर झावत के साव नी लाती थीं। इन बता ने लाती किया यह समभता बडा कठिन होगा कि सुत्रधार का पद इतना महत्वपूर्ण स्वी है। उसकी उत्त-बी ससावपानी भिनिताओं के सर्वनास कर करिन हो सकलता का वारमदार सूत्रधार पर रहता है। नाटक की सकलता का वारमदार सूत्रधार पर रहता है।

राजामों की विजय-वाजाओं के पहाल परे भी धस्यायी रगंवालाएँ बना तो जाती थी। इन वालाओं ने दो हिस्से हुवा करते थे। एक तो जाही धर्मिनय हुमा करता था वह स्थान और दूसरा दर्शकों का स्थान विसमें मिन्य-हिम्म श्रेणियों के लिए उनकी सर्याद्या के प्रमुखार स्थान नियत हुमा करते थे। जहाँ व्यक्तिय होता था, उसे राम्मीम (सासशेष सं 'रग') कहा करते थे। इस राम्मीम के पीछे विरस्तरणी या परदा समा दिया जाता था। परदे के पीछे वे स्थान को नेपस्य कहा करते थे। यही से सज-जनकर विभिनेतागण राम्मीम में उतरते थे। 'नेपस्य' साम (नि-मय--य) में 'नि' उपवर्ष को देखनर कुछ पण्डितों ने प्रमुमान क्या है कि नेपस्य वा धराठत राम्मीम की प्रपेशा नीचा हुसा करता था, यर वस्तुत यह उस्टी बात है। सम्बन में नेपस्य पर के प्रिमित्त राम्मीम से उतरा करते थे। सं में क ते देखारा राम्मीम में उतरा करते थे। सं में क ते के 'रगावतार' (राम्मीम में उतरा करते थे। सं में क दि हो की से प्राचिता राम्मीम में उतरा करते थे। सं में के दि हो ही से प्राचिता राम्मीम में उतरा करते थे। सं में के दि हो हो से स्थान से लिये 'रगावतार' (राम्मीम में उतरा करते थे। सं में करते हा है।

#### ५. नाट्यधर्मी श्रीर लोवधर्मी रुढियाँ

'नाट्य-शास्त्र' नाट्यपर्मी रुढियो का विशास ग्रन्य है। इससे सहज ही धनुषान निया जा सकता है कि बहुत रीधकाल से प्रचलित धनेक प्रकार की रुढियाँ इससे मगृहीत हुई हैं। इसीसिये 'नाट्य-शास्त्र' ना जो

कि वह ग्रमिनेता की एक-एक ग्रमुली के पुमाव का सकेत ग्रहण कर समें । उसे 'रसशास्त्र' के नियमों का बहुत ग्रन्ठा ज्ञान होना चाहिए। ग्रमिनेताग्रों को विविध प्रकार के ग्रमिनय समभाने क वहाने 'नाट्य-शास्त्र' ना रचियता प्रयने लक्ष्यीमूल श्रीताधी की कितनी ही वार्ते बता जाता है। पन्द्रहवें प्रध्याय मे दो रूढियो की चर्चा है-एक नाट्य-धर्मी, दूसरी सोकधर्मी या शीविकी (१५-६६)। शोकधर्मी, लोक का गुद्ध धौर स्वामाविक धनुकरण है । इसमे विभिन्न भावों का सकेत करने वाली भागिक प्रभिनय-गगिमाधी का समावेश नही विया जाता (भग-स्रोक्षा विश्वजित्तम्)। परन्तु ग्रत्यन्त साकेतिक वाक्य भौर कियाएँ, सीलागहार, नाट्योक्त रूढियां--असे जनान्तिक, स्वगत, झाकारामापित धादि, धैल, यान, विमान, काल, तलवार धादि के सकेत देने बाली महिमाँ-तथा समूर्त भावो ना सकेत करने वाले प्रभिनय नाट्ययमी हैं। सोक ना जो मुख-द ख-कियात्मक ग्रापिक ग्रमिनय है वह भी नाट्यबर्मी है। सुक्षेप मे रगमच पर किए जानेवाले वे सकेतमूलन भागिक भ्रमि-नय नाट्यधर्मी हैं जो सीधे धनुकरण के विषय नहीं हैं। सस्कृत-नाटको में 'ग्रामिरूपमूर्यिष्ठा' और 'गुणवाहिणी' कहकर दर्शन-मण्डली का जो परिचय दिया गया है वह दर्शको में इन्ही नाट्य-घर्मी गुद्र श्रमित्रायों को सममन की गोग्यता को लक्ष्य करके । ये दर्शक शिक्षित होते ये तब तो निस्सन्देह अभिनय की सभी बारीकियों को ममफ सक्ते थे। परन्त जो पढ़े लिखे नहीं होते थे वे भी इन रूढियो को प्रासानी से समय लेते थे। भारतवर्ष की यह विशेषता रही है कि केंची-मे कंची चिन्तन घारा घपने सहज रूप में सामाजिक जीवन मे बद्धपूल हो जाया करती थी । चास्त्रीय विचार और तर्क-शैली तो सीमित

क्षेत्रों में ही प्रचित्तत होती थी, विन्तु मूल सिद्धान्त सावारण जनता म भी शात होते थे। यही कारण है कि भारतवर्ष में निरक्षर व्यक्ति भी

सस्यीमूत थोता है उसे सोक और शास्त्र का बहुत भण्टा जाता होना चाहिए। उसे बहुत-से इंगितों का इतना सूक्ष्म ज्ञान होना चाहिए कंचे तत्त्व-ज्ञान की बात कासाना से समक्त नेता था। भध्यवाल के निरक्षर सन्तो ने तस्व-ज्ञान की जो बातें नहीं हैं उन्हें देखकर ग्राधुनिक शिक्षित व्यक्ति भी चिवत हो जाता है। ऐसा जान पहता है कि जिन दिनो 'नार्य-सास्त्र' की रचना हुई वी उन दिनो नाट्यधर्मी रुटियाँ साधारण दर्शको को भी जात थी । भागकल जिमे 'तिटिकल ग्राडिएम' बहते हैं वही 'नाट्य-शास्त्र' का लक्ष्योभूत थोता है। २०वें प्रध्याय मे 'नाटप-शास्त्र' में स्पष्ट वहा गया है कि नाटव का लक्ष्मीभूत श्रोता कैसा होना चाहिए। उसकी सभी इन्द्रियाँ दूरस्त होनी चाहिए, जो व्यक्ति शीवायह दश्य को देखकर शोकाभिभूत न हो सके भीर भानन्दजनक इरम देखकर उल्लंसित न हो सके, जो इतना संवेदनशील न हो कि दैन्य-भाद के प्रदर्शन के समय दीनत्व का अनुभव कर सके, उसे नाटघ-शास्त्र प्रेक्षर की मर्यादा नहीं देना चाहता। उसे देश-भाषा के विधान का जाननार होना चाहिए, कला और शिल्प का विवक्षण होना चाहिए, समिनव की बारीकियो का जाता होना चाहिए, रस धौर भाव का सममदार होता चाहिए, राब्द-सास्य भीर छन्द-सास्य के विधानो से परिचित होना चाहिए, समस्त बास्त्रीं का ज्ञाता होना चाहिए । 'नाटप-शास्त्र' यह मानता है कि सबसे अभी गुण हो, यह सम्भव नहीं है। नयस्, सामाजिक स्थिति शीर शास्त्र-ज्ञान का कम-बेशी होना स्वामाविक है। स्रि भी इसमे ग्रधिक मे-ग्रथिक गुणो का समावेश होना चाहिए। बवान बादमी शुगार-रस भी वातें देखना चाहता है, वृद्ध सोग धर्मा-स्पान भीर पुराणी या भिननय देखने में रख पात हैं। 'नाटघ-शास्त्र' इस इचि-भेद को स्वीवार करता है। फिर भी वह आसा करता है कि प्रेसन इतना महृदय होगा नि ग्रानिनय दे अनुनूत अपन नो इस्पाही बनः सरेगा।

नाट्य-प्रयोग का प्रमास्य सीय-जीवन है
 मधि 'नाट्य-सारत्र' नाट्यपर्मी कड़ियों का विद्याल सवह-प्रस्य है,

तों भी वह मानता है वि नाटव की वास्तविकता प्रेरणा भूमि ध्रीर वास्तविक वसीटों भी लोक-वित्त ही है। परवर्ती वाल वे अनकार- सािहतयों ने इस तथ्य की भूला दिया। परन्तु भरत मृति ने इस तथ्य पर वहा जोग दिया। छब्बीसर्वे अध्याय में उन्होंने विस्तारपूर्वक प्रश्नित्य- विषयों का निर्देश विया है। परन्तु साथ ही यह भी वता दिया गमा है वि हिम्या यहीं नहीं समाप्त हो जाती। इस स्वाहर-जनम वरावर मृदि का कोई भी सान्य कही तक हिम्सा बता सकता है। लोक स काले क्लिन प्रमाण की प्रश्नित्यों हैं। नाटक चाह वेद या अध्यास से स्वरापत हो तो भी वह तभी निच्च होना है यब वह लोक सिद्ध हों, क्मीवि नाटय लोक-स्वभाव ने उत्पन्त होता है। इसनिये नाटय-प्रयोग में सीच हो सबसे वहा प्रमाण है विवस्थातमीयपान हु शब्द स्थ्यात्म ।

वसाम्यास्त्राप्यम्भ श्रु शब्दश्यः स्त्राच्यात्रः । सोन्नसिद्ध अवेत् सिद्ध नाह्यः सोकस्वभावकम् । स्त्रमात् नाट्यप्रयोगे तु प्रमात्म सोक्ष इय्यते । (२६-११२) उन्होने यहाँ तव कहा है कि जो झास्त्र, जो वर्ष, को नित्य धीर

जो नियाएँ लोकधर्मप्रवृत्त हैं, वे ही नाटच कही जाती हैं यानि दास्त्राणि ये धर्मा यानि शिल्पानि या किया।

यानि शास्त्राणि ये वर्षा वानि शिल्पानि या क्रिया। स्रोक्यमॅप्रवृत्तानि तानि नाट्यं प्रकीतिनम् ॥

दसलिए लोन प्रवृत्ति नाटक की सफलता की मुख्य कसीटी है। फिर भी धर्मिनेता को उन बारीक विधियों का ज्ञान होना चाहिए जिनके हारा वह सहदय श्रोता के चित्त में शासानी में विधिन्न गीलों धीरे प्रकृति की प्रतुमूति करा सके। इसलियें जहाँ तक प्रितिता का प्ररत्न है उसे 'प्रयोगन' अवस्य होना चाहिए। बाचिक, नेपय्य-सम्बन्धी धीर धागिक जितने भी धर्मिनय साहत में बनाए गए हैं य धर्मिनेता को प्रयोगन बनाने की दृष्टि से। वयोकि जो अच्छा प्रयोग नहीं जालता यह सिदि भी नहीं प्राप्त वर सकता। धाहनकार ने कहा है रोयास्त्वीमनयाह्नेते वाङ्नेपप्योगसंबधाः । प्रयोगे येन कसंब्या नाटके सिद्धिमिच्द्रता ॥ (२६-१२२)

कमी-कभी मभिनेतामों में अपने-अपने प्रभिनय-भौरास की उत्हृष्टता के सम्बन्ध में कलह उपस्थित हो जाता था। साधारणतः ये विवाद दो श्रीणयो के होते ये--शास्त्रीय ग्रीर लीविक । शास्त्रीय विवाद वा एक सरल उदाहरण कालिदास के' मालविकाग्निभित्र' मे है । इसमे रस, भाव, मभिनय, भिमा, मुदाएं मादि विचारणीय होती थी। बुछ दूसरे विवाद ऐसे होते ये जिनमें लोव-जीवन की चेट्टामों के उपस्थान पर सतमेर हुमा करता था। ऐसे भवसरो पर 'नाटघ-बास्त्र' प्रास्तिक (मसेसर) नियुक्त करने का विधान करता है। प्रास्तिक के सदाण 'नाटच-खास्त्र' मे दिए हुए हैं। यदि वैदिक किया-कलाप-विषयक कोई विवाद होता या तो यज्ञविद कर्मकाण्डी निर्णायक (प्राप्तिक) नियुक्त होता या । यदि नाच की भगिमा मे विवाद हुया हो। नर्शक निर्णायक होता था। इसी प्रकार छन्द के सामले से छन्दोबिद, पाठ-विस्तार के मामले से वैपाकरण, राजकीय प्राचरण के विषय में हो तो राजा स्वय निर्णायक होता था। राजकीय विभव या राजकीय भन्त पुर का ब्राचरण या नाटकीय सौष्ठव का माममा होता या तो राजकीय दरबार के अच्छे वक्ता बुलाए जाते थे । प्रणाम की भगिमा, बाकृति और उसकी वेप्टाएँ, वस्त्र भौर भाव-एए का योजना तथा नेपध्य-स्वता के प्रसम में वित्रकारों को निर्णायक बनाया जाता था, श्रीर स्त्री-पुरुष के परस्पर-शाक्येंण वाले मामलो मे गणिकाएँ उत्तम निर्णायक सममी जाती यो । भृत्य के घाचरण के विचय में विवाद उपस्थित हुमा तो राजा के मृत्य प्राहिनक होते थे (२७-६३-६७)। अवश्य हो जब सास्त्रीय निवाद उपस्थित हो जाता था तो दास्त्र के जानवारों की नियुक्ति होती यो। इस प्रकार 'नाटच-झास्त्र' ने स्पट्ट रूप से निर्देश निया है कि सोकधर्मी विधियो की क्सीटी लोक-जीवन ही है।

७. शास्त्र के विभिन्न ग्रंग

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि नाट्य-वेद मे दो वस्तुर्ऐ हैं— विधि सौर झास्त्र । पाँचवें स्रघ्याय तक पूर्वरन की विधि विस्तारपूर्वक बतायो गई है । छठे मध्याय मे पूर्वरम दिघि के सुन लेने के बाद मुनियो

के पांच प्रश्नों का उल्लेख है।

१. रस क्या है, भीर मुत्त्व का कारण क्या है ? २. भाव क्या हैं भीर वे क्ति वस्तु को भावित करते हैं ?

३. सप्रह क्से कहते हैं ?

४. कारिका क्या है ?

५ निरुक्ति निसे कहते हैं ? भरत मुनि ने उत्तर में बताया, चूंकि ज्ञान और शिन्य धनन्त हैं इसलिए नाट्य का कोई सन्त नहीं हैं। लेकिन सक्षेप में मूत्ररूप में नाट्यका रसमावादि सबह मैं ब्राप सोगों को बढाऊँगा। उन्होंने बनाया कि मूत्र स्रोर नाष्य मे जो धर्य विस्तारपूर्वक कहे गए हैं उनका मक्षेप में निबन्धन संग्रह बहलाता है और सम्पूर्ण नार्य-वास्त्र का संग्रह उन्होंने एक इनौक में बताया । वह इलीक है : रसाभावाद्यभिनया धर्मीवृत्तिप्रवृत्तयः।

मिद्धिः स्वरास्त्यातोष्टं गानं रंगं च सप्रहः ॥

पर्यात् नाट्य-शान्त्र के सक्षेत्र में इतने सग हैं

रै. रस्, २ भाव, ३ मनिनय, ४ धर्मी, ४ दृति, ६ प्रदृति,

 निद्धिः = स्वरः ६ धानोग्न, १०. गान भौर ११ रग । इस सपहरतीक में नरत सुनि ने नाट्य-साम्त्र के ११ प्रयो का

न्दिंग निया है। प्रारम्भ के इनका सक्षेप में विवरण दिया है भीर बाद में विन्तारपूर्वेक स्थारया की है। वस्तुन इन ११ विदयों का विदेचन ही सास्त्र है। स्पाट जान पडता है हि इन दलोको के निये बाने ने पूर्व इन विषयों पर मूत्र, कारिका घीट बाध्य तिने वा पुके ये सौर इन सन्दों की निक्षित भी बताई जा चुती थी। छठे, सान हैं

भीर बाठवें भ्रष्याय में सूत्र भी हैं भीर वारिवार्ष भी है, प्रत्येव शब्द भी निरुपित भी बतायों गई है। गय में इन बिषयों नी जो य्यास्या नी गई है वह बहुत-मुख भाष्य की खैली पर है। वई बनोवो को प्रानुबन्ध बहागवा है। भानुबस्य वर्षात् बद्य-परम्परा से प्राप्तः। स्पष्ट ही नाट्य-तास्त्र भपने पूर्व वे एक विद्याल नाट्य-साहिन्य की स्थिति की सूचना देता है। विस्तारपूर्वेक व्याख्या करन के पहले झान्त्रकार न सक्षेप मे इनकी चर्चा कर दी है। उन्होंने बताया है कि शृङ्गार, हास्य मादि घाट रस हैं रित-हास ग्रादि ग्राठ स्थायी भाव हैं उनने ग्राति-रिक्त स्वेद, स्तम्भ सादि घाट सात्त्विय भाव हैं। इस प्रतार गुज मिला-नर भावों की सख्या ४६ है। काव्या रसियों के निकटय भाव काफी परिचित है, अतएव हम उनका नाम नहीं गिना रहे हैं। आगे बताया गमा है कि अभिनय चार प्रकार के होते हैं—१ बागिक, ? नाविक, ३ माहार्य, और ४ सात्विक, धर्मी दी हैं-१ लोकथर्मी, २ नाट्य-धर्मी, जिन दृतियों में नाट्य प्रतिष्ठित होता है वे सार है--भारती, सास्वती, कॅशिकी झौर आरमटी, प्रवृत्तियाँ पाँच है-अवन्ती, दाक्षिणारया, मागधी, धाचाली ग्रीर मध्यमा, —सिद्धिवाँ दो प्रकार की हें—दैविकी भीर मानुषी, पड्च प्रमृति सात स्वर हें जो मुख भीर वेगा दोनो ही से निकलते हैं, आतोध चार प्रकार के हैं- तत, प्रवन द घन और सुविर । इनमे तार वाले बाज तत हैं, मृदगादि मननढ हैं, ताल देने वाले घन हैं भीर बसी सुधिर (छिद्रयुक्त) है। यान पाँच प्रकार के होने हैं-प्रवेश, याक्षेप निष्नाप्य, प्रासारिक और ध्वावेग। रगमच तीन प्रचार के होते हैं—चतुरस्र, विकृष्ट और मिथ । सक्षेप मे यहीं शास्त्र वे दिशय हैं---'एवमेबोऽल्पमूत्राचीं व्यादिश्ये नाट्यसबह् ।'

रही ११ विषयों वे विस्तृत विवेचन की नाट्य-वेद का शास्त्र-मन करा गया है। यह विधि से जिल्ल है। इतक मनक भेदायभेदो का सान कराया यवा है और युक्तिपूर्वक बताया यदा है कि दनका प्रयोग षव, क्यो ग्रीर कैसे किया जाना चाहिए। विवि अवस्य करणीय है। उनमें तर्फ नही क्या जा सकता। किन्तु सास्त्र तर्फ ग्रीर कहापीह ने युगत है। उसमें सका ग्रीर समायान के लिये स्थान है ग्रीर वीडिक वियेचन की गुज्जाइस है।

## द्य. वर्तमान नाट्य-शास्त्र

नाट्य-शाम्त्र के कई सस्करण प्रकाशित हुए। 'हाल' ने नम् १६६५ में ग्रपन सम्पादित 'दशरूपव' वे' परिशिष्ट में नाट्य शास्त्र के रे=वें, २०वे स्रीर ३८वें स्र याय या प्रशाशन कराया था। यी० रेगनाड ने भी नाट्य-बास्य के १४वे और १५वे ब्रय्याय भीर सन् १८८४ मे 'रैटोरिंग मल्कृते' से ६में धीर ∪वे अत्याय का प्रकासन कराया। 'निर्णयसागर' प्रेस से नाव्यमाला सीरीज भ पूरा नाटय-शास्त्र प्ररा-ित हुमा और पिर उसके कुछ दिन बाद १६३६ में दाशी में प० बदुवनीय दानों त्री प० वलदेन उपाच्याय ने 'काशी सस्हत सीरीय' (जो प्राय चौरास्था मस्रम सीरीज के नाम से प्रसिद्ध है) में नाट्य-भान्त्र का एक दूसरा सस्करण प्रवासित कराया। सन् १६२६ मे श्री रामकृष्ण कवि न ग्रभिनवगुष्त की महत्त्वपूर्ण टीका 'ग्रमिनव-भारती' के साथ नाट्य-शास्त्र के प्रथम सात ग्रध्यायों का सम्पादन करके 'गायरवाड श्रोरियटल मीरीज' मे प्रकाक्षित कराया । =वें से १=वें तक के घष्यायो मी दूसरी जिल्द सन् १९३४ स प्रवाशित हुई घीर तीसरी जिन्द भी ग्रंब प्रकाशित हो गई है। श्रीविवि ने नाट्य-सास्त्र के विभिन्न सम्रुरणो का तुत्रनात्मक विवरण अपनी पुस्तन की मूमिका मे दिया है। उस भूमिका म और महामहोपाय्याय प० सी० वी० वाने ने प्रपने 'हिन्दी प्रॉफ सस्हन पोयटिक्स' मे विस्तारपूर्वक इत सस्करणो में पाए जाने वाने विभिन्त रूपो ग्रीर पाठ भेदो की बर्बा की है। उससे लगता है कि नाट्य-दास्त्र के पाए जाने वाले विभिन्न रूपों में बहुत धन्तर है।

ग्राए हैं, जो निरुवत भीर महाभाष्य की शैली मे लिखे गए हैं। दम-से-कम १५ इलोक और १६ आर्याएँ ग्रानुबस्य ग्रयात् वद्यानुत्रम से प्राप्त वतायी गई है। कुछ सूत्रानुबद ग्रायीएँ हैं, जो स्लोकरूप मे निसे हुए सूत्रों की ध्यास्या है। इन्हें सूत्रानुबद या सूत्रानुबिद ग्रार्या नहा गया है। सगभग सौ पर ऐसे हैं जिन्हें 'सत्र श्लोका ' या 'श्रातार्या' कहकर उद्युत क्या गया है और जिनके बारे में समिनव गुप्त ने कहा है कि ये प्राचीन आचार्यों के कहे हुए श्लोक हैं। इससे सहज ही अनुमान किया का सकता है कि वर्तमान नाट्य-शास्त्र मे पूर्व-परम्परा के मनेक तस्व मिलते हैं । नाटच-बास्त्र में कुछ बदा निश्चय ही बहुत पुराना है । उप-लब्ध नाटभ-बाहन का लेखक स्वीकार करता है कि वह परम्परागत सूत्रों का हवाला दे रहा है, जबकि ब्रारम्भिक बध्यायों में यह भी वहता है कि यह सबसे पहला प्रयास है । पाणिनि ने अपनी 'मण्टाच्यायी' में हुदादिव और शिलालि नाम के दो सूत्र-कर्ताकी का उल्लेख किया है। यह भारवर्ष की बात है कि वर्तमान नाटय-वास्त्र मे मानी प्रयतन-पूर्वक इन दो बालायों का नाम छोड दिया गया है। सम्भवत: वर्त-मान हए के लेखक या सम्पादक को इस बास्त्र की संबंधयमता सिद्ध बरने के लिये यह ग्रावश्यक लगा हो (भाव-प्रकाशन मे बासुकि नाम ने एक प्राचीन ग्राचार्य का यह मत उद्घृत किया गया है कि इन्होंने भी भावो से उसका उत्पन्न (रख-सम्भवः) होना बताया है और प्रमाण-स्वरूप नाटघ-शास्त्र का एक बलोक उद्युत किया है, वो बतंगान माटय-शास्त्र मे 'मनन्ति चात्रत्लोना ' वहनर उद्घृत विया है। इससे भनुमान विया जा सक्ता है वि विसी बासुवि नाम के भाषायं नी विसी वृति से वर्तमान नाटय-सास्त्र का लेखक परिचित श्रवश्य था, 'प्रभिनव भारती', जिल्द १, ६, प्र० ३२८ । २ भा• प्र•, प्र• ३६-३७।

वर्तमान नाट्य-सास्त्र से यह स्पष्ट है कि नाट्य-शास्त्र की परम्परा बहुत पुरानी है। ६८, ७वॅ तथा श्रन्य श्रद्धार्थों मे श्री लम्बे-सम्बे गवाज परन्तु उनका नाम देना निसी कारणवश उचित नहीं समभा। पाणिन ने जिन दो याचायों का उल्लेख किया है उनकी कुछ वार्ते भी इन परम्परा-प्राप्त कारिकामो या सुकों मे भाई हैं या नहीं, यह कहना कित है। निव्देश्वर, तण्डू (यह भी प्रमिनव गुप्त के मत से निव्दिक्तर का ही दूसरा नाम है), कोहल धादि धायामों का नाम तेकर उल्लेख है धौर 'गम्बवंवेद' नामक राहत्र की भी चर्चा है। इससे यह निव्दर्य निकास का सकता है कि वर्तमान नाटफ साक्त का विकास ऐसे लोगों का नामत उल्लेख करने से नहीं हिचकता, जिनको प्रसिद्ध देव-कीटि के लेखकों से है, परन्तु अनुष्य-कोटि के लेखकों का वह जान-इसकत नाम नहीं सेना बाहता। उद्देश्य है, साक्त की सर्वप्रयमता खरिवत नहींने किता। कोहल को मनुष्य-कोटि का प्राचार्य माना पया है, इस-सिए मियव्यवाणों के रूप में इतका उल्लेख किया गया है, धौर प्रयम प्रप्याय में इन्हें भरत के पुनों ने गिनाया गया है।

ऐसा जान पहता है कि नाटफ-शास्त्र का कुछ प्रस्त काशी पुराना है। महामहोपाध्याय बाँव पीव बीव कान का सनुमान है कि वर्तमान नाटफ-शास्त्र का छठा भीर सातवी अध्याय (रसमाव-विवेचन), वर्षे से देखें तक के अध्याय (जिनमे प्रीमन्त्र का सवस्त्र विवेचन है) तथा १७वें से ११वें तक के अध्याय किया किया का सवस्त्र विवेचन है) तथा १७वें से ११वें तक के अध्याय किया किया है तह देखती के देश से अध्याय किया का निवास के पार्ट आदि सामा के किया मुनी भी। वर्तमान नाटफ साम्त्र को जब भीना महण प्रस्ता गया तब ये जोशे पहुँ । आगे चतकर उन्होंने कताया है कि सन् रिसा गया तब ये जोशे पहुँ । आगे चतकर उन्होंने कताया है कि सन् रिसा गया तब ये जोशे पहुँ । आगे चतकर उन्होंने कताया है कि सन् रिसा गया तब ये जोशे पहुँ । आगे चतकर उन्होंने कताया है कि सन् रिसा गया तब ये जोशे पहुँ । आगे चतकर उन्होंने का में वितर से समा गया भीर उन्हों मुननाय रोसी के गया, पुरानी प्रामीएं तथा किया मीर जोशे सुष्ट मीर नवीन रूप देने वाले वस्त्रादक ने भी दुष्ट

१ पृष्ट ३६-६५।

२. पृ० १⊏ ।

व्यास्थात्मक् कारिकार्गलिखकर जोडी। गैडॉ॰ काने ने इनके पटाम सनेक प्रमाण दिए हैं जिनको स्वीकार करने में किसी को धार्पत्ति नहीं होगी।

इसर की विवेचनाओं से यह भी स्वप्ट है कि भरत के नाटण-गारि का वर्गमान रूप सनेक परम्परा-भारत छास्त्रों का समन्वित रूप है प्रीर कुछ वरवर्तों भी है। इसका प्रतिस्त्रम सम्पादन कब हुमा या यह कहना किन है दें, परम्तु सन् ईस्बों को तीसरी समाब्दी तक उसने यह रूप प्रवद्य हो से लिया होगा, नयोकि कालिराम-मेसे नाटककार को इस शास्त्र का को रूप प्रान्त गा वह बहुत-कुछ इसी प्रकार का था। इस बात के लिये विद्यानों ने प्रमाण दिए हैं।

#### नाट्य-शास्त्र के लक्ष्यीभूत पाठक

दर्नमान नाटप-शास्त्र मुत्तत तीन प्रवार वे पाठको को स्थान में
रलवर किया गया है। प्रवम (१) और मुख्य लक्ष्य तो सभिनेताओं को
विद्या देने वा है। इन लोगों को नाटय-शास्त्र म नरत-पुत्र कहता है।
नाटप-शास्त्र का सह भी प्रयस्त है कि सिमनेताओं को सामाजिक दृष्टि
से ऊँची मान्यता प्राप्त हो। दूतरे (२) लक्ष्योभूत धोता, प्रैशंक या सामारित्र हैं। सारतीय नाटय-शास्त्र प्रेशको में सनेक सन्यों की सोशा रतना है। साइवा-नाटको भीर दास्त्रीय सगीत भीर समिनय के इच्टा को बीस होना चाहिए, इस विषय से नाटप-शास्त्र ने स्पट रूप से महा है (२०-११ भीर साने) कि उत्तर्श सभी इन्द्रिय दुस्त्व होनी वाहिए, इस्त्राहिष् से उठे पट्टोला चाहिए (प्रयत्ति जिसे भाजकत प्रीप्तिटकत पाडिएस बहुने हैं, वैसा होना चाहिए), दोष का वानकार सीर रागी होना चाहिए। वो स्थिन सोव से सोवान्यित न हो सबे सीर सानन्य-अनद दुस्त देखकर सानन्दित न हो सके, धर्मान् वो सबेदतानीत न हो से नाटप-साहब सेशक सा दर्शन का पद नही देश चाहना। इस

<sup>1. 90 331</sup> 

रदेश्य की सिद्धि के लिए माट्य-मान्त्र अनेन प्रकार की नाटय-रूदियो रा विवेचन बरता है भीर ऐसे इंगित बताना है जिससे दर्शर रगमन पर प्रभिन्य करने वाले व्यक्तियों के आकार, द्वित, चेच्टा घौर मापा द्वारा बहुत-गुरू बनावाम ही समभ है । सारब-बास्त्र में ऐसी नाटब-र्षात्रयो का निम्तारपूर्वक नग्रह किया गया है जा दर्शक की जमानुभूति-में सहायता पहुँचा सकती हैं । जैमा कि जगर बनाया गया है, यनितव-गुन मामाजिक को माटच-शिक्षा का उपयुक्त पात्र नहीं मानते। पर यर बात मगन नहीं बान पहनी। नीमरा (३) सध्यीभूत श्रीना कवि या नाटण्यार है। शास्त्रपार साइलो ने निवन्धन वी विधियाँ बनाना है भीर गया ने विभिन्त भवयको और प्रभिनय नी विभिन्त चेप्टामी ने ्नयोग से बरित्र भीर घटना-प्रवाह के परस्पर बाधान-प्रयासान द्वारा निकसित होने बाले नाटकीय रसातुमृति के मुध्य कीशसी का परिचय र गता है। वह प्राशा करता है रिक्यिया नाटक्कार इन सूक्ष्म गिलो का ग्रव्छा जानकार होता और क्या का ऐसा निक्यन करेगा कि ब्राप प्रिनेना और सहदय गाठन-प्रेशन दोनो को रम प्रहण करने में पामानी होगी। परवर्ती-काल में नाटप-शास्त्र ने बनाए हुए विस्तृत नियमो का मशेबीकरण हवा और विभिन्ना तथा पाठक की अपेशा कवि या नाटककार को ही। ध्यान में रखकर छोटे-छोटे कृत्यों की। रचना की गई है । 'दश-रुपव" ऐया हो ग्रन्थ है । उसका मृष्य उद्देग्य नाटवनारी नो नाटप-निबन्धन की विधि बनाना है । अभिनेता उसकी दृष्टि में बहुत रम है और सहदव प्रेशन बहन गीण भव से हैं। धार्य दशी सरो गी-रुग्य भी प्रवृत्ति पर विचार तिया जाएगा।

#### २०. परवर्गी नाट्यन्प्रन्य

कई परवर्ती बाबायों ने नाटघ-तास्त्र को टीका या भाष्य निर्पे ये। दनमें बनिनवसुरू को 'बनितक-सारुतो' बनिद्ध है। यह बन्य प्रक नकामित हो चुका है। शौतिबर, नास्यदेवे, उद्भव, बहुक मादिकी इप्र टीवाक्षो की चर्चा तो सिल जाती है, पर वे अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं।

नाटच-साहन (चीलम्बा सस्वरण) में बीनवें प्रध्याय में दशरूप-विधान इक्कीसर्वें में सन्धियां और उनने मुन्नो तथा वाईसर्वे प्रध्याय में वृत्तियों का विस्तारपूर्वेंब उत्लेख हैं। इन मुख्यायों से सामग्री लेकर वई माचायों ने प्रन्य निले थे। इनमें सबसे प्रधिक प्रसिद्ध है, धनवय का 'दशरूपन', जिसे पर उनके भाई धनिक की स्थारया (बृन्ति) है। ये

दोनो प्राचार्यमाई के और सन् ईसनो की दसनो शतान्दी के छन्त से हुए से। इनके छतिरिक्त सागर सदी का 'नाटक सक्षण रत्नकोश' (११वी

सतान्दी) रामबन्द्र और गुणबन्द्र का 'नाटचवर्षण' (१२वी धतान्दी वा अनस्य भाग), रागरदातनय का भाव प्रकाशन' (१३वी शती), रिगम्प्राल की 'नाटक-परिक्राण' (१४वी शतान्दी), हण गोस्वाली की 'नाटक-परिक्राण' (१४वी शतान्दी), हण गोस्वाली की 'नाटक-परिक्राण' (१४-१६वी शतान्दी), सुन्दर मित्र वा 'नाटफ-प्रदीव' (१७वी धतान्दी) स्नारि स्वस्त कुनि वा नाटफ-सास्त्र ही है। भोजरान (११वी शतान्दी) ने 'म्प्रागर प्रवार्घ' और 'सरस्वती क्ष्यान्द्रण' में क्ष्य वाच्यान्ते ने 'म्प्रागर प्रवार्घ' और 'सरस्वती क्ष्यान्द्रण' में क्ष्य वाच्यान्दि ने 'म्प्रागर प्रवार्घ' से वाच्यान्द्रण के 'स्वाय्वाच्यां के 'क्षाय्वाच्यान्ते में भी वुख नाटको विधिवना है। विद्यानाद के 'म्प्राण-क्ष्य स्वर्धान्ते के 'म्प्राण-क्ष्य स्वर्धान्ते के 'स्वाय्वाच्यान के 'स्वाव्य्वच्यान के 'स्वाव्य्यव्या' में कास्य ने स्वय्य स्वर्धान के 'स्वाव्य्यव्या' में कास्य ने स्वय्य स्वर्धान के 'स्वाव्य्यव्या' में कास्य ने स्वय्य स्वर्धन है। प्रतिक्षय स्वर्धन के सी विध्य वाजा है। इनमें वयावन्यु, नायव-नायिका, रस-विधार, स्वय-जलस्य सार्धिक वाजार है। इनमें वयावन्यु, नायव-नायिका, रस-विधार, स्वय-जलस्य सार्धिक वाजार है। इनमें वयावन्यु, नायव-नायिका, रस-विधार, स्वय-जलस्य स्वर्धन स्वर्धन में स्वर्धन स्वर्यन्य स्वर्धन स्व

### प्रसिद्ध है 'दसहपुन' । ११- दशहपुक

'दरारूपत' में सेखन निष्णुनुष धनकत्रव हैं जो मुक्ततराज (१७४-११४ रि) में ग्रमागद थे। 'भरत में नाटय-दास्त को छति निस्तीण सममन र उन्होंन इन बन्ध में नाट्य-पास्त्रीय उपयोगी वातों नो मिल्न नग्ने नारिनायों में यह यन्य जिला। मुख अपवादों नो छोट दिया जाल तो प्रधिनाय नारिनाएँ यनुष्टप् छन्दों में लिखी पई हैं। मक्षेप में निक्षने ने नाग्य ये नाजिएएँ उन्हें मी हो। यह थीं। इमीलिये उनने भाई धनिन न नारिनायों ना प्रयं स्पष्ट नग्न ने चहेत्य से इम प्रत्य पर 'सबनोन' नामन चृति लिली। यह दृत्ति न होती तो अन्यत्य भी नागिनायों ना समन्तना निक्त होना। इमलिये पूरा यन्य वृत्ति-महित नागिनायों नो ही सममना चाहिए। यन्यत्य और पनिन दोनो ना ही महत्व है।

भरत मुनि के नाट्य शास्त्र के बीचवें बघ्याय की 'दशस्प विकल्पन' (२०१) या 'दशम्प विधान' वहा गया है। इसी ग्राधार पर धनज्जम न स्रपन ग्रन्थ या नाम 'दशहपन' दिया है। नाटय शास्त्र में निम्नलितित दम रपना का विधान है—नाटण, प्रकरण, ग्रक (उत्मृष्टिकार), व्यायोग, नाण, समववार, बोबी, प्रहसन, डिम ग्रीर ईहामृग । एक ग्यारहर्वे रूपन 'नाटिका' की चर्चा भी भरत ने नाट्य-शास्त्र धीर दग-रपक में ब्राई है। परन्तु उसे स्वतन्त्र रूपक नहीं माना गया है। भरत ने नाटिका को नाटक भीर प्रकरण में भ्रन्तर्नुक्त कर दिया है (२०. ६४) । परवर्ती माचार्यो म रामचन्द्र भीर गूबचन्द्र ने ग्रपने नाट्य-दर्पण में नाटिया और प्रवर्गणवा को दो स्वतन्त्र रूपक मानकर रूपकी मी सम्या १२ वर दी है तथा विश्वनाय ने नाटिका ग्रीर प्रवरणी की भुषम्पन मानवर स्पनों की सम्या दम ही मानी है । यनज्वय ने भरत या प्रनुपरम करते हुए नाटिया वा उल्लेख तो वर दिया है पर उसे म्बतात्र रूपत नहीं माना । रूपको के नेदक तत्त्व हैं कथापस्तु नायक ग्रौर रम । नाटिका में ये तीनों नाटक भीर प्रकरण में जिल्ल नहीं हैं, इमलिए भरत मृति ने (२०, ६२-६४) में इंगे नाटर मीर प्रवरण के झावों पर माधित कर दिसाया। घनञ्जस ने उसी का अनुसरण दिसाहै। इस प्रवार स्पर्वो की सस्या दस बताए रशकर वे समतावरण में विष्णु के **१६ दशरप**क

दस (पदनार) च्यो के माथ समानता बनारर दमेव करने का पदछर भी पागए है।

### १२. रूपको के भेदक तत्त्व

जैसा कि उपर बताया गया है, धनप्त्रय न नवावस्तु, नायक मीर रस को रुपको रा भेदव तस्त माना है। उन्होंने यपने यथ्य को बार प्रकाशों में विभक्त किया है। इनने प्रवस से क्यावस्तु ना विदेवन है, दूसरे में नायब, तीशरे में पूर्वांग और भारती प्रादि वृत्तियों मीर बीदे में रस का विवेचन किया गया है।

यदि वस्तु, नेता और रस को दृष्टि ॥ रुपको वे भेद वी करना की जाय तो रक्षट ही बहुत्तर मोटे भेद स्थीकार करने पहुँगे। वर्गार्थ धनन्मय के मत से क्यावस्तु तीन प्रकार की होती है—(१) प्रस्थात (इतिहास-गृहीत), (२) उत्साय (कृत्यत) और (३) मिश्र, नेता या नायक भी तीन प्रकार के होने है—(१) उत्तम, (२) मध्यम और (३) गीच । स्वपाद से ये चार प्रकार के भी कहे गए हैं—(१) उदात, (२) उद्धत, (३) जनित और (४) प्रधान्त । पर तीन भेद—उत्तम, सम्म्यम, मीच—प्राथमिक है। रस प्राठ है—प्रधार, बीर, करण, बीमस्त, रीड, हास्त, प्रवृत्तुत और भ्यानक । धनन्मय धान्त रस को नाटक में नहीं स्थाकार करते । इस प्रकार वस्तु, नायक और रस-भेद से ३×३×०-७२ भेद हो जाते हैं। परन्तु भरत ब्यावहारिक नाट्य-प्रयोग के विवेचन थे। उन्होंने उन्हों दस स्पर्का की विवेचना की है जो उनके समय में प्रचित्तत थे। और विसी ने भी इस प्रवार स्पर्क का विवानन नहीं निया।

### १३. विभिन्न रूपकों को कयावस्त

वोर्द्रभी स्पन हो, उक्षये एक क्या होगी। धनञ्जय न प्रवने बन्य वे प्रवस प्रकास के उपसहार में स्पन्न वो निनृ-स्सानुपुष्या करा महा है। रम मुख्य है, रस और नेता के अनुसूत्त ही बया होती है।
पिव क्या नो या तो रामायण, महानारत धादि प्रस्थात प्रन्यों से लेता
है या वरुपना द्वारा न्वय रच लेता है। इस प्रकार प्रस्थात और उत्पाद्ध (बिल्प्त) ये दो चेद हो जाते हैं। दभी बुछ प्रश्न तो दिवहास-पृहीत होता है और कुछ क्रिय्त । उम हालत मे क्या 'मिप्र' कही जाती है। क्या का क्ष्म प्रमार तीन थेणियों में विभाजन करना धावस्यक है, व्यांति विव (नाटक्वार) के लिये यह बात महत्त्व वी है। प्रस्थात प्या म यह यहत-बुछ क्ष्म में होता है। क्ष्मित व्या में ये क्या में भी स्थान पुछन-नुष्ठ रहेना हो है। रूपनो की क्या वस्तु हम प्रकार प्रकार क्या में प्रस्थात हो जाती है—

ध्यायस्तु धर प्रधार

प्रस्यात

प्रवरण उत्पादा नादिका बंबा उत्पात, विन्तु नावव प्रस्यात भाग रतपाद्य त्रहसन उत्पारा दिस प्रस्थात व्यायोग प्रस्यात समयव १ र प्रस्थात यीयो रतिपाद्य **चरमध्टिना**व प्रस्यात र्दहामुग मिथ

रपद दर साम

नाटक

### १४. आधिवारिक और प्रासमिक कथा

एन बार नाटनकार जब नथा ना आहरण या जनकरन कर लेता है तो उसे सरल या जटिन क्या-रूपो मे परिणत कर देता है। यह जरूरी नहीं है कि सभी कया-वस्तुएँ जटिल ही हो । पर जो जटिल होती हैं उनमे एक या एनाधिक कथाएँ मुख्य क्या से जुड जाती हैं। मुख्य कया को स्नाबिकारिक ग्रीर सहायक कथा थ्रो की प्रासियक कहते हैं! बहुत-से स्पको का गटन ऐसा होता है कि उनमे प्रामिषक तथा या ही नहीं पाती। ये प्रासमिक कथाएँ भी दो प्रकार की होतो हैं<del>---</del>एक बो वे जो ग्राविवारिक क्या के समानान्तर दूर तक चलती रहती है, जैसे गमायण में सुवीय की कथा, दूसरी वै जो थोडी दूर तक चलकर विस्त हा जाती हैं, जैसे रामायण में शबरी या जटाय का प्रसग । पहली को पताका कहने हें, दूसरी को प्रवरी। पताका और प्रकरी मे एक और भेद है। पताका के नायक का फुछ ग्रपना स्वार्थभी होता है किन् प्रकरी के नामक या नामिका का अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। इस प्रकार कथावस्तु ने दो सहायक थय है। इनकी स्थिति केवल जटिन र धावस्तु में ही होती है।

# १५. प्रयंप्रकृतियां

मर्पप्रहतियाँ पाँच हैं--(१) बीज, (२) विग्दु, (३) पताका, (४) प्रकरी भीर (१) कार्य। इनमें पताका भीर प्रकरी की चर्चा ऊपर ही चुकी है। घनञ्जय ने रूपक की कथावस्तु के ब्रारम्भ की उस स्वरूपी हिंद बात को बीज बताया है जो रुपक के फल का हेतु होता है जैसे

भीम ने त्रोध से परिपुष्ट युधिध्टिर ना उत्साह बीज है, जिसना पत है द्रौपदी का केश-सबसन स्पीकार्य। इस अकार नीज झारस्भ से बोडे म क्हा हुमा कथावस्तुका यह धग है जो भागे चलकर फलसिद्धिकी हेतु बनता है। बीज हेतु है, वार्य पत्र। बिन्दु को धनञ्जय ने इस प्रकार समभाया है कि प्रवालार प्रथं का अब विच्छेद होता है तो पूर क्याने बोडने वा वाम बिन्दु करता है। यह परिभाषा बुछ स्पष्ट नहीं है। वई सोग इससे अगम गण्ड जाते हैं और धनेव प्रवार वी बलाता-कलाना करने समने हैं। धनिक की कृति में कहा गया है कि अपंत्रहतियाँ प्रयोजन-सिद्धि का हेतु हुमा करती हैं। रामकार-मुणकार के नाट्स-दर्गण में इन अयंग्रकृतियों को 'उपाय' नहां गया है। इन पांच एपायों में दो—बीज और कार्य—अवेनन हैं, तीन—विन्दु, पताका भीर प्रकरी—विता हैं। नाट्सदर्गणकारों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि न ता य उस कम से आते हैं जिल कम से उनकी निनामा गया है और न अवस्यस्मानों या अपरिहार्य ही हैं। इनका सिन्नवें अयमार्थिन किया जाना चाहिए। बहुत से ऐसे क्यानक हो मक्त ने विता प्रवाश या प्रकरी हो ही नहीं, बहुत-से ऐसे होने जिनमें इतका या प्रकरी हो ही नहीं, बहुत-से ऐसे होने जिनमें इतका सो सकरों हो सा वहां, बहुत-से ऐसे होने जिनमें इतका से सम्पन्न के उपाय हैं और मारस्थ

निम्नलिखिन सारणी से अर्थप्रकृतियो का न्वरूप समक्ष में मा जाएगा—



इत प्रशार वे धर्यप्रकृतियाँ 'फन्न' धर्यान मृत्य माध्य के हेतु दन नित्र निवद उपात्र है। इतमे 'बीज' नाटन ने इतिवृत्त या नथावस्तु ना एपाय है। यह मुख्य है, वयोकि यही त्रमश्च श्रवृत्ति-पल्नवित होनर फ्लरूप में परिवान होता है। सामुख से नट बोजभूत उनिनयों को नह देता है भीर बाद में मुख्य क्या ना कोई त्रमुख पात्र उसे दुहराता है। यह स्वानो वह स्विति है जो घटनास्रो के मध्दुसे मुख्य पात के सम्मुख दिसी के डारा उपस्थित कर दी गई होती है । वह सोच-दिचार-वर प्रयत्नपूर्वक किया हुआ पात-विदोष का कार्य न होने से उसे फ्रेकेत माना बाता है। एस इस बीज के पल्लवित-पूष्यित होने से उपस्थित होता है। बीज मुख्य है, पन अमुख्य। पताबा, प्रकरी और विन्दु चेतन प्रयत्न हैं, समस-बूसकर नाटककार द्वारा संयोजित होते है। इनमें भी बिन्दु मुख्य होता है। नाटर ना घटना-प्रवाह जब-जब समीप्ट दिशा ने हटकर दूसरी छोर भुडन लगना है, बसम होने सगता है, तब-तब नाटककार नायक, प्रतिनायक सहसारी झादि पात्रों की सहायना में उप्ते सभीष्ट दिया नी घोर के जाने ना प्रयत्न करता है। इसीलिये यह सारे क्यामान मे विदासान रहता है। पताना, प्रकरी और विन्टु, विवि के अनुस्थान लक्ष्य तक ने जान वाले साधव है, इसीलिये इन्ह 'चेतन' माना गया है। पताका और प्रकरी क्यानक में रहे ही यह धावस्यम नहीं है, पर बिन्दु रहता है। बस्तुत बीज बिन्दु **धौर** दायै, ये तीन माद्रपण मर्थप्रकृतियाँ हैं । शीज पर कवि का नियन्त्रण नहीं होता, परन्तु बिन्दु उसने जस ध नपूर्वक नियन्त्रस्य का ही नामान्तर है जो बयानक को धर्मीप्ट दिशा में मोटता रहता है। ये दो मुस्य हैं।

बिन्दु पात्रो की कवि-निबद्ध चतन चय्टाएँ हैं, पर कार्य झवेतन माधन, जैसे मैंग्य-मामग्री, दुगं कोण धन आदि । विमी वृक्ष का उप-मान में तो बीज बीज है बिल्टु, उसे सुरक्षित, पत्रविति, पुष्पित बरत का सोट्टेंक्च प्रयान है साथ, शुदाल, जाद आदि हैं, पताका, िमी स्वार्षमिद्धि के प्रतिदान में निवुक्त मात्री है और प्रकरी, क्वचित्-वदान्ति सनायास उपस्थित होतर नहासता कर जाने या ता हिनैयाँ।

### १६. पाँच ग्रवस्थाएँ भीर पाँच मन्धियाँ

भारत्य के प्रतुसार पंत्र की द्वारा बाने नायक क्षादि के द्वारा भागम निए सत कार्य की बाँच धवस्थाएँ होती हैं—ग्रारम्स, प्रयान, प्राप्याता, नियताप्ति और पनागम । दूनरे आधार्य नहें नेता वे चरित्र (वृत) नी पांच प्रवन्या नहते हैं। भरत ने इन्हें सावव वे व्यापार भी प्रवस्थाण नहां है (२९ ३)। धनअब ने भरत ना ही प्रयुक्त एवं सिंह है। वस्तुन वृत्त और व्यापार में नाई विशेष धनन नहीं है। पात जो कुछ वरता है (व्यापार, वार्ष) वही उनवा चित्र है। नाम के व्यापार की ये पांच धवस्थाएँ हैं जो न्यावस्तु में स्प ग्रहण वरती है। दे स्वय वर्षा उन्तु नहीं हैं, च्यायान्तु में प्रमा दिविनत होने वाले नापक-व्यापार या नायव वे वार्ष के मिवा और भी बहुन-मी बार्व होनी हैं।

इस प्रकार अर्थप्रकृतियां ज्यानक के सभीष्ट तक्य तक ले जान के निए माटनवार हारा निवद उपाय है भीर स्रवस्थाएँ नायव के व्यापार हैं। नेता या नायव के मन से फन-प्राप्ति रे लिये औरमुक्य (प्रारम्भ), रमने लिय प्रयत्न (त्रयत्न), उमने पाध्न होने की ग्रामा (प्राप्त्याशा), विष्नी वे समाप्त हो जाने से उसवे प्राप्त होने नी निश्चितता (नियताप्ति) भीर उमनी प्राप्ति (क्वागम), ये पाँच अवस्थाएँ होती हैं। ये नाटक नो विचित्र भाव और घटनाम्रो ने ममूढ करती हैं। किन्तु कवि मा नाटक्कार का सबसे बढ़ा कोचल बिन्दु की योजना से प्रकट होता है। इसी उपाय के द्वारा वह कथा की अवास्तर प्रमगी में बहकने से रोकता है भीर नायन नी प्रसत्नादि अवस्थाओं नी जागमन बनाए रखता है। नाटर-रचना कठिन वाम है। दिन्दु-विद्यान भी कठिन साथना है। परामी क्या बहकी तो मँगालना मुस्किस हो जाता है। उस्पत पटने पर नाटक्वार पतारा और प्रकरी-जैसे चेतन उपायों का भाश्य नेता है और नार्य-नैसे अवेतन उपादान (मैन्य, नोप आदि) दा नी महारा लेता है। पर बिंदु-विधान सर्वत्र ग्रावस्यव होता है। 'यर्ष-प्रकृति' में अर्थ बन्द का तात्पर्य है पूरा नाटनार्थ और 'प्रकृति' शब्द ण तात्पर्य है प्रवार या उपाय । धनञ्जय की अपेक्षा रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने इसे प्रधित स्पष्टता से समभागा है।

१७. पाँच सन्धियाँ

भरत ने नाट्य-शास्त्र मे कहा है कि इतिवृत्त काव्य का शरीर हीता है और पाँच सन्धियाँ उसके पाँच विभाग है। धन जय के धनुभार क्सी एक प्रयोजन द्वारा अन्वित कथा-भागो को किसी दूसरे प्रयोजन है युक्त करने भाला सम्बन्य सन्यि बहलाता है। ये पाँच हैं, (१) मुख (नाना ग्रथों गौर दनकी हेतुभूता बीजोत्पत्ति), (२) प्रतिमुख (बीज का उद्भेद या फूटना), (३) गर्भ, दिलकर ग्रदुष्ट हो गए दीज का भ्रत्वेषण, (४) अवसरों या विसर्श (बीज भर्यका पुन प्रकट होना). ग्रीर (४) उपसहति या निर्वहण (विसरे अर्थों का एक उद्देश्य की भोर उपसहरण)। धनजय ने एक विवादास्पद कारिका मे कहा है कि पाँचो ब्रयंत्रहतियाँ, पाँचो अवस्थाओं ने समन्दित होकर क्रमश पाँच मन्धियौ दन जाती है। वह बात अम पैदा करने वाली सिट हुई है। प्रयंत्रकृतिको ना अवस्थाको के लाव 'बबारप' वटवन्यन ठीक नहीं बैठना। पताना एक अयंत्रकृति है, प्रकरी दूसरी। पताका के दार प्रश्री को गिनाया गया है। पताका का उदाहरण है समायण में सुपीव र्ग क्या, प्रवरी का उदाहरण है वही शबरी की क्या। सेक्नि रामी यत में पताया बाद में धाती है, प्रकरी पहले । यम कहाँ रहा ? दि-दु गर प्रथंतरृति है। वह नाटक में नर्जन रहता है। उसे विसी एक पान्या ने माथ वैसे बाँधा जा सनता है। अस्त के नाटय-शास्त्र में नुमा बुष्ट नहीं यहा गया है। सन्धियों को घवस्या का चनुगामी घवस्य बताया गया है । चर्षप्रकृतियों से उनका सम्बन्ध नहीं है । सब तो मह टै कि पताका में भी सन्धियों होती हैं। नाट्यदर्गण कार ने उन्हें पर् गन्पि गरा है और स्तर धनजय ने भी भन्यत उन्हें धनुसन्धि नहां है। इमितिए धनवर वी उनत वास्ति।, जिसमें सर्वप्रकृतियाँ ग्रीर १. ग्रम् प्रश्तियः यञ्च, पञ्चातस्या समन्दिताः ययासंस्थेन आयन्ते मुलाक्षाः पटच सन्वयः ।

ग्रन्थों में विश्तारपूर्वेद वर्षेत्र है। तीचे दी तालिका में इत सन्धियों ग्रीर मध्ययों का सामान्य परिचय हो जाएगा—

YY

(यवमर्ग)

निवंहग

सन्दिषा	प्रन
मुद	१. उपक्षेष, २ परिकर ३ परिन्धान ४ विज्ञोनन, १ मुक्ति, ६ प्राप्ति, ७ समाधान, ६ विधान, १ परि- भाषना, १० उद्वेद ११ भेद, १२ करण।
<b>স্বি</b> ন্দ্ৰ	१२ विजास १४. परिसर्ग, १४ विष्तून, १६ सम. १७ नर्म, १८ नर्मध्यित, १६ प्रयमम २० निरोध, ११. पर्युपासन २२ बच्च, २३ पुष्प, २४ उपन्यास, २४ बर्पन सहार।
यभै	२६ अभूनाहरण २७ सार्व २८ ल्या २६ उदाहरण, २० तम ३१ सपह, २२ अनुमान, ३३ तोटब, ३४ प्रविवत ३५ उद्वेग १६ सक्ष्म, ३७ आक्षेप।
विमर्श	३८ अपवाद ३९ सपेट, ४० विद्रव ४१ द्रव ४२ शनिन

उपमहार ६४ प्रशस्ति ।

४३ श्रुति, ४४ प्रमम, ४५ छतन, ४- व्यवसाय, ४३

विरोजन, ४= प्ररोजना ४६ विचलन, ५० प्रादान । ५१ सन्य, ५२ विदोध ५३. यथन, ४४ निशंग, ११

परिभाषण, ४६ प्रसाद, ५७ क्यानन्द, ४६ समय, ५६. इति ६० क्याया, ६१ उपगृहन ६२ पूर्वभाव, ६३ गोपनीय की गुप्ति, प्रकाशन, राग भीर प्रयोग का प्रास्वर्य । इससे यह बात मनुमित होती है वि वहाँ इसरत हो वही इनका प्रयोग वरना चाहिए। बस्तत भवन ने स्थानन नी योजना नेता ने स्वभाव और रस के

मनुकून होती है। व्यायोग का नता या नायक उद्धन नायक हाता है। भूगार रम उनका सध्य नहीं है। बीध्न रम उसके लक्ष्य हैं। उद्वत

स्वभाव का यह नायक प्रारम्भ के बाद यत्न करता है ग्रीर तुरन्त फल-भाष्ति के तिए सधीर हो जाना है। प्राप्ताशा भीर नियनाप्ति-जैसी उनभनी में वह नहीं पहना। उने तुरन्त पतागम चाहिए। उसके कया-नन की बोजना उसके हटबढ़ी वाले स्वभाव को ध्यान में रखकर ही

नेरमी होगी, नहीं तो रम में स्थाधात पहुँचगा। यही कारण है कि उन रिधानक में गर्भ और विमर्श सिधयां नहीं या सकती । नीचे की मारणी पें स्पष्ट होगा कि क्या प्रकार के रूपक से किन सक्यासी और किन सिंध्यो की धावस्यकता नहीं समभी जाती। क्षोन-कौन रूपको व कौन-व ीन बीत-कौत

संपियाँ नही सवियां होती हैं मदम्यागे हाना हैं नाम होनी १ नाटक मभा (पांचा) सभा (पांचा) २ प्रवारण ३ नाटिया 🔻 ब्यायोग प्रारम्भ यन्त पसागय मुख, प्रतिमुख, निवेहच पने भीर निमसं ४ ईहामृग मन, प्रतिम्य, ६ सम-ब्रास्ट्रें, देन, गर्भ, निवेहरा विपर्श वसार त्रावयाता, प्रतागम अदिस मुख, निर्वहण ब्रारम्भ, वातायम प्रतिमृत, गर्भ, ६ भाष विमर्ग ६. त्रहरान 37 १० उत्मृष्टि कार 27

११ वीची

४६ इ.स.स्पर

विवेचना यहीं समाप्त हो जाती। परन्तु नाटववार **धौर प्रभिनेता** की

#### १६. दृश्य और सूच्य ग्रंश नाटन ग्रीर प्रन्य रूपन यदि दृश्य नाच्य न होने तो नवाबम्तु नी

विध्ताइयाँ घनेत हैं। बहुत बढ़ी वया को उन्ह थोड़ी देर में दिखाना पडता है। सभी प्रसग मामित नही होत, पर दर्शन को सभी बातें न बताई जाएँ तो वयानव उमकी समक्ष मे ही न ब्रात् । इसलिए नाटक्वार कुछ मार्मिक स्रक्षो को रगमच पर दिल्वान के लिय चुन लेता है और कुछ नो किमी-त-किमी नौगल से मूचित कर देना है। इस प्रकार क्या के दो भाग हो जाते हैं—-दृक्य ग्रीर सूच्य । दृष्य ऋस वा विधान भ्रकी में होता है। सक' बब्द ना प्रयोग नयो किया जाता है यह केवल सनु-भागवा विषय है। सस्कृत मंडस शब्द का प्रयोग कई अपर्यों में होता है। सम्या चिह्न, गोद आदि अब परिचित ही हैं, परन्तु नाटक व 'ग्रक' से इनका सम्बन्ध नहीं जान पटता। भरत मृति ने लिखा है (२०१४) नि यह रुढि शब्द है। भान ग्रीर ग्रयों के द्वारा नाना विधानपुक्त होरर भयों का धारोहण कराता है, इसलिए इसे सक कहते हैं। इसका एन पुराना श्रय उतार-चडाव बताने वाला धुमाव भी है। क्वाचिए नाटकीय घटनाओं के आरोह ग्रवरीह को प्रकट करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता रहा हो । यवन-नाटघाचायों की भौति भरत भी एक दिन में समाप्त होन वाली घटना की ही एक श्रक मे देने का निर्देश करते हैं। सभी रुपकों मध्यका की सत्याएक ही तरह की नहीं होती। मूछ तो एन ही अन मे भमान्त हो आते हैं। नाटन और प्रकरण में प्र में १० तर घर हो सबने हैं इमलिय ग्रवस्थाओं और सिधयों से कठो-रतापूर्वेर निबंद नहीं हो सबते । धनो से महत्त्वपूर्ण भावोद्रे चन प्रसग ही दिलाए जाते हैं। जा बातें साधारण होती है उन्हें कुछ कीशलों से गुनित मात्र वर दिया जाता है। प्राय दो धवान्तर पात्रों की बातचीत रें (बिष्टभाष, प्रवेशक) या नाटक ने निसी सक में समिनय करने वापे पात्रों द्वाराही (धवमुख, ग्रवायतार) या परदेने पीक्षे से

प्रकार का गौरात भी कथावस्त्र से प्रयुक्त होता है। उसे घाकामभाषित रहो है। पात्र ग्राममान की ग्रोर मेंह नरके कहता है 'क्या कहते हो रे यमुक्त बात ? तो सुनो ।' धौर धर्माष्ट सूचना दे जाता है (दशरपक १७-६७) । सब दानें नाटक के सभी पात्रों के मनने योग्य नहीं होती । हुछ पात्र धपने मनोभावों को छोर-बीर से कहना है (स्वयन), यह बीर पात नहीं सुनते, बुछ एव-दो सुनते हैं बागों नहीं सुनते (जनान्तिह, प्रपदार्थ) भीर बुछ सब मृतते हैं। ये नाटकीय रहियाँ हैं।

# २०. मेना या नायक

नाटच-शास्त्र में नेता या नायब शब्द दो घर्षी में स्वयहत हमा है। एर तो नाटन के मुख्य पात्र के अर्थ में भी ब्रूमरा सामान्य रूप मे पात्रों के मर्थ में । वहता मर्थ ही मुख्य है। चार प्रवार के नायकों की पर्भा भाती है—धीरोदान, धीरप्रधान, धीरनितन भीर धीरोडन । स्वरे भागे को 'घीर' विशेषण सगा हुबा है उससे कभी-कभी भ्रम पैदा रोता है। जो चढ़त है वह धीर कैसे हो सबता है ? उदत हो स्त्रभाव में ही चयन और चन्ट होता है। वस्तुत. भीर तस्य का सम्बन से प्रच-मिन सर्वद्रमु भ्रम नामारग है। एन पुराना 'धीर' सब्द भी पाजो 'भी' (सहज-बृद्धि, मनोभाव) गरद से बनना या । इस ग्रन्थ से निव्यन्त । भीर' सन्द का अर्थ होना का गृहत बुद्धि दाला, मनोभाद-स्थ्यन । यह ) यक्त नाटम-परम्परा में नुरिलन रह ग्रवाहै । 'धीर' का बर्च है स्वामाधिक बोध-समान । धीरोडन का मर्थ है स्वमावत उड्ड । नाटपदर्गमनार देवता भीर रालम भादि की भीरोदन कहते हैं। इस प्रकार दराम, प्रगान्त, सन्तित धीर टडन नामक स्वमाय से ही ऐसे होने हैं, इनिनमें उनके माप 'धीर' विदेशक समाया जाता है। नायक की नजह नायिका ने भी रक्ताव, बय बादि के बतुमार भेद किए जाते हैं । देवों में इतरे अधीरनेदी का बढ़ा दिन्तार है।

पद

बुद्ध स्पर्वो ने नायन उदात्त होते है बुद्ध में प्रतान्त, कुछ के स्वितत और कुछ में उद्धन । मरन मुनि के गिनाए स्पन्नो में बुद्ध ऐने भी हैं जिनके नायन दन मोटियो में नही भा पाते । सरनुन, पूर्वा स्पन दो या तीन ही हैं—नाटक, प्रकरण, नाटिना । नाटक पीर अक-रण में बस्पु का अंद है नाटक मी नवावस्तु दनिहास-प्रसिद्ध होती है

भीर प्रकरण की उत्पाद या भवि-कल्पित । नाटिका दोनो के निया से मननी है। उसका नामक तो प्रत्यात होना है पर क्याबस्तु उन्पादाः इनमें सब सबियों का समावेश होता है भीर सब भन्नस्वाएँ मिनती हैं। इनके नायको मे भी मन्तर होता है। नाटक का नायक धीरोदात होता है, प्रकरण ना धोरप्रशान्त भीर नाटिका का धीरसासित। रह नी<u>नों</u> में शृगार होता है। नाटक भौर प्रवरण में बार भी। इसके स्पष्ट है कि पूर्णांग रूपको में दो ही रख बाते हैं--- ऋगार भीर बीर। नायक इनमें तीन प्रकार के होने हैं, उदात्त, प्रधान्त भौर लिला। इनमें धीरोदात नायक महासस्य मत्यन्त गम्भीर, समाजीत, प्रविकासन (भपने बारे में बढ़-बढ़कर बात न करने वासा), न्थिर, भीतर-ही-भीतर मानी, दुइवत होता है। धीरललित बोमल प्रकृति का, कला-प्रेमी, निरियत घीर सुली होता है। धीरप्रशान्त भी बहुत-कुछ ऐसा हो होता है, लेकिन ब्राह्मण, मन्त्री या वैश्य के घर उत्पन्न हुमा होता है। प्रयम दो राजवश के होते हैं। धीरोशात राजा ही होता है। चौमा नायक भीगेदत बहुलाता है। वह भी कुछ रूपको का नायक होता है। नाटक में वह प्रतिनायक होता है। साधारणत देवता या दानक, जिनमें वैदी धरित होती है, उदास नायर की धरह धैयंवान नही होते । वे गर्वेति, चपत ग्रीर चाउ होते हैं। उन्हें फल-प्राप्ति के लिये धेर्य नहीं होता। डिम, ब्यायोग भौर ईहामृग में ये नायक होते हैं। इनकी उलावली के रथभार के कारण ही वे रूपक पूर्णीय नहीं हो पाते । इनमें बीर, रीर म्रादि दीम्त रस को म्रा जाने हैं, पर शृगार भीर हास्य नहीं म्रा पाते। समवदार म भी इनका बाहुन्य होता है। उसमे भी ऋगार की छाया मात्र ही होती है। उद्धत नायकों के स्वभाव के कारण ही व्यायीग और ईहामूग में समें भीर विमर्श तथा समवनार भीर टिम में विमर्श सम्मि महीं होती।

इस प्रभार नेता या नायन वयावस्तु का नियत्रण करता है। शास्त्र-कारों ने तो यहाँ तक कहा है कि प्रस्थात या इतिहास-प्रसिद्ध धीरोदात्त नायक हो तो इतिवृत्त के उन ग्रशों को छोड देना चाहिए जो उसके उदात्त माद के बायक हों । उद्धत नायकों के लिये क्यांवस्तु में में विदीय-विशेष सन्धियों को जोड देना पहला है। जिन रूपको में घीरोद्धल नायक होते हैं वे पूर्णांग नहीं बन पाते । डिम, ब्यायोग, समवकार श्रीर ईहामृग इसी प्रकार के रूपक हैं। बाकी चार में भाग स्पीर प्रहसन तो एक हो पात्र द्वारा श्रभिनीत होते हैं। इनमें नायक स्वय मन पर नहीं माते। शुगार श्रीर बीर वहाँ मूच्य रस हैं। जिन व्यक्तियाँ की चर्चा होती है उनका कोई कप-विधान नहीं होता। यही बात बहुत-कुछ बीधी भीर उत्मृष्टियात के बारे में भी ठीन है। वस्तुत ये तमादे ही रहे होंगे। सदी प्रवीं में ये रुपय नहीं वहें जा सकते। दशरूपववार ने रुपक की परिभाषा में कहा है कि अनुकार्य के रूप का समारोप होने से यह रूपक पहा जाता है। इन पर अनुवार्य का आरोप अस्पष्ट होता है। उतना भारोप तो क्षाय्य-पाटक श्रीर वयायाचक पर मी क्या जा सकता है। भो हो, ये चार अन्योद्भिन रूपर ही यह जा सकते हैं।

### २१. गृतियाँ

नारक में सभी प्रचार वे सिक्तव मिसते हैं, प्रकरण स्रोर नाटिका में भी। इन दोनों में सबी वृत्तियाँ मिसती हैं। बाबी में वेबस सोत। मितिस चौर मर्मान् भाण, प्रहमन, वीधी और उत्सृद्धिकाक में प्रधान क्य से भारती वृत्ति की मिसती है। वृत्तियाँ नाट्य् की माता कही जाती है। में चारहै—साहबती में मानित्व, वादिक सौर वाचिक समित्व होते है। यह मुक्तत सानस-स्यापार की वृत्ति है। इसका प्रयोग रोड, सोर ५० दशस्यक

भीर घद्भुत रसो मे होता है। सत्त्व मनोभावों को कहते हैं। कहा जाता है कि उसी को प्रवाशित करने वासी होने के कारण इसे सास्वती कहते हैं। कैशिको बृत्ति वाग्रिभिनय स्त्रियौँ ही वर सकती हैं। इसमें भुदता और पेसल परिहास की प्रधानता होती है। शृवार भीर हास्य-रस का इसमे प्राधान्य होता है। श्वारभटी में छल, प्रपच, धीमा, करेंब ब्रादि होते हैं। बीर, रौद्र बादि दीप्त रसा में इसना प्रयोग होता है। भारती सस्कृत-बहुल बाज्यापार है। भारती शब्द का ग्रर्थ ही ग्रामे चल-कर वाणी हो गया है। यह सब रसो मं साती है। मूलत ये वृत्तियाँ विभिन्न थेणों की जातियों संली गई जान पडती है। अब ग्रगर इन बृतियो पर से विचार किया जाए तो स्पष्ट लगेगा कि नेवल नाटक, प्रकरण और नश्टिका ही पूर्णाय रूपक हैं। डिम, ब्यायोव, समवनार भीर ईहामृग मे तीन ही वृत्तियो ना प्रयोग होता है इसलिए प्रपूर्ण हैं। भाष, प्रहमन, बोथी श्रीर उत्सृष्टिकाक मे सीनो का प्रयोग होता तो है पर मुख्य वृत्ति भारती ही है। इस तरह ये घोर भी विकलाग हैं। इस प्रकार इन न्पको भ तीन (नाटक, प्रवरण, नाटिका) उत्तम श्रेणी के हैं, चार (डिम, व्यायोग, समवनार, ईहामूग) मध्यम श्रेणी के हैं, श्रीर साकी ग्रवर श्रेणी ने ।

नाट्यदर्गणनार ने इन बात को शहय निया था। उन्होंने दो हैं। भेद किये हैं। नाटिया के साथ प्रकरणी की कल्पना करने उन्होंने चार की एक ग्रंगी में रखा या और वाली क्ष्पको को दूसरी ग्रंगी से।

कु पुर अना म रहा न जार वाना बना है। मरत सोथ नाटक तेलें का प्यवसाय बरते थे। सात्यत जाति प्रसिद्ध हो है। भावप्रवध मित-सापना के प्रस्त में इनका प्राय उल्लेख पितता है। कहते हैं, माणवत सम्प्रदाय इनकी देन हैं। कैंबिक जाति सम्म्रवत परिवाम के वासिपयन तट की जाति है। प्रस्थट कडाचित्, पीक नेसरों द्वारा उल्लिखित Arbius जाति है नो स्तिय घाटी में रहती थी। नाट्य-शास्त्र की भारतीय परम्परा

43373 41

नाह्य-शास्त्र की भारतीय परम्परा 🔑 (5.3/)					
नीचे की तासिका से रूपको के रख, नायक, कथावस्तु, ग्रक ग्रीर वृत्तियो का स्पटोकरण हो जाएगा।					
रूपर-नाम	बस्तु		ग्रंक	वृतियाँ	
नाटक ्	प्रस्यात	घगी—बीर या शृगार धग—बाकी समी रस	पाँच म दस तरु	चारो (कैरिको, ब्रास्मटो, सास्वती, भारती)	
प्रकरण	তবোৱ	"		n	
माटिका	बस्तु, उत्पाद्य (प्रकरण के समान) नेता, प्रस्यात(नायम के समान)	त्रुगार ह	चार	"	
<b>শা</b> ল	ररपाच	श्रुगार, वीर	एक	कैशिकी से भिन्न बाकी तीन	
प्रहमन डिम	प्रस्यात	, हास्य, वीर, रौद्र, वीभत्म करण, भयानव,	एक चार	"	
•धायो समवद	Τζ "	श्रद्मुत योग, रौद्र, ऋगा (छायामात्र)	एक र तीन एव	"	
वीयी घर ईहा	प्रस्यात	भूगार करण द्रीद, शृगारामान	एक	"	

#### २२. रस

भारतीय नाट्य परम्परा मे नायक पन्न'-भोषता नो धर्यात् नाटक के फल वो प्राप्त करने वाले को कहा गया है जबकि प्राधृतिक नाट्यदास्त्री नायक या नायिका उसे मानते हैं जिसके साथ सामाजिक की सहानुभूति हुमा करती है। इनमें नाट्यकार द्वारा प्रयुक्त की एक ऐसी शनित केन्द्रित होती है जो निपुण प्रशिनय के द्वारा उपस्थित विए नाने पर सामाजिका की समवेदना भौर सामान्यानुभूति भारतीयत करती है। अलनायक सहानुभूति नही पाता। उत्तम कुछ ऐसा भौदरय गा माचरणगत भनोचित्य होता है जो सामाजिक की वितृष्णा और त्रोध को उदिक्त करता है। भरत हारा निर्धारित रूपको से नाटक भीर प्रक-रण के नायक, नायिका और प्रतिनायक इस कोटि के कहे जा सकते हैं। ऊपर जो तीन श्रेणी के रूपक बताये गए हैं उनमें प्रथम और उत्तम श्रेणी के नाटको मे केवल दो ही रस हैं--- श्रुपार श्रीर वीर। ये ही दी रस मुख्य हो सकते हैं। दो रस और भी मुख्य कहे गए हैं—रौद्र मीर वीमत्स । इस प्रकार चार रस ही मुख्य वताये गए हैं—श्रुगार, बीर, रौद्र भीर वीभत्त । इनके श्रमिनय में त्रमञ विकास, विस्तार, क्षीम भौर विक्षेप होता है। बाकी चार इन्हीं चारो से होते हैं। भूगार से हास्य, बीर से प्रदुम्त, बीभत्स से भयानक भीर रौद्र से करुण (दर्श-क्एक ४३-४६), इस प्रकार ये बाठ रस बनते हैं। सामाजिक के वित्त में विकास भौर विस्तार होता है तो उसे सुख मिलता है भीर नोभ भौर विक्षेप होता है तो दुख। इसलिए कुछ भ्राचार्य रस को सुख-दु'खारमक बताते हैं। दूसरे भागार्थ ऐसा नही मानते। वे कहते हैं कि वे विक्षेप और सोम लौकिक विक्षेप और सोम से मिल्न होने के कारण मानन्दजनक ही होते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि शृगार रस से जित्त में विकास फ्रोर बीर रस से विस्तार होता है। इन दो रसो ना नायन भनायास ही सामाजिन नी समवेदना भौर सहानुभृति झाक-पित करता है। यही कारण है कि पूर्णांग रूपको से इन दो रसो का ही

प्राथान्य है। विकास भीर विन्तार की एक शब्द में 'विन्पार' सहा जाता है। इन विस्तार ने कारण नाटन में बीर भीर सूजार रन मुख्य होते हैं। नाटक ग्रीर ग्यों से बनता हो नहीं। पारचात्व नाट्य-राज्जों में तजंदी (ट्रेजडी) थेपी के नाटकों का महत्त्व है। परन्तु भारतीय नाट्य द्यास्त्रियों ने 'करा' रस की नाट्य-रस मानते हुए भी ऐसे उत्तम कोटि के कपकों की कन्यना भी नहीं की जो धीकान्त हों। परन्त नाटक में यदि नादक या नायिका उसे माना जाए जी सामाजिकी री महानुम्ति घाकृष्ट कर सके, तो ऐसे नायक मा सामाजिक की सहानु-मूर्वि माइप्ट कर करते हैं जो बरिज-बन में तो उदात हों पर किसी दुर्वसता-जेने बादमी न पहचानने की क्षमता, दैववद्य बनुचित कार्य भर बैठने की मूल, बरविषक सौदार्य साहि--- के कच्ट में पढ बाते हो। परिचमी देशों में ऐसी परिस्थितियों के शिकार उदात और समिन थेगी के नायकों की कम्पना की गई है। हर समय बनका स्वायी मात्र गोर ही नहीं होता । वर्ड बार नायन के चिन में उत्साह, रति मादि माव ही प्रवत होते हैं, केवन परिणाम सनिष्ट-प्रान्ति होता है। माना-िड के चित्त को महान्मृतिपुरन बनाने ने हेन् सायक ने स्वमाव में स्पित मानवीय गुन ही होत हैं, उसके दू व पाने से सामाविक के दित में भी सोम पैदा होता है वह उसे भीर भी तीवता के साथ नायक भी मोर देखा है। इस प्रशार के रूपकों की कन्यना भारतीय नाट्य-पर-परा में नहीं हुई। इम्स्टिकान बादि ने यह क्स भाती दृति हारा मूच्य भीर ग्रनत्वल हाता है। प्रधिततर ग्रव व्य में इनका चित्रण रिया आना है। इसलिये ऐसे नायक भी इस परन्यस में नहीं मिन्ते ।

कुछ भावार्य केवत श्रुवार त्या को हो एवनाव रस सातते हैं। इसना कारण सह है कि बाती एकमात्र त्या है बाती सहदय भावय भीर सारक्यन दोकों से बाताच्या स्थापित कर करता है भीर किसी एफ की रसाय की सनुभृति नहीं होगी। बीर रस भी इसके बत से एक १४ दशस्पर

पक्ष का पराभव होने ने नारण अपूष रह जाता है। भरत ने स्पट ही नाटम म आठ रस स्वीकार विशे हैं। इसीनिए यह मत भारतीय पर-परा में पूर्णतवा मान्य नहीं हो सना।

#### २३ भाय-जगत्

भरत मुनि ने नाट्य-साहत स बताया है वि विभाव प्रमुभाव मौर सवारी मावो के सबोग से रख़ वी निष्यत्ति होती है। भावो की मस्या ज होंने भट बताई है जिनमें माठ स्थायी भाव है पाठ साह्यि भाव है और तेंत्रीत सवारीमाव। कियायीभाव ही विभाव प्रमुभावादि के काव्य के सुनने के साथ हम भाव जगत की सुक्त मूर्तियों ख़ौर भावों का निर्माण करते रहते हैं। इन्हीं भावात्मक आलस्यन, उद्दोपन धावि के भावों का हम प्रमुभव करते रहते हैं। विकि से ऐसी सामध्य होती है कि जिस पात्र के साथ वह हमारा जैसा-जैसा माव जगाना भाहता है वैसा बैसा माव हमारे सावस कोक से निर्माण करा लेता है।

है कि जिस बाज के साथ वह हमारा जैसा-जैसा माव जगाना थाहता है वैसा वैसा माव हमारे सावस लोक मे निर्माण करा देता है। इन नाना भाव-पूर्तियों और भाव-मायना वा जब ऐसा परिपाक होता है कि दिसों का पृथक तान नहीं रह जाता, सब मिलकर एक विशेष भाव-पावन में एक कार हो हो कि प्रति में सा जाते हैं। इपन्य हो यह बात लोकिक स्पृत रूप हो मिल है। इसां तहें। इपन्य हो यह बात लोकिक स्पृत रूप हो मिल है। इसां तह से 'लोकोस र' वहा जाता है। वाय का श्रोता प्रति में सा जाते हैं। इपन्य हो यह बात लोकि स्पृत स्थान हो सिल है। इसां तह से 'लोकोस र' वहा जाता है। वाय का श्रोता प्रति मिल है। इसां में स्व हो जाता है कि वह जितन हो सहस्य होगा बता है। इसां से देवल दाय सो स्थान हो प्राप्त होगा। दावर वे झां पर सांस्थादन का सुपान होगा। कार के साध्यम नहीं होता है। इसरां कोई साध्यम नहीं होता। दावर वे द्वारा गृहोत सोकिक स्थुल प्रय', सहस्य के हुव्य

बाद्य में देवल झाट भीर भर्ष होता है। दूसरा कोई माध्यम नहीं होता। झाट के द्वारा गृहोत सीकिक स्थ्रल भ्रयं, सहदय के हृदय में भाव-रप मे बरिएगत होता रहता है। कुछ ऐसी क्साएं हैं जहां अगर होता हो नहीं, असे चित्रवत्ता। यहीं कामार के द्वारा प्रयुक्त रग कीर रेलाएँ सर्व-बोध कराती हैं। चित्र सिसित पर्वत स्थ्रन पर्वत मयोग में रन दवा तब पहुँचता है (दाहपक) । दहारपक के लेलक पनत्य स्थायों मानों धोर मास्तिक भावों में बोई तालिक धन्तर नहीं मानते । पर प्रत्य नाटप-नास्त्रियों ने उनका प्रत्य उत्सद्ध किया है। रहार रम का स्थायों पाव रित है वीर का उत्साह, रौप्र का नोयं, रहार रम का स्थायों पाव रित है वीर का उत्साह, रौप्र का नोयं, वीमत्स का जुगुप्पा, हास्य का हान, प्रदुक्त का विस्मव, करण का ग्रीव प्रीर प्रपानक का भय । इतका धौर नवारीनावों का दिशेष विवरण देना यहाँ प्रावक्त नहीं है। 'दशहरफ आदि प्रत्यों में उनकी विशेष किया है किया है ('दशहरफ', बतुर्थ प्रकाम, 'माहिय-दर्पण' वनुर्थ प्रत्या है। यहाँ रम के स्वरूप के विषय में सममने का पोड़ा प्रयत्न किया जा रहा है।

है और चित्रकार जिस प्रकार की गरिमा, मर्वकरता, चेतना या सीन्दर्य जागृत करना चाहता है उसी प्रगार के भाव-इप सहदय के वित में उत्पन्न होते रहते हैं। नाटक प्रथिक स्टिस कता है। उसने कवि थीर सहृदय का सन्दरम ग्रीमनेता द्वारा स्थापित होता है। एक माप्यम ग्रीर वड जाता है। कविश्तिवद्ध ग्रम पहले ग्रमिनेता के नाव-टप को उद्बुद करते हैं और फिर उस आव-रप को वह स्पूत मूर्न प्रातार देना है। यह स्पूत मूर्त प्रापार फिर एक बार सहदय के जिल में निष्दे से भाव करों का निर्माण करता है। इससिये नाटक में बस्तुत. शो क्लाकारों के चेनन मन से छनकर सहृदय का भाव-जगन् निमित होता है, इसीतिये ग्रीपक ग्रास्वाच होता है। इसोलिये ग्रन्निनदगुप्त ने 'ग्रहिनयनारतो' (१.१०) में दहा है दि गुरा-मनंतार से बाध्य का द्वारीर मनोहर होता है मीर रस उसका प्राप्त हुमा बरता है। ऐसे थव्य-काव्य में मी सम्मयीमाय हे शाररा यद्यपि विसर्वृति निमानाशार हो जानो है पिन्तु उनमें (ग्रमितीयमान नाटव के समान) प्रत्यक्ष की भांति सादगत्रारात्मक सोप नहीं हो पाता । परन्तु नाटक से ऐसी प्रतीति हुया करती है। **४**६ वसरनक

रस लोकोतर अनुभूति है, ऐसा सभी आचार्यों का कहना है। इसका वर्ष यह है कि लोक मे जो लौकिक धनुसूति होती है उससे मिल कोटि की यह भनुमृति है। प्रत्यक्ष जीवन में जो शबुन्तला घीर दुष्यत का प्रेम है वह सौकिक है। परन्तु नाटक या काव्यास्नादन से जो दुष्यन्त भीर सकुन्तना हमारे चित्त में बनते हैं वे उनसे निन्न हैं। भोक मे 'बट' राज्य का भर्य है सिट्टी का बना हवा पात्र-विशेष । तिनु यह घडास्यूस होताहै। यदि हम इस शब्दका उच्चारण मन-ही अपन करें तो 'घडा' पद भौर 'घडा' पदार्य सुदम रूप मे चित्त मे बा भाते हैं। इस प्रवार स्यूल घड़े के स्थान पर जो मानक्ष-मूर्ति वैवार होगी वह सूक्ष्म घडा नहीं जाएगी। इन प्रकार स्यूल जगत् के सिवा एक सूटन जगत् की मानस-मूर्ति रचने की सामर्थ्य मनुष्य-मात्र से है। हते ही माव-उगत् वहने हैं। जोक मे जो घडा है वह स्पूल जगत् ना भर्ष (पदोर्थे ≕पद वा झर्य) है और सानस झर्य भाव∹जगत् का भर्म है। 'घट' नामक पद का यह कर्यमुदय है। जोक में प्रचलित स्पूत मर्प से यह भिन्त है। इससिए लीकिक व होनर चलौदिक, लोकोतर या भावसम्य है।

#### २४. रसास्याद

प्यतिवादी मालवारित रम को प्यापार्थ मानते हैं। रस, विभाव-

नाज्य-दाश्च की नारतीय परम्परा समभन्ने । मीमासको के इस मत का मूल है यह सूत्र—'मत्पर शब्द

त्त राज्यार्थ । (सब्द जिसके लिये प्रयुक्त होना है वह सन्दार्थ होता है।) इसना एक मतलब यह ही सकता है कि जिस पर्य वो बीव कराने ने लिये शब्द प्रयुक्त होता है वही उसका धर्य होता है (भदर्थरा), दूमरा बर्थ यह हो सकता है कि शब्द सम्बन्ध-मर्यादा से मीमित रहनर जिस मर्थ की सूचना देता है वही उसका ग्रयं होता है (तत्परम्य) । पहले घर्य की व्यापणता स्पष्ट है। परन्तु मीमासक सम्बच-गर्वादा को भी मानते हैं। इसलिये जिसे वे 'तात्पर्य' कहते हैं बह मीमित हो जाता है। उससे व्यवनावृत्ति या याम नही बल मयता, क्योंरि व्यन्नावृत्ति सना-मर्यादा से बँधी नही होती। दशन्पनकार तालपंतृति को पहले प्रर्थ में सेते हैं। उनकी दृष्टि में तारपं की नोई मीमा नहीं है। ये तारार्यं भीर तादस्यं में भेद नहीं करते। ऐसा मान भेने पर भी व्यवनावृत्ति से जो विशिष्ट भर्य व्वनित होता है उसका एक विशेष नाम देना मायस्यक हो जाता है। इसलिए इस वृत्ति को मस्यीनार महीं दिया जा सनता। फिर भी रस नो व्यागार्थ-मात्र भानने में वटिनाई होमी । ्रस धनुमूति है, अनुमूति का विषय नहीं भाव तो विभाव के चित्त में ही उठते हैं। इसक वे मा में उनका एक मानत-मूक्त रूप उत्पन्त होता है जिसमे वह घपनी ही यापूर्वियो का बान द मेने में समय होता है। सभी मासरारिक भाषार्यमानि है विरसन तो 'कार्य' होना है भीरन 'ज्ञान्य'। यह पहले से उपन्मित भी नहीं रत्ता। जा बस्तु पहले में उपस्थित नहीं रहती यह व्यजनावृति जा विषय भी नहीं हो गवती । रंग गहुदय थोता था दर्शक के विसाने धनुमूत होता है, पात के विताने नहीं। धत व्यवनावृत्ति देवल स्रोतामा दर्शन दे चित्त में सूटन दिनाव प्रमुभाव घोर मवार्ग भाव को उपस्थित कर गानी है घोर जो कुछ महानारहातै उससे जिला, जो नहीं कहाजायहाहै मानहीं कहा था सका है, उस अर्थ को उपस्पिति करा सकती है। भरत मुनि के मूत का तात्पर्य यही हो सकता है कि सहृदयों के चित्त में वामना-रूप से

दशहपुर

25

स्थित, किन्तु प्रसुप्त स्थामी माव ही विभावादि से व्यजित होस्र रसरूप ग्रहण करते हैं। नाटक में व्याजना के साधन केवल शब्द हैं। नहीं बेल्कि ग्रभिनेता की चेण्टाएँ भी हैं। इस प्रकार नाटक एक ग्रोर तो विदि-निबद्ध सब्दो से रस नी व्यवना करता है, दूसरी श्रोर ग्रीभ-नेता के इस्मिनय द्वारा। परन्तु इतना स्पष्ट है कि व्यजना यदि शन्द शक्ति भौर अभिनय-सक्ति मात है तो धौता के प्रस्तुत भावों की व्यक्ति भर कर सकती है, उम अनुमृति को नहीं व्यप्य कर सकती जो चब्द भीर अभिनय के बाहर है और थोता या दर्शन ने विता में अनु-भूत होती है। ब्राचार्य रामचन्द्र सुक्ल न कहा है कि "भाव की धवस्थिति नायक श्रौर नायिका में होती है श्रौर रस की श्रनुभूति श्रोता या दर्शक के द्वारा होती है। पात्र के मन मे रस नहीं होता जो व्यक्ति विया जा सके!" इस विठिनाई से बचने के लिए ग्रालकारिको ने पुराने माचार्य भट्टनायक के सुभाए दो व्यापारी—भावकत्व ग्रीर भोजकरव— नो विसी न किमी रूप म मान लिया है। मतलव यह है कि कवि वे निबद्ध शब्दो भौर स्रमिनेता के द्वारा यभिनीत चेष्टादि मे यह सामध्ये भी है कि श्रोता यादर्शन को पात्रों की भावना के साथ धपनी भावना ना सादात्म्य स्थापित करा दे। ऐसी स्थिति मे उसके भीतर पानों हा विदोध रूप न रहवर साधारणीञ्च रूप (पुरूप, स्त्री) रहें जाता है, किर उसमे एव भोजकत्व-आपार का ग्राविभाव होता है ग्रीर यह साधारणीहत विभागादि धीर उनकी भावनाधी के झास्वादन म गमयं ही जाता है। येविया नाटक्वार का कौलल पात्रों के विदेशीवरण में प्रकट होता है। हम उस कवि को ही सफन कवि मानते हैं जो पात्रो का विदेष व्यक्तित्त्व निसार सकता है। परन्तु य विदेशोष्ट्रत पात्र सौकित

होते हैं। महूदय के वित्त में जाशात्र धनत है व उसकी ध्रपनी प्रदुः भूतियों में यतने के कारण लोकोत्तर या छलीकिक होने हैं। वह प्रपने सवेग नहा जा सकता है (जैसे झावेग, प्रवम्णं, झवहित्या, नास, हर्यं, विपाद इत्यादि), बुछ विवत्स्य नहे जा सकते हैं (जैसे शक्त, स्मृति, मित, जिनता, वितकं इत्यादि), बुछ को वेगावरोम महा जा सकता है, (जैसे देन्य, मद, निद्रा, जहता, मोह आदि) झौर बुछ को वेग-प्रमृति कहा जा सकता है (जैसे अम, सपस्मार, इत्यादि) और बुछ ऐसे मी हैं जो विद्यवर्षी सबेग माने जा सकते हैं (जैसे लज्जा, ससूना, गर्वं मादि)। इसिनिये जो लोग इन मावो का प्रध्ययन यानिवन नाव-माव के रूप में करते हैं, वे इसके साय न्याय नहीं करते। भाव पात्र के मन में होता है, किय हारा निवद्ध होता है, सिनेता हारा प्रतीति-योग्य बनाया जाता है और सहस्य हारा रसात्रभृति को बहुविचित्र झारवाद है योग्य बनाने में सहायक होता है।

क्वि जैसा चाहता है बैसा मध्ये विमाव के द्वारा माहत करता है। भाव जैसा भाव प्रकट करता है, उसे ही अभिनेता प्रतीति-योग्य बनाता है, मिनिनेता जिस धर्षं को प्रतीति योग्य बनाता है, सहृदय उत्तीको भावना भा विषय बनाता है। इस प्रभार कवि-निवद्ध पात्रों के भाव ग्रामिनेता द्वारा प्रतीति-योग्य बनाए जानर सहृदय द्वारा भावित होते हैं। इस-निये अभिनेता के द्वारा प्रतीति उत्पन्न करने के साधन भाव-मनी-विकारों को प्रतीति-योग्य बनाने के साधन हैं। इनसे गम्यमान काव गहूदस के चित्त में मूझ्म-से-सूदमतर रूप में आविभूत होता है। लौकिक मनोविकार में सीन बातें होती हैं—शान (सत्त्वपुण), इच्छा (रजोगुण), त्रिया (तमोगुण) । मनुष्य कुछ जानता है, कुछ चाहता है, कुछ वरता है। सह्दय में चित में बाते बाते बन्तिम दोनो तत्त्व सीण हो जाते हैं। इसी को शास्त्रकारों ने 'सत्त्वोद्रेक' कहा है। यह सत्त्वोद्रेक मार्वो को दिगुद्ध जानकारी के रूप में तो नहीं लेकिन प्राया जानकारी के रूप में से भा देते हैं भौर सहदय रसानुभूति वे योग्य बनता है। विचार गरके देशा आए तो यह सारी प्रक्रिया दशक के ग्रन्तरतर म ध्याप्त उसके गुद चैतन्य-स्य के उद्घाटन में समये होतो है। गुद चैतन्य ना **६**२ दशक्पक

उद्घाटन ही शानन्द है। इसमें नानात्व में सामान्य 'एन' नो उपतिम होती है। वई नार भान रसानुभूति के स्तर पर नही पहुँचा सकते। वे बानकारी के स्तर पर रहकर सहूद्ध के भीतर वेवल माशिन धानर को उरम्म कर पाते हैं। कई रूपनों में यहापि रस की स्थिति भागें गई है, पर बस्तुत वे भान तक ही रह जाते हैं। भरत मुनि के सुत म जो तमाये प्रचलित थे उनमें जो कुछ घषिक उच्चकोटि के पे उन्होंने रूपक की मर्यादा दी धवस्य पर वे पूर्णाञ्ज रूपक नहीं हैं। पूर्णाञ्ज रूपको म बोर घोर प्रमार रस ही हो सकत हैं। एक धौर रह हो सकता था—अनुकम्या स्वाया भान वाला करूण। पर इस देस में उसका प्रमार नहीं था।

नाउक ही श्रेडठ रूपक है

बिदित । इसमे क्यावस्तु को जटिसता के चक्कर मे न पटकर कवि रसानुकूल घटनाम्रो घौर द्यावेगों के चाधून करने मे द्यपने कौजल का परिचय देता

वस्तु, नेता श्रीर रस इन तीन तत्त्वो के ग्राधार पर रूपको ने भेर

है। प्रकरण को क्यावस्तु उपाद्य होता है। उसमें कवि को कान्यिकि क्यावन्तु के निर्माण की छूट है, पर यह क्या नी बहून-कुछ जानी हुई रहनी है । यह इतिहास से ग्रयीत् रामायण-महामारत से नहीं सी | जातो, पर 'क्या-सरिन्सागर' ग्रादि लौकिक ग्रास्यानो से ली गई होतो है। इसमें नाटण्यार को स्थार्यनीक-जीवन को चित्रित करने यी स्वनन्त्रता अपेक्षाकृत अधिव होनी है। नाटिका की क्या कन्पित होती मनन्य है, पर बहूत-मुख उनवी क्यावस्तु मिश्रित हो होती है। कोई लरेगी, जिससे विदाह होने पर राजा था कन्याण होन वाला होता है, किमी सयोग से ग्रन्त पुर में पहुँचाई जाती है। राज्ञा की दृष्टि उस पर पटनी है। मनुराग बल्ता है। रानी समक होकर सावधान होती है, फिर प्रनुषूत होनी है। प्राय बाद में पना चलता है कि लडकी रानी **यो दूर-न्दिन की नाई बहुन है। यही नाटिकामी की सामान्य क्यावस्तु** है। प्रधान टहेरय क्या की जटिल प्रक्रिया नहीं, रसीदेक है। भारतीय जीवन में क्मेंपन नी अवस्यभाविता स्वीकृत जीवन-स्रांत है। दुरा रुग्न बार्ने को बुग स्रौर मता करने बाते को सता एक मिलना स्राद-दयन है। इस भादने ने भारतीय नाटको को ग्रस निया था। मन्दे-मेले प्रादमी को नियनि के कृत विधानों के आपे ह्वबुद्धि होकर परास्त होना पड़ना है । ऐसी परिस्थितियों के सम्मुखीन होना पडता है जो उमनी सक्ति में वहीं ग्रधित सिक्त में सम्यन्त होने के दारण उसे साचार बना देनी हैं। गुन बुद्धि बांते मनुष्य को भी हारना पडता है। यह बान भारतीय नाटको भे नहीं मिलती । अहाँ मिनती है वहाँ देवता भने भी महायना वे नियं हा जाने हैं, और मदनुष्ठ भा घात शुम परिषाम मे हाना है । 'झाबुन्तल' में भ्रप्नरा महायक होती है, 'नागानन्द' में गोरो महायनार्थ या जानो है, 'उत्तर-चरिन' में देवियों महायक सिद होनी हैं। जो बार्ने पश्चिमी नाटको में घोर नैराह्य भीर कूर परिहास **ना** विषय दन सबनो थी, वे देवी शक्तियों नी सहायता से मुनक्त जाती है।

٤¥ ट शक्य ह नाटकों में प्रतिनायण को परास्त होना पहता है। प्रतिनायक संग

नायन की बुलना में हीनबल, दिकत्यन, एइत श्रीर शिवित परित चित्रित किया जाता है। ऐसा न किया द्राए तो वर्मफल की धबाय-मानिता बाने बीवन-दरान की नींव ही समझोर हो जाए । नाविका के निए स्मान भाव से श्रेमराथी नायव श्रीर प्रतिनायक श्रन्तिम दृश्य को मुसदर दनन में बायक सिद्ध हो सदते हैं। इसीलिये जिसे हारना है चसे गिथिए-चिम्म दा स्वतित सतारा आवश्यत हो जाता है। विसे जीत रा है उसे उदात्त बनाना भी उतना ही भावस्थक है। इस बात ने मारतीय नाटकों से वैचित्र्य की बसी लादी है। किर भी भारतीय विविदों ने बहुत उत्तम रमपण्य नाटव-साहित्य का निर्माण शिया है। गमार ने मनोदियों ने मुक्त कष्ठ से इस साहित्य को प्रशसा की है।

प्रयोग-रोत्र की सीमा न नाटकवारों को सत्वधिक वरूबती सौर गम्बीर रमध्यकता भी सर्वता में सहामता पहुँचाई है। जो बात नाटरों-नाटि-वामों भीर प्रवण्यों के बार स सत्य है वह भन्यान्य क्यांनों के बारे में

थास्तवित द्यानन्द ना हेतु है। शास्त्रकारों ने भवानक, बीभरस, हास ग्रादि को भी रस की मर्यादा दी है, पर वास्तव में वे भावकोटि तक परैचकर रह जाते हैं । एक और रस, जिसे मरत मुनि ने नाटब-रस की मर्यादा नहीं दी है, मक्ति स्थायी भाव वाता रम है जिसमें आध्य के माय नादारस्य वी सम्मावना है। किसी-किसी भावार्य ने रसी वी मरमा परिमित बण्ने को केवल मुनि के प्रति आदर-प्रदर्शन के लिये माना है। वेरना और भावों की सस्या ग्रधित मानने के पत्र ने हैं। यदि हान, जुगूप्ना, त्रोध सादि स्यायी भाव हैं तो इन्हीं के समान भ्रत्य मनोनाव भी स्वामी हो मक्ते हैं, ऐसा नाटबदर्भणकार ना मत है। उहीन लिखा है नि "विशेष व्यासे रजनाकारक होन के बारण और पुरवार्थी के लिये बायिक उपयोगी होन के कारण प्रायानिक नी रम (भाग्त ने महित) ही पूराने मदाचार्यों के द्वारा उपदिष्ट हैं। किन्तु इनसे जिन्न और उस भी हो सबने हैं, जैसे गुब्दुना या नायब स्थायी आव वाता मौल्य रस. ब्राट्रैता स्थायी भाववाता वात्मल्य रम, ब्रामक्ति म्यायी भाव वाला व्यमन रम, ग्रर्गन या वैवैनी म्यायीमाव वाला दुःस रम, मन्तोप स्थायीभाव याला मूत्ररम इत्यादि । परन्तु बुळ श्राचार्य पूर्वोक्त नी रमों में ही इतका बन्तर्भव कर मेते हैं।" ('नाटमदर्पम' 2.888) 1

भारतीय नाटप-परस्वत बहुत पुराती है। वई बार दमरे नाप पानती ताटप-परस्वता वी तुवना वरने यह दिस्तात का प्रमान किया गया है कि दसका प्रमुत प्रमा मितता-जुनता होने में वहीं (प्रयान-पर-क्रा) में विद्या गया है। परन्तु यह बात उचित नहीं है। इतका क्वान विद्यान हुमा है और वर्गक्त की भवरवनायी प्राप्ति के महि-तीर नारतीय तत्व-दर्गन ने भनुतूत हुमा है। भाषुनिक इंग्टि ने इनमें क्वान मित्री मानूम पर सरती है, पर भाषुनित दृष्टि मानून रूप है मिल जीवन-दर्गन का परिचाम है। ६६ दशहपर

# नाट्य-शास्त्र श्रीर यावनी परम्परा ११वीं शताब्दी में कई यूरोपियन पण्डितों ने यह सिद्ध नरने का

प्रयस्त किया कि भारतीय नाट्यों में विवास में भारत के माथ प्रीस में सम्पर्व मा बहुत बड़ा हाथ है। वेबर ने बपनी पुस्तक Indian Litera ture में तथा बर्ग्य कई रोहकों ने यह बताने का प्रयस्त किया कि विद्या कि विद्

कर 1041 व देतन वहुनर सम्बुष्ट हो गए कि सारतीय नाटको पर भौर नाटकीय सिद्धान्तों पर वुछ बीच-प्रभाव जरूर पटा होगा। पिछेच नामक जर्मन पण्डित ने बेबर ने मत का थड़ा बोरदार एटन विया, जिसवा प्रशास्त्रात सन् १८-८ में बिटिश नामक जर्मन पण्डित ने किया। विटिश यह तो मानते हैं कि भारतवर्ष में स्वतन्त्र भारतीय नाटन के विवास के तस्त पूर्ण मात्रा से विश्वसान से। परन्तु

'महानाप्य' में उल्लिखिठ 'रामायण-सहामारत' बी लीलामी से परवर्षीं बाल के साम्बीय-निकाल-समिदित नाटको की भिन्न समस्ति है, उनका कहना है कि परवर्षी बाल के नाटको की विषय-वस्तु का परिवर्तन हो गया, जो भीराणिक पात्र के वे गृहस्य के दैनस्तित जीवन के साँच में बारे गए, नाटगे की प्रधान हाम जिसमें मारो में ना गया। क्या कर पार्च के विषय के स्वारं के साँच के सांच क

ही कोई महत्त्वपूर्ण प्रेरक तथ्य नवा सामा होना । विदिश का मही

लिया जा सकता है वि भारतवर्ष मे जो ग्रीक लोग ग्राए होंगे वे कुछ-न-कुछ प्रपने देश ने नृत्य, गान, नाटक ब्रादि वा अभिनय भी नराते होगे। जिन सासको ने ग्रीव क्लाकारो को बुलाकर सुन्दर मिक्के टस-बाये उनसे उतने कला प्रेम की ग्रासा तो की ही जा सकती है, परन्तु फिर प्रश्न उठता है वि सचमुच इन नाटको ने भारतीय नाटको को प्रभावित किया होगा ? विडिंग का कहना है वि ईसवी पूर्व ३४० और २६० के बीच जो ग्रीस में नशी ऐक्टिक वामेडियाँ सिखी गई वे ही भारतीय नाटको को प्रभावित करने वाले मूर स्रोत मानी जा सकती हैं, परन्तु जैसा कि श्री ए० बी० कीय ने अपने 'सस्कृत नाटक' नामक ग्रन्थ मे बसाया है "सस्कृत नाटक धौर वामेडियो मे जो सन्वत्य है यह बहुन हो बोडाहै। श्री ए० वी० कीय ने ग्रीर भी नहाहै कि विधित नायह वहनाकि बीन (रोमन) और भारतीय दौनो नाटको में प्रको ग्रीर दब्दों का विभाजन होता है, दोनों में सभी पात्र प्रत्येक दस्य ने ब्रन्त में रगमच छोड़ देते हैं ब्रक्तों की सख्या साधारणत पाँच होती है (भारतीय नाटको मे यह सस्या प्राय ग्राधन होती है) कोई बहुत महत्त्वपूर्ण साम्य नही है बयोवि यह सयोगजन्य साम्य भी हो सकता है। मस्हत-नाटको वा खग-विभाजन एवरान के विस्लेषण (Analisation of action) पर ब्राधृत होता है जो ग्रीस बौर रोम मे कहीं भी बनु-लियिन नहीं है। इसी प्रकार दुश्य-सम्बन्धी रुदियों में को समानता है, जनान्तिर स्रौर झपवार्यभाषण वी ल्डियो मेजो एनरुपता है स्रौर किसी पात्र के प्रदेश ने समय स्वमच पर उपस्थित किसी ग्रन्य पात्र से उसके मध्यन्थ मे परिचयात्मव<sup>्</sup> वाक्य कहलाने की समान प्रयाएँ हैं, वे नी ऐसी हैं जो एव ही परिस्थिति में क्षेत्रे जाने वाले नाटको में प्रवस्य नियोज्य हैं, उनकी समानता से भीव या रोयन प्रमाण की स्थापना नहीं **को जा** सबक्षी । (सस्द्वत दृष्मा म ए० बी० कीय, पु० ५८-५६) द्याजकल , ने वैज्ञानिक सुम से भी नवामत पात्र के परिचय कराने की भावस्यवता प्रमुभव की ही जाती है।

भीर पालि ना 'योन' सब्द बना है। बाद मे इस सब्द ना मर्थ विस्तार हुमा भौर हेल्लिव परिययन साम्राज्य के सभी देखों के निवासियों के निए इमका प्रयोग हुआ है, मिस्र (Egypt), ईरान (Persia) सोरिया, वाह्नीक (Wahlic) ब्रादि सभी देशों के निवासी बंबन कहें आने ये भीर उनको बस्तुएँ भी इसी विदोषण से स्मरण की जाती थी। तेवी ने ईरान के बने परदों को यवनिका कहा है। बस्तुत जैसा कीय ने कहा है, ग्रीक नाटका में परदे होते ही नहीं थे ! स्वय विडिश ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। पिर भी वे कहना साहते हैं कि ग्रीक रगमच के पीछे जो चित्रित द्र्यावली होती थी उमे ही भारतीय रगमच मे परदे से सूचित किया जाता होगा, इनलिए उसको यवनिवा' नाम दे दिया गया। यह विचित्र तर्क है। धनेक प्रूरोपियन पण्डिताने इस तर्क की निस्सारता सिद्ध की है, पिर भी यवनिका' शब्द इतना स्पष्ट ब्यज्जना-नारी है नि इससे उत्पन्न भान्त धारणा इस देश में यनी हुई है झौर म्राए दिन भ्रम्छे सम्ब्धे भारतीय भनीषी इस भ्रान्त सिद्धान्त को भ्रम्लान-भाव से कह दिया करते हैं।

के उपयुक्त नदा रूप दे सकता है, क्योंकि संस्कृत-नाटकनार उसे प्रपते नाटक में उदात्त चरित्रो तथा दर्शको के अन्तस्तल पर उदात्त भावों का प्रभाव उपस्थित वरने ना प्रयास किया वस्ताहै। नाटक राधन्त मुखमय होना चाहिए। (सस्तृत सक्षण-प्रन्थों के अनुसार नाटत एक विदोप जाति वा ऋगिनेय रूपन है। परन्तु यहाँ इस शब्द वा प्रयोग ब्यापर प्रथीं से निया गया है।) इन दृष्टियो तथा अपने निर्वास्ति भाय के धनुसार नाटक्कार भपनी मूल वस्तु वे धवसवो, स्थायक्तु, चरित्र और रस मी योजना विस्तुत इस ही संस्कृत वे सभी नाव्य-नाटको वालक्य है। रम सब ले जाने के कारण ही नायग (ले जाने वाला), नायिवा (ले जाने वाली), मनिनय (ले जाने का पूर्व साधन) मादि झब्दो की रचना

हुई है। यह क्या की उन घटनाओं को, जो उसके क्यानक के लिये बावस्पन होती की ध्रयना उसने सुन्य भान ने निरुद्ध होती थी, परि-रपन्त मधवा पुनर्निमिन बरना था । सहीं वह सपने स्वय ने चरित्रों पी मृद्धि बार लेता था। बाधासस्तुतवा पात्रि चित्रण, जो पश्चिमी नाटनो ने नर्बस्य होते हैं, मारनीय नाटय-पता में रस वे साधन होते थे। दमरा यह तात्वर्यं नहीं है कि शयानक एवं चरित्र वित्रण उपेक्षित थे। भरत का क्यानक निर्माण की प्रविधि का नियमपूर्ण सर्गीनरण इस प्रवार वी धालोचना का निसंदरण यरगा।

भीर पालि वा 'योन' बब्द बना है। बाद मे इस बब्द वा धर्य-विस्तार हुमा धोर हेलेनिव पर्गमयन साम्राज्य के सभी देवों ने निवामियों के लिए इसका प्रयोग हुमा है, मिस्र (Egypt), ईर्गन (Persia) मीरिया, लाइ पर (Wahho) आदि सभी देगों के निवामी यवन कहे नाने से और उत्तरी बस्तुर्य भी इसी विदेषण से स्मरण की जाती घीं। तेवी भी इसता बस्तुर्य भी इसी विदेषण से स्मरण की जाती घीं। तेवी है ईरात के बने परदे। को यवनिका कला है। बस्तुत जैना कीय ने कहा है, प्रीक नाटकों में परदे होते ही नहीं थे। स्वव विदिध ने भी इस तस्य की स्मरण किया है। किर भी वे कहना चाहते हैं कि ग्रीक रामक के पीछे जो विजित बुद्धावसी होती थी उन्ने ही ग्रास्तीय रामक में परदे से मूक्ति लिया जाना होगा, इस्तिय उनकों प्रवनिका ने इस तक की निस्सारता मिद्व बी है। घर भी अनेक ग्रूपोपियन पण्डिता ने इस तक की निस्सारता मिद्व बी है। फिर भी 'यवनिका' सब्द इतना स्पट ब्यज्जना-

नारी है नि इससे ट पन्न भ्रान्त धारणा इस देग स बनी हुई है और ग्राए-दिन श्रन्छे सन्दे सारतीय मनीयी इस भ्रान्त निद्धान्त को सम्लान-

माव से वह दिया करते हैं।

पुप्रनिद्ध विद्वान् डॉ॰ राधवन् न योव और सह्दुत-रममचों की वृत्तना करते हुए टीक ही बहा है कि "आरसीय रपसव पर नाटम वर्षों की विविधता पहुंगे से ही थीं, जो (उन समय) पूनान में अनुपत्तम्व थीं। 'तर्जेदी' यूनानी नाटलों वा सर्वोत्त्वप्ट रूप या और नाइक-रामच पर मुनानी तर्जेदी-वेदी विश्वी वर्षों वा विकास वर्षी नहीं हुमा। वस्तुत इसके मिद्धान्त रममच पर विद्वी की मृत्यु अथवा मृत्यु ने साथ विद्यान वर्षे ने भाग वर्षे ने भाग वर्षों वा महरूत-रममच में यूनानी रामच के मनान कोई गायक-पृत्व नहीं होता या और यूनानी विद्यास के अनुतानी रामच के मनान कोई गायक-पृत्व नहीं होता या और यूनानी विद्यास के अनुतान अनिवास के मनान कोई गायक-पृत्व नहीं होता या और यूनानी विद्यास के मनान को सायक-पृत्व नहीं होता या और यूनानी विद्यास मित्रान के मनान को सायक-पृत्व नहीं होता या और यूनानी विद्यास मित्रान तथा क्यवहार द्वारा पूर्ण निज्यान होतर छोड दिए गए थे। भारतीय नाटक दूनानी नाटक दी प्रयोग अत्यादिक विद्याल भी या। यूनानी रममच ना भारतीय रममच के विद्यास देन परितेय रमो से स्वीवा रममच ना भारतीय रममच के विद्यास परितेय रमान के विद्यास रमो से स्वीवा रमान के विद्यास रमो से स्वीवा रमान के विद्यान रमो स्वीवा रमान के विद्यास रमो से स्वीवा रमान के विद्यास रमो से स्वीवा रमान के विद्यास रमान के विद्यास रमान के सित्रान रमान के विद्यास से स्वीवा रमान के विद्यास रमान के विद्यास रमान के सित्रा रमान के विद्यास रमो से स्वीवा रमान के विद्यास रमान के सित्रा रमान के विद्यास के विद्यास रमो स्वीवा रमान के विद्यास रमान के विद्यास रमान के स्वीवा रमान के स्वीवा रमान के विद्यास रमान के स्वीवा रमो से स्वीवा रमान के स्वी

है। भरत के—जिनका ग्रन्थ ग्ररस्तू के पोयटिक्स तथा 'रिटारिस के सम्मिलित रूप से भी अधिक पूर्ण है—पूर्ण रस-सिद्धान्त के समध,

त्रास, करुए। तथा विरेचन ने यूनानी सिद्धान्त हेय-से हैं। परदे के लिपे प्रयुक्त 'सर्वनिका' शब्द, रगमच पर आराने वाले राजकीय अनुवरी में यवन स्त्रियों की उपस्थिति सादि सच्यों में भी यदन-सम्पर्क के हुए प्रमाण सोजे वए है। (इनमें से) मन्तिम तो नितान्त व्यर्प है। यदि हमारे पास परदे के लिए 'पटी', 'तिरस्करणी', 'प्रतिशिरा' तथा यहाँ तक कि 'यमनिका' बादि शब्द देशीय तथा युक्तियुक्त न होते तो प्रथम मुक्ति में कुछ शक्ति हो सकती थी। इन रूपों की प्रपेक्षा भारतीय नाटक के ऋषिक महत्त्वपूर्ण विशिष्ट ग्रग ये है जिनका सूनानी नाटको में प्रभाव है—संस्कृत-नाटकों में प्रयुक्त संस्कृत तथा विभिन्न प्रकार की प्राष्ट्रतो का बहुभाषीय माध्यम । सिनवाँ लेवी ने इस सिद्धाना हा प्रतिपादन क्यां कि संस्कृत-नाटक पश्चिमी भारत में शकों के प्रभाव में बिक्सित हुए हैं। उनके भाषार भूतः प्रमाण नितान्त सारदूप हैं। नीय वे प्रनुसार संस्तृत-नाटको वा उदभव तथा विकास स्वदेशीय ही है। निस्तरदेह शिल्प तथा आदर्श की वृष्टि से भारतीय नाटक ध्नानी मोदक से सबया भिग्न है। 'यवनिका' की ही भौति सस्कृत-नाटको मे राजा की ब्रगरक्षिका के रूप में यावनी बालाओं की उपस्थिति का भी शीक रगमच के प्रभाव का निदर्शन बताया जाता है, पर जैसानि धीनीय ने कहा है कि ग्रीक नाटको से ग्रगरशिकाओं का कोई अस्ति व नहीं है, यह अधिक-स-मधिक यां रमणिया ने प्रति भारतीय राजायो ना भुनाव ही सिद्ध नरता है। यौटित्य ने सर्वेदास्त्र<sup>क</sup> तथा सँगस्यनीय ग्रादि के वेस्तों से इसका योगान महत्र ही विया जा सकता है।

बिटिश ने नाटिकामी के साथ कई कामदियों का माहवर्धजनक

रे. प्रम्याय १, प्रः २१।

साम्य दिखाया है और इनमे तथा अन्य संस्कृत-नाटको मे जो प्रिमिशन या सहिदानी का अभिशाय ग्राया है उसे ग्रीक प्रमाव बताने का प्रयत्न किया है। परन्तु जैसा कि कीथ ने कहा है, ग्रभिज्ञान का ग्रभिप्राय भारतीय कया-साहित्य मे इतना पुराना है कि यह कल्पना करना कि भारतीयों को सभिज्ञान या सहिदानी के अभिप्राय को उधार लेने के लिये ग्रीस जाना पड़ा, कुछ तुक की बात नही है। यह और बात है कि जिन कयायो और बाब्यो में इस प्रकार के सभिप्रायो का प्रयोग है, उनकी तिथि सर्वत्र सन्देहास्पद बताई जाती है। ब्लूम फील्ड ग्रादि विदानी ने भारतीय कथानव-रुढियो का बहुत विस्तृत धीर गहन ग्रध्ययन प्रस्तुत किया है। उनके प्रयानों से इस रुढि की प्राचीनता निस्त्रन्दिग्ध रूप से प्रमाणित हो गई है। 'मुन्छम टिक' नाटन' की कथावस्तु, नाम धादि को नेकर विडिश ने अपने सिद्धान्त स्थिर किए थे, पर भास के 'बारुदत्त' नामक नाटक के मिलने से, जो 'मृच्छकटिक' का मूल रूप है, ग्रह उसका भी वजन कम हो गया है। 'मुच्छकटिक' में कुछ नयापन है यवस्य, भौर यदि वह विदेशी भेरणा से याया हो तो कोई याश्चर्य नही है। राजनीतिक उलटफेरों से यणिका वसन्तसेना का रानी की नर्यादा पा लेना नयी-सी बात है, पर उसका पहली रानी के साय-साथ विवा-हित पत्नी के रूप में रहना भारतीय प्रथा है। इसी प्रकार और भी जो बाते नहीं गई हैं ने निराधार और कब्ट-

इसी प्रकार और भी जो बाते नहीं गई हैं वे निराबार और काव-निरास हैं। यह दो निरी साता वा सनता कि प्रीवी-जैसी पानित्तासों आति के सम्पर्ध म प्राते के वाद आरोधो-जैसी प्रस्कृत करवानाशीस जाति के विचारों और नरपजा शनित से कोई परिवर्तन हुआ हो जहांगा, पर जहाँ तक नाटकीय विद्यात्यों कर प्रस्त हैं, उसकी बहुत हो समुद्ध भीर पुरानी परम्परा इस देश में विद्यमान थी। यह भी नहीं सम्प्रता चाहिए जि यानगे माहित्य और विचार-पारा आरतीय सम्पर्ध में प्रात्तर कुछ तने में हिचकी होगी। प्रियव-से-अधिक यही बहा चा सकता है कि दोनों आरियों में मुख ऐसा भादान-प्रदान हुमा भवस्य होगा, पर चने ७४ दशहपर

नाट्य-सास्त्र के सिद्धान्तों को श्रीक-माहित्य की देन कहना कल्पना-विलास-मात्र है।

नई यूरोपियन पण्डितो ने वेस्त बाहरी प्रमाणी पर निर्मर न रह-कर विषय-वस्तु और चरित्र-विज्ञण की दृष्टि से भारतीय और पीक्-रोमन नाटका की मुलना की है और बताया है कि भारतीय नाटको में जो 'टाइप' की अधानता है वह सिद्ध करती है कि भारतम में ये अनु-करणमूलक रहे होने भीर बाद में भीव-रोमन-नाटको के प्रमाम से नया रूप पहण क्या होगा। पुराने टाइपो का रह जाना उनके मत से रोमन नामदिया से उनका अभावित होने का ही सक्षण है, क्योंकि यह सिद्ध करता है कि कुछ नया तो था गया, पर पुराना गया नहीं। यह बात

निजनी निराबार है वह श्री शोष के इस बास्य से स्पष्ट हो जाता है।
"The similarity of types is not at all convincing, the
borrowing of the idea of using different dialects from the
mime is really absurd and the large number of actors is

equally natural in either case " व्यर्थात् टाइपो को समानता विस्तृता मानने योग्य वात नहीं है भीग विभिन्त घोलियों ने प्रयोग-सम्बन्ध में मादम से त्यार लेने वाला विचार

विभिन्त बोलियों ने प्रयोग-सम्बन्ध में माइस से उचार लेने वाला दिचार बेहुदा तरें हैं तथा श्रमिनेशायों की स्रविन संस्था ना होना दोनो देशों ने नाटरों से समाम रूप से सम्भव है।

थां भीय ने कोर देवर कहा है नि योव-रोमन कामदियों से टाइप भी ही प्रमानता है धोर गम्बुन-नाटको से गरिचित पात्र को बैयनितक विद्ययनाओं ने कारण कपायननु से जो विज्ञान हो जाता है वह उससे एरज्य नहीं मिलता। नाट्य-प्राप्त की भारतीय परस्परा

परम्परा ना नाम-मान ना भी सरक्त्य नहीं दिव्यवा जा सनता। नाटन-भारत नी परमाग बहुत पुराती—हत्रश्त ईसा ने जन्म ने नैनडो वर्ष पुरानी है।

--- हजारीप्रसाद द्विवेदी

### दशह्यक

#### प्रथम प्रकाश

प्रत्य के प्रारम्म मे मगताचरण महापुरव करने झाए है। यतः मगल करना परन वर्ते थे है, इस बाव को ध्यान में रवकर प्रत्यकार

निविष्न प्रत्य भी नमाप्ति ने निए प्रष्टन भीर यनिमन देवताम्रो नी स्तृति दो इलोको से बर रहे हैं-नमस्तरम् गरोशाय यत्रण्ठः पुष्यरायने ।

मदाभोगधनध्यानो नौलक्ष्यस्य ताण्डवे ॥१॥ मपूर के तृत्य के समय मेघी की शहगडाहट जैसे मृदंग का काम

देती है येसे ही गरोडाजी का मुख भगवान बॉक्ट के कृत्य-काल में मद के

विस्तार से निविद्यानि करने थाले भृदंग का बायरण करता है मिदंग दी दमी दो पूरा बदता है], उस गरीशकी दी क्यस्टार है ॥१॥

दशरुपानुकारेख यम्य माद्यन्ति भावकाः ।

नमः सर्वविदे तस्मै विष्णुवे भरताय च ॥२॥

सर्वेविट् मणवान् विष्यु और प्राचार्य नरत को नमस्कार है, जिनके भक्त दस रुपों के ध्यान ग्रीर अनुपारण व्यादि के द्वारा प्रसन्त हुगा ररते हैं ॥२॥

दिप्सु के भवन भगवान् के मतस्य, कूर्य, वराह ब्रादि इस ब्रवतारों भी प्रतिमा बना-बनाकर तथा पूजन ग्रादि के द्वारा प्रवन्त होने हैं तथा भाषार्थं भरत की शिष्य परस्था उनके द्वारा प्रचारित दम रूपो भयोंई रूपनो ने स्रक्षितय के द्वारा प्रसन्त होती है। ऐसे असवात् विष्णुसीर षाचार्य भरत को नमस्कार है।

इम ४० घको पढन ग्रीर सुनने से लोग किस प्रयोजन की प्राप्ति के तिय प्रवृत्त होगे, इस बात को ब्रन्यकार वलाने है-

क्स्यविदेव कदाचिद्दयया विषय सरस्वती विद्रुपः ।

घटयति बर्माप तमन्यो दजित जनो येन वैदन्धीम् ॥३॥

सरस्वती हुचा बरवे ग्रन्थ से प्रतिपादन बरने के मोस्य कोई बस्तु वि वे मन मे बदावित् बभी सा देती हैं, जितवर प्रतिपादन वह अपने प्रथ्य में करता है भीर उमरा भ्रष्ययन करके दूसरे सोग उस दिवय में पाव्डिग्व प्राप्त करते हैं शदेश

मद ग्रन्थकार इस ग्रन्थ की रचना में भारते प्रवृत्त होने का कारण ৰদান ই---

षद्भवोद्धत्य सार वमतिननिगमान्नाट्यवेदं निरिज्यि-

इच्छे यस्य प्रयोग मुनिरपि भरतस्ताण्डय मीलकण्डः। द्मवांत्में सारयमस्य प्रतिपदमपर सक्ष्म कः कर्तुं मोट्टे

नाट्यानां तितु विदित्यगुरारयनया सक्षरां सक्षिपामि॥४॥ डहाने देहों से शारभागको सेक्ट जिस माट्यवेद की रखना

दशहपक ७६

को और प्राचार्य भरन ने सामारिक वामनाओं से मुनन मुनि होते हुए मी जिन नाह्यवेद को प्रयोगस्य में प्रस्तुत किया (ताया), जग-जननी पार्थों ने जिसके तिये लास्य और जग्यू पिना नगवान् शंकर ने जिसके निये साग्डय प्रजान रिया, जम सोकोत्तर नाट्यवेद के बंग-प्रयाद्धों के निरुप्त में कीन समये हो सकता है ? फिर भी में क्रमनी प्रहुष्ट प्रति-पादन दीकों के द्वारा उसके लक्षणों को सक्षेप में प्रस्तुत कर रहा है।।४।।

बही बोर्ट यह न समन बैठे कि भरत नार्य-बान्य वी ही बानो का इसमें प्रशरण बर्णन किया गया है अनल्व इसम पुनर्शन दोप प्रवस्त होगा, रस बात का निसंकरण अन्यकार इस प्रकार में कर रहे हैं—

व्याशीएँ मन्दवृद्धीना जायते मतिविश्रम । सन्यार्थस्तरपर्वस्तेन सक्षिप्य क्रियनेऽञ्जसा ॥५॥

मरत मृति द्वारा प्रश्तित नाह्य ताश्य विस्तार के साथ लिखा नया है। उसमे रूपक रचना-मन्यायो वाले यथ-तत्र विकरी हुई हैं। धतः मार युद्धि वाले सोगों के निये यनिश्रम होने की संभायना बनी हुई है। इसित् साथाररा दुद्धि वालों के समाध्ये के लिये उसी नाह्यचेड के सब्द घोट प्रयों को लेकर सक्षेप में मरण कीति से इस ग्रन्य की रखना कर रहा हूँ ॥६॥

प्रम क्रम का पान दानिषको का जान है, पर दारपकों का एक भानन्द क्वा है का दान को निम्नलिधिन प्रकार के दनाया जा रहा है— भानन्दिनम्बन्धियु रपवेषु क्ष्युत्विमात्रं फलक्तपबृद्धिः । योऽयोतिहासादिवदाह सायुम्नम्भ नक्षः स्वाद्षराह मुखाय ॥६॥

जिनमें भानन्द स्ताना रहता है हैंसे स्पर्कों का एस मन्द बुद्धि धासे सोग इनिहान-पुराहर की तरह जित्रमें (वर्ष, सर्व, काम) को प्रान्ति-मात्र बजनाते हैं। हैंने क्याद से बनमित्र सोगों को नक्तकार है ॥६॥ (तान ग्रीर तय के भाश्य वरके इसमे श्रम विक्षेप (श्रम सचानन) होता है। इसमें श्रमिन्य एकदम नहीं रहता है)।

श्राद्य पदार्थाभिनयो मार्गो देशी तथा परम् ॥ ६ ॥ पदार्थ स्थानोय श्रीवनय वो श्राधय करके होने वाले नृत्य वो 'मार्थ

कहते हैं घौर तृतः को 'देशी' ॥६॥ मपुरोद्धतभेदेनत बृद्धयं द्विचिधं पुनः ।

लास्वताण्डवरूपेण नाटकाद्युपकारकम् ॥ १० ॥

ये दोगों हो बर्जान् भूत्य (मार्ग) धौर नृत्त (द्यी) यपुर और उद्धत मेद से हो प्रवार के होते हैं। दोगों में ममुरता से मुक्त होने वाली जिया को लास्य तथा उद्धतपना से मुक्त होने वाली क्रिया को 'लाउब' करते हैं। ये मुख धौर नृत नाटक धादि रपकों से उपकारक होते हैं। इपकों में मुख का उपयोग दूसरे धतार्थों के विभन्य के लिए तथा मुस का प्रयोग गोना बढ़ाने के निए होता है। १९०॥

धनुनरण को प्रत्यन नपन म होता है पर इनने भीतर नौन-नौन-सी एमी मामप्रियों है जिनने रहन-न-रहने से दनना धापस म एक-दूसरे से भेद हाता है इस बात नो बतना रहे हैं—

यस्तु नेता रसस्तेया भेदको वस्तु च दिया।

बस्तु, नेता श्रीर रस इन तीनों के नेद में ही रूपक एक-दूसरे से भिराहो जाते हैं।

तत्राधिरारिक मुरयमद्भै प्रासिद्धिक विदुः ॥ ११ ॥

यस्तु दो प्रकार का होता है—साधिकारिक सौर प्रास्तिक । प्रयोज एयःवस्तु को साधिकारिक सथा उसके अभूत्रत को कथावस्तु होती है उसे प्रास्तिक कहते हैं ॥११॥

जैने रामायम मे राम-मीता नी नया क्राधिनारिन तया क्रीर टरमी मगमूत नमा, जो विभीषण, सुग्रीय क्रादि नी है उसे आसरिन गहते ग्राधिकाधिक कथावस्तु

ग्रयिकारः फलस्वान्यमधिकारी च तस्त्रमुः ।

तिन्विर्धमिभिष्यापि युत्तं स्यादाधिकारिकम् ॥ १२ ॥ फल का स्वामित्व धर्यात् उसकी प्राप्ति की योग्यता धरिकार कर् लाता हे प्रोर क्व फन का स्वामी धरिकारी कहनाता है। उस धरिकारी को फल-प्राप्ति-वर्धन्त चलने वाली क्षया को प्रार्थिकारिक कपायत्तु कहते हैं ॥१२॥

## प्राप्तगिक कथावस्तु

प्रासिङ्गिक परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः ।

दूसरे (आधिकारिक कथा के नायक आदि) के प्रयोजन को तिबि के बहेड्य की प्रधानता के रहते हुए जहाँ अपनी भी प्रसायका स्थामीबिंड हो जाए ऐसी कथा को प्रास्तिक कथावस्यु कहते हैं।

सानुबन्धं पताकास्यं प्रकरी च प्रवेशभाक् ॥ १३ ॥ प्राप्तिक कवा भी पताका श्रीर प्रकरी मेद से दी प्रकार की होती है। जो कवा प्रूर तक चलती रहे ऐसी कवा को पताका वहते हैं।

इसना पताका नामकरण इसलिए किया गया है कि जैसे पदाका नायब का धसाधारण चिह्न होते हुए उपकारक रहती है, वैसे ही यह भी उसी के समान नायब से सम्बन्धित कथा की उपकारिका होती है। इसका उदाहरण रामायण के भीतर भाने बाला सुधीय धादि का बलान्त है। धीर जो भासनिव कथा बुख थोडी ही दूर तक बले उसको प्रकरी कहें

## है जैसे रामायण के भीतर द्याने वाला थवणहुमार का वृत्तान ॥१३॥ पतावा स्थानक

प्रस्तुतागन्तुभावस्य वस्तुतोऽज्योक्तिषुचकम् । पनानास्थानक तुत्यसविद्यानविद्योपराम् ॥ १४ ॥ प्रयमे प्रकारा ६५

बिस राया पात्र प्रदास चल रहा हो उसमें धामे आने वाली बात की मूचना जिनसे मिसनी हैं उसे पताकास्पानक कहते हैं। यह पनाका के समान हो होतो है धतः इसे पताका स्थानक कहते हैं। (यह 'तृस्य इनि-यूस' और 'तृस्य दियायल'—केंद्र से वो प्रकार को होतो है। प्रवाद समासोहित प्रेर अप्योक्ति (अप्रस्तुन प्रशंसा) भेद में दो प्रकार की होती है)। ॥१४॥

यहाँ रातावती सादिवा में धन्योवित भेद का उदाहरण दिया जा रहा है---

पत्ताचनगामी सूर्व घपनी प्रेयको बस्तिनित को सन्तीधित कर रहा है—हि चस्तनभक्षे, में का रहा हैं, क्योंकि यह मेरे बाने का समय है, तुस (धान) मेरे ही हारा मुलाई भी का रही हो धीर कल (प्रात-काल) मेरे ही हारा उठाई भी बामोगी, भतः शोक मत करो। दिस प्रकार कमिनी को शास्त्रना देता हुआ मूर्य सस्ताचल में घपनी किरणी को निविद्द कर रहा है। समासोधित वाले प्लाबन स्थानक का उदाहरण भी उसी नाटिका

(ग्तावनी) से दिया जा रहा है-

(नाय राजा उदयन और उनकी राजी बामवरता में होड स्मी रे तुत्व वितेषण समासीकित में ही पहता है, बतः तुत्व विशेषण में समानेक्ति सतकार समस्या चाहिए। अन्नस्मृत प्रसंता को हो हुछ सीन सम्बोदिन नाम से प्रशासि हैं।

प्रम्यवार के प्रमुखार पताशान्यानक का परला उदाहरण प्रम्योतित का घोर दूसरा समासोतित का है। पर क्रविवास सोग रोगों पगट मसासोतित ही मानते हैं। प्रम्यकार के पक्ष के समर्थन में पट्ट कर साता है कि जिसकी प्रमुख राव का नहीं है उसे दराहर पत में पट्टी प्रसुख प्राचिवान्यता का प्रान्त होता, उसके बाद प्रश्नुत कर्मानिशे के पत का, जब अनुन से प्रमुख का मान हो जाने पर प्रमुख प्रमुख (क्योंकिन) मानने में कोई बाबा नहीं होगी। है कि कौन अपनी उद्यानलता नो पहले पुष्पित कर देता है। सिद्ध की सहायता से राजा नी सता पहले फूल उठती है। उसी नो देखकर राजा नह हों। वह ऐसी विशेषणों ना व्यवहार कर रहा है जो सता के लिए तो प्रयुक्त होने ही है किसी अन्य प्रेमानुरा नायिक कि अर्थ भी देते हैं। क्लोक का जमरकार इन सिश्चेषणों के कारण हैं। है।

वाली, (२) क्रन्य स्त्री के पक्ष के ब्रस्यन्त उत्कायपुक्त ]विपाण्डुर स्वा [(1)] पीसी कान्तिवाली, (२)पीली पढ गईं] प्रारक्ष जूम्मा [(1)] विक्षित होने वाली, (२)जम्हाई लेली हुईं], निरन्तर वेय के कारण धपने-धाप को विद्याल बनाती हुईं [(1)] फैलती हुईं,(२) दीर्च नि स्वास के वारण स्थाइल] समदना [(1)] अदन नामक वृक्ष के पास वाली, (२) कामा- पुरा] उद्यानसता को दूसरी स्त्री के समान निहार-निहारकर मैं रानी

बाज इस उट्टामोत्कलिका [(१) लटा के पक्ष में चटखती कलियो

मा मुख त्रोध से अवस्य ही लाल कर दूँगा। इस प्रकार.

> प्रस्वातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात् त्रेघापि तत्त्रिघा । प्रस्वातमितिहासादेरत्याद्यं कविकल्पितम् । मिश्रं च संकरात्ताम्यां विव्यमत्यांविभेदतः ॥ १५ ॥

वस्तु के प्राधिकारिक पताला श्रीर प्रकरी के तीन मेद होते हैं। किर ये तोनों भी प्रस्थात उत्पाद्य श्रीर मिश्र इन मेदों के कारण

तीन तीन प्रकार के होते हैं—(१) इतिहास म्रावि से म्राने वाली क्यां-बस्तु को प्रस्थात कहते हैं। (२) किंव को प्रतिभा द्वारा निर्मित कर्या-वस्तु को उत्पाद्य कहते हैं।१४॥ तथा (३) प्रस्थात और उत्पाद्य दोनों के मिथारा को निष्य कहते हैं। प्रयांत् जितसे का बुद्ध श्रंत इतिहास स्परि के द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त हो तथा बुद्ध श्र्वा कवि को प्रतिमारी उद्भुत हो उसे मिथा कहते हैं। ययावस्तु का फल

कार्यं त्रिवर्गम्तच्छुद्धमेकानेकानुवन्त्रि च ॥ १६ ॥ यर्प, यर्थ घीर नाम इन तीनों की प्राप्ति कवावस्तु का 'सन है।

इन तीनों में से वहीं तीनों, वहीं दो और वहीं एक ही स्वतन्त्र रूप में

क्स होने हैं ॥१६॥ टन फ्लों की प्राप्ति के माधन

स्यत्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्वीजं विस्तार्यनेकघा । बान-नार्य (मूख फल) ना सायक हेन् विशेष की बीध कहते

हैं। इसका पहले भुक्त कथन होने हुए आये चलकर धनेक प्रकार का दिस्तारपुरत रूप दिलाई देता है।

द्वी प्रकार वेणी सहार नाटक सद्भीषदी के केश-संदर्भ के लिए भीम र कोष में बहा हुदा यूर्षिष्टर का उत्साह बीव-रूप में भिकी है। यह महानायें और अदान्तर कार्यने भेद से अनेक अवार का होता है ।

भवान्तरार्वविच्डेदे बिन्दुरच्देदशारसम् ॥ १७ <sup>॥</sup>

बिग्दु-प्रयान्तर क्या ली समाप्ति के श्राप्तर पर प्रश्राम क्या के माथ सम्बन्ध-दिरुद्धेर न होने देने बाली यरनु को प्दिन्दु क्हुते हैं ॥१७। बामे नैत बिन्दु जिस प्रकार भैन जाता है उसी प्रकार यह भी

फैनता है। ऐसा होने के बारज ही इसे दिन्दु' कहते हैं। जैसे 'रत्नादली' नाटिका में नामदेव की पूजा स्रवान्तर नदा है भूलक्या से उसका विदोष सम्दर्भ गही है। इस स्रवास्तर प्रयोशन रूप कामहेद की पूजा मी मनाप्ति के धवसर पर क्यार्थ के विच्छेद की स्थिति मा जाती है पर वहाँ इसरे काय का कारण कर जाने से ऐसा नहीं हो पाता-'महाराज उदयन बन्द्रमा वे समान गोनित हो रहे हैं।" यह सुनमन मागरिका कह उठनी है कि 'क्या ये वे ही महाराज उद्भान हैं जिनके निए पितानी न मुने भेता था ?" इत्यादि और इस प्रकार इन

प्रवान्तर प्रमग्ना भूल-क्या में सम्बन्ध बृढ जाता है। इपर वीज, बिन्दु झादि अर्थप्रदृतियों की बिना अम के प्रमणानुसार मह ग्राए हैं । यब उन्हें गवागर तम की व्यान में रखबर बताते हैं-

बीगविन्द्रपता गारवम् । रोगार्थः क्षरणः ।

एन को इच्छा रक्षने वाले व्यक्ति द्वारा को कार्य कारम्म दिया गया रक्ता है उसकी बांच घटनबार होती हैं—है आरक्ष, २ यल, ३. प्राप्ताहा, ४. नियतालि और ४ कलाग्य ॥हेंदा।

ग्रौत्सुरयनात्रमारम्नः पत्ततानाय नूयसे ।

सर्पात् 'दम गाये थो में पर पहा है' इस प्रणाद के प्रध्यवसाय को 'सारम्य' नहते हैं। थेंसे 'रत्नावसी' ने प्रयम धन में मोगधरायण कहता है ति स्वामी थी वृद्धि के लिए जो गाये मेंन प्रारम्भ निया धौर माम्य ने भी निसने महारा दिया इत्यादि । यहाँ मे दत्नणान द्रद्यन ने गाये का भाग्यत्र योगधरायण के मुख से दिचाना गया है स्योगि वद्यन 'सचियामण-निर्द्धि गाया है सर्यान् ऐसा राजा है जिनको निर्द्धि निष्य के मारोज होती है।

प्रयानस्तु तदप्राप्ती व्यापारोऽतित्वरान्त्रितः ॥ २० ॥

प्रयत्न — उस प्रमास कष की बीध्र प्राप्ति के लिए उपाय धारि इप केष्टा-विदोध के बचने की प्रयत्न कहते हैं ॥२०॥

र्णमे 'रस्तावली' में मालेख (विशासून) मादि द्वारा बत्नराज दृदयन से मिलन के स्थाय का वर्णन । व

सागरिया मन-ही-मन नोचनी है-- "तो फिर महाराज के दमन प्राप्त करा में निए अब कोई उपाम नहीं दोख पकता। सत जैसे-वैद्व उनके पित्र को धौरपर हो समनी मनोवामना पूर्ण कके। ' इन प्रधार से 'रतनावनी' में प्रयस्त दिसाया गया है।

उरायापायशङ्काभ्या प्राप्त्याशा प्राप्तिमंभयः । प्राप्ताता—एत नौपापि में ऐते व्यापार ना होना, हिसने विम्न

१ सार्पारका (राजायको) महाराख उरयन से विद्यांक्य द्वारा क्रेमेनीने नियों के शिक्ष को कार्य करती है कह प्रयत्न के कीनट बाता है।

पडने की सम्भावना से फल की प्राप्ति अनिश्चित रहती है, प्राप्त्याश कहलाता है।

ŧ.

इसमें कार्यक्षित्व के लक्षण दीय पढते हैं। पर उसमें विष्ण की मामक से पल की प्राप्त में श्रानिश्चितता आ जाती है। जैसे, 'रत्नावतों' के ठूतीय धक में सागरिका का वेष-गरिवतंन कर उदयन के पास धिभसरण करने में कार्यक्षित्व का लक्षण दिलाई देता है पर कहीं महारानी वासवदत्ता देल न ले इस प्रकार विष्ण की प्रायका बनी रहती है। इसी प्रसम में विद्युषक कहता है— "इस प्रकार के कार्य करते समय, कही धनाल में उठे हुए मेच के समान वासवदत्ता न मा पहुँचे, प्रत्यम सारा कार्य हो चौपट हो जाएगा।" इस प्रकार यहाँ महाराज से समा-

गम को प्राप्ति प्रतिहिचत-सो है। प्रपायाभावतः प्राप्तिर्तियताप्तिः सुनिहिचता ॥ २१॥

नियतास्ति--विधनो के ग्रभाव में सफलता के निश्चित हो जाने की ग्रवस्या को नियतार्थित कहते हैं ॥२१॥

जैसे, रत्नावको नाटिका से—"विद्ययक— 'सायरिका का जीवित रहना बढ़ा ही कठिन है। यहां से झारम्म कर फिर कौनसा उपाय मीच रहे हो ?" इसको सुनकर बत्सराज विद्युक से कहते हैं—"मिन, देरी बागवदत्ता को प्रस्ता करते के घलावा और कोई भी उपाय नहीं सुभ रहा है।" इस प्रवार से देवी द्वारा और कोई भी उपायका थी वह उन्हीं भी प्रसन्त करने के निश्चय में सागरिका-क्य फल बी प्राप्ति कह नरह से निश्चत-नी हो गई।

समयक्ससंपत्तिः फलयोगो यथोदितः।

पनागम—कार्य मे राकारता के साथ साथ ग्रन्य समस्त वांद्रित फर्लो की प्राप्ति को फलागम कहते हूं ।

के संप्तान का का का कहत है। विस्तृ 'रस्तावसी' वादिया से उदयन की रस्तावसी की प्राप्ति के साथ-साथ चकानिस्व की प्राप्ति भी ही जाती है। ग्रयंत्रकृतय पञ्च पञ्चायस्यासमन्विता ॥ २२ ॥

यथासरथेन जायन्ते मुखाद्या पञ्च सध्यः ।

सन्य-(कपर पहें हुए) पांच भवंशहृतियों और कार्य को पांची प्रवस्थाओं के कमरा एक-दूसरे से मिलने से पांच सन्धियों की उत्पत्ति होती है।।२२॥

ग्रन्तरैकार्यसम्बन्धः सधिरेकान्वये सति ॥ २३ ॥ सन्य का सामान्य लक्षरा—एक प्रयोजन से प्रन्यित कथा का दुनरे एक प्रयोजन से सन्यन्यित हो जाने को सन्य कहते हैं ॥२३॥

तिम्नसिवित पौच मन्धियाँ हैं— मुखप्रतिमुखे गर्मेः सावमसॉपतहृतिः । मुसं बीजमगुत्पतिर्नामार्थरससंमवा ।। २४ ॥ मङ्गानि द्वादर्शतस्य बीजारम्भसमन्वयात् ।

श्रङ्गानि ढादर्शतस्य योजारम्भसमन्ययात् । १. मुत्र सन्धि, २. प्रतिमुख सन्ति, ३. गर्भसन्धि, ४. श्रदमझं सन्दि श्रोग १. उपसङ्खति या जपसङ्खर सन्धि ।

प्रव इनका प्रमत लक्षण दिया जाता है।

### मुख सन्धि

यह सिन्ध धीत्र नामक अर्थप्रकृति और धारण्य नामक प्रवस्या के सयोग से पंडा होती है। इसमें धारण्य नामक धवस्या के योग से धनेक प्रवार के अयोजन और रार्से की प्रश्ट करने बाते बीज (प्रयोजहाति) की उत्पत्ति होती है। इसके १२ जग होते हैं।

मुनम्बन्धि में प्रतक प्रकार के प्रयोजन धीर रमा को प्रकट करने वाले बीज भी उत्पन्ति होनी है। यहाँ पर 'धनेव प्रकार के प्रयोजन' यह रस भर विधेषण है। यदि इसे विधायण न मानें तो फिर हास्य रस म जहाँ विचर्ष म में किसी प्रयोजन की प्राप्ति नहीं होती, मुक्सिय का द्वीना समस्मय ही जाएगा। रस के विशेषण रूप स'धनेक प्रकार के प्रयोजन' त्रविद्यातिः परिन्यासो

३. परिन्यास—बीज की निःपत्ति ग्रयांन् उसका निरिचत रूप में प्रबंद होना परिन्यास महत्ताता है।

जैंस, वही रन्नावरी नाटिका मे--'त्रारम्भेजीमन्' घादि वरोक है ।

#### गुर्गाल्यानाद् बिलोभनम् ॥ २७ ॥

४ वितोमन-पुरा कथन को जिलोमन वहते हैं।

जैसे, रुलाधली नाटिया में बैतारिया के द्वारा चन्द्रसद्दा बन्सराज के गुणवर्णन ने सागरिया वे समागम वा कारण धनुराव-रूप बीज की सनुक्तता का वर्णन । सथा—

'मूर्व प्रपती गमन्त शिरणों के साथ घटनाचलगामी हो गए। नेत-घारियों को मानन्द प्रदान करने बारे महाराज उदयन चन्द्रमा के समान उदित हो रहे हैं। इस सन्ध्याकाल में सभासण्डल में धासील नृपनण कमसो को सुति यो हरण मण्ये याने उनके चरणसेवन के लिए उन्मुक बने हए हैं।

धीर जैसे, वेगीमहार वा यह उरोक—'भीयसेन (प्रसन्त होकर) होत्तरी से बहुते हैं कि, देवि, यह वधा ? ''सन्यन देवेड (सदराचन) से प्रसिन्त समुद्र-जन से पूर्ण, कदरा-महित प्रदराचन की तरह सम्भीर भीषकारी, बोधाधात होने पर प्रनवशास से सम्बद्धे हुए सेचो को धटायो के प्रस्तर टक्कर त्याने से भीएण शब्दकारों, प्रस्तय-सिव के प्रवृद्ध के समान, कीरवा के धीष्पति (दुर्योगन) ने नाशमूबन उत्ततन से उदियन अध्ययान की भीन तथा हम सीयोग ने सिह्नाद के श्रृद्ध न समूद्ध की विस्ते साहित किया है। 'यहाँ से श्राप्त कर यथा दुर्दुधि यस भी दुर्दुधि यान्यार कह रही है।' यहाँ तक का प्रस्त दोदेश के मुस्तिन देवान के वारण विजीसन है।। 'यहाँ तक का प्रस्त दोदेश के

संप्रयारणमर्थाना युक्तिः

मुश्य-प्रयोजन के शम्यक् निर्शय की मुक्ति कहते हैं।

83 ट्यारपर

इसनो गाना से हास्यरस मंभी मुखसन्त्रिका योच नहीं हो पाता है। इस सन्धि के बीज धौर श्रारम्भ ने योग से निम्नलिखित १२ मग होते हैं।

उपक्षेपः परिकर परिन्यासो विलोभनम् ॥ २५ ॥

पुक्तिः प्राप्ति समाधानं विधानं परिभावना । उ.द्वेदनेदकरगान्यन्वर्यान्यय सक्षग्रम् ॥ २६ ॥

१ उपक्षेप, २ परिकर, ३ परिन्यास, ४ बिलोभन, १. पुनित, ६. प्राप्ति, ७ समाधान, ८. विद्यान, १ परिभावन, १० उद्भेद,

११ भेद, ग्रीर १२ करण ॥ २४-२६॥

इन सबका लक्षण मासानी से समक्त में द्या जाए एतदर्थ इन्हें चदाहरण के साथ दिया जा रहा है-

वीजन्यास उपक्षेपः

 उपलेंप—बीज के न्यास (रलना) को उपलेप कहते हैं। भैने, नेपच्य से सीम-धरायण का यह कथन "द्वीपादन्यस्मादिष---श्चन्य द्वीपो से दिसाक्यों की स्रोर छार से (पृ० ६७ दे०) स्नादि। इस स्लौक

से यौगन्धरायण द्वारा बत्मराज था रत्नावली वी प्राप्ति वे लिए धनुष्ट्रत दैव ग्रीर ग्रपने ब्यापार का कथा बीजरूप में रखा गया है।

तज्वाद्वस्यं परिक्रिया ।

२. परितर-धीत की शृद्धिको परिवर कहते हैं।

जैमे, 'डीवाड-घरमादिव' इसके आगे यौगन्धगयप का यह कथन---'यदि ऐसी बात न होनी तो भिर भता सिद्धो के यचन पर विश्वास बरके उदयन के लिए भागी गई सिंहनेदवर की बन्या का समुद्र मे नौका थे भन्न हो जाते पर ट्वते समय वहताहस्राकाट वाद्वाडा झात्मरक्षा र्वे जिल् पैंगे प्राप्त हो जाता?" यहाँ से धारम्भ करने 'स्वामी **नौ** रानिति भवस्यमानी है। यहाँ तन बीज की उत्पत्ति भीक प्रकार है भी गई है सब यह परिवर का उदाहरण है।

#### तन्निद्दत्तिः परिन्यासो

 परिन्यास—बोज की निव्यत्ति अर्थान् उसका निश्चित रूप में प्रकट होना परिन्यास फहलाता है।

जैंग, वही रत्नावली नाटिका म--'प्रारम्भेऽस्मिन्' मादि स्त्रोक से ।

### गुरगाल्यानाद् विलोभनम् ॥ २७ ॥

४ विलोभन-गुल कवन को विलोभन वहते हैं।

चैतं, रत्नावसी नाटिया से वैतानिया के द्वारा चन्द्रसद्देश वरसराज के गुणवर्णन में नायित्या के समागम या कारण अनुराग-मय बीज की चनुकुलता का वर्णन । यथा---

'मूर्व प्रमनी समस्त निरणों के माथ प्रस्तावसगामी हो गए। नेत्र-षारियों को प्रानन्द प्रदान करने वाले महाराज उदयन करना के समान उदित हो रहे हैं। इम सन्ध्याकाल में समानव्यक में प्रासीन नृपगण कमसी की पुति को हरण करन याले उनके करणसेवन के निए उत्सुक बने हए हैं।'

भीर जैसे, वेणीमहार या यह हरोक—"भीयसेन (यसन्त होकर) होत्रदी से पहते हैं कि, बिंग, यह बया ? "मन्यन दण्ड (मदराचन) से प्रक्षिप्त समुद्र-जन से पूर्ण, नदरा-महित सदराचन को तरह वस्भीर भीयकारी, बोणाणात होने पर प्रनयकान से गरजते हुए मेचो को प्रदाक्षों के परस्पर दस्तर खाने से भीयण साव्यकारी, प्रतय-राति के प्रयद्भ के समान, बौरवों ने स्थिपित (दुर्वे जन) के नाशमुचन उत्तरात ने प्रतियत भभायात को भीति तथा हम तथा में स्थारम्य वरने पद्मा इनुद्रीभ — सा पे दुर्वि वाच्या हमें यहाँ से स्थारम्य वरने पद्मा इनुद्रीभ — सा पे दुर्वि वाच्या न्या पत्म दरी है।" यहाँ तक का भार द्रीपर्वा के माने से प्रस्ता के नारा विनोधन है। " यहाँ तक का भार द्रीपर्वा के माने से प्रस्ता के नारा विनोधन है।" यहाँ तक का भार द्रीपर्वा के माने से प्रस्ता के नारा विनोधन है। " यहाँ तक का भार द्रीपर्वा के माने से प्रस्ता के नारा विनोधन है। " यहाँ तक का भार द्रीपर्वा के माने से प्रस्ता के नारा विनोधन है।" यहाँ तक का भार द्रीपर्वा के माने से प्रस्ता के नारा विनोधन है। " यहाँ तक का भार द्रीपर्वा के स्थाने से प्रस्ता के नारा विनोधन है। " यहाँ तक का भार द्रीपर्वा के स्थान से स्थान के स्थान से स्थान के स्थान स्थान से स्थान के स्थान से स्थान से स्थान के स्थान से स्थान स्थान स्थान से स्थान स्थान से स्थान स्

संप्रधारणमधीना युक्तिः

युक्ति-प्रयोजन के सम्यक् निर्णय को युक्ति करते हैं।

जिसे, 'रस्तावनी' से पौयन्यरावण का यह वयन—"मिन भी उस कन्या नो बढ़े आदर के साथ रानी नो सोंपा है। यह बात धन्छों ही हुई। यद मुनने में आया है कि हमारे स्वामी का कचुवी बाध्रव्य और सिहलेस्वर का मन्त्री वसुनृति भी, जा राजवन्या के साथ बले थे, किसी प्रकार दूनते-उत्तराते किनारे लगे हैं। यब के सेनापति रमण्यान् से, जो कोशतपुर को जीतने गया था, मिसकर यहाँ पहुँचे हैं।"

इसके द्वारा धन्त पुर में निवास करने वाली सामरिना से बल्मरान का सुख्यूर्वन दर्शन झादि शायें हो सकेगा तथा वाभ्रव्य धीर विह-सेपवर के प्रमास्य का अपने नायक के साथ मिनन हो सकेगा, इस बात ने निरुष्य हो जाने से यहाँ 'युविन है।

#### प्राप्तिः सुखागमः ।

प्राप्ति—मुख के प्राप्त होने को प्राप्त कहते हैं।

जैसे 'वेणी सहार' य-चेटी वह रही है वि 'अहारानी, मुन'
राज पुढ-से प्रतीत हो रहे हैं।' इसके बाद भीम का इस कथन से प्रारम्भ
कर--- "वया मैं सप्राम में कोष से सी कीर बो वा सर्दन नहीं कर बालूंग।'
क्या दु सासन के हृदय-प्रदा का रकतान नहीं कर ना ' द्या में गदा से
दुर्योधन के जीप को चर्णन बना डालूंगा।' तुम सोचों के राजा (प्रुधिष्ठर)
इस विनियस पर सिन्ध वरें।'' यह मुनकर होभदी कहती हैं— (प्रवकता के साथ) "स्वामिन आपके य वचन प्रपृदं हैं ऐसा कभी भी भूतेंगोवर नहीं हुमा था। अच्छा, एक बार इसे किर से वहने की क्या
करें।'' यही तन भीम वा जीय-रूप जो बीज है उससे होपदो को सुस
प्रारद होना 'प्राप्ति है।

इमी प्रकार रत्नावनी नाटिना मे-सागरिना उदयन का नाम मुनकर हर्षपूर्वन भूमनर स्पृहा ने साथ देखती हुई नहती है—"नवा ये हो महाराज उदयन हैं, जिननो पिताजी न मुझे समर्पित निया था ? तो फिर दूसरे के पोषण से दूषित हुया भरा शरीर इनने दर्शन से पवित्र हो गया।" इस प्रकार सागरिमा (रत्नावनी) में मुख प्राप्त हो जाने से यहाँ 'प्राप्ति' हैं।

£¥

वीजागमः समाघानं

समायान-बीज के चारम की समाधान कहते हैं। समाधान का भर्ष है पुवित के साथ बीज को रखना ।

जैसे, 'रत्नावली' नाटिना में "बायबदता—यही तो यह लान ग्रमीन

है तो फिर मेरी पूजा की सामग्री को लाग्री।

सागरिका-भीजिए, महारानी, ये सारी बस्तुएँ सुनुन्त्रित हैं। वासवदत्ता-(ग्रपने-ग्राप मोचती है) देखो न, नौनर-वानरी नी मनावयानता, जिसकी भौती ने बचाए रखने का मैंने नदा मावधानी-पूर्वर यत्न किया है, ब्राज उक्षीकी दृष्टि में यह (सागरिका) पटना चाहती है। सेर, तो फिर ऐमा बरू, (बहनी है)-"ग्रगी मागरिका, धान घर के सब लोग जब सदन महोत्सव में स्थरत हैं तो फिर तू सारिया को छोडकर यहाँ समी बागई? तूजस्दी बहाँ जा, धौर पूजा की सामग्री काचनमाला को देदे।" यहाँसे लेकर "साग-रिया (भाषने-भाष बुट चनवर)---मारिया को सी मैंने मुनगना को गौंप ही दिया है, मेरे मन में भदन-महोत्सव देखने की जालता है जो, मैं यहीं से छिपकर देखती हूँ।" यहाँ पर बामबदत्ता यह बाहनी है कि महाराज और सागरिका का परस्पर धवलोकन-स्पी कार्य न हो, इसी-निए वह सारिका की देख-भाल के बहाने सागरिका को सौटा देखी है पर मुसनता वे हाम सारिका की पहले ही समर्थित कर पुक्ते के बारप वह महाराज को छिएकर देखनी है। इस प्रकार महाराज टहरन भौर नागरिका के समागम-रूप बीज को युक्ति के माथ रखने से सह ममाधान का उदाहरच हो जाना है । घषवा वैसे, वेचीग्रहार में —''नीम (ब्यानुनना में नाथ उठने हुए) बहुता है---'पाञ्चानराजपूति, स्रविक मैं क्या कहूँ जो मैं बहुत शीघ्र करने जा रहा हूँ उसे मुनो---

भीम धपने चपत मुजदक्तों से घुमाए हुए भीषण गदा ने प्रहार है मुद्रोधन के अधी को शैंदकर निकान गए सूब गाउँ रकत की प्रपते होयों में पोत्रवर तुम्हारे वेशवरणपुत्रों सँवारेगा।" इस प्रवार से

दशस्पक

ŧξ

यहा पर वेची के सहार (सैवारना) का कारण जो कोघ-रूपी बीज है

उपना फिर में रचना समाधान है। विधान सुखदु:खरूत् ॥ २८ ॥

विधान---सुत तु त के बारए की विधान कहते हैं ।।२८।। जैंने, 'मालती मायव' के प्रथम ग्रन्त में माधव का यह कथन---

(१) "निज आरत समै वह फेरिक्छ सुठि स्रीव को ऑही सती भय मोर।

मुख सूर्वभुती के समान लक्ष्यो विलस्यो छवि घाग्त मजु ग्रयोर ।।

जुग नैन गडाई सनेह सनै जिन चार घने बस्तीन के छोर।

जिन चार घने बस्तीन के छोर। बस मानो बुआई सुषा विच में हिय धायल कीन्द्रों कटाच्छ की कौर।।

थायल कारहा कटाच्छ का कारी।

(२) 'तेंह्यो मन जाइ प्रेम के फद, सब तो निक्त छवि लखि कचिर अल्यो सबको ध्यानं।

सब तो निह छवि लखि क्षिर भूत्यो सबको ध्यान । विस्मय मोहित मृदित मनु करत ग्रामिय-स्नान ॥

महा कैसी आयो आनन्द, फेस्सीमन जाइ प्रम के पदा। म्रद्ध बाद देखे दिन्ह काह दिखि दल नाहि।

मीटे बार्रीहबार यह मनी प्रगारनु माहि॥ कप्टकाहु विधि सो निह मद।

क्ष्ट्र काहू विधि सो नहि मद। फैँग्यी मन जाइ प्रेम के पद।।

मासती मामव (१०२२) भनुरागक्य माजनी को देलने से साधव सुख-दूस का भाजन वर्ग

भनुरायक भागा वा दान में माधव मुंदान्द्र स का माजा कर जाना है। मालती चौर माधव के समागम-हप जो बीज है उसके घनु-कृष माधव वा मुख्य न मानी होना 'विधान' है। प्रचन 'विणी सहार' में भी—द्वीपदी बहतो है कि "नाय, त्राप रणमूमि से प्राक्तर किर मुसे भारवस्तित करें।"

इस पर भीम उत्तर देता है-

"पाष्ट्याची, बाज दक्ष बनावटी बाध्यानन से बना ? निर्मार प्रस् मान और उससे उन्तम हुन्त और तरजा से म्यान सुन बाले भीन को तब तब नहीं देवोची जब तब वह बीडवॉ को नष्ट न कर दे। इस प्रकार नदान के मुक्त-दुख के कारण होने के बाल्य दियान है।

परिभावोऽद्युतावेदाः

परिभावना---धारवर्धजनक बान को देखकर कुनूहनयुक्त दानों हे क्यन को परिभावना या परिभव कहते हैं।

बंध, 'रत्नाव से नाटिक' में "खगरिका (धादवर्ष के मान मदनपूत्रा में उदयन को देख)—क्या प्रत्यक्ष ही नामदेव पूत्रा छहा कर रह है ?" यहीं पर व मगज उदयन को नामदेव सममनर प्रत्यक्ष धामदव का पूत्रा धहा करना जो मोगोतार प्राये हैं उन्तये उत्पन्त अद्भूत धामत्व के पायेत्रवग जो नदन है यह परितादना है। यसका जैसे विगीसहार' में, ''द्रीपदी—नाय, इन नमस भीवान निष्यं के नारग धमस्य, प्रत्यकानिक सेच की प्रव्यवाहर के नमान धावाद करन वानी यह रामेगी (नगाता) प्रतिक्षय नया बनाई का रही है ?" यहीं पर मोशोतर समर-हुन्यून की प्यति से द्रीपदी का विन्मयनुष्य रस का धायेय हीने के नारण परिजानना है।

बद्भेदो गूडनेदनम् ।

बद्देर—दियों हुई क्षान को स्रोत देने को उद्वेद कहने हैं। असे 'रलावको नाटिका' में कामदेव के रूप में समके मए काराया का ''मस्वादास्य प्रचादि से मारस्य कर दक्षी में टदवनस्य इसके द्वारा बीय के मनुका रखे (बस्तराय को) प्रकट कर देने से उद्देद हैं। इसी प्रकार विधोगहार' में भी भीन कहना है, 'साये, सब महाराय वया बरना चाहते है ?" इसी समय नेपथ्य से घावाज धाती है कि 'जिस कोध की ज्वाला का सत्यज्ञतपरायण ने ऋपने वत-भग की ग्राशका से बडे परिथिम के साथ मन्द कर रखा था, जिसको झान्ति के पुजारी ने कुल के कल्याण नी कामनासे भूल जाने का निश्चय कर लिया या, वह युतरपी भरणी मे भन्तहित युधिष्ठिर की कोध की ज्योति द्रीपदी के केश भीर बस्त्रों के सीचे जाने से कौरबदन में भँगडाई ले रही है।" इस पर भीम उल्लासपूर्वन बहुता है, "भडक उठे, भड़क उठे, महाराज के कोष वी ज्याला। विना विसी प्रवरोध के भनी भाँति बढ़े।"

करलं प्रकृतारम्भो

करए-प्रस्तुत कार्य के प्रारम्भ कर देने को करण कहते हैं। जैसे 'रत्नावली नाटिका' मे सागरिका-"भगवान कामदेव, तुन्हें

प्रणाम है। तुम्हारा दर्शन बल्याणप्रद हो। जो देखने बोग्य या उसे मैंने देव निया। ग्रब मरा मनारथ सफल हो गया। श्रतएव जब तक मौर मोर्दे मुभ इस रूप मे न दल ले उसके पहले ही यहाँ से वली जाऊँ।" इस प्रकार पहले से निविध्न दर्शन की जो योजना थी उसका भारम यहाँ से होता है, अत यह 'करण' है। इसी प्रकार 'वेणीसहार' मंभी भीम यहते हैं, "पान्चालि, हम लोग वौरवो को बच्ट करने जा रहे

हैं । सहदव--हम लीग गुरुजनो की खाता से घपना पुरुपार्थ दिसाने जा रह हैं ।" इस प्रवार ने यहाँ पहले अन के भीतर आये हुए सब्राम-प्रयाण

की तैयारी वा धारम्य हो जाने से 'करण' है।

भेदः प्रोत्साहना मता ॥ २६ ॥ नेद-उत्साहयुक्त बचनों के कथन को भेद कहते हैं ॥२६॥

जैने 'वेणोगहार' में, "नाय, मेरे घपमान ने ग्रतिबद्ध होवर विना यनो सर्गार का व्यान रंगे परात्रम न प्रदक्षित कीजिएगा, क्योंकि ऐसा प्रमम प्रशास ६६

नुना जाता है कि शत्रुकों की सेना मैं बडी सावधानी के साय जाना चाहिए !

भीम-ए बीरो, जिम समरागण-रागे समुद्र के बस्भीर जल मे, राज्यार प्रजित्त हावियों ने पूर्व हुए सम्बन्ध से निक्त हुए राज, माझ, चर्बी तथा मन्तिष्म के बीचट बीच योंग्रे हुए रागे पर पर राज्यार पैदल थोड़ा भाज्यान कर रहे हो और विद्युद्ध रक्त के प्रति-सहभोज में भाग्यादन करने भ्रमगण गब्द करती हुई ग्रमातियों के धाद को तुरही मान क्षण मृत्य कर रहे हो, ऐसे राष्ट्रचल में विचार ने करने में पाष्ट्रव दश है।"

इस बान्य से निपान द्रीपरी का उत्साह पटता है, घतएव यहाँ भेद है।

मुल-मिन ने में बारह थग हैं। ये बीज और खारम्म के मेल से उपान होने हैं। ये बापस में कहीं माशान् सम्बन्ध से, बीर नहीं उनके समान में परम्परा-मुक्तम्य ने बीनर होने हैं।

दनमें में उपशेष, परिचर, परिचास, युक्ति, उद्मेद और समाधान इन छहों का तो हरेन रुपकों में रहना सावस्थक है, पर मेप नाइय-प्रतीना की इच्छा पर साधारित हैं, सर्थात् वे चाहें तो नेप को भी सपने रुपस में स्थान दे सकते हैं और यदि न बाहें तो कोई सापति नहीं।

## प्रतिमुख सन्धि 🕞 😁

भर भगे के नाथ प्रतिभुत्त किया का निरुषण किया जा रहा है—

क्रितिमुक्त सिंग्य—इससे पुत्र मिण्य में दिखाने यह योज का किविन्

ततम भीर विवित् सतस्य रूप में उद्देश्व होता है। यह बिग्दु नामक स्वंग्रहित ग्रीर यान नामक स्वत्या के योग में न्यंदर होती है। इतके तिरु भग होते हैं। वोने, 'राजावनी नाटिना' के द्वितीय प्रकर्म का नामक सोन मारिता के ममायन के हेनु दनने पारम्यानिक सनुराय हो, रा क्रान भर म बनाया जर पुत्र था, मुनस्ता और विकृतक द्वारा धिरित हों जाने से निभिन् सध्य होता हुया किर यासवदता द्वारा चित्र को देश इस रहस्य को जान सेने से बौर उसके द्वारा प्रेम-स्वातार

में बाँघा पहुँचने की सम्भावना के होते से घलदय अवस्या की प्राप्त होता हर्यी प्रतिमुख सन्य वा उदाहरण बन जाता है। ं 'वेगींसहार' वे डितीय चक मे भी भीष्मादि के क्य से विजय प्राप्ति

में सिंए कोप-स्प जो बोज है उसका विवित् सध्य होना मौर कर् र्वादि बूरवीरो के यथ न होने से उसकी कि चित् चलस्यता प्रकट होती है। "पाण्डुपुत्र सपने पराक्षम से आई, बन्यु पुत्र, मित्र तया नीहरू भावरो समेत दुर्योषन या यथ करेंगे।" इत्यादि से लेक्ट दुर्योषन की

भ्रपनी पत्नी ने साथ निये गए बार्तालाप-पर्यन्त—दुर्योधन भानुमति से नहता है-युद्ध मे दुःशासन वा हृदय दिदीण करने विधरपान करते वे विर्णय मे, और मुक्त दुर्योधन के जयों को गदा से तोड देने के विषय में नी गई परम प्रतापनाली पाण्डवो नी प्रतिका जैसी थी थैसी ही जगहर्य के विषय मे पाण्डवो द्वारा की गई प्रतिज्ञा को भी सममना चाहिए। मिर्मात् जैसे पाण्टनो बाराकी गई पहले की प्रतिज्ञा पूरी न ही

संकी, वैसे ही उनकी जयद्रय-वध की भी प्रतिज्ञा पूरी नहीं हो पाएगी। लक्ष्यालक्ष्यतयोद्धे दस्तस्य प्रतिमुख भवेतु । िबन्दुप्रयत्नानुगमारङ्गान्यस्य त्रयोरश ॥ ३०॥

यह सन्यि बिन्दु नामक सर्वेद्रकृति और प्रयत्व नामक स्रवस्या के

मिलन 🗄 र्यदा होती है। इसके १३ अब होते हैं ॥३०॥ 🕠 🔐 विलासः 'परिसर्पदच विवतं शमनसंगी ।

ग्र. नर्मद्वृति प्रगमन निरोधः पर्युपासनम् ॥ ३१ ॥

बद्धं पृष्पमुपन्यासी वर्शसंहार इत्यपि ।

रै. विलास, २ परिसर्प, ३ वियूत, ४ शम, ४ नमं, ६ नमंग्रुति, ७. प्रगमन, द निरोध, ६ पर्युपासन, १० वज्र, ११ पु<sup>हर्</sup>।

१२ उपन्यास भौर १३ दर्णसंहार ॥३१॥

नीचे स्टाहरण के माय इनने लक्षण दिए जाते हैं

रत्यवहा विलासः स्याद विसास-सुरत को कामना को विलास कहने हैं।

जैसे, 'रन्नावली नाटिका' में, ''सागरिका—हृदय प्रसन्त होग्रो, प्रसन्त होयो, जिमका पाना सहज नहीं है उसको प्राप्त करने के लिए दिवीना माप्रह वर्षे करता है ?" यहाँ से भारम्भ कर ""यद्यपि मय से मेग राय यापता है तो भी उनका जैसे-तैम चिताबत कर मनोदाष्टा चरि-नायें बरें, टमके अनावा उनके दर्शन के निए बन्द कोई रास्ता नहीं है।" यहाँ पर व खराज के समायम ने लिए चित्राहुत मे जो सागरिका ज्ञान केटा बादि प्रयम होते हैं के बनुराग-मनी बीज के बनुकत होते षे बारण निलास के एदाहरण हैं।

दृष्टानष्टानुसर्पराम् ॥ ३२ ॥ परिसर्य-पहने दिखमान परवान् नष्ट हुई या हट नष्ट बस्तु की

र्योज परने को परिसर्व कहते हैं ॥३२॥

परिसर्गे

जैसे, 'देगीसहार' मे--"क नुकी धन्य पनिवृत्रपायणे बन्य, माप म्बी होतर भी धन्य हैं पर महाराज नही, क्वोंकि डक्के शबू पॉक्डिय भिर पर खड़े हैं, चाहे वे प्रयुत्त हो या निर्यत, पर हैं तो वे शबू हीं; 'देख पर भी उनकी महायता बाम्देब कर रहे हैं। ऐसी हासन में भी महा-गत रित्राम ने मृत की ही भीग रहे हैं। (मोचनर) भीर भी एन धनुषित कार्य है जिसे महाराज कर रहे हैं, क्योंकि परशुराम गिर्पेमा नपन्थी ऋषि, जिनका बुठार नभी कुच्छित नहीं हो पाया था, उने पर विरम प्राप्त वरने वाले मीष्मिपितामह की पाण्डवों ने बाणवर्षा कर पराणामी बना दिया। उतना होते हुए भी महाराज के भन में तिनिक भी शीम पैदा नहीं हो रहा है। साय ही अपहास बापक प्रमिनन्यु, जित्रने पतुप को शबुधी ने काट दाना या घोर धनेक योदाधी पर

विजय प्राप्त वस्ते-करते श्रात हो गया था, उस बासन प्रशिमन्यु है वध से महाराज प्रकल्न है।"

### विघूतं स्यादरतिस्

विपूत-मुजबद वस्तुको में क्षरति क्षवीत् तिरस्कार को भावना उत्पन्त होने को कहते हैं।

जैते, 'रानावली' में नागरिया के ये बचव--- 'मिल और मरा

सताप बदता ही जाता है।" (मुमगता तालाब से बमल के पत्ते ग्रीट मुलालों को लाकर सान रिना के ग्रामों को उर्क देती है) मागरिका—(जनको पॅक्ती हुईँ)

"मिनि, हटाझो इन पद्मपत्रो श्रीर मृणालो की । इनसे बया होगा? स्पर्ध नयो क्ट उठाठी हो ? मैं तुन्धे बताती हूँ, सुकी—

मेरा मन दुरंग जन में बानवा हो था। है पर धरीर में बचार सज्जा ने घर गर निया है, बन भेरी दृष्टि में तो ऐसे विषम प्रेम को निवारने के निए गरण ही एकमान महारा है।"

यहाँ पर मागरिका के प्रेयमपी बीज से घन्तित होने ने दीतोपचार के लिए रसी गई सामद्रियों के विघून करने से विघुनन या विधूत हैं।

#### तच्छमः शमः ।

शम-चरति रे दूर हो आने को शम कहते हैं।

जैसे, 'रत्नावनी नाटिना' में राजा—'हे मिन, इस रमधी ने (प्रपंत हायो) मेरा चित्र प्रांता है इससे मेरे मन में अपने स्वरूप के प्रांत प्रविक्त प्रांतर हुआ है। अब जला अपने वो नयों नहीं देवूँगा?" यहाँ से प्रारम्भ करके, "सागरिका—(अपने-आप) मन धीरज घर, चवल मत हो, तेरा तो मनोरव भी यहाँ तक नहीं पहुँच पाया था।" इस प्रकार यहाँ प्ररंति के सान्त हो जाने से सम है।

परिहासबचो नर्म

नम-परिहासपुक्त बचन को नम कहते हैं।

जैसे, 'रत्नावली नाटिका' में सुमनता—"मिन, जिसके लिए ग्राई हो वह सामने खड़ा है।"

मागरिका (बुछ क्रोध के माय) — मैं विसके लिए ब्राई हूँ ?

मुमगना (हॅमवर)—"ग्ररी, श्रपने पर भी शवा वरने याती, चित्र-पत्रव वे तिए ही तो ग्राई हो, सो उसे से सो।"

यहाँ पर सुमंगता महाराज को अध्य कर मारी कार्ने पिन्हाम के कम म मागरिना से बह रही है। वित्रक्ष तक के प्रहण का तार्स्य भी महाराज में हो है। इस प्रवार बीज से युक्त यह परिहास-बनन नर्म का उदाहरण है। जैसे विजीवहारों में भी— "(ट्रॉफ्स बेटी के हास से प्रपात सार्दि कर राती मानुमती को देता है, इसने बाद) मानुमती—(प्रस्त देवर) मिल पुत्यों को दो ति की देते हैं। दुर्मोपन सर दूँ।" इसने बाद बातुमती हाथ पंजाती है, दुर्मोपन उसने प्रयोग पुरोग को देता है। दुर्मोपन के हाथों में पुरोग को देता है। दुर्मोपन के हाथों में क्षार के मानुमति में हाथों में क्षेत्र के सात्र मीति है। दुर्मोपन के हाथों में क्षेत्र के सात्र मिल प्रयोग सात्र की है। दुर्मोपन के हाथों में क्षेत्र के सात्र की सात्र की है। दुर्मोपन के हाथों में क्षेत्र की सात्र की है। दुर्मोपन के हाथों में क्षेत्र की सात्र की है। दुर्मोपन के हाथों में क्षेत्र की सात्र की है। दुर्मोपन के हाथों में क्षेत्र की सात्र की है। दुर्मोपन के हाथों में क्षेत्र की सात्र की है। दुर्मोपन के हाथों में क्षेत्र की सात्र की है। हिस्स हाथ में क्षेत्र की सात्र की है। हिस्स हाथ में क्षेत्र की सात्र की है। हिस्स हाथ सात्र की सात्र की ही है। हिस्स हाथ सात्र की सात्र की है। हिस्स हाथ सात्र की सात्र की है। हिस्स हाथ सात्र की सात्र की सात्र की है। हिस्स हाथ सात्र की सात्र की सात्र की है। हिस्स हाथ सात्र की सात्र क

भानुमनो विष्य वी शान्ति ने तिए पूतन वर गरी थी, पर दुर्थोपन इस्स उनमे विष्य द्वार देने मे पूतन सम्यक्तवा सम्पन्न न हो सना ! इस प्रवार को बाउ का होना भीम धादि शतुन्यत के निए घन्छा हो हुया । इसने द्वारा नादन पश को विजय को सभावना का होना परि-हास के साथ हो हुया । बन दस (परिहास को) प्रतिमुख सम्य भेद मानना युनितसगत ही है।

धृतिस्तज्जा सुतिर्मता ॥ ३३ ॥

नमंद्रित—परिहास से उत्पन्न सानन्द ग्रयना विकार के द्रिपते को नमंद्रित कहते हैं ॥१३॥

का नमन्द्रीत कहते हैं ॥ इत्। पैसे, 'रत्नावती' में ''युसगता-—मस्ति, तू वही निष्कृद है, जो महा-राज से इतना आदर पाने पर भी कोच को नही छोडती। सागरिका (भीह चढाकर)—मब भी तू चुप नहीं रहती सुसगता।'' उपर्युक्त बातो द्वारा प्रेमरपी बीज के प्रकट होने पर परिहास से उत्पन्न बात

को छिपाने के कारण वहाँ नर्मशुति है। उत्तरा वाक्यगमनं

उत्तरा वाक्प्रगमनं प्रगमन—बीज के अनुकूल उत्तर-प्रत्युत्तरपुक्त बदन को प्रगमन

कहते हैं। जैसे, 'रत्नावसी नाटिका' में चित्र मिलवे पर राजा ग्रीर विदूषक की यह बातचीत—''हे मित्र, तुम वटे भाग्यसालो हो। राजा—मित्र यह क्या ? विदूषक—ग्रह वही है जिसकी ग्रामी चर्चा चली थी, चित्रपट में

भाप ही भनित हैं, नहीं तो भना कामरेव के बहावे और किसका चित्र सीपा जा सकता है।" इत्यादि से आरम्म कर राजा के इस कपन तक— "भाई मृगाल हार प्यारी के घटस्तन के सम्पर्क से ब्युत होकर क्यों पूर्व रहें हों? यरे माई, तुग निरे बुढू मासूम हो रहे हो, भना बतामो तो सही, उसके पटस्ताों के बीच में खित सूदम तन्तु के रखते-भर का तो स्थान ही नहीं है, फिर तेरे-ऐसे मुसरचण्ड के लिए वहीं स्थान ही कहीं हैं?

दस प्रकार राजा और विद्युक तथा भुतगता और सायरिका की आपमी बातों से उत्तरीत्तर अनुराय-तीज शकटित हो रहा है। मत यह प्रकार ना उदाहरण हुआ।

यह प्रमान का उदाहरण हुन्ना। हितरोधो निरोधनम् । निरोप—हितरर वस्त की प्राप्ति में करावर एक उन्हें को स्टिगेप

निरोप—हितहर बस्तु की प्राप्ति में कहावट पट्ट जाने की निरोध कहते हैं। जैसे 'रलावली नाटिका' में, "राजा—विद्मुखं, समोग से निमी
प्रकार वह (निसंबे अन्दर मेरे विषय में अनुप्रण प्रवट हो रहा था)
मिली भी तो तुने भेरे हाथ में आयी हुई उस 'रलावली' नामक कान्ता को 'रलावली' की माला की तरह व्यूत करा दिया। सभी में उसे इन्ड में तपाला ही चाहता था कि तुने उसमें व्यवसान ताकर पुके अपना प्रभीत्तित पुरा करने में बाबा पट्टैबा हो।" यहाँ पर वासपान के मन में सागिरिका से समागम को जो इच्छा रही, उसमें "वामवदता आ रही है" ऐसे व्यवन से रोक (व्यवसान) पर गया। प्रत यह निरोध हुसा।

पर्यु पास्तिरनुनयः

भयुं पासन-कृद व्यक्ति को खुझ करने के लिए प्रार्थना करने की पर्यु पासन कहते हैं।

जैने, 'रणावली नारिका' में महाराज बानगरता वो मगाउँ पमय बह रहे हैं—"गजा—देनि, यदि में तुम्हें असन होने वो नहें तो यह बात प्रव्यक्त कोच बाली तेरे लिए युविजनगत प्रतोज नहीं होती। यदि में ऐमा गड़ें कि माज से फिर ऐसा काम नहीं बक्तेया, मो मी टीड नहीं होगा, भयोकि इनमें तो उनते यही बात प्रमाणित होने लगेगी कि मिते सचमुख इन बाम वो किया है। यदि में यह बहें कि इनमें मेरा बांदे सोल नहीं है तो तुम दने मिल्या ही मानोगी। जो है पिनं, इन ममय बया बहुत खाहिए यह में सेरा सम्म में नहीं भाजा। प्रत्र सेरे उत्तर एपा वरते सामा प्रदान वरों। 'इल्ले होगा चित्रकरूप में एन माय सामित्रमा भीर महाराज को देय बुविज बाहबदमा के जिए प्रमन वरते ने लिए किय गए प्रयन मारागिता और सम्मान के समुगान ने प्रवन्त होने में पर्यागत हता।

पूर्ण वातर्थ निर्धेषकत् ॥ ३४ ॥ पुष्प-विरोधसमूक्त ककत् के नवत को पुन्न कर्न्त हैं ॥२४॥ जैसे 'ररतायको नाटिना' मे राजा था मामरिया ने हार्यों के स्था-मुंख से पुलकित हो, विदूषण से निम्मलिगित बचन ना ज्यन—विदूषण राजा से कहता है—"मित्र तुने भ्रपूर्व सदमी तो प्राप्त वर नी ।" विदू षण के जचन को सुनवर महाराज यहते हैं—

"यह सागरिवा सचमुख साक्षात् लक्ष्मी है बौर टमकी हथेवी निरुषय ही पारिजात वे चूतन पुरुषत है, नहीं तो भला प्रमीने के बहाने अमृत इसमें से बाहों से टपकते!"

इस प्रकार नायक और नायिका के एक-दूसरे के देखने धादि से अनत (विशेषता लिए-दिए) अनुराग के प्रकट होने से यह युप्प है।

उपन्यासस्तु सोपायं

उपन्यास-युक्तिपूर्ण वाक्य के कथन को उपन्यास कहते हैं।

जैसे, 'रहनावसी नाटिका' भे मुस्यता का उपन्यस्स वहत है।
जैसे, 'रहनावसी नाटिका' भे मुस्यता का राजा ने प्रति यह
वयन—'महाराज, धाप भुक्त पर प्रसन्त है, यही क्या क्ष है, धाप
किसी प्रकार की सका न करें, मैंने ही यह लेल क्या है, आधूपण
मुक्ते नहीं चाहिए। भेरी सखी मुक्त पर इससिए प्रश्नसन्त है कि मैंने
इसना चित्र इस विश्वप्रद पर बसो सौता। सो महाराज, चलकर खरा
उसे मना दीजिए। इससे बदकर भेरे सिए धोर नौनती वस्सीरा
(पुरस्कार) हो सकता है।"

यहाँ पर सुसमता ने साथरिका भेरे द्वारा तथा घाप उसके द्वारा वित्रित निये गए हैं। इस बात को अङ्गलरेण राजा से कर्वर उसकी प्रसन्त करने के लिए जो निवेदन किया, इन सब बातों से प्रनुराण-बीज लिसत हो रहा है, प्रत यहाँ उपन्यास है।

## वज्रं प्रत्यक्षनिष्ठुरम् ।

बद्ध---सम्मुख निष्ठुर बाबध के क्यन को बच्च कहते हैं। जैसे, 'रत्नावली नाटिका' में यासवदत्ता चित्रपट की फ्रोर निर्देश करने करनी है-- सार्यपुत्र, यह सूर्ति जो धारके पान मौजूद है, यह रे०द इसहपक

है, पर (प्रयक्तार का) इसके विषय में यह बहुना है कि और सिघर्षों के लिए तो पूर्वनियम ठोक लागू होता है, पर इसमे कुछ विजेयता रहती है। वह यह है कि इसमे प्राप्याज्ञा नामक अवस्या वा चहुना तो प्रावप्यक है पर पताका नामक अर्थप्रकृति वा चहुना उतना प्रावस्थक नहीं है। प्रयांत् पताका नामक अर्थप्रकृति रह भी सकती है, नहीं भी रह सपती है, पर प्राप्याज्ञा नामक अर्थप्रकृति रह भी सकती है, नहीं भी रह सपती है,

प्रतिमुख सन्यि में विचित् प्रवाशित हुए बीज का बार-बार प्रावि-

भीव, तिरोभाव तथा अन्वेषण होता न्हता है। इसमें कभी तो कियों व कारण ऐसा लगता है कि वार्य सकल नहीं हो पाएया। किर दिप्त के हट जाने से कार्य की सफलता दिलाई देती है, फिर विध्न के प्रा जाने से वार्य की सफलता दिलाई देती है, फिर विध्न के प्रा जाने से वार्य सिंद में सन्देह पैवा हो जाता है, फिर आपित को प्राचा दृढ़ हो जाती है। इस प्रवार नी व्यापार-प्रवता बलती रहती है। इस प्रवार सह गर्भसिन्ध कत को प्राप्त म मनिवित्रतता से भरी रहती है। रतावली नाटिका के तृतीय प्रक्ष में यह बात देवने को मिसती है। वसराज को सागरिया के साय समायम करने में बासवदान-स्पी विष्ण की तहा प्राथम वानी रहती है, किन्तु विद्रपण के इस बनन से कि "सागरिका महारानी वासवदता के वेष में हो प्रापंत मिलने आपे वाली है", इससे सागरिया से मासवदता के बार प्राचात वृद्ध वाती है। इसके बार इस प्रेम व्यापार में बासवदता के हारा प्राचात पृहेवता है, तिरान एक तरह से मिलने की प्राचार प्रमान प्रवत्ती है। इसके बार इस में मासवित्र हो मिलने की प्राचार भव हो जाता है। इसके

बाद फिर झाझा बेंग जाती है, फिर विच्छेद हो बाता है, फिर विघ्नो के दूर करने में सचेप्ट होना पढता है भीर झन्त में बहना पड जाता है रि सागरिका की प्राप्ति के लिए देवी वासवदत्ता को प्रसन्त करने के धलाबा

दूसरा कोई उपाय दिलाई नही देता । इस सन्धि के १२ ग्रम होते हैं-

ग्रभूताहरएं मार्गो स्पोदाहरेेे क्रमः । संग्रहस्वानुमानं च तोटकाविवले तथा ॥ ३७ ॥ उद्वेगसंभ्रमाक्षेपा सक्षरां च प्रशीयते ।

१. ग्रमुशहरस, २. मार्ग, ३. रूप, ४. उदाहरस, ५. व्रम, ६. संवह, ७ श्रनुमान, द. तोटक, १. प्रविचल, १०. दहम, ११. सभम श्रोर १२. ग्राक्षेत्र ॥३७॥

मन इनका तक्षण के साथ उदाहरण दिया जाता है। स्मभुताहरणं छच

प्रमुताहरए। — कपटयुक्त बचन के बचन को अनुताहरए। कहते हैं। जैसे, 'रत्नावली नाटिना' में नायनमाना विदूषन से नहती हैं—
"सापु रे प्रमास्य सस्तन सायु, इस प्रकार की सन्धिवप्रह में तो तूने
प्रमास्य बीगन्यारायण से भी बाजी भार सी।" इस प्रकार से प्रवेसक
के समास्य बीगन्यारायण से भी बाजी भार सी।" इस प्रकार से प्रवेसक
के सी सुमत्यता और विदूषन ने सिलाने-पदाने से बासदक्ता के वेप
में प्रमित्तरण करनेवाली सागरिया के छथकार्य को बाबनमाला ने
स्वस्त कर दिया।

मागंस्तत्त्वार्यकीर्तनम् ॥ ३८ ॥

मार्ग-सःची तत्वगामत बात के क्यन की मार्थ वहते हैं ॥३६॥

जैसे 'रत्नावली नाटिका' मे विद्यवन--"मित्र भाषको जय हो, प्राप यहे भाष्यभाको है, भाषको समिलाया पूरी हुई ।

राजा-मित्र मेरी त्रिया सागरिका सनुदाल हो है न ?

विदूषण-अब देर नहीं है, आप स्वयं उसे देख इस बात ना निर्णय नर लेंगे नि समुदाल है अथवा नहीं !

राजा-वया उसके दर्शन का भी शौशाय प्राप्त होगा ?

विदूषय--(गर्वपूर्वक) अपनी मुद्धि से बृहस्पित को भी मात कर देने बाला यसन्तक जब आपका अमात्य है तो फिर दर्भन होना कीनमी बरी बात है जो न हो सकेगा ?

राजा—में जानने के शिए उत्मुक हैं कि वह की सम्पन्न होगा ? विदूषक —(राजा के कान में कहता है) ऐसे।" \$ ? 0

यहाँ पर विद्वपन ने द्वास सागरिया ने समागमरण तस्त नौ यात सत्य और निश्चय ने साथ नहीं गई है, इस्त यह मार्ग का उदा-हरण हुया।

रूपं वितकंबद्वाक्य

रूप--- नितकं पुक्त बात के वयन को रूप कहते हैं।

जैसे, 'रलाबली नाटिस' ध' राजा—ित तनी आहचर्च की यात है नि कामी जनों को यपनी स्त्री की अपना परस्त्री में अमिन विजी आत्म की प्राप्ति होती है। श्रीर वर्णाए (परस्त्री) नवोडा प्रण्य धार्द्व अपना दिन को तोव मय सादि के नारण नायक के मुल पर जमकर लगाती भी नहीं। श्रेम के भावावेश में कठालियन करते समय प्राप्ति र तनालियन से भी विजित ही रयती है, प्रयासपूर्वक ग्रहण निए जाने पर भी 'में जा रही हैं,' 'में जा रही हें' इस बात को बार-गर कहा करती है फिर भी सकेत-क्यल से बंटकर इस प्रकार की राप्ती ही है।' 'पया नारण है कि धतन्तन धभी तन नहीं धानन्त्र की प्राप्ति होती है।' 'पया नारण है कि धतन्तन धभी तन नहीं आता ? कही इस बात का पता साववदत्ता को तो नहीं तम गया।' इत्यादि के डारा सागरिका के मामम की शांति की प्राप्ता की अनुवन्न में बासवदता डारा विष्ट जान की बात का सोचना दितक है।

# सोत्कर्षं स्यादुराहृति ।

उदाहृति या उदाहरल् — उत्वर्षधुक्त ययन के रूपन को उदाहृति या उदाहरल् कहते हैं।

जैते, रत्नावसी नाटिवा' म विदूषन वा यह रचन—(हर्ष वे गाय) "महाराज वो मेरे प्रिय यचन वा सुवसर इतवा प्रधित प्रानन्द हाना वितना वौताम्बी राज्य वे विजय वे समय में भी नहीं हो पाया था।"

रत्नावकी की प्राप्ति की बात की बामकी राज्य की प्राप्ति से भी

222

वटकर होगी, इन प्रकार यहाँ उक्पंका क्यन हुन्ना है बात यह उदा-हरण हुन्ना।

क्रमः सचिन्त्यमानाप्तिर्

द्रम-अनिलवित थस्तु की प्राप्ति की व्रम कहते हैं।

'रानावती नाटिन' में राजा उन्चया के साम बहना है---"प्रियनमा के मिसने ना समय मति सम्मिन्ट होने हुए भी न जाने बयो जित म्राप्त-प्रिक उत्करित हो रहा है।

ग्रयदा---

तीव बामदेव वा मनाप रच्छित वस्तु वे दूर रहने पर उनना वप्ट-बर नहीं होता जिनना सम्मिन्ट रहने पर । वर्ग्यों वा वह दिन को वर्षी बाल से दूर रहना है उनना बच्छाद नहीं होता, बितना वर्षा ने सिन्न-पट बाले दिन बच्छार होते हैं।

विदूपक--(मुनकर) मागरिया, देव महाराज उत्तरिश्त होकर सुम्हारे हो विषय में मोवते हुए धीरे घोरे हुछ बोत रहे हैं, को मैं झागे

चारकर तेरे प्राने की मूचना उन्हें दे दूँ।"

ध्य प्रवार सही सायरिवा के समायस को समिताया वाले व स-राज का आन्न सामरिका (वासवदत्ता सायरिया रूप में) को प्राप्ति जस है।

भावज्ञानमयापरे ॥ ३६ ॥

ष्टम की परिभाषा दूसरे सीधों के मन से माद के ज्ञान का होना है ॥३६॥

असे, 'रलावती' से राजा—' किय सागरिका, तेरा मुख घटमा के ममान प्राह्माददायक है, तब जीतकमत की सोमा धारण करते हैं, कदभी के प्रात्ममीन (भीतरी हिन्छे) के मद्द्य मुद्दर तेर ज्ये हैं, तेरे हाथ क्वतकमत की सोमा धारण करते हैं, और मुजाएँ हुतात की सोमा का धारण क्ये हुए हैं, हम क्वार से मस्यूर्ण क्यों से प्राह्मार **१**१२ दशहपक

नता नो भारण करने वाली तूनि बक्द होकर कामदेव के सताप से व्याकुल मेरे समो को बेंग के साथ भ्रालियन कर मेरे झगो के सताप को दूर कर।"

यहां से लेकर कि पदस्य रुचिन हिन्तः तदप्यस्त्येव विम्बाधरे। यहां तब की वातो से वासवदत्ता नो वत्सराब उदयन ना भाव प्रहण हो जाता है, धत यह धन्य लोगो की दृष्टि से त्रम का उदाहरण हमा।

संग्रहः सामदानोक्तिर्

सप्रह-सामदामपुस्त उन्ति को सप्रह बहते हैं।

'रत्नावसी नाटिका' में सागरिका ने ते बाते पर विद्रूपन ने बन्ध बाद के साथ पारिकोषिक देना—' मिन, तुम्ह धन्यवाद है, मैं पारि-तोषिक स्वरूप यह कटक तुम्हे देवा हूं।" इस प्रकार साम, दाम प्रादि के द्वारा विद्रूपक का सागरिका के साथ वस्त्रराज को मिसा देना, प्रादि बातो ना सग्रह 'सब्रह' ना ज्याहरण है।

प्रम्युही लिङ्गत्तोऽनुमा ।

यतुमान—श्रिह्न विशेष के द्वारा किसी बास का अनुमान करना मनुमान कहलाता है।

जैसे 'रत्नावली' में बरसराज का विदूषक से यह कहना — "मूर्ल कही

का, तुम्हारे ही द्वारा मुझे इस सनमें का सामना करना पडा। सनेक दिनी के प्रेम-व्यापार के द्वारा जो प्रेम उस्कृष्टता प्राप्त कर

पना था वह साज मेरे ऐसे निस्तित वार्य वे द्वारा, जैसा हि साज तर वभी भी नहीं विया था, नष्ट वर हाला गया। सपमान वे सहन वर्षे वी समता गराने वाली मेरी प्राणप्रिया वासवदत्ता निस्पय ही साज इ.ग. सवार्य के वारण सपने प्राणी वो छोड देगी, वयोकि प्रशुष्ट प्रेन वा वृद्धित हो जाना निस्पय ही समझ होता है।" राजा इस बात वी

त्रुटित हो जाना निरुषय ही धमाहा होता है।" राजा इस बात मो मुतदर विदूषक कहता है—"मित्र, धासपदसा क्या करेगी यह तो मैं नहीं जाता, पर मुक्ते सो सागरिया का ही जीवन टुप्टर प्रतीत हो रहा है।"

यहाँ पर राजा वा मागिन्वा में अनुगग है, इन बात को बासवदत्ता जान गई है, अन इस घटना के धनहा हा जाने के कारण वह भवस्य अपन प्राणों को छोड देगी, इन बात ना अनुमान विवा जाता है अत यह मनुभान है।

द्यघिवलमभिस्रघिः

ग्रपियल-समम होने की द्रवियल बहते हैं।

जैमें 'रत्नावती' म बाचनमाना बामबदसा से क्रूनी है—महारानी, यही चित्रसाला है, ब्रत अब बनन्नक को जुलाती हैं (चिट्टकी बजाती है, इस प्रकार सागरिता धीर मुसगता के वेच धारण की हुई बासब-बत्ता और बाचनमाला में राजा और विद्युषक का सगम होता है, ब्रत यह प्रियस हुई।।

संरव्य तोटक बच ॥ ४० ॥

सोटर---त्रोयपुक्त घचन को त्रोटफ क्हते हैं ॥४०॥

वैसे 'रन्तावली' नाटका म बातबदता राजा मे कहती है-- (पास बाबर) "आर्यपुत, आपका यह कार्य आपके नाम और यस के धनुस्म ही है। (पिर बिगटकर)

क्षाचनमाल, इस टुप्ट ब्राह्मण को इस लतासे बॉबकर ने चल सेया इस रप्ट सब्दी को भी आयो कर से।"

इम प्रकार के बामबदता के जोधित बाक्या से सागरिका के समन्वय में बिध्न पट जान से अनियत प्राप्ति के कारण तोटक हुआ।

वर्णनहार' में भी धःवत्यामा दुर्गोधन से क्ट्रना है—"धर्दि में सेनापित बना दिया बाऊँ तो धापने मारे शत्रुधों को नष्ट कर हार्लूगा। रात्रुमों के धनाव न वन्त्यों के मगलपाठ हाथ बहुत परिध्य से निद्रा मा निए जान पर थाज साथ निसाकाल-पर्यन्त (मानन्द) सम् करेंगे।" यहाँ से नेक्ट कर्म का धरवत्यामा के प्रति यह क्ट्रना कि रेगठ जब तक मेरे हाथों म प्रस्त्र हैं तब तक ध्रम्य पत्रुपीरियों की ¥\$\$

वया ग्रावश्यकता ? ग्रादि यहाँ तक ।

ग्रपने पढ़ा दी सेना में फूट डालने वाला कर्ण ग्रीर श्रद्धरणामा का वाग्युद पाण्डवों की विजय-प्रास्ति ने श्रवुकृत होने के कारण तोटक है।

दूमरे प्रम्यकारों के अनुसार तोटक का उत्तरा प्रधिवत होता है। धर्मान् शोषपुक्त वकत तोटक में होता है, धर्म दूसमें दिनमपुक्त वकत रहता है। जैमें 'रत्नावती' नाटिका में राजा वासवदता से कहता है—"अप्तथा ध्यराथ के देसे जाने पर भी धायमें निवंदन यह है कि 'विम, बेसाम होकर धालवत से रो हुए तेरे चरणों की सामिता को सपने मस्तक से राजकर साझ कर देने म तो में समर्थ है, पर तुम्हारे मुख्यकट पर छायों हुई कोण की धायभाई को दूर करने में तो में हर समर्थ नहीं है समरा नहीं हो समरा जब तक धायक कृष्णवटाक्ष वर्ष दियों मेरे कर पर नहीं हो समरा जब तक धायक कृष्णवटाक्ष वर्ष है वर्ष करने ने हो है"

तोडकस्यान्ययाभायं बुयतेऽवियलं युवाः । संरच्यापनं यसु तोटकं तबुदाहृतम् ॥ ४१ ॥ तोटक—उडिलयुक्तयवन को तोडक करते हैं ॥४१॥

र्जैने 'रालावली' नाटिका में "राजा—प्रिये बासवदसे, प्रधन्त होग्रो, प्रसन्त होग्रो।"

हामा, मरान्य होची ।" बागवदसा (योगो में म्रांसू भरवर)---प्रायंश्व, मुक्ते विमा कहके मत पुरारिए, वर्षोवि यह विस्तवण यापने द्वारा दूसरे नाम (सार-

मत पुनारस, वयोश यह विद्येषक प्रापने द्वारा दूसरे नाम (धार्ग-रिना) ने मान जोडा जा पुना है। सागरिका दम सब्द (प्रिया सब्दे) की माजत कर पुनी है।

र्जन वियोगनार' मे भी---"नाजा--सुन्दरवः, सङ्गराज्यकां सहुतन नो है म<sup>9</sup> पुरुव--महाशय, ये जीवित है दनना हो हुन्तल समस्मि।।

दुर्मीधन--(ब्लापुतना ने साथ) सुदरत, बडा पर्मृत ने उसमें बोटे धौर सामीद को तो नहीं भार द्वाना ? धोर क्या उसा उसमें रष यो भी तो नहीं मान कर द्वाता ? मुन्दरक---महाराज, केवल तथ ही नही भग किया किन्तु माथ-माय उनके मनोरख (पुत्र) वो भी।

दुर्योपन-कैये ?" यहाँ पर छड़े गयुक्त क्वन के होने से तोटक है।

उद्वेगोऽरिष्टता भौतिः

उद्देग-- ताबु से उत्पन्न अब को टह्नेग करते हैं।

जैसे, 'रत्नाबसी' नाटिका मे— "सागरिका (प्रयन-प्राय सोचती है) मैं ऐसी पायिनी हूं कि प्रयनी इच्छा से मर भी नहीं मनती।" यहाँ पर वासवदत्ता से उत्पन्न सागरिका का मत्र उद्देग का उदा-हरण है।

'वेणोमहार' में भी--- "करं, नीरव-नरंदा के पुत्र क्यों विश्वात वन को निमूं त करने में भयकर धीनों के समान यह कुछ भीमसेन समीप में हो विद्यमान है, महाराज को मभी बेदना नहीं चाई है। जो हो, मैं ययातीझ रस को दूर भगों से चन्नें, क्योंकि दुसासन ही की तरह इन पर भी कदालित यह नोच धपनी नीयदा न कर बैठे।" यहाँ पर सनु डाग भय होने के कारण उडेग है।

## शङ्कात्राती च संभ्रमः ।

संभ्रम-रांका श्रीर थास के होने को सभम कहते हैं।

जैसे, 'रत्नावली' नाटिका में, "विदूषक'—यह कीन-सी रमणी है ? सम्मन के साथ मित्र बचायों, बचायों, वासवदत्ता फाँसी समा रही है।"

यहां पर नागरिका नो वासवदत्तां नमककर मरण नी शका ने सक्षम पैदा हुधा है। इसी प्रवार, 'विशीमहार' से भी---"(नेपस्य में नतकत सब्दे होता है) माना, भाना, यह हुन की बात है। यह छकुन मरने नाई के प्रतिशान नग हा धाने के नय से समीध घरों की वात नरते हुए दुर्गेषन और वर्ण की फोर दौड रहा है। हाग, दुन की बात है—मीन वे दुनावुत का रत्तवान नर सिया।" यहाँ तक तो सना है और प्रहार से सामा के प्रति सह सम्मान के प्रति सह वयन---

दशस्य ह कुमार बचाओ, बचाओ, यह त्रास है। इस प्रकार से यहाँ पर दुःशासन भौर द्रोण के वघनी सूचना देने वाले इस बास और तवासे युक्त

जैने राजा द्वारा यह क्यन—"मित्र देवी को खुदा करने के निया मीर कोई उपाय दिखाई नही देता। " पर देवी को प्रसन्त करने मे मैं हर तरह में निराशित हो गया हूँ। "फिर यहाँ स्वने से क्या लाभ चलकर देवी को ही प्रमुल करूँ।" इस क्यन का ताल पर्यपही नियातनाहै कि देवी के प्रसन्भ गणन से ही सागरिकामिल मक्ती है। इम प्रवार यहां पर गर्भ से पड़े हुए श्रीज के प्रकटित होने से यह झाक्षेप

वचन द्वारा विजय-प्राप्ति की श्राधा से पुक्त यह सन्नम है। गर्भबोजसमुद्धे दादाक्षेपः परिकीर्तितः ॥ ४२ ॥ मालेप-मर्भ मे रहने बाने बोज के स्पष्ट होने की मालेप हरी

225

हैं ॥४२॥

हमा ।

#### ग्रवमर्श संधि

क्रोपेनावमृदोरात्र व्यसनाद्वा विलोभनात् । गर्भनिमिन्नवीजार्थः सोऽवमज्ञॉऽङ्गसंग्रहः ॥ ४३ ॥

कीए, स्वसन, विसोधन आदि द्वारा गर्नसन्धि में पडा हुआ बीज पन की तरफ सवसर होता हुआ जब स्वयिक जिस्तृत रूप धारण कर लेता है उसको सबमसं सन्धि कहने हैं ॥४३॥

प्रवसर्थं ना अयं होता है पर्यालोचन करना । वह व्यसन, विसोकन स्नाद नारणों से होता है। ऐमा नरने से यह होया। दम प्रनार नित्मित एन भी प्राप्ति होयी। इस प्रनार का मससकर निया गया प्रयत्न इसमें पाना जाता है। 'रालावली' नाटिसा के चीचे शक में जहां स्नान के नारण गठवडी भचती है, वहां तक यह सन्यि है। इस सक में बासवदत्ता की प्रसिक्त से विष्ण्यतिहर रालावली नी प्राप्ति में लग जाना नार्य-विससी दिवलाया गया है। विशोधहार' में भी दुर्योजन के नियत्त स्वयाय भीमसेन के स्नागम-प्रयंग्न इसी विसर्थ-सन्य वा दिवर्यन कराया गया है।

युषिष्टिर—(सोचनर दोर्घ स्वाम तेत हुए) भीष्मरण समुद्र पार रर सए, द्राणरण बाज भी बुक्त गई, नर्णन्य महा निविमा सर्प भी नष्ट रर द्वाला मया, एत्य भी स्वर्य के पिषक वने, घन विजय-लाभ धनि सन्तिष्ट है। तो भी बित साहुनी भीमनेन की प्रनिज्ञा न हम सोगो के जीवन का सकट में डाल दिया है।

यहाँ पर "विजय-लाग अति यन्तिन्द होने हुए सो, युधिष्ठिर सोच रहे हैं कि सीध्य ब्रादि के सारे जान से त्रिया निरियन रही, पर सीम ने इस बीच प्रतिज्ञा कर हुस कोगों के जीवन को खतरे में डाल दिया। इस प्रकार जो विचार करना है वह विसर्ग सिय के भीतर ग्राता है। भदमनं समि के तेरह धग होते हैं---नगारवादमंषेदी विद्यद्वारासयः । चतिः प्रसद्भदछलनं व्यवसायो विरोधनम् ॥ ४४ ॥ प्ररोचना दिचलनपादानं छ प्रयोददा ।

१. अपवाद, २. सफ्टेट, ३ विद्रव, ४. द्रव, ५. <u>यु</u>व, तिरस्तार, ६ प्रसंग, ७ छलन, = अवसान, ६ व्यवसाय, १० थिरोधन, ११ प्ररोचना, १२ विकलमधीर १३ खादान।

धपबाद—शोष के कथन को अपबाद कहते हैं। दोय-कवन का

सात्पर्य है किसी के दोध का प्रचार करना ॥४४॥ नैसे, 'द:नावली नाटिका में सुसगता-देवी उसे उज्जिविती है गई, इन कात नो प्रचारित कर न जाने यह वेचारी कहाँ मेज दी गई। विदूषक-"देवी ने बह स्रति निष्ठुर कमें किया।" फिर "सैर, निय चिन्ता न करो, निदिचत देशी ने इसे उज्जयिनी भेजा है, इसलिए मैंने मप्रिय सब्द का प्रयोग किया है भीर कोई बात नहीं है।" इस प्रकार यहाँ पर बासददत्ता के दोष ने फैलाने या नयन ने कारण यह धपनाद है। 'वेणीमहार' में भी-"युधिष्टिर-कौरवों में नीच उस दुष्ट दुर्योदर गारुख पता धला?

दोयप्रस्याज्यबादः स्यात्

पाञ्चालव---महाराज, न देवल उसका पता ही मात्र चना है भवितु देवी द्रौपदी ने नेरापाश ने स्पर्श-रूपी महावातक वा प्रधान भारण दुरातमा प्राप्त भी हो गया है।" यहाँ पर दुर्योचन भी निन्दा होने से धपवाद है।

#### संफेटो रोषनापराम् ।

संबेट-रोप से भरे हुए श्यतीपवयन को संबेट बहुते हैं।

नैन 'बेगोसहार' मे-- ' दुर्योदन, भाइयो के नष्ट हो जाने से पर-गमी मन, दस बात ही जिल्ला यह करो कि पाण्डव पनि हैं मीर मैं यवेता प्रमहाय हूँ। घन हम पाँचों में से जिसके साथ मुद्र करते वी इच्छा हो, यवच पहन, हाय में यहत्र ले, उससे युद्ध करों।" इस बात को मुनकर दुर्वोचन दोनों मुमारों भीम घोर धर्युन को पृणा की दृष्टि से देखता हुया बोला—

'क्यें बोर द्वास्त के वद से यद्यपि तुम दोनो मेरे लिए समान हो तयापि अनु होते हुए भी तुम लोग साहसी हो, श्रत तुम लोगो के साथ ही मुद्र करना में उचित समस्ता है।'

यह वहकर एक-इसरे को कोधपूर्वक निवाय्यत कटु वचनी थे साथ

विषट युद्ध का प्रस्ताव बरवे'' इत्यादि ।"

यहाँ पर भीम और दुर्बोधन ना एन-दूनरे के प्रति रोग से भरे हुए स्थम के होन से यह मुकेट का उदाहरण हुया। यह सफेट विजय-रूपी बीज से प्रनिवत ही है।

विद्रयो दघवन्यादिर्

विद्रव-चय, बन्धन खाँदि शातें जिसमें पाई बाती हों उसे बिद्रव फहते हैं।

जैसे 'छलित राम नाटक' मे सब ने बाँधे जाने पर ऋषिगणो का उसे देस उसके प्रति दक्षोदगार प्रकट गरना---

"जिसके मुख ने सामबंद वे पाठ करने में बत्यन्त कप्ट उठाया था, बाल्यकाल में जो हम लोगों के हाथ से मस्तवत्य को लेवर नोडा दिया करता था, यह हम सोगों का ह्दयस्वरूप लव बाज बाणों के अपन से कथे के मर जाने से बायल होकर मूख्ति मदक्या में सैनिकों होरा पक्टकर ने जाया जा रहा है।" ऐसे हो 'रलावली' नाटिका में मी---

"मन्त पूर में मन्ति मंत्रस्मान् भगरती हुई होछ पहती है। इसन गगनजुम्बी महानिनामों नो बखाते हुए स्वर्ण की चोटी नग-सा रूप पारण बर लिसा है। इमन बगीचे ने माद्रवृक्षों को भी जनावर भरवन्त तीव ताप नो पैदा बर दिया है तथा स्वपनी यूम से कीटा-पर्वत नो जल से मरे हुए बादल ग-सा रूप बना हाला है। इसने मारे महिलाएँ

#### सत्रस्त हो गई हैं।" इत्यादि

किर इसके बाद वासवदत्ता महाराज से वहती है—'प्रिप्तनम, मैं अपने लिए नहीं नह रही हूँ बल्कि मुक्त दूरहृदया ने द्वारा वांधी गर्र सागरिना कट पा रही है। उसी थी रक्षा के लिए निवेदन कर रही हूँ।' यहाँ पर सामरिना के बयन की बात पाई जाती है, अत बिटब हुआ।

ह्या क बधन का बात पाइ जाता इ**वो गुरुतिर**स्कृतिः ॥ ४५ ॥

द्रव-गृहजनों के ध्रवमान करने को द्रव कहते हैं ॥४४॥ जैसे 'उत्तर रामचरित' से लब चन्डकेतु से कहता है-

"गुरुजनो के बारे में षुष्ठ न कहना ही उचित है। सुन्द की स्त्री ताकका के वस करने पर भी सप्ततिहत यश वाले वे लोक में श्रेष्ठ ही हैं। खर के साथ युद्ध करने में तीन पग पीछे जिनको हटना पड़ा या भीर बाली ने वस में जिन्होंने सुन्दर युद्ध-कौशल प्रदक्षित किया था, उससे भी लोग परिचित ही हैं, मत बृद्धों के चरित की साक्षोचना न करना

ही ठीक है।'' यहाँ लव ने गुरु राम का तिरस्कार किया है, बत द्रव है।

विणोसहार' में भी — 'युविध्ठिर-सुभद्रा के वहे भैया बलरामनी, सम्बन्धियों के प्रति विष्ट जाने वाले सदय्यवहार के प्रति प्रापने उग्र भी च्यान नहीं दिया, साथ ही ग्रापन क्षत्रिय वर्ष का भी ठीक से पासन

भी भ्यान नहीं दिया, साथ ही आपन क्षत्रिय बर्म का भी ठीक से पांतन नहीं निया। इसके प्रलाश अपने लघु आता कृष्णवन्द्र के साथ प्रज़ृंन की कैसी मित्रता है इस बात को आपने तृण के समान भी महत्व नहीं दिया। प्रापको भीम धीर दुर्थोषन दोनो शिष्यों में समान ही ममता होनी चाहिए थी। पर न मासूम यह नीनसा मार्ग घापने प्रपनाया है जो मुक्त प्रमाग से साथ इस प्रनार रूट हो गए।"

यहाँ पर युधिष्ठिर द्वारा गुरु बलरामजी का तिरस्कार हुमा है, भ्रत इव है।

विरोपरामनं शक्तिस् शित—विरोष के शान्त हो जाने को शक्ति पहते हैं। जैमे, 'रत्नावली' नाटिका मे राजा कहते हैं-

मन यपनो प्रियतमा वासवदत्ता को प्रसन्न करने के लिए बार्ते चना-चनाकर प्राप्य खाई, मीठी-से-मीठी चाढ़्कारिता भरी वार्ने कही, निर्संज्य हो उसके पैरो पड़ा, उसकी सिक्षयों ने भी उसके कोच वा दूर करने वे लिए एक न उठा रखी, पर उसमें चरा भी नरमाहट नहीं आई। प्रास्चयं तो इन बात से होता है कि मेरे द्वारा किये गए इतने उपचार के बाद की उसके कोच वे दूर करने में बैसी सफलता प्राप्त न पर मके जैसा स्वय उसका रहन भौतुषों के द्वारा प्रकातन करने में समर्थ हो मका।

सागरिका की प्राप्ति का विशोधी वासवदत्ता के कीय का शात हो जाना दव है। जैसे, 'उत्तर रामचरित' ये भी सद का यह कथन---

"र्बर शान्त हो गया, श्रतिश्चय सुन से गाढ श्रनुराग फेत रहा है। ऐमा लगता है कि बह भेरे अन्दर का दर्भ बही चला गया है, नम्नता मुभें भूकने के निए बाध्य भर रही है। इनके (राम के) देखने पर न जाने बयो पराधीन-सा हो गया हूँ, लगता है पविन स्थानो की तरह महापुरपों का कोई बहबूब्य उत्कर्ष होना है।

तर्जनोद्वेजने द्युतिः ।

धृति—तर्जन भीर उद्देजन को सुति कहते हैं।

जैसे, 'वेणी सहार' मे--

"बसराम के भाई कृष्णचन्द्र के इस बाक्य को मुनकर भीमसेन ने उन नासार के जल नो आलोडित वर दिया। आलोडन करने से उसका जल चारो दिशाओं को पूरित करके वह चला। सम्पूर्ण जलचर विकल हो गए, मगर और परिवाल व्यक्ष हो उठे।"

इसके बाद भीमधेन ने भीषण गर्जन के साथ पुन कहा—"धरे रे मिय्यावल थीर पराश्रम का अभिमान करने वाले तथा द्वीपदो के नेस भीर बस्त्र के भाकर्षण करने वाले महापातकी दुर्योचन र

तुम भपना जन्म विमल चन्द्रवश में बताते हो और धर भी हाय

में गदा पारण वनते हो तथा दुशासन के गरम रस्त-स्पी मदिए हें मत्त मुभ्मे शत्रु कहते फिरते हो, अरे श्रहकार से बहे, मशु और कैटम के शत्रु भगवान बासुदेव इच्छा के विवयं म श्रसम्बता का व्यवहार करने वाले, नरावयं ग्रव मुश्ले प्रवतीत होकर तथा युद्ध से परामुख होकर भव कीचड से शाकर हिसे हुए हो, तुम्ह धिनकार है।"

महों से लेकर दुर्मोधन का सालाब छोट देश से निकल साना दर्साह बातों से और दुर्वभन तथा जलाडोकत से, जोति दुर्मोकन के लिए उद्देगदनक है, पाल्टमों के विजय के सनुबूल होने से श्रीर भीम की मृति स्पक्त होने से सुति है।

गुदकोतंन प्रसङ्ख्य

प्रसग-गुद्यनों का कोतंन प्रसग वहसाता है।

र्जंसे 'रत्नावंसी' सं बसुपूर्ति वा यह कपन---"देव, सिहसेस्वर वे, यासवदत्ता जनवर मर वर्ड, यह सुनवर पहले सिद्धों के घाटेण से मीपी वर्ड अपनी प्रायुष्पती पुत्री 'रत्नावंसी' को आपने लिए दिया था।"

यहाँ पर वसुम्रति द्वारा अस्थानुस्वार भपने स्वाली सिहतेहबर भौर सनवी प्यापी पुत्री रत्नावसी' का कोतंन होने ने बारण प्रसग है। 'मुच्छविटव' ने भी इसका उदाहरण मिनता है—"चाण्टालम —हम सोग पन में सासच स बेहबा बहन्यसेना ने हनन नरने वासे मार्च विनय-दत्त में पीत सबरदत्त में लड़के चारदत्त को मार्श में सिए वस्य-स्वात ने का गहे हैं।" इसने बाद धाकदत्त मन-ही-मन सोचने हुए बहुते हैं—

"अनेन यत्रानुष्ठान से पवित्र भरा वया, जो वहले यह आदि की सभामों ने बीच वैदमन्त्री से पवित्र लिया जाता था, उसी मेरे हुत की गान गात्र हुल्लिन पुरुष बुस्सित बुसान्त ने साथ कर रहे हैं।"

इस प्रवाद कारदत्त द्वारा धपने मुल की प्रशंसा किए आते के बादक प्रमाग है।

एनन चावमाननम् ॥ ४६ ॥

ध्यम-व्यवसाय के होते या करते की छलन कहते हैं ॥४६॥

योसे, 'रत्नावना' नाटिका से—राजा—देवी नी मेरे ऊपर तिनक भी हपा नही है। यहाँ पर वासवदत्ता के नायों से वन्सराज के प्रपमानित होने से छतन है। ऐसे ही गम का अपने कम्युरय के लिए सोता ना परिस्थाय भी छतन ही है।

य्यवसायः स्वशयस्युक्तिः

व्यवसाय-प्रपनी शब्ति के कथन को व्यवसाय बहुते हैं।

जसे, 'रत्नावनी' में ऐन्द्रवालिय पहला है—"महाराज, आपकी जिस बस्तु के देखने की माता हो, धव मैं दिखा सकता हूँ। माता हो तो प्रावी पर पदस्या, धाराम में पबंत, जस में धारा का प्रव्यतित - होना, धोपहर वो सध्या होना दिखा सकता हूँ। स्रथम प्राविक कहने की बसा धारपकता ? मैं प्रतिज्ञापूर्वक इस बात को नहता हूँ कि सपने गुप्तकन के प्रमास से आप को मुख भी चाहते हो सब दिखा सकता हूँ।" ऐसा निवेदन कर ऐन्द्रकालिक ने बरसराज की सागरिका ना दर्धन मिल लाए एतदर्ब मिच्या धानिन ना प्रदर्धन किया । यहाँ पर प्रपत्ती प्रविक्त के कथन और उसकी दिखाने के कारण व्यवसाम है। 'विणी-सहार' में मी—"आज निश्चय ही अपनी प्रतिज्ञा खण्डित होने के मय से भीमसेन सुम्हारे के तकतापों की खींचने बांस च्या दुर्योगन का वध सोता।"

इस प्रकार मुधिष्ठिर के हारा श्रपनी शक्ति का कथन हुया है, श्रतः यह व्यवसाय है।

### संख्यानां विरोधनम् ।

विरोधन-दाशु के साथ बड़-बड़कर अपने परावस के कवन की विरोधन कहते हैं।

जैसे, 'वेणीसहार' मे---"राजा (दुर्योधन) झरे रे, मस्ततनम, पृद्धावस्था हे भागान्त पिताओं के सामने इस प्रकार से अपने कुत्तित कर्मों की प्रसासा बचो करता है ? तेरे, प्रचुंन के, मूखं उस राजा युधिष्ठर, नमुख, सट्देव ग्रीर समस्त राजन्य मण्डलो के देखते-देखते तेरी भाषां द्रीएटी विश्व के ग्रीप-पति मेरी बाजा से आक्रस्ट की गई। इस शतुता के बटले में बतायों तो सही उन राजाओं ने क्या किगाडा था जिनका सहार कर तुम लोग गवं से फूल गए हो। तुम लोगों का सारा गवं मुक्त पराकमशासी पर विजय पाए बिना व्ययं है।" भीम यह सुनकर कोस प्रदेशित करने सगते हैं। भीम को कृबयुक्त देख सर्गुन उनसे कहते हैं—

"प्रायं क्षमा कोजिए, इस पर कोंध करने से वया लाभ है ? यह वचन से हमारा क्षहित कर रहा है, कमें से महित करने में यह समर्थ नहीं है। सी भाइयों के वध से दूलों इसके बढबडाने से कष्ट कैंसा?

भीम—प्रदेरे भरत वश के कसक—(दुर्योधन के प्रति)।

कूरभाषी, यदि गुर (धृतराष्ट्र) विकास्तरूप उपस्थित न होट तो प्रपनी गदा की घोट से तेरी पसलियों को दोडकर सुन्हे दुशास<sup>त</sup> कै पथ का प्रियक बना देता। शोर फिर, ऐ मुखं,

कौरस्त्रुक्त कमल के लिए हाथी के समान आवरण करने वाले मुक्त भीमसेन के रहते जो तू घमी तक बच पाया है इसका कारण यह है कि ऐसी मेरी इच्छा रही कि स्त्रियों के समान कलाते हुए तेरे देखते-देखने तेने वनिष्ठ आता दु शासन वा वध करूँ।

दुर्भोधन—दुस्ट, भरतक्श में नीच, पाण्डव पद्म, तुम्हारी तरह

में डीग नही हॉक्ता किन्तु-

समरभूमि के बीच बीध हो तुम्हारे आई-चन्धु मेरी गदा से मिन बस स्पन की पसिसों को सुगढ़ी रूप झामूचण से मूचित तुम्हें देखेंगे। इत्यादि द्वारा भोम-नुबोधन का झापस से बैर-भाव से अपनी-प्रपनी

शक्ति का कथन विरोधन है।

सिद्धामन्त्रणतो भाविद्धितका स्यातप्ररोचना ॥ ४७ ॥ प्रशेषना—किसी सिद्ध पुरव द्वारा होने बाते कार्य के विषय में इस प्रशार के क्यन से कि यह तो सिद्ध हो है, प्रयान् यह कार्य सो हुआ ही है, भ्रागे होने बाले कार्य को सिद्ध हुए के समान दिखताना प्ररोधना कहलाता है।।४०।।

जैसे विणीसहार में, "पाठवालव-र्मी घनवारी मगवार् वासुदेव हारा बाप (मुधिटिंडर) वे समीप भेजा गया हूँ।" यहाँ से धारम्भ वरसें, "सन्देन करना ब्ययं है—सापके अभियेत्र वे लिए मिनम्य कता पूर्ण वरसे रसे जाएँ डीपदी चिन्वाल से खोले हुए सपने वेदावलाय को बीघ बाँच ले, हाथ म परसु बारण करने वाले परगुराम और शोधीन्मत भीमनेन वे समरमूमि मे उत्तर पहने पर विजय-प्राप्ति में सन्देह वैता ?"

यहाँ में लेकर "महाराज युधिष्ठित सगत करने की साजा देते है।"
यहाँ तक मान प्ररोचना का है क्योंकि सिंद पुत्रप इत्याचन्द्र के स्रादेश
को अनुचर द्वारा पाकर "विजयशी हाथ जगन ही वाली है, सद मनल
स्रादि का अनुष्यान शीझ करें" यह युधिष्टित द्वारा विश्वास कर वैसा
करने का सादेश देना पड रहा है।

#### विकत्यना विचलनम्

विचलन--- प्रात्मदनाया करने को विचलन कहते हैं।

जैसे, 'वेगीसहार' भे---''भीम---- तात, 'बम्ब, बापक पुत्र जिनके इल पर समग्र शत्रुको पर विजय प्राप्त करन की बाधा लगाये हुए ये और जिसके ऋहनार से सारा मसार तिनके के सद्य तिरस्कृत हुमा था, उसी रथनार के पुत्र कर्ण को मारने वाला यह भँभाला पाण्डक झर्जन आप सोगो को प्रणाम करता है।

भीम-सम्पूर्ण कौरवो ना मदनकारी, दुशासन के रक्तपान से मस्त वह भीम, जो दुर्योधन के जधाश्री का मग करने वाला है शिर मस्तकर आप सोगो को प्रधाम करता है।"

"इंड प्रशाद विजयस्थी विजय ने अनुकूल प्रपने गुण के प्रकट बरते ने कारण विचलन है। जैंडे, 'रलावली' नाटिका में भी—पौग-धरायण—र्मने देवी वासवहत्ता ने पास सागरिका नो जो रखा उससे १२६ दशकप्रभ

पति-वियाग का भी सामना करना पड़ा । इसके ब्रलावा सागरिका से

विवाह गरान के उपक्रम से उसे सीत दूल का भी घनुभव हमारे ही

का धनुभव कर रहा है।"

योडो की स्रोट में छिने हो।"

उनि में) पहने ही दिलाया जा चुका है।

सागरिका के प्रति भर्ता के प्राकृष्ट हो जाने से उसे (बामबदना की)

भारण करना पडा । ये दोनो बाते रानी के लिए यद्यपि क्ष्टप्रद प्रदश् हुई है, पर इससे बड़कर सुलबद बात जो मेरे द्वारा उसके लिए की गई कह है सागरिका से विवाह हो जाने पर रानी के मर्ता वस्तराज की चक्रवर्ती सम्राट्वा पर मिल जाना । इस प्रकार रानी को जो मेरै **बारा कय्ट प्राप्त हुवा है** उससे बढ़कर सूख भी मेरे ही द्वारा उसे प्राप्त हुआ है। इतना होते हुए भी मैं उनके सामने मुँह विखाने मे सज्बा

यहां पर योगयरायण द्वारा अपने गुण के क्यन होने से विचलन है। घादानं कार्यसग्रहः । आदान--शार्ध-सग्रह वो बादान कहते हैं।

जैसे, 'बगीनहार' मे है, ' भीमसेन-मरे रे, समन्तपञ्चक, पारी तरफ भ्रमण व'र ' वाला न में राशस है न भूत ही, किन्तु यथेच्छ शत्रुमी के रक्तर-पी जल से भाष्लावित शरीर वाला और उस भाग की प्रतिज्ञा-रूपी गम्भीर समुद्र को पार गरन वाला कीवान्य क्षत्रिय वीर हैं। बरे, समरान्ति की ज्वाला में ग्रवशिष्ट ग्रहकीर शालाओ, मुक्ते मण भीत होने की कोई माबहबकता नहीं है। तुम ब्ययं ही मरे हुए हाथी-

यहाँ पर ममस्त रिपुधो के वधरूपी कार्य के सबह होने से घारान है। जैसे 'स्टनावयी' नाटिया मे भी----"मेरे चारो स्रोर भगवान् सन्निः देव प्रज्वनित हो रहे हैं, ब्रत भाज ये मेरे सारे दूख वो दूर कर देंगे। कार वहे हुए तथा धन्य स्थलों में कवित जो दुलाबसान रूप कार्य है उसके सपह से 'ब्राहान' है। जैसे, (उसी नाटिका मे) "मेरे स्वामी को सक्षार-भर का राज्य मिल गया" (इस यौगपरायण मी

१२७

ये तेरह प्रवमर्श सन्ति के घग हैं। उनमे प्रपनाद, वनित, व्यवसाय, प्ररोचना धीर घादान, उनकी प्रधानना है।

# निवंहरा संवि

योजवन्तो मुसाद्यर्या विप्रकीर्णा ययाययम् ॥ ४ = ॥ ऐकार्य्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहर्णः हि तत् ।

बीज से सम्बन्धित भुन बादि पूर्व-एवित चारों सन्ध्यों मे यजन्तर बिसरे हुए प्रयों का प्रधान प्रयोजन को सिद्धि के शिए समाहार (एकत्रिन) हो जाने को निर्वहण सन्यि कहते हैं 11४=11

जैसे, विणीमहार नाटक में कचुकी द्वारा युधिष्ठिर के पास जाकर मह निवेदन करना—"महाराज ! प्रामुद्य कान है, यह विराज्जीव भीमसेन ही हैं। मुपोधन के पायों से निक्सते हुए रक्त से रण जाने के कारण इनका सम्पूर्ण दारीर प्रकण (रक्तवर्ण) हो यया है, ध्रतस्य ये पहचान में नहीं था रहे है। घन यथिक नरेदे करने की घाव-स्वक्ता नहीं है। इत्यादि" मुख धादि सिन्यों से द्वीरादों के केश-स्वमन क्ष्य जो बीज यथनत्व फैसा हुआ है उमना एक प्रधान प्रयं के क्य में एकप्रित हो जाने से यहाँ निवेदण सन्यि है।

प्रव इसके वर्गों को बताया जा रहा है—
समिविकोधो प्रथन निर्होत्यः परिभायराम् ॥ ४६ ॥
प्रसादानन्दसमयाः कृतिभाषोरपूहनाः ।
पूर्वभावोपसंहारो प्रशस्तिक्ष्य चतुर्दश्य ॥ ५० ॥

इस सिम्ब वे १. सिन्य, २. विज्ञोब, २. घवन, ४. तिर्हाव ४. परिमापन, ६ प्रसाव, ७ घानन्य, च. समय, ६. तिर्हाव, १०. भाषा, ११. उपगृहन, १२. पूर्वभाव, १३ उपसहार, १४. प्रदास्ति ये घौदह श्रय होते हैं ॥४६-४०॥ ऋमश इनके लक्षण दिये जाते हैं-संधिर्दी जोपगमन

सन्धि—थोज को उदमावना को सन्धि कहते हैं ।

जैसे, 'रत्नावली' में वसुपूर्ति सागरिका को देखकर कह उठता है

कि "यह लड़की तो ठीक राजगुमारी ही जैसी लग रही है। वाश्रव्य--पुके भी तो ऐसी ही लग रही है।"

यहाँ पर नायिकारूपी बीज की उद्भावना होती है, प्रतएवं यह सन्धि है। इसी प्रकार 'वेणीसहार' मे भी—' भीम—पाँचात राजपृति ।

क्या तुम्हें वह बात याद है जो मैंन तुमसे वही थी---

हे देवि, यह नीम अपनी चपन मृजाओं से घुमाए हुए अपनी भीषण गदा के प्रहार से मुधोधन के जयों को रौंदकर निक्ले हुए सूर्व

गाढे रक्त से निरुक्त हाथी का रगता हुया तुम्हारे वेशक्लापी की सवारेगा।"

यहाँ पर मन्धि मे रखें हुए बीज की पुत उद्भावना करने से सन्धि है।

विवोधः कार्यमार्गराम् ।

विद्योध-कार्य-भ्रावेषण को विवोध कहते हैं। जैसे, 'रत्नाबली' नाटिया मे-"'वसुभृति-(विचारमर) महाराब!

यह सटकी ग्रापको नहीं से प्राप्त हुई ?

राजा-महारानी जानती हैं। वागवदता--श्रायंपुत्र । श्रमारय योगधरायण न यतामा पा कि

यह लडवी सागर मे प्राप्त हुई है, और मुफे सीपा था । इसीसे हम सीग इसे मागरिका बहुकर पुरारते हैं।

राजा-(ग्रपने-धाप मोचता है) श्रमा व यौगधरावण ने मुभने दिना बताए ही इसे महारानी को सींपा है, समक्ष में नहीं धाता बना

सात है ? यहाँ पर रत्नावली द्वारा उपलक्षित कार्य रे ग्रन्वेषण से

'विवोष' है। इसी प्रकार 'वेणीमहार' में भी भीन मुपिस्टिर से बहुते

375

युविष्ठिर-वया अभी और नोई नार्य शेष रह गया है ?

भीम—खनी, घमी तो वह महत्त्व ना नार्य बादी ही रह गया है।
मुनिए—मैं दुमासन के हाथों में खींचे गए द्रुपदराज-पुनी ने सन नेत्रों को, जो प्रभी तक खुले पढ़े हैं, छनी दुमासन ने रक्त से सने प्रपत्ने हाथों दारा संवारूगा।

युविष्ठिर-जाम्रो भाई, वह तपस्विनी केश मैंवारने ने मुख ना

द्यनुभव करे।

यहाँ केश को सँबारना रूपी जो कार्य है उसके अन्वेषण से विदोध है। ग्रयमं तद्वस्थेषो

ग्रयन-कार्य के उपक्षेप (उपसहार) की ग्रथन कहते हैं।

जैसे, रत्नावसी' में—"यीगधरायण—महाराज, ग्रापसे विना सताए ही मैंने जो ये सब नायं कर डाला है, एतदयं समाप्रार्थी हैं।"

यहाँ पर बत्सराज का 'रत्नावली'-प्राप्ति रूप जो बायं है उसके उपसहार होने से यहाँ प्रथन है। इसी प्रकार विजीनहार में भी-

"मीम-पाञ्चाली । तुम मेरे रहते दुधासन के हायी से स्रोती हुई प्रमानी मेगी को प्रपत्ने-माश संगरी, ऐसा नहीं ही सकता । रनो रनो, में स्वय तुन्हारे केवकलाप को सँवाहैंगा ।

पहीं पर द्रोपदी के केश-सवरण रप कार्य के उपक्षेप के नारण प्रथम है।

ऽनुभूतास्या तु निर्एायः ॥ ५१ ॥

निर्एय-धनुभूत बात के कथन की निर्एय कहते हैं ॥ १ १।। वैसे, 'रत्नावली' में यौगयरायण का कथन्-(हाय जोडनर) सिहलेस्वर भी इस कन्या (रत्नावली) ने विषय में एक सिद्ध पुरुष ने नताया था नि जो इसना पाणिग्रहण करेगा वह चत्रवर्ती सम्राट् होगा। इस बात पर विस्वास वर मैंने इस कन्या की सिहलेस्वर से मौगा। रानी वासवदत्ता ने मन में दुख होगा-इस नारम नरेश ने इसे नहीं दिया। इसके वाद मिने सिह्तेदनर के पास था अध्या को मेजकर यह कहाना कि रानी वासवदता आखेट-शिविर से आग लगन से जनकर मर गई।" यहाँ पर यौगयरायण ने यपनी अनुभूत नातो को नहां है। यत निषंप है। जैसे विश्वीसहार' से भी—"महाराज प्रजावसनु, प्रक्ष प्राज दुर्घोधन कहाँ रहा? मिन तो उस दुष्ट के दारीर को नष्ट कर पृथ्वी पर फॅक्कर उसके लगीर से निक्कने वाले रकत को दारीर में नेप कर सिदा है। उसके से राज्यश्री चारों समुद्रो की शीमा तक की पृथ्वी के साम साम अध्याक यहाँ विश्वास कर रही है। उसके सेवक, मिन, सैनिक, बीर, यहाँ तक बिद्याम कर रही है। उसके सेवक, मिन, सैनिक, बीर, यहाँ तक कि उस्पूर्ण कुरवा, इस रण की ज्वाला में मम्म हो चुने है। राजन, दुर्योधन का नेवल लाग, जो आप इस समय कह रहे हैं, वस वह केवल उक्चारण भर के सिए बचा रह गया है।"

पहाँ पर भीम के द्वारा अपने अनुभूत अर्थ के कथन होने के कारण 'निर्णय' है !

परिभाषा मिथो जल्पः

परिमायस-आपसी बातचीत की परिभायस कहते हैं।

जैसे, 'रत्नावली' नाटिवा मे— रत्नावली—(मपने-माप) मैंने

महारानी का व्यवस्थ किया है श्रत सामने बान में लज्जा लग रही है। वासनदत्ता—(श्रीसुधो के साथ हाथ फैलाकर) 'बरी निष्टुरे, प्रव मी

तो बन्धु-स्नेह प्रदेशित कर।' किर राजा से कहती है—महाराज, मैंने जो इसके साज मूरता का व्यवहार किया, ग्रांत जब्जा का ग्रानुभव कर रही हैं। पर साम की व्यवहार किया, ग्रांत जब्जा का ग्रानुभव कर

रही हैं। घन आप ही हुपा बरले इसे सीघ्र बन्धन से मुक्त बरें। राजा—'जैमी देवो नी भासा।' इसने बाद राजा रहनावती की बन्धन सावना है। बामबदना राजावती की तरफ देवबर बहती हैं—

बन्धन सावता है। बामवदता स्लावसी भी तरफ देलवर महती है-'मार्च, योगन्धरायण वे द्वारा मुख विदित न रहने थे बारण मैंन ऐसा निन्दित क्यें क्या।

दम प्रशाद एक-दूसर की बातकीत के कारण वहाँ परिभाषण है।

### प्रसादः पर्युपासनम् ।

प्रसाद---प्रसन्न करने के प्रयतन को प्रसाद कहते हैं।

अंगे, 'रत्नावती' नाटिवा से यौगत्यरायण को इस उनित से कि 'देव-समा करें', दिखाया गया है। या फिर 'वेणी सहार' में भीम द्रौपदी के पाम जाकर कहने हैं—"शतुम्रों के नाश हो जाने से तूबढी भाग्य-गासिनी है।"

यहाँ पर भीम ने त्रीपदी को अनग्न करने का प्रयत्न किया है, सतः 'प्रसाद' है।

ग्रानन्दो वाञ्छितावाप्तिः

वानन्द-धिमलियत बस्तु की प्राप्ति की 'ग्रानन्द' कहते हैं। जैसे, 'रत्नावली' मे राजा 'जैमी देवी की ग्राजा' ऐसा कहकर

ररनावली को ग्रहण करते हैं।

जैंसे, विशीमहार' में द्रीपदी:—"स्वामी, मैं यह सब व्यापार भूल गई हूँ। मन ग्रापकी कृपा से इमें फिर मार्चूगी।" इसके बाद मीम द्रीपदी के केंग बॉक्टो है।

'रत्नावला' नाटिका में कम्पराज को रज्नावली की प्राप्ति तथा 'विभीनहार' में द्रौपदी का भीम द्वारा केश सैवारा जाना अभिलिपन की प्राप्ति है, यत 'आनन्द' है।

समयो दुःखनिर्ममः ॥ ५२ ॥ समय—दुःच दे दूर हो जाने नो 'समय' कहते हैं ॥५२॥

समय—सुरव के दूर हा जान का 'समय' कहत है ॥२२॥ जैसे, 'रन्तावसी' नाटिका में वासबदत्ता रन्नावसी का मानिसक कर बहती है—

"बहुत प्रमुल होधों, धोरज घरों, धोरज घरों।" यहाँ पर दोनों बहुनों के समागम से टुल के दूर हो जाने के बारण समय है। जैसे, विशोगहार' में — "स्थवन, जिस व्यक्ति की मयन बामना स्वय पुनान पुरुष भगवान नारायण करते हैं, उनका विजय के खनिरिक्त घोर वया हो सकता है ? हे देव, स्त्रीयगरिषाम-उत्पन्त, पुनियों, जल, प बायु, ब्राकाश आदि और महतत्त्वादिको के शुब्ध होने से प्रयोत् सृष्टि के अनुगुण-प्रवृत्ति से सम्भूत मूर्ति धर्यात् अवतार धारण करने वाले, गुणिन्—सत्त्व, रज, तम, इन तीन प्रकार नी उपाधियों से विशिष्ट,

ससार के चर धौर अचर प्राणियों के जन्म, पालन तथा सहार कार्न वाले, अजन्मा, अभर और ध्यान में न प्राने वाले, भावका समरण करने ही इस ससार में कोई दुखी नहीं रह सकता, फिर ग्रापका दर्शन हो

जाए तो बहना ही बवा है।" यहाँ पर युधिष्ठिर के दुख का दूर होना दिखाया गया है, <sup>प्रत</sup>ः 'ਸਸਧ' है।

कृतिलंदघार्यशामनं

कृति—लब्ध (प्राप्त) प्रयोजन के द्वारा उत्पन्न शान्ति को सम्बन

सम्बद्धार्थ के स्थिशीकरण को कृति कहते हैं।

प्रयम उदाहरण, जैसे 'रत्नावली' मे---राजा--देवि, भागके भनुष्ठ

प्राप्त कर कौन अपने को बढभागी नहीं मानेगा। बासवदत्ता-यार्थपुत्र, इसके (रत्नावसी के) माता-दिता झार्दि

भर वाले दूर हैं, सो ग्राप ऐसा कार्य करें जिससे इसका चित्त वन्धुं-बान्धवी का स्मरण वर दुःवी न रहा करे।

यहां पर बत्सराज को 'रत्नावली' रूप प्रयोजन के प्राप्त होन से शान्ति-मुख प्राप्त होता है, ग्रत यह कृति है।

दूसरे का उदाहरण 'वेणी सहार' गे हे--कृरण-- "ये भगवान् ध्यास भीर बाल्मीकि हैं।" यहाँ से चारम्भ वरके 'ग्रमिषेव का ग्रारम्भ क्या जा रहा है।"

यहाँ प्राप्य राज्य ना स्थिरीकरण होने से कृति है।

मानादाप्तिश्च भावराम् । भाषरा—प्रतिष्ठा, मान, यदा धादि को प्राप्ति को भाषरा कहते

जैसे 'रत्नावली' नाटिया में राजा यीमन्यरायण से बहुते हैं---"प्रजी,

\$ 3 X दशहपर

सत्यानाची का ग्रव ग्रन्त हो तथा राजवुल का कल्याण हो।

युधिष्ठिर-देवि, ग्रानास में विचरण करने वाले सिद्ध लोगो द्वारा भी तुम्हारे नेसनलाप ने सँबारे जाने ना ग्रामनन्दन हो रहा है।"

यहाँ पर बद्भुत बस्तु की प्राप्ति के कारण उपगृहन है, साथ ही सम्य-प्रयोजन निमित्तक शान्ति के होने से कृति भी है।

वराप्तिः काव्यसंहारः

काय्यसंहार-अेव्ठ वस्तु की प्राप्ति की काव्यसंहार कहने हैं।

जैसे, नाटको के अन्त मे प्राय यह बावय मिलता है- "ग्रीर मैं मापका कीनसा उपकार करू"?"

यहाँ पर काव्य के अधं के सहरण (जपसहार) होने से वादा-सहार होता है।

प्रशस्तिः शुभशंसनम् ।

प्रशस्ति—कस्यासप्रद वस्तु के कथन की प्रशस्ति कहते हैं। जैसे, ''यदि माप बहुत ही प्रसन्न है तो यह हो—

लोग मन्त्रण धीर रोगरहित दीर्घजीको वनें, जनता सदेह छोड-कर भगवद्भवित-परायण बने । राजा लीग समस्त प्रजाशी ने प्रेम रखते हुए और विद्वानो का पोपण करते हुए तथा युणी की महता पर विशेष ध्यान देते हुए सर्वदा समुख्यल कार्य मे दत्तचित्त रहे !"

यहाँ पर कल्याणकारी बात के कथन होने से प्रसस्ति है। ये १४ निवंहण स्थि के झग है।

यहां तक ६४ भगो वाली पौच गवियो को बताया गया। प्रव इत सन्धियों ने प्रयोजन की बताते हैं।

उक्ताङ्गानां चतु.पष्टिः योढा चैयां प्रयोजनम् ॥ ५४ ॥ ऊपर बताई हुई ६४ सन्धियों के ६ प्रकार के प्रयोजन होते हैं :--इप्टस्यार्थस्य रचना गोव्यगुप्तिः प्रकाशनम् ।

रागः प्रयोगस्यारचर्यं वृत्तान्तस्यानुपक्षयः ॥ ५५ ॥ विषक्षित धर्म को रचना, २. गोष्य (दिवाने योग्य) वस्तु को गुप्त हो रसना, ३. जिस बात का बहुना उचित है उसको प्रकार में साना, ४. दर्शकों के छत्दर नाट्य के विषय में प्रीति पैदा करना, ५. चमरनार पैदा करना, ६. कथा को विस्तृत करना ॥ ५४-५५ ॥

उपयुक्त उ बाता के लिए रुपकों में ६४ गव्यद्वा को लाना चाहिए। इसके बाद क्रव्यक्षण किर बन्तुका विभाग दूसरी इप्टिसे करते हैं —

हेपा विभागः क्तंय्यः सर्वस्यापीह बस्तुन ।

मूच्यमेव अवेरिकचिद्दरयश्रद्यमथापरम् ॥ ५६ ॥
नाट्य मे प्राने वाती व वावत्तु को दो श्रीणवाँ ने बाँट देना चाहिए।
उसमें एक विनाग ऐसा होना चाहिए जिससे द्वारा केवल मूचना-मात्र
दी आती हो तथा दूसरा ऐसा होना चाहिए औ सबके सुनने योग्य होने
से विजाया जर सके। इतने यहले को 'शूच्य' तथा दूसरे को हरय कहते
हैं ॥६६॥

नीरसोऽनुचितस्तन स सूच्यो वस्तुविस्तरः । दृश्यस्तु मधुरोदात्तरमभावनिरन्तरः ॥ ५७ ॥

१. मूच्य-नाट्य में माने वाली ऐसी क्यावस्तु को, जो नीरस सथा अनुवित हो, उसको केवल मुचना-नात्र दे देनी चाहिए।

२ हृदय-ऐसी क्यावस्तु को, जिसमे मधुर धौर उदास रस तथा भाव पूर्णतया (सवासक) भरे हो, दिसाना चाहिए ॥४७॥

भाव पूजतवा (सवासन) भर हा, दिसाना चाहिए ॥४७॥ स्रयोंपक्षेपकं. सूच्यं पञ्चभि प्रतिपादयेत् ।

द्रयापसयकः भूच्य पञ्चामः प्रातपादयत्। विष्कम्भन्नतिनाद्भास्याद्भावतारप्रवेशनः ॥ ५८ ॥

मूच्य क्यावस्तु की मूचना, ग्रर्थ की मूचना देने बाले विष्कृम्मर, भूतिका, ग्रहावतार, ग्रहास्य, धवेशक इनके द्वारा देनी चाहिए ॥५८॥

वृत्तर्वानध्यमाशाना क्याशाना निदशेकः । संक्षेपार्थस्त विदश्यमो मध्यपात्रप्रयोजितः ॥ ५६ ॥

रै. जिप्तम्बर-जो क्या पहने हो चुको हो, श्रवबा जो ग्राप्त

23E टशहपक

होने वाली हो, उसकी सूचना संक्षेप मे मध्यपात्र के द्वारा दी जाती है. उसे विष्कम्भक वहते हैं ॥५६॥

यह दो प्रकार का होता है---शुद्ध ग्रौर संकीएं। एकानेककृत. शुद्धः संकीर्लो नीचमध्यभैः ।

मुद्ध विष्कम्भक-जब एक या दी मध्यम पात्रों के द्वारा मुचना दी जाती है सी युद्ध विष्करमक होता है।

सकीर्ण विष्कम्भर-अब मध्यम या श्रधम पात्री द्वारा सूचना दी

जाती है तो सकीखं विष्करभक्त होता है।

तद्ववेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ॥ ६० ॥

प्रवेशोऽञ्जूद्वयस्यान्तः शेषार्यस्योपसचकः । प्रवेशक—इसमे बीती हुई तया मागे ग्राने वाली बातो की सूचना वी जाती है। पर इसमे सूचक नीच पात ही रहते हैं। इसकी भाषा

प्राष्ट्रत होती है। यह दो ग्रकों के बीच ने श्राता है इसमे छूटी हुई बातों को सूचना दी जातो है ॥६०॥ मन्तर्जयनिकासंस्थैश्युलिकार्यस्य सूचना ॥ ६१ ॥

३ पूलिका-नेपध्य के पात्र के द्वारा ग्रयंकी सूचना देने की

चूलिका कहते हैं ॥६१॥

जैसे, 'उत्तररामचरित' के द्वितीय श्रक के आदि मे—नेपस्य मे— 'तपोधना का स्वागत है। इसके बाद तपोधना बान्नेयी प्रवेश करती हैं। इस प्रकार यहाँ नेपस्य पात्र के द्वारा धनदेवता वासन्ती को आत्रेयी के

मागमन के विषय में मूचना दी गई है, श्रत यहाँ चूलिका है ग्रीर जैसे महाबीर परित के चतुर्व ग्रव वे भ्रादि में (नेपथ्य में)-वायुवान से अमध बरने वाले सज्जनो । मगल मनावे, मगत

मनावें-- एशास्वमुनि वे शिष्य विश्वामित्र, जिनका बताप सूर्यवश मे द्याजभी विराजरहा है, उननी जय हो । ग्रीर साथ ही क्षप्रियों के

वैरी परगुरामजी पर विजय प्राप्त करने वाले रामचन्द्र, जो ससार बी यभय प्रदान वरने का बत धारण करते हैं और जो तीनो सोको की

पय हो।" यहीं पर नेपच्य में देवों द्वारा 'परश्राम पर राम ने विजय प्राप्त

मर ली', इस बात की सूचना दी गई है, बात यहाँ चूलिका है।

ग्रज्ञान्तपात्रेरङ्कास्यं छिन्नाङ्ग्यायंनूचनात् । थड़ास्य-ग्रंट के शन्त में बाते वाले वात्र के द्वारा ग्राने प्रक के ग्रारम्भ में प्राने वाले पात्रों भादि की भुचना देने को मकास्य करते हैं।

जैसे 'महाबीर चरिन' वे दिलीय सक वे अन्त में प्रविष्ट होकर ममन्त्र बहने हैं--"बाप लोगो को परगुराम के खाद-खाद विशय्त घीर

यिक्तामित्र बुता रहे हैं। मुमन्त्र-महाराव दगरव ने पास मे विद्यमान है।

बन्य लोग-नो किर उनकी माजा शिरोधार्थ कर हम लोग मा 7 7 7 1" इस प्रकार दिनीय प्रक की गमाप्ति ही जाती है उसके बाद शीसरे

घर वे भारम्भ से बशिष्ठ, परश्राम और विस्वामित्र भागीन दिखाई

देने हैं। बद्भावनार-एक घर की क्या दूतरे घक में बराबर चलनी रहे

तो उमे बाद्वाबनार बहने हैं हैं पर इस क्या में प्रवेशक धौर जिल्हाभक का स्थान नहीं रहता, प्रयांत् यह कया प्रवेशक-विष्टानक-विहीन शेनी है।

का प्रयोग नही किया जाता।

मालविनाम्निमित्रं नाटन ने प्रथम ग्रन म निट्रपन गहता है-'तो घाप दोना दवी के प्रेक्षागृह म जाकर सगीत का साज सजाएं स्रोर सब ठीन हो जाने के बाद सुचित नरे। स्थवा मृदग ना गर ही इन्ह उठा देगा। 'इस प्रकार के उपक्रम के चलते रहने पर मुदग के सब्द के सुनने के बनन्तर सभी प्रथम बन के पात्र दितीय प्रवर भारम्भ मे प्रयम झक की क्याको वृटित किए दिनाही डितीय <sup>छक</sup> के बारम्भ मे उत्तर पडते है। इसी की बाद्धावतार कहत हैं।

नाट्यघर्ममपेक्यंतत्त्रुनवंस्तु निधेष्यते ॥ ६३ ॥ नाट्य धर्म की दृष्टि से प्रत्यकार फिर बस्तु की तीन धेणियों से बिभक्त करते हैं ॥६३॥

य तीना भेद नैसे होते हैं इस बात को नीचे बताया जाता है-

सर्वेषा नियतस्यैय आव्यम्आव्यमेव च । सर्वेश्राय्य प्रकाश स्यादश्राय्य स्वगत मतम् ॥ ६४ ॥

नाट्य मे बुख बता ऐसा होता है जिसको सब कोई सुन सनता है। पर मुख भग्न ऐसानी होता है जो किसी किसी की यासबको मुनाने के योग्य नहीं होता। इसमे प्रथम को प्रकाद तथा दूसरे की स्वर्गत महते हैं ॥६४॥

द्विधान्यग्नाट्यधर्भाख्य जनान्तमपवारितम् ।

इसरे भ्रमाया एक नियतथाव्य होता है। ऐसा नाटकीय ग्रदा, जो विसी विशिष्ट व्यक्ति वे ही सुनने के लिए व्यवहृत होता है, नियते थाय्य वह्ताता है। इसके दो मेद होते हैं—१ जनान्तिक ग्रीर २ ग्रप वास्ति ।

त्रिपतात्राक्षं रेरपान्यानपवार्यान्तरा कथाम् ॥ ६५ ॥ श्रन्योग्यामन्त्रए। ग्रस्याञ्चनान्ते सङ्जनान्तिषम् । जनान्तिर-धनामिका को छोड बाकी तीन ग्रॅंगुलियों की घोट करके दो ब्रादिमयों की गुप्त बातचीत की जनान्तिक कहते हैं ॥६५॥

रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्यापवारितम् ॥ ६६ ॥

अपवारित—भास विद्यमान पान की और से मुहे फेरकर उसमें द्विपाकर उसके किसी रहत्य की बात पर कटाश करने की प्रपर्वारित कहते हैं॥६६॥

नाट्यबर्म को चर्चा छिड गई है, बत. इसी मिलमिले मे बाहाय-

भाषित को बताते हैं—

कि व्यवीच्येचमित्यादि विना पात्र व्यवीति यत् ।

शुरवेदामुक्तमप्येषस्ततस्यादाकादाभाषितम् ॥ ६७ ॥
सामाधामित—कपर देलना हुमा सम्ला हो मोई पात्र बिना
क्रितो दूसरे में महे-सुने ही सुनने मा नाट्य मरता हुमा जब स्वय प्रदनो
मो दुराता है या स्वय यसका जत्तर देता है, उसे आसामाधित महेने हैं। यिना मिसी में हुए बोले ही स्वय मह रहे हो? इस प्रमार से प्रदनो
मो करने उसमा जत्तर भी मुद्ध मन से बनावर किर मुद्ध बोलता है। इस प्रमार मा सन इसमे जारी रसता है, इसी मो स्नामाधित महते हैं। ६०॥

बुछ लोगों ने उपर बताए हुए नारपन्यमों के साय-माय बुछ धौर भी नारम्पमों को बनाया है, पर वे हमारी हिट्टि में नारम्पम के भीतर नहीं मा मकने क्योति एक नो वे प्रभारतीय हैं, (प्ररत मृति के कहे हुए नहीं हैं) उनकी केवल नामावली में ही प्रसिद्धि हैं। दूसरे उनम के मिषकार केपा भाषा में प्रमुक्त होने हैं। पन हनको नास्य का पर्य न प्रमान उपनित नममन्दर इनके लक्षण आदि का प्रस्तान नहीं किया गया है।

६त्याराशेषिमह वस्तुविनेद जानं रामायरागिद च विभाव्य गृहत्त्रयां च । प्रामूत्रयेसदनु नेतृरसानुगुण्या-

च्चित्रा वयामुचितचारयच प्रपञ्चैः ॥ ६८ ॥

रामायन और बृहद् कथा के देखने और उसके इयर बुद्ध विचार बाने से बस्तु के अनविनत भेद दिलाई देते हैं, बतः काल्य-प्रशंना के सिर् वह उचित है हि वह उन वस्तुमी हो नेता भीर रम ने चतुरूल गुप्तर वस्त रधना-चातुरी से सजावर विधित-विधित्र क्याओं दा प्रहादन करे ॥६॥

धनजबद्दन दशमपुर का प्रयम प्रकाश समाज ।

यस्तु थर्पनीय विषय को कहते हैं, उनके खनेक भेद होते हैं। (बह मा। पहले बताई जा चुनी है) शहत क्या की चर्चा कारिका में मार्द है वह गुणाद्य द्वारा निर्मित है। भारय-प्रणेनामी को उस दहन क्या भीर रामायण बादि या नम्थर् रूप से अध्ययन करने तब सेराती गा सवाज करना चाहिए। नेता भीर रगवे बारे से बाये के शकरणों से बता<sup>बा</sup> जाएगा । उसका भी समुचित ज्ञान माटककार के लिए आवस्पत है। नया ना मर्थ मास्यायिना समभना चाहिए । ये बास्यायिनाएँ मुन्दरता भौर विचित्रता से भरी होनी चाहिएँ। उपर्युवन बातो को प्यान में रापर सुन्दर-मुन्दर यथन रचना-चातुरी वे द्वारा वचा को दिस्तार क साथ वर्णन करना चाहिए। जैसे 'मुद्राराक्षस' नाटक की मूलकथा प्रति प्रत्य रही, पर निव ने अपनी यचन रचना-चात्री के द्वारा क्या की इतना विस्तार दिया। बृहत् वधा मे मुदारासस वी मूलक्या वेदत इतनी हो रहो-"वाणवन नामर द्वाहाण ने शबटाल वे घर में बुछ गुष्ट कियाबी का सम्पादन कर राजा को उसके पुत्रों के साथ मार हाला बीर इसके बाद जब मोगानद का केवल नाम मात्र ही दोप रह गया, उस समय नद में पहले लड़के चन्द्रगुष्त को उस महापराश्रमशासी चाणवर ने राजा वनाया ।" इस प्रकार मुदाराक्षम की क्या बृहद् कथा मे केवल सूचित" भर कर दी गई यी और इसी मूचनामात्र क्या के ब्राबार पर 'सुद्रा-राक्षम' नाटक की रचना हुई। इसी प्रकार रामायण मे कथित राम-कथा को भी जानना चाहिए।

विष्णुपुत्र धानिकञ्चत 'दशरूपावलोक' व्यारवा का प्रथम प्रकाश समाप्त ।

# द्वितीय प्रकाश

स्पर्को का आपम से एक-दूसरे में बया भेद है, इसकी जानकारी के चिए वस्तु के मेदो वा प्रतिपादन करके श्रव नायक के भेद बतजाते हैं:--

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दशः प्रियवदः ।
रत्त लोकः द्र्यांचवांग्मी स्टबंद्याः स्थिरो युवा १११।
वृद्ध युत्साहस्मृतिप्रज्ञाक्ष्तामानसमन्वितः ।
दृरो हटदव तेजस्वी दास्त्रचतुत्त्व व्यक्तिकः ११२॥
मेता; विनीत, मधुर, त्याभी, दल, व्रिवंद्य, रततत्तिकः शुद्धि,
वाग्मी, स्टबंदा, श्यिर, युवा, बृद्धिमान्, प्रशावन्, स्कृति-सम्पन्, उत्सारी,
कतावान्, शास्त्रचनु, प्रायम-सम्मानी, शूर, हट, तेजस्वी और वामिकः
होना चाहिए ११-२॥

रै. नेता धर्मानु नायक विनयादि गुलों से सम्यन्त होता है। उसमे

विनीत को बतुसाने हैं। जैसे 'बीरकरित' नाटक में---

पनुष ने दूरने थे जन्नि हिंच वारपारण नाटम निष्म के वार पानपन्न नह नहें हैं—
"है देव, ब्रह्मानियों ने द्वारा निनने पूज्य परमों नी देवानना नो जाती
है, ऐसे प्राप, विद्या भीर देवस्वानियों में अपुट दया दर्शनियों
है, ऐसे प्राप, विद्या भीर देवस्वानियों प्राप्ता नी है प्रप्राप भी नन्न
हैं सेंग्र हैं। मैंन परि प्राप्तावावत देवानु घापना नी है प्रपराय भी नन्न
दिवा हो वो प्राप्त प्रस्तान नरें। है त्रार, प्रन्त होदग, पपने द्वारा
कियं गए प्रपराधों ने प्रति समायायना ने निस् मैं नरहर प्राप्ता है।"
2. देनने में जो दिव सर्वे दसकी समुद कहते हैं। जैसे वहीं नर—

परमुख्य सम्बद्ध से बहु रहे हैं—'हे याय, बाले करीर के

१४२

अनुकूल ही नेत्रों की सनोहरता को भारण करने बाले तथा तर्न और कल्पना में भी न क्या सकने वाले श्रेटठ रसणीय गुणों से सुशीमित तुम सब प्रकार से मेरे अम्स करण में विद्यमान हो।"

३ धपने सर्वस्व का दान देने वाले नो त्यागी कहने है। जैसे--

"कण ने अपनी त्वचा को, शिवि ने अपने मास की, जीभूतवार्न ने अपने प्राण को, तथा दधीचि ने अपनी अस्थियों की परोपकाराण दे दिया है। बात ठीक ही है, महान् पुरपों के लिए कोई भी बस्तु प्रदेश नहीं होती।

ेर शोमता ने साथ कार्य करने वाले की दक्ष कहते हैं। जैसे

'महाबीर करित' मे—

"जैसे हायी ना वच्चा धपनी सूँड से पत्यर के इकडो को धनावास हैं।

ही (बिना परिध्यम के) धीध्रता के साय फूँक से, उसी प्रकार बरस राम ने देवताओं के तेज से बड़े हुए, शिवजी के धनुप की बिना परिध्रम के ही भट से उटा लिया, उठाने के साथ ही धनुप की प्रत्यचा दौर की धावाज करती हुई चढ गई और वह धनुप टूट गया। धनुप की प्रत्यचा के प्रवेच के साथ हो धनुप दूट गया। धनुप की प्रत्यचा के प्रवेच और धनुप के टूटने ये इतनी शीख्रता हुई नि लोगों ने और बुछ न देखकर केवल राम के सामने हनारों वख के सिरने के समान

भवगर सब्द निकल दहा है, इतना मात्र ही देखा।" ६ प्रिय बोलने वाले को प्रियबद करने है। जैसे वही पर सर्पात् उसी साटक से—

रामचन्द्र परसुराम से वह रहे है—'हे सत्य, ब्रह्मजान मीर तपस्या के निधि, अगवन् । आपने मन्दर कीनसी ऐसी बात है थी सोकोतर न हो ? धर्यान् आपनी प्रतिक बात ही सोकोत्तर है। देखिए, प्रापका जन्म महींव जमरिन से हुमा, आपने गुन् प्रसिद्ध धनुपारी अगवान् शकर ठटने, और धापमे जितना परावस है वह वाणी ना विषय नहीं हो गवता, धर्यान् धापमे इतने प्रधिव और लोकोत्तर परा-प्रम विद्यान है जिनके वर्णन करने में कोई समर्थ नहीं हो सकता। इस दितीय प्रकाश \$83

प्रवार का ध्रलोकिक परात्रम निश्चय हो ग्रापके कार्या से व्यक्त है। म्रापने त्याग ने बारे में नया कहना, ग्रापने सातो समुद्रों से घिरी हुई पृथ्वी को बिना किसी हिचक के बाह्मणों को दान दे दिया।"

 रक्तलोर—(श्रयाँन् सबका प्रिय होना) जैसे वही पर— प्रयोध्या की प्रजाएँ महाराज दशरम से कह रही हैं- 'ह महाराज, वैदनमी के रक्षा करने वाले ग्रापके पुत्र जो रामचन्द्र है वे ग्रापकी कृपा

से राजगद्दी पर सुक्तोत्रित हो गए, उनके ऐसे राजा को पाकर हम लोगो की सारी ग्रमिलावाएँ भौर मनोरय पूरे हो गए, श्रव हम लोग शानद में साथ विचर रहे हैं।"

हमी प्रकार भूवि भादि का भी उदाहरण दिया जा सकता है। इ. इ.चि (द्वीच) -- मानमिन पवित्रता से नाम ब्रादि दीपी नी

दवा देने का नाम शीच (शुचि) है। जैसे 'रघुवश' महाकाव्य मे-

'ह गुभे, तुम बीन हो तथा विसवी प्रेयसी हो ? ग्रीर इस मर्थरानि में समय एकान्त में मेरे पास विस भनोरच से ब्राई हुई हो <sup>?</sup> पर हाँ, मेरे प्रश्तो का एतार इस बात पर ध्यान रखकर देना कि रघुवशियो का मन पराई मंत्री से विमन रहने वाले स्वभाव का होता है।"

६ बाग्मी—भट से युक्तियुक्त बात करने बाले का बाग्मी कहते 18

१४४ इत्तरपर

'मूर्य बरा के सित्रिय कुल में सतान रूपी मल्ली (बेला ना पून)
पुष्प नी न मूरमाई हुई माला ने समान जो खापने राम, तहमण, मरत,
रात्रुष्न, इन चार पुत्रों नो पैदा निया है, उनमें प्रथम, ताडनारूपी नाल-रात्रि ने लिए प्रमात ने समान, तथा सुचरित नया रूपी नदसी के मूलकद ने समान जो ये राम हैं, ये प्रथने गुणों से सबसे बढनर हैं प्रीर इनके गुणों नी नोई सीमा नहीं है।"

११ स्थिर—वाणी, मन और तिया भादि से जो शबसल हो उसे

स्थिर नहते हैं। जैसे 'महाबीरचरित' नाटक में परमुराम डारा दिये गए 
यनुध नो चवाकर रामचन्द्र कहते हैं—' हे मुनि, गुरुजन के मनादर के 
वारण मुने भले हो प्रायरिक्स करना परे, इसकी मुफ्ते कोई चिन्हा नहीं, 
पर देव प्रकार से ममले हो प्रायरिक्स करना परे, इसकी मुफ्ते कोई चिन्हा नहीं, 
पर देव प्रकार से ममले हो पाप पर दथा करके बनुस का चढ़ाना निष्कर कर 
है 'चौर सरन प्रहणक्षी महातत को दूरित सर्वर में —''कवि कहता है कि 
स्स ससार में तीन ही प्रकार के पुरुष पाए खाते हैं—(१) नीच, (२) 
मध्यम भीर (३) उत्तम । इसमें नीच या सबम पुरुष का यही लगा 
है कि यह विज्ञों के मय से किसी काम की मुक्त ही नहीं करता ! मध्यम 
पुरुष कार्यों को मारक्ष सो प्रवर करता है, पर विज्ञों के पात नाने पर 
पपने वार्य को भीच में ही छोडकर बैठ जाता है, पर उत्तम पुरुष की 
पद विद्ययता होती है कि वह विज्ञों के बार-बार प्रहार के बाकपूर में 
वस वर कार्य पूर्वरूप प्रवास जान तहीं हो जाता तब तक करता रहता है।''
रि प्रवर—पुरा प्रवरम्या तो प्रतिद्व हो है। बुद्ध जान को कैसे

"मैं जो-जो मान उसे सिससाता हूँ उन्हें जब बहु घोर मुदरता के साम करके दिसाने लगती है तो ऐसा जान पहता है सानो बहु उसटे मुन्ने ही मिलना रही है।" घोर सन को स्पष्ट ही है।

हैं। वही बुद्धि विदोष रूप से ब्रहण की जाने पर प्रज्ञा कहलाती है। वैसे

'मालविवास्त्रिमित्र' नाटक से---

नेना थे साथारण गुणों में असला पुना के बाद क्या उनके विशेष

दिलीय प्रकाश १४५

मुणो को बसलाया जा रहा है— '

रे प्रसन्तता के माद्य कह रहे ई---

विशेष गुर्गों को दृष्टि से नेता के चार भेद होते हैं : ?. घोरलितत,

२. धीरप्रान्त, ३. घीरोहात्त, ४. घीरोद्धत । जिम त्रम से ये कपर के चारो भेद बताये गए हैं उमी त्रम से इनके

जिस अस से ये करार के चारों भेद बताये गए हैं उसी अस से इनके लक्षण सौर उदाहरण भी दिए जाते हैं—

#### घीरललित

भेदैश्चतुर्घा लिलतशान्तोदात्तोद्धतैरयम् ।

निदिचनतो घोरसलितः ध्रलातक्तः सुती भृदुः ॥३॥ धीरस्रतित नायक निष्यन होता है, बसाग्रो से उसकी आमहित इस्ती है। पह सुत्ती तथा भुद्र स्वमाद का होता है ॥३॥

धीरलियन नावक गण्य वा सारा भार वर्षा बांग्य मिन्नयों को मोंपल रिनारिट्न गण्या वा सारा भार वर्षा बांग्य मिन्नयों को मोंपल रिनारिट्न ग्रना है। किसी प्रकार को बिन्ही खादि के न रहते में भीत सादि बलाओं तथा ओगिवनान में उनती प्रकृति हो जाती है। उनसे ग्रुगार की प्रधानता रहती है। वह बोमल स्टमान तथा उत्तम पराप्तम बाला होना है, इसी से उसे मृतु प्रभीत् मधुर स्वभाववाला कहते हैं। जैंगे, 'ग्रनावकी' नाटिका से महाराज उत्सम बपते प्रिय मिन्न बिहुएक

धीरशान्त

सामान्यपुरायकस्तु घीरशान्तो द्विजादिकः ।

भीरवान्त नायक सामान्य गुर्हों से युक्त होता है। इसके पात्र दिन

आदि (ब्राह्मएए, मन्त्री वैदय) होते हैं।

नेता के निनीस बादि जो साधारण गुण हैं उससे युक्त होते हुए थी रहान्त द्विजादिक (ब्राह्मण, मन्त्री, विणक्) ही होने है, यह जो बार बताई गई है इससे प्रत्यकार को घीरशान्त नायक रूप मे प्रकरण का है। नायक विवक्षित है ऐसा प्रतीत होता है। इसी से ब्राह्मण सारि मे धीरलबित नायक वी निश्चिन्तता चादि गुणो के रहने की सम्भावना रहते हुए भी उसको धीरहान्त ही माना जाता है, धीरललित नहीं। जैसे मालतीमाधव और मृच्छकटिक मादि प्रकरको मे माधद ग्रौर पाद्यत मादि घीरशान्त ही माने जाते हैं। मालतीमाधव प्रकरण में कामन्दरी मालती से माधव का परिचय देती हुई कहती है-

"अंसे सुन्दर गुण से युवन देदीप्यमान विरणी तथा कलाग्रा वाला भीर नेत्रधारियों ने ब्रानन्द को बढाने वाला चन्द्रमा उदयमिरि पर्वत से उदय लेता है, ठीक उसी प्रकार ऊपर वहें हुए गुणो वाला यह माधव भी भपने

श्रेष्ठ युल से उत्पन्न हुम्रा है।"1

ग्रयवा जैसे 'मृच्छकटिक' नाटक में बच्च स्थान में चाण्डाली हार्प ने जाए जाते हुए बारदत्त का दू ली होकर यह क्यन-

'मने र यज्ञों से पवित्र मेरा तुल जी पहले यज्ञ-प्रभृति सभागी।

 सत्यनारायस्य कविरत्न का पद्यानुवाद— प्रगटित गुन द्युति सुन्दर महान,

धति मञ्जू मनोहर कलावान । उदयो इक यह जगहम बनन्द,

तिह उदयाचल शों बालचन्द ॥

[मालतीमाधव २-१०]

पुन गिनाए जाने ना भाव यही है कि इन गुर्णों नी प्रधिवता विशेष भेदों में बावस्यक है।

# शास्त्रार्थ

वाले काबर की तरह चित्रित क्या है। घत बीमूतबाहन को घोषे दास नायक सानना ठीक नही है, जैसे, जीमूतबाहन सोच रहें हैं— पिताजी के सामने जमीन पर खडे रहने में जो मानद बाता है वैसा मानद भता नहीं सिहासन पर बाल्ड होने पर मिल सकता है?

[अर्थात् कभी नहीं मिल सनता], पिताबी की सुधूपा करते समय उनते चरणो को दयाने म जिस आनद की प्राप्ति होती है वह भला राज्य के कहीं मिल सकती है? उनके जूडन लागे मे जो सलोप मिलला है उसके सामने तिनो सोको क्या भोग क्स गणना मे? अत दिताओं के स्पर्त इस राज्य का सवासन केवल साथास मात्र हो है। धोर भी—"दिताओं की सेवा करने के लिए में अपने वक्त-स्परासल राज्य को छोड़ प्र

भीर सम नी प्रधानता दीक्ष पटती है। इस नार्टिका के रचयिता ने जीमूतबाहन को धीरसात नायक चित्रित करते हुए एक बहुत बडा दोष ला दिया है, वह यह है कि उन प्रकार के राज्य-सुख धादि की धामिसाया न रखने वासे सात-प्रहति नायक के साथ कीच-बीच के सुस्थयदी का मादकता से भरा हुआ करें

मिष्तु भीरतात नायक टहरते है, क्योंकि अनके भ्रम्दर परम कार्राणकता

नायक ने साथ बीच-बीच में मसववती ना माटकता से भरा हुमा में हु-यम चित्रण प्रस्तुत गरना । नाटिका में इस प्रकार के धीरसात नावक के साथ मनववती के मनुराग का वर्णन धनुचित है। १५० दशस्पर

लग जाते के कारण विश्व का अतिक्रमण कर जाते है, ग्रत वे सर्वोत्हण्ट उदास गण वाले हैं।

"तिष्टन् भाति पितु पुरो भूवि यथा '' पिताजी के सामने जमीन पर खडे रहते म जो भानद बाता है वह सिहासन पर आसीन रहन म

कहाँ ?" इत्यादि उदाहरण मे विषयपराङम्खता देख जीमृतबाहर पर जो नायरता का घारोप निया जाता है सो ठीक नहीं है, नवें रि कृपणता और कायरताकाकारण जीसुख की प्राप्ति रूप हुण्याहै उससे तटस्य रहना उसकी इच्छा न रखना ही असली विजिगीपुना की

पहचान है। विजता (विजिगोपु) कैसे हुआ। करत है और उनका कार्य निर्स

प्रकार का हुआ करता है, इसके बारे में बताया भी गया है-

'विजिगीषु पुरुष श्रपनी सुख की स्रभिवाषा न रखते हुए दूसरे के उपकार के लिए ही कच्ट सहते रहते हैं। [अथवा यो कह सकते हैं कि उनवी प्रतिदिन की दिनचर्या ही इस प्रकार वी रहती है।] वृक्ष अपने सिर पर सूर्य के सीव सताप को सहते हुए भी सूर्य-किरणो से सतात भ्राय जन के परिताप को जो उसनी छाया का आश्रयण करते हैं, निश्चम ही द्यात करता रहना है।" इत्यादि उदाहरको से विजिनीपुता विसे

बहुते हैं यह बात साफ हा जाती है। चात विरोधी रस वा आध्य करके रहनेवाला मलयवती ना घनुराग, नायक में शातता का श्रमाव ही बतलाता है। शात का धर्ष होता है भहनार ना न रहना, जो कि बाह्मण छादि के ही अन्दर

पाया जाता है। लक्षण में भूठमूठ नी धवास्तविक बातें नहीं है विस्क ब्राह्मण स्वभाव से ही ग्रहनाररहित होता है ऐसी वस्तुस्थित है। बुद श्रीर जीमूनबाहन म एव ही ऐसी वारणिवता वे रहते हुए भी सनाम भीर निष्काम होने से भाषस में भेद है। यत जीमूनवाहन की धीरी दात्त नायव मानना ही सर्वया उधित है।

प्रश्न-क्या नायक में अवस्थान्तर का लाना उचित है ?

उत्तर-प्रधान नायक को छोडकर उसके अन्नुभूत नायक तथा प्रतिनायको में एक अवस्था के बाद दूसरी प्रवस्था का होना अनुवित नहीं है। क्यांकि अयभृत नायको से प्रधान नायक की तरह महापरी-

कम भावि को कोई खास व्यवस्था नही है। क्सिी एक प्रवन्त में प्रधान नायक राम ग्रादि में पूर्व-कथित चार

िसी एक प्रबन्ध में प्रधान नायक राम खादि से पूर्व-कियत चार धवस्थायों में से किसी एक को लेकर कुछ दूर चरावे दे बाद इसरी प्रवस्था का प्रहण अपूचित है। प्रयावारों ने इस प्रकार का प्रतुचित्र विस्तीय वर्ग किया है। उदाहरणार्थ राम को धीरोदात नायक ने क्य में प्रदाण पर्वक भी बाति का छियकर चय कराके उन्हें धीरोढ़त नायक के पर पर भी प्रतिष्ठित विश्वा गया है। छित्रकर वय बरते से महा-परात्रम पा प्रभाव ध्यक्त हो जाता है और मास्त्यं वी प्रधानता मा

जाती है जोनि धोरोडत नायन का प्रधान गुण हुमा करता है । यागे शुगारिक चेट्टाओ को स्थान में रखकर नायन की दक्षिण,

पादि चार सबस्थाएँ बणित हैं। इनमें एक के बाद दूसरी का भागी प्रमुचित नहीं माना जाता क्योंबि ये अवस्थाएँ प्राय सापेश रहती हैं। उदाहरणार्थ पर नी नायिका की घरेशा दूसरी नायिका में नायक के बित में खिल जाने से एवं अवस्था या दूसरी के प्रति सापेश होने से जिस मबस्या नो प्रहण किया गया उत्तरों छोड़ भी रिया जाए तो नोई हुई नहीं है, बसोबि के प्रायस से अवसाण भाव सम्बन्ध रहत से एक नृत्तर की विशोधी नहीं हो स्वती, अत हनसे बोई विरोध नहीं है।

विरोधी नहीं हो सवती, ग्रत इनमें बोई विरोध नहीं है। स देशिएाः दाठो घृष्टः पूर्वी प्रत्यन्यया हुतः ॥६॥

स देक्षिणः द्विष्ठा चृष्टः यूची प्रत्यन्यया हृतः ॥६॥ पृत्वी नामिन ने रहते दूसरी नायिन के प्रति तायक ने पता तिक काने से उसने दिशाल, शब्द, वृष्ट, वृक्षीन क्षत्रस्वाएँ होती हैं। इस प्रचार इन तीं। क्षत्रस्वाधौं और काले श्वाल जाने वासी एक सर्वस्था नेद को संकर कुल सरवा चार हो आता है ॥६॥

नायर की बहुत बार धीरगतिन, धीरसान, धीरोदात्त, धीरोडत,

ये चार श्रवस्थाएँ बताई गई हैं। इनमें से प्रत्येक दक्षिण, गठ, घृष्ट ग्रीर सनुकूल इन भेदों से चार-चार प्रकार की होती हैं। इस प्रकार से मायकों की कुल संस्था १६ होती हैं।

#### दक्षिएोऽस्यां सहदयः

दितिरानायण--जो पहली खर्यात् जेटी नाविया में हृदय के साय व्यवहार करे उसे दक्षिण कहते हैं।

जैमे मैरा ही पद्य-(बोई नायिका खपनी सर्ग से बहती है कि) है सनि, "एक मेरा परिचित व्यक्ति है। वह प्राय बड़े विश्वास वे साय मुभने वहा। है कि नेरे त्रियतम का प्रेम किसी दूसरी नायिका मे प्रावद्ध हो गया है। पर उसकी बातो पर मुक्के विख्यास नही होता क्यों कि मैं देवनी हैं कि जब यह (मेरा पित) मुक्ते देवता है तो प्रसन्त हो जाता है। उनका मेरेप्रति प्रेम भी बढना ही हुया तथा प्रतिदिन की रनित्रीडा में अपूर्व ही विनय के साथ मिला हुआ दीन पडता है। इन नंत्र बातो से उनके विषय में सन्देह करने की कोई वात ही नही दील पडती है।" ग्रथवा जैसे दूनरा यह पदा-(बाई नायिका अपनी सली से रहनी है कि) "हे सिल, एचित तो मेरे लिए यही है कि में प्रपने प्रियतम से स्नेह का नाता तोट लूँ क्योंकि जनकी ऐसी अनेक हरकतें देख चुकी। यदाप रेंगील जी प्रपनी प्यारी शियतमा (प्रपने टी को कहती है) के सेवा-मकार में बोई बसर नहीं उठा रखते हैं बल्कि पहले से (दूमरी नामिता ने प्रेम-मूत्र में बैंबने के पहले से) भी अधिक चाटुकारिता बरते है, पर तारीफ यह है कि वह केवल ऊपर से दिखलावा-मात्र ही रहता है।"

## गूढविप्रियकृच्छठः ।

शठनायक — दिवे दण से जो दूसरी नायिका से प्रोम-व्यवहार चंसाता है उसे शठ कहते हैं।

जैने—(गठ) नायक जब अपनी पूर्वा नायिका के साथ प्रेम-न्यापार में प्रवृत्त था इनने ही म उसके नान में (अन्य नायिका की) करवनी की

टशर पर 144 मिणयो नी भनभनाहट पढी, फिर क्या था--गाटालिंगन मे प्रवृत्त

उसकी मुजाओं का यन्यन ढीला हो गया। मुज-ग्रन्थि के शिथित ही जाने से नायिया ताड गई कि हजन्त दूसरे में चासकत हैं, घत प्रदुतित हो बैठी। ग्रानायर वा माथाठनका ग्रौर वे उसवी सली के पात मनाने के लिए प्रार्थना करने लग गए। उननी बातो नो मुन समी बोली---देपने में घी-मधुनी तरह तथा परिणाम में निप पा नाम देन वाली चाटुकारितायुक्त वालो से क्या लाभ ? तुम्हारे इस प्रपार के विभैते वधनों ने मेरी सन्ती वे निर में चववर माने लगा है, अब तेरी इन बानी में विमी को तनिक भी विस्वास नहीं है।

प्यक्ताञ्जवंकृतो धृष्टो भूष्टनायक--- जिस नायक के शरीर में विकार के स्पष्ट संशा होता

ये पान पाना तो उस हरियाक्षी ने नायर के नलाट में महायर, गरे में विशायट वे बिह्, मुख पर बाजत वी वालिया, नेतो में साम्बूत की मलाई बादि विद्धी भी देख प्रशीत ने उपन्न उच्छ्वामी मी बपने हारी भै सी पायमन के भी गर समाध्य कर दिया।" यद इस तीन भेदी की बताकर चीवा भेद बता है-

<u>इनुपुलस्त्वेकनायिकः ॥७॥</u> भनुदूत मागर-विषय एक ही माविका में जो आग्रक्त रहें उने

है उसे पृष्ट वहते हैं। जैसे 'समन्यातक' मे---कोई नायक रात-भर पर-नायिका में रज्ञण करने के बाद प्रात काल जब अपनी पहारे नायिका

मनुरूत बहते हैं। जैसे 'उत्तरसामवस्ति' में सम की उक्ति—'ही मुत भीर हु त से एक रूप है और सभी सवस्याओं में अनुगत है, जिस्मे हृदय का विद्यास है, जिसमे श्रीत बुझपे में मही हटती, जीरि विवार में संबद मरल-पर्यन्त, परिपाय और उत्सृष्ट प्रोम में ब्रवस्थि रहता है, द्राप्पत्य का यह कत्र्यालमय श्रेम खड़े गुच्द में पाया जाता

f moit

६ विशार - साथ नार्यशा के शाय किए सभीव प्रार्थि के चिद्ध है

प्रश्न--'रत्नावली' ग्रादि नाटिकाओं में वर्णित बत्नराज ग्रादि सिम ग्रवस्था के नायक हैं ?

उत्तर-पहले केवल एक ही नायिका के रहने से अनुकूल श्रीर बाद में दूसरी नायिका के या जाने से दक्षिण श्रवस्था के हैं।

प्रश्न-पहली नायिका बामबदत्ता से छिपकर ग्रन्य नायिका राना-वली के साथ वरमराज था प्रेम-न्यापार चलता है, ग्रत शठ तया रत्ना-वली के प्रेम को अब बासवदत्ता स्वष्ट देख लेती है तो धृष्ट, नायक को इन दोनो ग्रवस्याधो ने युवन बयो न माना जाए ?

उत्तर-प्रवन्ध की समाप्ति-पर्यन्त विप्रकारित्व के रहने हुए भी वस्त-राज ग्रादि का पहली नायिका बामदत्ता ग्रादि के साथ सहदयता के नाथ व्यवहार होता है, ग्रस वे दक्षिण है।

प्रस्त-दक्षिण की दी हुई परिभाषा के बनुसार तो किनी का दक्षिण होना असम्भवप्राय है, वयोकि वी हुई परिभाषा के अनुसार नई नायिका के प्रेम म आसकत रहते हुए भी पहली नायिका के साथ उसका बर्ताद पहने ही के समान होना चाहिए। पर ऐसा होना सम्भव नही

प्रतीत होता, नवानि दो नायिकाओं मे समान प्रेम नही रह सनता ? उत्तर-दो नायिकायो में समान प्रीति हो सकती है। इसम काई

विरोध नहीं है। महानविया के प्रबन्ध इस बात के साक्षी हैं-

("कोई कचुनी वह रहा है कि) जब मैंने महाराज से यह निवदन निया नि महाराज, कृत्वलेश्वर नी दहिता स्तान करने तैयार है, ग्राज भग देश के राजा की लड़की की भी पारी है, रानी कमला ने भी जुए में ग्राज की रात को जीत लिया है, इसके ग्रलावा ग्राज महारानी यो भी प्रसन्त करना आवश्यक ही है, ऐसी मेरी बाता को मुनकर महाराज दो-तीन घडी तब विवर्तव्यविमुद्ध हो स्तन्ध-मे रह गए।" इसके घलाका भाषायं भरत ने भी कहा है-

"उत्तम नादन मधुर स्वमाव ना तया त्यागी होता है। तिगी वस्तु मे उसकी विशेष श्रामिक्त नहीं होती । वह काम के भी वशी नूत नहीं होता, और स्त्री द्वारा श्रपमानित होने पर उसकी प्रवृति वैराय की तरफ हो जाती है।"

धावार्य भरत भुनि ने "किसी बस्तु में उनकी दिनेष प्रातिन नहीं होती, वह काम ने भी बसीभूत नहीं होता" इत्यादि क्यना से दक्षिण नायक का किसी एक नाथिका में स्विक प्रेम होने का निषेठ हीं हाता है, घत वत्सराख मादि का प्रकल्प की समस्ति पर्यन्त दक्षि

णता का ही प्रतिपादन होता है। जपर नायक के १६ भेद बतला चुके हैं। फिर इनमे ने प्रत्येक के जपट मध्यम ग्रीर श्रथम, ये सीन-सीन भेद होने हैं श्रीर इस प्रकार से

नायन ने मुख ४८ भेद हुए। यव नायन ने सहायको नो बसलाते हैं---

पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षस्यः ।

तस्यैवानुचरो भक्त किविदूनदच तद्गुर्गः ॥८॥

प्रधान नायक की अपेक्षा पताका का नायक खन्य व्यक्ति होता है

प्रधान नायक की अपेक्षा पतीका का नायक बन्य स्पार्वेत होता है जिसको पीटमर्द कहते हैं । यह विवक्षण होता है सौर प्रधान नायक की

ब्रनुचर, उसका अक्त तथा असी कुछ हो कम गुणवासा रहता है। विश पहें विद्यारा था चुका है कि प्रामित्ह कथा के पताका घीर प्रकरी

दी नेद होने हैं। उसी बताए हुए पताका के नायक की सज्ञा पीठपर्द है। पीठमर्द प्रधान क्यानायन या सहायक हुधा करता है, जैसे मातती माथय गामक प्रकरण ने मकररूद घीर रामायण से सुदीत। ध्रम नायक

में फ्रन्य सहायकों को बनाते हैं— नामक ने सहायक बिट थीर बिदूपक हुआ। करते हैं। बिट एक विद्यासा पण्डित होता है। हेंसाने बासे पात को विदूपक

भरते हैं। एम बिद्यो विटश्चान्यो हास्यहच्च विद्रयकः।

एक विद्यो विटरचान्यो हास्यवृच्च विद्यपकः । नायक के उपयोग में आवितानी बीत श्रादि विकासों से से जो किसी दिलीय प्रकाश १५७

एक विद्या का ज्ञाता होता है जसे बिट कहते हैं। नायक के हैंसाने के प्रयत्न करने वाले को बिदूषक कहते हैं।

यह ग्रवनी आकृति और विकृति (विचित्र-विचित्र वेदाभूषा, वोल-चाल यादि) के हारा हैंसाने वा प्रयत्न करता है। 'नागानन्द' नाटिका मे शेन्यरच विट है। विदूषक के उदाहरण नी कोई खावस्यक्ता नहीं है क्योंकि वह प्राय. हरेक रूपक के आता है। प्रतः प्रसिद्ध है।

प्रय प्रतिनायक का सक्षण देते हैं---

लुस्घो धीरोद्धतः स्तस्यः पापकृद्व्यसनी रिपुः ॥६॥

प्रतिनायक—यह सुक्त, थोरोडल, स्तक्त, पाए करनेवाला लवा य्यसनी और नायक का शत्र हुमा करता है। उसका उवाहरए। रान (भावक) का रावस झोर पुषिरिकर (नायक) का दुर्योधन है।। है।।

इसके बाद नायक के सास्त्रिक गुणो को बताते हैं-

क्षीभा विसासो माधुर्यं गाम्भीयं वैयंतेजसी । लिलतौदार्यमित्यष्टी सत्त्वजाः पौरपा गुरणाः ॥१०॥

द्योमा, विलास, माधुर्य, पाभीर्य, स्थैयं, तेज, लसित, ग्रीदार्य, ये भाठ नायक के सास्यिक पूरा हैं ॥ १० ॥

नीचे घृत्गाऽधिके स्पर्धा शोभायां शौर्यदक्षते । शोभा—मोच के प्रति घृत्गा, प्रधिक गुलवाते के साथ स्पर्धा, शौर्य-शोमा, शोर्य-स्वता, इनको शोभा कहते हैं।

नीच के प्रति ध्या, जैसे 'महाबीरचरित' मे-

"ताडवा के भयवर उछल-बूद श्रादि उत्पातो के होने पर उसके मारन ने लिए नियुवत रामचन्द्र तनिक भी भयभीत न हो सके।"

मधिन गुणवाले के साथ स्पर्धा ना उदाहरण--

"हिमालम ने उस प्रदेश में जहाँ शिवजी घोर धर्जन ना युद्ध हुआ या, मैं महाराज के साथ गया थीर उननो बताया कि महाराज, यह सामने दिखाई देनेवाली वही भूमि है जहाँ व्याय वेषवारी भगवान् १५८ टशहपक

बक्र के मस्तक पर बर्जुन ने प्रकृषित होक्र वेग के साथ प्रधने दाणों या प्रहार किया था। मेरे इस क्यन के श्रवण-मात्र से ही भहाराज अपनी दोनो मूजाओ को धीरे-बीरे घुमाने लगे।" सीयंशीमा वा उदाहरण, जैसे मेरा ही पश्च-रणस्थल मे पायल

बीर योद्धा का वर्णन-- "वह इनना घायल हो गया है कि उसका गरीर प्रयो से भर गया है, शस्त्र चुमे हुए हैं, उत्साह के कारण इरपन्न रोमाच ही बवच का काम दे रहे हैं, बाहर निक्ली हुई मत-ियों ने उस**के पैर** को बांध रखा है जिससे पैर को ब्रागे बडाने म मसमर्थ है, इतने पर भी जब होश से बाता है तो लड़ने के लिए बागे

बदना है, उसके ऐसे बभों से उसके पक्ष के बायलों में उत्साह तथा रामु पक्षी योद्धाओं से सन्तर्जन पैदा हो रहा है। इस प्रकार भयानक रण रूपी सम्भे के लिए पताका के सद्ध सुक्षोभित होने वाला जयशी मा पाम वह बीर घन्य ही है। दलशीमा का उदाहरण, जैसे 'महाबीरचरित' के इस पद्म मे-

"राम ने सहस्य बच्चो से भी कठोर तथा त्रिप्रास्र ना वध वर्ने

याते सक्र के उस धनुष को जिसने कि देव-तेज से काफी गुरता वो प्राप्त कर लिया था, अट से उडाकर वैसे ही सोड डाला, जैसे पर्वन भूग पर लडा सीव दानितसम्पन्न गजदायक अपनी भूजाओं से वृक्षों को तोड ष्टानना है।"

गुन्ता के धारण करने के कारण ऐसा लगता है मानों साक्षान् वीर रन हो, प्रयवा दर्प का मूर्तिमान रूप हो ।"

दलदरारो विकारो माधुर्यं संक्षोने सुमहत्यिप । माधुर्य-महान् सक्षोन रहते हुए भी ग्रयांत् महान् विकार पैदा करने वाले काररारों के रहते भी मधुर विकार होने का नाम माधुर्य है ।

साल कर रहत सा मधुर तकार हान का नाथ थानुय है।

"मर्थारापुरयोत्तम राम हास्य तिये हुए प्रसन्नतावस रोमाञ्चित

स्पने मुलकमल को हाथी के बच्चे के दाँत की शोना को चुगने वाले
सीता के स्वच्छ क्योनों में बार-बार देच रहे हैं। साथ ही राक्षमों की
सेना की कलकल स्वनि को मुनते हुए स्पनी जटासों की गाँठ को क्स
रहे हैं।"

गाम्भीयं यहत्रभावेन विकारो नोपलक्ष्यते ॥१२॥ गाम्भीयं—जिसके प्रभाव से विकार सस्तित न हो सके उसे गाम्भीयं करते हैं ।१२॥

माधुयं और गाभीयं ये घन्तर यह है कि एक (माधुयं) मे मधुरता से पुक्त विवार लक्षित होता है, दूसरे (गाभीयं) मे विश्वकृत दिलाई नहीं पडता। जैसे—धाहूतस्याभिषेताय इसका धर्य पहले सा चुका है (पृ०१४७)।

ध्यवसायादचलनं स्यैयं विघ्नफुलादिष । . स्यैयं या स्थिरता—विघ्न-ममूही ने रहते हुए भी घपने नर्नेच्य मे प्रज्ञिन बने रहने वा नाम स्थैयं या स्थिरता है ।

जैमे, 'महाबोरचरित' मे—प्रायश्चित्त चरिष्यामि मादि । ग्रथिक्षेपाशसहनं तेजः प्राग्गत्ययेष्विष ॥१३॥

तेज—प्राण-संकट के समुपस्थित रहते भी जो प्रपमान को न सह सके उसे तेज कहते हैं 118211

र्जन-"इहाँ कुम्टड बनिया कोउ नाही,

जो तरजनी देखि मरि जाही ।"

भृज्ञाराकारचेष्टात्वं सहजं ललितं मृदु।

सित--शृङ्गार के अनुरूप स्वाभाविक स्रोर मनोहर केटा को

सलित वहते हैं।

जैसे मेरे ही पद्य मे— (बोई नायिका अपनी सखी से बहती है कि) है सिंस, स्वाभावित सुदुमारता और मनोहर सावच्य आदि तथा मने को भाग्योसित बरने वाले अपने विसाक्षों के हारा ओ (कामदेव) मुक्ते उपदेश दिया करता है यह क्या भेरे ही समान मेरे त्रियतम को भी विषम नावा से तापित नहीं करता होगा ?

त्रियोक्त्याऽऽजीविताहानमौदार्यं सद्पप्रहः ॥१४॥

ान्यानस्थाक्त्रजायपाइहानसादाय सहुद्यप्रहः । १६०॥ द्रौदार्य- चहु दो प्रकार का होता है। प्रियवयन के साथ नीवन तक्त को दूसरे वे लिए समिदित कर देना पहला भेद है। दूसरा सन्तर्गो

के सत्वार करने को वहते हैं ॥१४॥ प्रथम वा उदाहरण नागानन्द वा—"शिरामुर्ल स्यन्दत एवं रवनम्"

हि गरद, मेरे घरीर में ' बादि यह पद्य है।

दितीय उदाहरण 'बुमारसस्मव' वा यह पद—स्पाधिमण्य है स्वयं पर पहुँचने पर हिमालय उनसे बोले — "यहाँ सापनी साहाधानन है लिए मैं सापने सांग लड़ा ही हैं। ये मेरी दिश्यों हैं सौर यह मेरी पर-अर नी प्यारी नन्या है, इतम से बिगसे भी सापना नाम बने, उने सामा दिविए, नयोनि पन-मन्यति सादि जितनी भी बाह्य वस्तु<sup>ण है</sup> है तो सापनी नेवा ने लिए सुच्छ ही हैं, इमलिए उनना नाम सेते हुए भी मुक्टे हिमन हो एही हैं।

नायिवा पूरवित गुलों से युक्त भाविका तीन प्रकार की होती हैं—हदीयां,

परशीम धोर सामाग्या ।

पूर्वनदित मुगो से सुकत बहुते वा भाव सही है कि पृश्ते नामह रे. देखिए पूर्व १४७१ द्वितीय प्रसारा १६१

मं रहने वाले जिन-जिन सामान्य गुणो को गिनाया है, उनमें से जहाँ तक हो सके उनका नायिका में रहना भी वाञ्छनीय है। विभाग करने पर नायिका तीन प्रकार की होती हैं—(१) स्वीया (भ्रपनी), (२) परकीया (दूसरे की), (३) सामान्या (सर्वसाधारण की उपभोग्य) वेस्या धादि।

स्वान्या साधारएखोति तद्गुरुग नायिका तिथा ।

स्वीया-स्वीया (अपनी) नायिका के तीन भेद होते हैं-(१) मुग्पा, (२) मध्या और (३) प्रगत्भा । शील और सरलता से युक्त

सुन्ता, (२) मध्या भार (३) श्रयस्था । बाल भार सरस्ता स शुन् रहनेवाली नायिका को स्वीया कहते हैं। शील से युक्त कहने का भाव यह है कि उसका चरित्र सुन्दर हो, पतिन्नता हो, डुटिला न हो, तथा लञ्जाबती होने के साथ-माथ अपन पति के प्रसादन में निपुण हो।

मुष्पा मध्या प्रगरुभेति स्वीया शीलार्जवादिपुक् ॥ १५ ॥ शोलबती नायिका जैसे---"कुलवातिका के योवन योर लावण्य के विश्रम ग्रीर विलास को तो देलो जो प्रियतम के प्रवास के साथ ही

चना जाना है और उनने माते ही मा जाता है" ॥१५॥

सरलता से युक्त नामिका का उदाहरण असे-

"जो बिना बुछ सोचे-समभे, सरल भाव से भोजापन लिये हुए हुँसे, जिमने चाल-डाल, धूनना-फिरना, उठना-बैटना, बोलना-चालना भादि बिना किसी बनावट के, स्वाभाविक होते हुँ, ऐसी स्निया भाग्य-मानों ने ही घर भे पाई जाती हैं।"

लज्जादती नामिका का उदाहरण, जैसे---

"विमरी नज्वा हो पर्याप्त प्रभावन है, जिनको दूवरे को प्रसन्त करने नी ही प्यास लगी रहती है, ऐसी सुन्दर गुजसन्पन्न नित्रयौ भाग्यवानों के घर में हो पाई जाती हैं।"

स्वीया नायिका के भी भुष्या, मध्या और प्रगत्भा तीन भेद होते हैं। मुग्या नवयय-कामा रहाँ वामा मृदुः कृषि ।।

मुखा का लक्षण-जिसके शरीर में तारच्य का प्रवेश हो, काम का

१६२ दशहपक्र संचार भी होने तथा हो, रातिकाल मे भी जो प्रतिकृतता का प्राचरए

करती हो, मदाचित् प्रकृषित हो, तो भी उसका क्रोध मिठास निए ही हो । ऐसी नाविका को मुख्या कहते हैं।

मुख्या के भी कई भेद होने हैं —बयोमुन्या, नाममुख्या, रितनाल में प्रतिकृत ग्राचारयिती मृदुकोपना ।

वयोषुग्धा का उदाहरण---

"इमका विस्तार को प्राप्त होनेवाला स्तनमण्डल जितना ऊँका होना चाहिए बामी उस उच्चता को प्राप्त नही कर पाया है, विवर्ती की रेखाएँ यद्यपि उद्धाशासित हो गई हैं किन्तु उनके प्रत्यर प्रेमी केंचाई-निचाई स्पष्ट नहीं हो पाई है। इसके मध्यभाव में विस्तृत भूरी

रग वी रोमावली वन गई है। इस प्रवार से इसके सुन्दर वय ने गैशन भीर यौदन का संघटित रूप प्राप्त कर लिया है ।"

प्रयवा जैसे मेरा यह पद्य---"मण्डल-पर्यन्त देखावाले तथा धुरुमल को कसके बाँधे हुए नायिका

के दोनो स्तन उच्छ्वसित होते हुए मानो वह रहे है कि मेरी वृद्धि वे

लिए सीना (छाती) धपर्याप्त है।" नाममुख्या वा उदाहरण, जैशे—-

"उमकी दृष्टि बलसाई हुई रहती है, बालकीटा में अब उसे की मानग्द नही मिलता। नक्षियाँ जब नभी श्रुद्धारिय बातें करना माराभ करती हैं तो उमे सुनवे के लिए अपने कानी दो यह सामधान कर मेती

है। पहले वह बिना विभी हिचक के पूरव की गोद में बैठ जाती बी।

पर सब ऐसा मही ब रती। इस प्रवार वी नवीन चेच्टाकी सादि से वर्ट दाता मानो नई जवानी ये विषयी जा रही है।

शिवजी को इन बातों में भी कम ग्रानन्द नहीं मिलता था।

मुदुक्तेपना— नृपित होने पर जो धातानी से प्रसन्त की जीए— "पति के किसी दुरे धावरण को देख, बाला को पह्ले-पहल जब कीव धाया तो किस प्रकार से त्रीय को व्यक्त किया बाता है, इसके न जानने से वह सपनी मुजाधों को मुक्ताकर पति की गोद से बादर बैठ गई। इसके बाद टसके दिवतम ने उसकी हुक्दी को टठाकर, गिर रहे हैं, ऐसी प्रपन्नी रोती हुई प्रियतमा के स्रश्नु-विकट घोष्टों की भी सुमा।"

इस प्रशार से लज्जा तथा अनुरान से मरे हुए मुग्मा नायिका के और भी व्यवहारों भी कल्ला हो जा सकती है। जैसे—"नायक भीर नायिका दोनों बैठे हुए हैं। सामने प्याले में येव पदार्थ रखा है। नायक का प्रतिक्त उसमें पत्र हहा है। सामने प्याले में येव पदार्थ रखा है। नायक का प्रतिक्त के समुगान के साथ देख रही है। नायक उस येव पदार्थ में कुछ मुगनित हुए तथा भीड़ छोड़ना चाहता है, पर नायिका को मम है कि भगर इसमें कुछ छोड़ा गया तो प्रियतम के प्रतिक्तित्व के देवने में बाधा भा आएगी। मत उसकी मुण्य-रस आदि का छोड़ा जाना भी असहा है। मत सारिक्त भाव से रोमानित बहु न तो उस येव पदार्थ को हा पीती है और न बरतन को ही हितानी है। भीर तो भीर, बहु मपनी नि प्तालं को भी दवाकर इसिसए छोड़ती है कि नहीं पात्र में वराने के भा जाने ये प्रियतम के प्रतिविध्व-दर्शन में बाधा न भा लाए। बस, बहु दवटकी समान के प्रतिविध्व-दर्शन में बाधा न भा लाए। बस, बहु दवटकी समान के प्रतिविध्व-दर्शन में बाधा न भा लाए। बस, बहु दवटकी समान के प्रतिविध्व-दर्शन में बाधा न भी है।

## मध्या

मध्योद्धयीयनानङ्गा मोहान्तमुरतसमा ॥ १६ ॥ ज्वानी को सब कामनाओं से मरी हुई और मुक्झी को स्वयस्या पर्यंत रति में समये रहने वाली नायिका को मध्या कहते हैं ॥१६॥ इसमें बीवनक्की का उराहरक, जैके- "उनके कूलिलास सारिकी

टहारू पर्क 254

ने ग्रालाप (बातचीत) में कमी ला दी है। मस्ती से भुजायों नो घुमा-कर उसका चलना बहुत ही चित्तान पैन होता है! उसके नितम्ब ना मध्य भाग योडा निम्न हो यया है नीवों को गाँठ बढतो जा रही है उसके पारवीं मे विकास धीर सीने में कुची का बढाव जारी है। इन प्रकार मृगनयनी के यौधन की स्रोमानो देखने से ऐसा लगता है मानो नामदेव अपने धनुष के अग्रभाग से उसका स्पर्ध कर रहा है।

कामबती भध्या का उदाहरण, जैसे---

"नामदेव रूपी नई नदी ने प्रवाह में बहते हुए वे दीनों (नायर भीर नामिका), जिनके मनोरथ सभी पूरे नहीं हो पाए है, गुरजनम्पी सेतु से यद्यपि रोक लिये गए है, फिर भी लिखित के समान एम-दूसरे

पर धाष्ट्रप्ट हुए नत्र-रूपी कमल के डण्ठल से एक दूसरे ने रसक्षी जन का पान कर रहे हैं।" मध्या-सम्भोगा ना उदाहरण, जैसे---

'महिलाभी के विभ्रम विलास भादि रित के समय में तभी तर् चसते रहते है जब तक नीलकमल के समान स्वच्छ ग्राभा वासे उनके

भेत्र बन्द नहीं हो जाते।" इमी प्रकार इनकी थीरा, श्रधीरा, शीरा ग्रधीरा भादि श्रवस्थाप्रा

को भी समभना चाहिए।

यब इनने नायन ने साथ होने वाले व्यवहार को बताते है-धीरा सोत्प्रासवकोवत्या मध्या साथ् कृतागतम् ।

लेदपेट्टियतं कोपादधीरा परुवाक्षरम् ॥ १७ ॥

मध्याधीरा हास्ययुवत वज उवितयों से, मध्याधीराधीरा प्रांसुग्री सहित यत्र उक्तियों से, श्रीर शव्या श्रधीरा बोध के साथ कटुबधनों द्वारा चपने अपरायी त्रियतम को कटकारती हैं ॥१७॥

मध्या घीरा द्वारा हास्ययुक्त बन्न उक्तियों से नायक का फटकारा जाना—कोई प्रपराधी नायक ग्रपनी प्रेयमी को अभन्त करने के लि<sup>त</sup>

भागमन्त्री भवित करना चाहता है। नायिका उनको अस्वीकार करती

इितीय प्रशास १६५

रही हैं।" भौनुमो के नाम सभीरा नायिका के कटु बचनो द्वारा नायक की

पटशारता— "हे मिन, इसको जाने दो, जाने दो, रोकने की भीर भादर दिलाने की अपा भावस्थकता रे सीन के भावर से करकित इस प्रियनम पापी को

मैं देखना भी पशन्य नहीं बरती !" इसी प्रकार के मध्या के व्यवहार लज्जा से बनावृत बीर स्वय सुरत

में प्रमुख न होने बात होने हैं। बैंबें--'नायन ने प्रति धानारित धनुराग ने नारण नायिना ने वारोर
में ग्रावितन ने प्रति धानारित धनुराग ने नारण नायिना ने वारोर
में ग्रावितन भावों ना स्वतार हो गया है, उसने मुल पर पमीने में छोटी-छोटी चूँदें भारतने तथी हैं। रोमान हो याया है, नायन ने निया घोर निगों ने यहां न रहने ने नारण गुण्यन ना भय भी दूर हो गया है, रहतों पर मेंपरंभी ना लोगा औ संधा हुआ है। मन में ऐसी प्रयत हच्छा है कि नायक उसने केतो को पकटकर जोरो के साथ ग्रालियन स्पी

ग्रमृत का पान कराए, पर इतना होते हुए भी नायक, नाधिका द्वारा स्वय

यहाँ पर नायिका ने स्वय ग्राश्लेष नही निया। इसके बारे में यह

रलेप रूपी समृतपान की भानो लुब्बा है। इस प्रकार से यहाँ उत्प्रेश

यौवनान्धा स्मरीन्मत्ता प्रगत्भा दयिताङ्गके ।

विलीयमानेवानन्दाद्वतारम्भेऽप्यचेतना ॥ १८ ॥

प्रगतमा नायिका यौदन से प्रन्थी, रति से उत्मत, कामक्सामी में

हो जाने बाली होती है। [इसके कई भेद होते हैं, नीचे उनका उदाहरत

गाइयोवनां-- ' ब्रद्भुत युवायस्या वाली उस नायिका के छाती पर षे स्तन अचे उठ भाए हैं नेत्र बड़े हो गए हैं, भौते तिरछी हो पर्द बागी वा वया बहुना उसमें तो भीर वित्रमा [नाज, नगरै बादि] भा गई है, नमर पत्ती तथा नित्रव स्युत हो गया है। गति भी मई

निपुण रति के समय मानो नादक के अगों में ही प्रदिष्ट ही जाएगी, रह

प्रसार की इच्छा वाली तथा मुरतारक्य में ही धानव्दविमीर ही देरी

बहा गया है कि यह नायक द्वारा बलजोगी से केंद्र छीचे जाते हुए पत्त-

सुरत मे प्रवृत्त नहीं कराया गया।"

भी प्रतीति होनी है 1

दिया जाता है। शरदाः

हो गई है ॥"

द्वितीय प्रकास १६७

रतप्रयक्ता ना उदाहरण— "वोर्ड नायिवा यपनी समी से कहती है कि प्रियतम के सेज पर जाने के साम ही मेरी नीचे तो ग्रन्सि ध्रपने-ध्राप सुन जाती है। नितम्त्र पर बरधनी में ग्रटके हुए को छोड मारा-का-सारा वस्त्र सरीर ने अलग हो जाता है। उनके अपो के मम्पर्क से धारीर में क्रेंपर्सेणी का जाती है, उनने तक का तो मुर्के ज्ञान रहता है पर इनके बाद 'वे नीन हैं', 'मैं बवा हूँ', 'काम-जीडा पिसे वहते हैं और फैंगे किया जाता हैं, धादि बातों ना मुक्ते हुठ भी ज्ञान नहीं गहता।"

लज्जा की यन्त्रणा से जन्मवत घीर बैदण्य से युवन इस प्रवार के

प्रगत्मा वे बन्य व्यवहारी को भी समभना चाहिए।

जैसे—"तीया पर विछी हुई चादर नायिका की वाम-मन्वनयी प्रनेक प्रवस्त्रायों को कह रही है, क्योरि उसका कोई भाग साम्ब्रूल से लाल हों गया है, वोई नाग प्रमुख के पक से सलित हो गया है। कहीं पर पर्पुर के कूले दिसाई दे रहे हैं तो कहीं पर महाबर सने पद-चिह्न, ऐसे ही कहीं पर मित्रसी के चिह्न फरक रहे हैं तो कहीं पुष्प बिगरे नवर या रहे हैं।"

प्रगलभा की कोप-चेप्टा

सावहित्यावरोदास्ते रती धीरेतरा क्रुघा । सत्तर्ग्य ताडयेन्मच्या मध्याघीरेव तं वदेतु ॥ १६ ॥

प्रगत्मा घीरा प्रपने होय को छिताकर क्रयर से आदर-साकार प्रदीयत करती है, पर गुरत से उदासीन बनी रहनी है। प्रगन्ना घीरा-घीरा की नांगि बोधमुक्त कांगित से नायक की कटकारतो है और प्रगन्ना प्रधोरा जुद्द होरर नायक को दरानी-यनकाती तथा मारती नो है।।१६॥

स्रीय हिमाबर घाटर प्रदक्तित बरने वानी धीरा प्रशन्मा, जैने— 'प्रियमम को दूर ने चाने देल खरी हो एक मामन पर बैठने की स्थिति को उसने दूर कर दिया, तास्वत लाने प्रादि के बहाने से हटकर बैस के १६म दग्रहपर

साथ किए जाने बाले धार्तिगत में भी बाधा द्याव दी। प्रियतम नी सेवा में परिज्ञनों को नियुक्त करने ने बहाने उसने बातजीत करने में भी धातानानी कर दी। इस प्रकार उस चतुर नायिका ने धपनी चतुर्ध से उपचार धादि के बहाने नायक के प्रति उत्पन्न कोष को कृतार्थ कर दिया।"

रित में उदासीन रहते वाली नायिका, जैन—नायक धरने मित्र से कह रहा है कि उसकी आज की चेरटाधों से ऐसा लगता है मानों उसने मेरे सारे दोपों की जानकारी प्राप्त कर की है क्योंकि—"रित ने प्रक्रम म दस्त्रों को सोवते समय पहले वह कलह कर बैठती भी और केंग्र प्रक्रम के साथ काम म प्रकृत होने पर जब मैं उसके ध्रधर के काटिया करता या उस समय वह भींह टेडी कर काटने नहीं देनी थी, पर आज वह क्या अपने अपरों को सौंप रही है। पहले जब मैं हठाएं आलियान में प्रकृत होता था जो वह उस समय प्रतिकृत ही प्रारूप करती थी, पर आज तो वह स्वय अपने अपों को समयित कर रही है। पर सोज तो वह स्वय अपने अपों को समयित कर रही है। पता नहीं, इसने कोच करने वा यह नया दम वहाँ से सील निया है।"

पता नहीं, इसने नोप करने वा यह नया उस कहाँ से सील निया है।" इमने प्रलावा अपीराप्रगत्ना पुषित होने पर अब उत्तादन करने के साथ-साय मारती भी है। जैसे, ग्रमस्थातक मे—

"ब्रहुपित नायिना अपने नोमल जबस बाहुरूपी सितना ने पारा में दृढता से बाँधनर नायक नो अपने श्रीकागृह से बसीटती हुई सिखमें ने सामने से जानर उसने दुव्यंवहार-मूचन चिह्नो को दिसा-दिसानर यह नहती हुई कि 'फिर तो ऐसा नहीं नरोगे' रोनी हुई मार रही है भीर नायन उन चिह्नो को ढनने मा यत्न नरता हुखा हैंन रहा है।" (निव नहता है हि) ऐसे सबस्यायनन व्यक्ति ना जीवन धन्य है।"

धोराधोरप्रगत्मा मध्याधोरा के समान हो सहास बत्रोक्ति के द्वारा नायक से बोलतो है। जैसे---

"प्रपने पैर पर गिरे हुए नायन से उमनी नायिका बहती हैं— देनों, एक वह दिन या जब हम दोनों से से कोई किसी पर नाराव द्वितीय प्रशास १६६

होता तो भौंदों ना चढ जाना ही नोष ना मबसे बटा (परिणाम) होना, मीन ही दण्ड होना, ग्रायम मे एक-दूसरे को देखकर हुँम देना ही अनुग्रह श्रीर दृष्टिपान ही अनलता वा वारण होता था, पर देशों न, वह प्रेम ग्राज दम दशा को पहुँच गया है कि तुम मेरे पैरो पर पडे हो और मैं मान कर बैटी हूँ और तुम्हारी प्रार्थना पर जी मुक्क श्रमाणिनी का कोप शालन नहीं हो रहा है।"

द्वेषा ज्येट्या कनिट्या चेत्यमुग्धा द्वादशोदिताः ।

मध्या धीर प्रगत्मा नाधिकाओं के प्रत्येक मेदों के ज्येष्ठा और किंग्छा मेद होते हैं। इस प्रकार मध्या और प्रगत्मा के कुल नेदों की सम्मितित संख्या १२ होतो है।

मुन्ना ने सन भेद नहीं हीने हैं, वह एन ही रूप नी रहती है।

गयटा ग्रोर कि निकास ना जहाहण 'शमग्रतक' ने एक ही स्लोन

में मिन जाता है—"एक मानन पर बेटी हुई प्रपत्ती दोनों प्रेमिनाणों को
देत, त्रोडा ने बहाने पीछे में आगर नायन एक की आंख मूँद वर प्रपत्ते

करने माँ जरा पुमानर प्रेम से जन्यिन मननाशी तथा प्रानन्द से

विजित मुख्याली प्रपत्ती दूपरों नायिना ना प्रमन्तता ने साथ चृम
रहा है।"

नाविना ने उपैप्टा और निरुप्ता ये भेद नायन ने दाक्षिण्य धौर प्रेम दन दोनों ने नारण ही नहीं होने धिनतु ने वल प्रेम ने नारण भी होने हैं। ताक्षिण्य ने नारण ज्येष्टा निष्टा स्थानहरू नहीं होता है। जो नामर महस्वना में ज्येष्टा में सावरण नरे नह दिश्य नहराता है। इसना यह सर्थ नदादि नहीं है कि महद्यता ने माय निमने साथ स्थतहर होना है चहु में प्रदा है। इस बान नो दक्षिण नी परिमापा देन ममय स्पट नर दिया गया है।

दम प्रवार में नाबिवा वे (१) धीरमध्या, (२) सपीरमध्या स्रीर (१) धीराधान-सध्या, (८) धीरप्रभन्नमा, (८) सपीरमध्या स्रीर (६) धीराधीनप्रमन्नमा वे ६ नेद हुए। किन दनवे ज्येष्टा स्रीर

\$190 दशर ५४

वनिष्टामेद वस्वे वृत्त १२ भेद हुए।

'रत्नावली' नाटिमा में वासवदना और पतनावली रे उदाहरण ज्येष्ठा-विन्छा ने हैं। इसी प्रकार महानवियों ने और प्रवन्धों में नी इस बात को समभ लेना चाहिए ।

## परकीया नायिका

ग्रन्यखी कन्यकोढा च नान्योडाङ्गिरसे बवचित् ॥ २० ॥ कन्यानुरागमिच्छातः कुर्यादञ्जाञ्जिसंश्रयम् ।

परकीया नाविकाके दो भेद होते हैं—(१) बन्या ग्रीर (२) विवाहिता । विवाहिता को छटा तथा कन्या को धनुटा वहते हैं। प्रधान

रस के वर्णन मे ऊढा नायिका का श्रेम-प्रदर्शन कहीं भी ध्टीय नहीं है। हों कन्या के अनुराय का प्रदर्शन प्रधान और ब्रद्रधान दोनों रहों में हो सरता है।। २०॥ दूसरे नायव से सम्बन्ध रखने वाली ऊटा वा वर्णन-नाविका

भपनी पडोसिन से वह रही है—"हे बहन, थोडी देर के लिए जरा मेरे

घर का भी खबाल रखना वया कि मेरे इस लडके का पिता ग्रदान नेरा पति इस कुएँ के स्वादरहित जल की प्राय नही पीता है। देखी वहन यद्यपि में एकाविनी हैं, भीर जिस तालाव का पानी लेने जा रही हैं वहीं तमाल ने इतने घने वृक्ष हैं कि दिल में भी ग्रन्थकार का साग्राज्य रहता है। भीर भी दिवनत यह है कि बहाँ तरबट के ऐसे पुराने पुराने युध लगे हुए हैं जिनमे तीली गाँठ पड गई हैं। अत उनके भीतर ते पानी निक्लना खतरे से बाली नहीं है, खैर, मुक्ते तो जाना ही है वाहै जिन-जिन मुमीदता वा मामना वरना पहे।"

इत प्रकार की छढ़ाको प्रधान ग्रगीरस या विषय कभी भी नहीं र''ना पाहिए । इस बान वो क्षेत्रल सक्षेप में बताबा गया है । <sup>काबा</sup> यदि प्रविवाहित रहती है, पिर भी पिता, माता ग्रादि ने प्रधीत रहते हितीय प्रकाश १७१

के नारण परनीया कही जानी है। बन्या पिता ग्रादि वे बज्ञीभूत होने से श्रतस्य हो रहती है, फिर भी उसके माता-पिता ग्रादि तथा प्रपती स्त्री से छिपनर ही नायक उसके साथ प्रेम-व्यापार मे प्रवृत होता है। जैसे 'मासतीमाषय' में माधव वा मासती से तथा 'रत्नावकी' नाटिका म सरसराज वा रत्नावकी (सागरिका) से प्रेम करना।

बन्या के अनुराम को प्रधान-ध्रप्रधान दोनों रमो में बिना निमी रोत-टोक के क्वेच्छ्या वर्णन वरना चाहिए 1 अँधे 'रत्नावली' नाटिका में रत्नावली तथा 'नागानन्द' नाटिका में मनववती का धनुराम-वर्णन ।

सापारराखी गरिएका व लात्रागल्क्ययीर्स्ययुक् ११ २२ ॥ सामान्य नायिका—गरिका को सामान्य नायिका कहते हैं। यह कसा, प्रमत्नतर और पूर्वता से अकत होती है ॥२१॥

इसके व्यवहार का सन्य शास्त्रों से विस्तृत वर्णन है। मैं केवन उसे मक्षेप में बना रहा हूँ—

छन्नकामसुदार्थाजस्वतन्त्राहंयुपण्डकान् ।

रक्तेव रञ्जयेदाह्याग्नि.स्वाम्मात्रा विवासयेव् ॥ २२ ॥

यह (गणिका) वेचल धन से प्रेम करती है। छिएकर प्रेम करने बाले, जैसे पिक्टन, बिन्ना, बहाबारी खादि, धीर खानावी से धन बमाने बाले मूर्म, उच्छ पत, धाइदोगी, नधुमक, इन सोगो से बह ऐसे हाब-मान, धादि से प्रेम-प्रदर्शन करती है साली वह वास्त्रव के प्रमुक्त करी, सीर तब तब यह खपना प्रेम-स्वागर पताती है अब तक कर कर पाम पैमा रहना है। धन करण करने-पति जब उनके पाम बुछ भी नहीं राज्याना तब यह जनका सपमान करने पर में सपनी माता के द्वारा

 <sup>&#</sup>x27;मानती भाषव' प्रवर्श का नायक मायव खिलाहित है, खाः उसके लिए खपनी हुन्नी ले डिएक्टर प्रेम-मापार खलारे को बान हो नहीं उटनी व 'रतनायको' नाटिका के नायक से यह बान क्षतान पटित होती है

निवलवा देती है।

यह उसके स्वामाधिक रूप का वर्णन है ॥२२॥

किन्तु प्रहसन को छोडकर अन्य रूपकों से खास करके प्रकरण में वैत्या के वास्तविक प्रेम का हो वर्णन रहता है।

जैसे 'मुच्छकटिन' प्रकरण मे वसन्तसेना ग्रीर चारदत का प्रेम I

रक्तंब स्वप्रहसने नैषा दिव्यनुपाश्रये।

प्रहसन में नाथिन। (बेक्या) यदि नायन में अनुरक्त न हो तो भी ससने प्रेम-व्यापार नो दिखा सकते हैं, नयों कि प्रहसन नी रचना और उसका भीननय हास्य के लिए ही होता है। पर नाटकों में जहाँ देवता, राजा भादि नायक हो नहां पर गणिका का नायिका रूप में कदादि नहीं रचना चाहिए।

अब नायिका के अन्य भेदों को बताते है—

प्रातामष्टाववस्थाः स्युः स्वाधीनपतिकादिकाः ॥ २३ ॥

इनकी स्वाधीनपतिका ब्रादि ब्राठ ब्रवस्थाएँ होती हैं---

१ स्वाधीनपतिका, २. वासकसञ्जा, ३ विरहोस्कप्टिता, ४ खरिता, ५ क्लहान्तरिता, ६ विश्रसक्या, ७ प्रोवितपतिका और ८. प्रीय-सारिका ॥२३॥

ये बाट स्थीया, परकीया और सामान्या नायिका की सबस्वाएँ स्ववहार और दशा-भेद के प्रमुखार होती है। पहले बताये हुए होतह प्रकार में भेदों को बताकर फिर नायिका की बाट स्वस्थाएँ बताई गई है। दगका तात्यमें केवल इतना हो है कि उन-उन स्वस्थाओं से मुक्त नायिकाएँ दन-उन सबस्याओं ने धर्म से भी मुक्त हुया नरती हैं। सबस्या भेद बताने के समय निसीको उनने सचिक न्यून होने के सम्बन्ध में सम न हो जाए, सत स्टीकरणाई साठ तिसा दिया।

नायिका की ये चाठो अवस्थाई एक दूसरे से भिन्त हुआ करती हैं। उनका प्राप्त में किसी के भीतर किसी का अन्तर्भाव नहीं हो सकता

दशरूपक १७४

कि दूसरी ने कहा कि हे सखि, सूत्रिय की अपने हाथो-मनित मनरी नो इस प्रकार दिखाती हुई गर्व कर रही है यह उचित नहीं है, दूसरी

वोई भी इस प्रकार के सौभाग्य का पात्र बन सकती थी यदि हाय की क्य केंग्रो वीच में ही विष्त न कर देती।" मुदा वासकसङ्जा स्वं मण्डयत्येष्यति प्रिये ॥ २४ ॥

"भन्य नोई रमणी हस्सपल्लव के भाषात से मुखकमल की वायु को रोककर नाक के ठिड़ो की धोर से चठने वाली मूल-सुगिय नी

चिरव्यव्यक्षीके तु विरहोस्कण्डितोम्मनाः। विरहोस्कब्लिः — विरहोस्कंटिता मायिका उसे यहते हैं जिसरा पति निश्चित समय पर नहीं झाता । इसे अपने प्रिय का कोई झदराय गापूर नहीं रहता। प्रिय के विरह मे उससे मिलने के लिए इसका चित उत-

२ दासवसञ्जा---उस नायिका को वासवसञ्जा महते हैं जो

टित एहता है।

प्रसन्नता के साथ सब म्युंगारी से सजकर प्रिय के ब्रागमन की प्रतीक्षा

करती रहती है।। २४॥ जैसे-भाष का यह पद्म-

परीक्षा कर प्रसन्त होने लगी।"

हितीय प्रशास १७५

ज्ञातेऽज्यासङ्गविकृते खण्डितेर्घ्याक्याधिता ॥ २५ ॥ खण्डिता—उसे महते हैं जो पति के शरीर में श्रन्य स्त्री के साथ किए गए संमोग के चिल्लों को देखकर जल उठे ॥ २६ ॥

जैसे—"कोई नायित्र अपने पति के दारीर में परस्तीहत समीव-चिह्नों को देखरर उससे कहती है—फ्रम्य क्वी के हारा किए हुए ताजे नखतत को तो कपडे से कक्कर दिया रहे हो, उसके हारा किए गए दन्तपत को भी तुमने हाथों से हक लिया है, पर यह तो बताप्री कि परस्त्री के मुभोग को व्यवत करने बाला जो सुन्दर मुवास तुन्हारे इर्द-गिर्द फ्ला रहा है, मला उसको की रोक सकोये?"

कलहान्तरितामर्यादियूतेऽनुशयातियुक् ।

क्सहान्तरिता—उसे कहने हैं जो बियतम को क्षमा-याचना करते समय फटकार बैठे सीर बार में ब्रापनी करतुत पर परवाताय करे।

जैसे, बोई नायिवा सोच रही है—पता नहीं, सवियों ने मान में कौनसा ऐगा गुण देसा था जो मुक्ते करने को वहा धोर में भी हन-भागिनों उसे कर बैठी। यब बया कर है त्रियसम ने मानर मुक्ते मनाया धौर जब मैं नहीं मानो बिल्ड उनटे उसका तिरस्वार कर बैठी दो वह हुगी होकर चला गया। यब उसके वियोग में मेरी यह हालत है कि निरमास मूंह मो जला रहा है, हृदय को मय रहा है, निया मा नहीं एही है, राद-दिन रो रही हूं, मा गूम रुए हैं। न मालूम उम समय मुक्ते क्या हो गया था जो मैं सिरमों भी बातों में सावर पर पर बहुए वियन में वेरियो कर बीठी में सिरमों भी बातों में सावर पर पर बहुए वियन में वेरियो कर बीठी।

विप्रतत्योक्तसमयमञ्जाप्तेऽतिविमानिता ॥ २६ ॥

वित्रसस्या—उसे बहुते हैं जिसका प्रियतम बताए हुए समय पर म आए। ठमे जाने के बारए। उसे प्रयमान भी मालूम होना है भन वह विज्ञानिता या प्रपमानिता होनी है ॥ २६॥

वैसे-नोई प्रपन्त दूती से बह रही है- दूनी, उठ, प्रवर्मे जा

दशहपर १७६

रही हूँ नयोजि रात्रि नाजो समय उमने माने के लिए तय नियाय बहतो बीत गया, पर न भ्रासना, ग्रत यहाँ से मब चला जाता है।

दूरदेशान्तरस्ये तु कार्यतः प्रोवितप्रिया ।

प्रोचित्रत्रिया-दसे कहते हैं जिसका पति किसी कार्यवरा विदेश

चलागवाहो। जैसे 'ग्रमश्यतक' मे-"कोई प्रेयसी प्रपने प्रियतम की बाट जोह

रही थी। जहाँतक ब्राँख देख सक्ती थी उसने वहाँतक देखा पर

उसने त्रियतम की बाहट न मिल सकी। निदान, खिन्न हो उठी क्योंकि

पिंबनो वा प्राना-जानाभी बन्द हो चलाथा, सन्द्या हो झाई थी,

दिशाक्षो मधीरे-धीरे ग्रन्थकार का प्रसार ही रहा था। सो, निराय हो उमन घर मे प्रवेश पाने के लिए एक पैर बढाबा ही या कि उस<sup>के</sup>

मन में यह बात आई कि त्रियतम कही बातान हो, किर क्या थी, उसने अपनी गर्दन को धुमाक्तर देखना ग्रारम्भ कर दिया।" कामार्ताभिसरेत् कान्तं सारवेद्वाभिसारिका ॥ २७ ॥ म्रमिसारिका — काम से म्रासं (ब्याकुल) हो जो स्वयं प्रियतम से मिलने जाए प्रयवा उसे प्रपने पात बुलाए, उसे प्रभितारिका नही

हैं ॥ २७ ॥

बस बह उसी का प्राणनाय होगा।"

ठीन है। घब इतने बड़े ग्रापमान-महन के बाद भी जी जीती बद बाए

हितीय प्रकाश १७७

मिलनुपुर मुद्योजित हो रहे हैं। बत तेरे उम त्रासयुवन देखने श्रीर सराक्ति चलने ब्रादि से क्या लाग ?"

जैसे और भी—"नोई नायिना प्रियनम ने सिममरण कराने (बुलाने) ने लिए दूर्ती नो भेज रही है, सीर उसने यह रही है कि है दूरी, उनने पाम जानर इस प्रवार से चतुराई ने नाय मेरा सदेश जतनाता तानि सेरी लचुता भी व्यवन न होने पाए, साथ ही उनने मन में मेरे प्रति नरणा भी उरान्न हो जाए।"

चिन्तानिःश्वासवेदाधुवैवर्ण्यःलान्यभूषसैः । युक्ताः षडन्त्या द्वे चासे क्षीडीज्ज्वन्यप्रहर्षितैः ॥ २८ ॥

इन उर्गुक्त बाठ बनस्यावाली नायिकाओं में शुरू की हो अर्थात् स्वाधीनपतिका और बासक्सक्जा सवा प्रसन्त रहती हैं, तथा श्रृगा-रिक भीडा प्रावि में सभी रहनी हैं। ये इनकी छोड रोय छ जिन्ता, नि स्वास खेद, अन्नु, ग्लानि, वंबर्ष्यं, प्रासूपपासान आदि से पुक्त होती हैं॥ २८॥

परकीया नायिका की, वह बाहे ठडा या अनुडा, इन अवस्थाओं में के बल तीन अवस्थाएँ हो सकती है। येप पांच अवस्थाएँ इनकी नहीं होनी, क्यों के ये परायों न होती हैं। परकीया नायिका सकेत स्थान पर चलने के पहने विरहोत्काटिया रहनी है, और बाद में विद्रूपक प्रादि के साम प्रात्तिक करते से अभिकारिका तथा मकेतस्थ में देवाल प्रियतम से यदि मेंट म हो सकी ती विप्रलब्धा हो जाती है। 'माल-विकालिमन' नाटक में रानों के सामने राजा की परवरतात देव माल-विकालिमन' नाटक में रानों के सामने राजा की परवरतात देव माल-विकाल हहनी है—'हाँ, प्रांज जो नहीं हर रहे हैं उन पहाराज का साइस, उस दिन देवी इरावतीओं के आने पर मैं मली भीति देख पूरी हैं।'

यह मुनकर राजा कहते हैं —''हे विदा के समान लाल-साल घोंटों यामी ! प्रेमी सोग यों दिलाने के लिए सभी से प्रेम करते हैं। पर हे १७८ दशहरह वटी-वटी बाँखो वाली <sup>।</sup> मेरे प्राण तो तुम्हे ही पाने की ब्राझा पर

सटके हुए है।" खण्डिता नाधिका का पति जैसी प्रमुत्य विनय करता है यह बात यहाँ नहीं पाई जाती। यहाँ पर राजा वा मासविका से इस प्रकार कहने का उद्देश्य है कि मासविका प्रपनी ध्रवीयता के शास

राजा को हर सरह से रानी के ध्रधीन समक्ष निसंश न हो जाए, प्रत उसके प्रन्दर विश्वास पैदा करना है। मासविदा परकीया नायिका है, प्रस्त वह खब्डिता नहीं हो सरती,

मयोकि परकीया के सन्दरम्य से स्वकीया खण्डिता होती है, ऐसा नियम है। स्वनीया के सन्दरम्य से परकीया खण्डिता नहीं होती । यहाँ तो राजा दिलाण नामन है जिनका पहली नायिका के साथ सहदयतापूर्वक व्यवस्थार करना जनित हो है।

हार करना जिनत ही है। इसी फ़कार प्रियतम के परवैच में होने पर भी परनीया प्रोपित-पतिया नहीं होती। समागम के पूर्व देश का व्यवधान परकीया घीर

पतिका नहीं होती। समागम के पूर्व देश वर व्यवधान परकीया होर नायक के बीच वहा ही करता है। इसलिए वह मिलते ने लिए उत्सुक किरकोशकरिका साथ को सकती के

विरहोरकटिता मात्र हो सकती है।
नाविकों के कार्यों से सहायता परेचाने वाली दतियाँ---

नाविका के कार्यों में सहायता पहुँचाने वासी दूर्तियाँ— दूरयो बासो सखी कारूधित्रियी प्रसिवेशिका ।

हूर्यन वास्त संस्था कारूधात्रया त्रासवाहरू । सिद्धिनी शिल्पिनी स्व च नेतृमित्रगुरमान्विताः ॥ २६ ॥ सामी सबी, योबिन, घर के लाग-राज वरने वासी नीकरानियाँ, पर्योग

सिन, भिक्षुणी, खित्र बादि बलाने वाली सिन्धी बादि जो नायक के सहार के

नियों ने समान गुणवामी होती है, नाविना को सूतियाँ होती हैं ॥ २६ ॥ नाविना घपनी नार्य-सिद्धि के सिए स्वयं भी दूती वन जाती हैं। नावन ने सहावन पीठमर्द सादि से जो गुण होते हैं उन्हें दूतियों के संदर

भी रहा चाहिए। जैंने 'मालतीमाधव' प्रगरण में — "उसे बाहत्रों ना पूर्ण ज्ञान है, ज्ञान के ही सनुरूप सहज बीप है,

युषों में प्रयक्तिया प्राप्त तर की बाणी है। समय की पहचान, प्रतिभी

इश्हपक

तोभा कान्तिक्च वीप्तिक्च माधुर्यं च प्रगत्भता । ग्रोदार्यं धैर्यमित्येते सप्त भावा श्रयत्नजाः ॥३१॥ लोला विलासो विच्छित्तिविश्रमः किलकिञ्चतम् । मोट्टायित कुट्टमितं बिच्चोको सलितं तथा ॥३२॥ विह्वतं चैति विज्ञेया दश भावाः स्वभावजाः । निर्विकारात्मकात्सस्याद्भावस्तत्राद्यविक्रिया ॥३३॥

इनमें भाव, हाव चौर हेला, ये तीन चर्गो तें उरपनन होते हैं। शोभा, कान्ति, तीप्ति, माधुर्ग, अगस्भता, भोटार्ग, धंर्म, ये तात आर विना बरन के ही पैदा होने हैं, इतीबिल इनको अवस्तन परिते हैं। शोला, विलास, विच्छित, विश्वम, किर्ताकवित, मोट्टायित, हुट्टीवत, विस्थोक, लित्त तथा विष्टुंत, ये बस भाव स्वभावन चर्चाद स्वमाद हे पैदा होते हैं।। १०-३३।।

नीचे इनवे बारे में बताया जाता है— भाव — जन्म से विकार-रहित मन से विकार के उत्पन्न होते को भाव कहते हैं।

विवार को सामग्री रहते हुए भी विवार का न पैदा होता सहर (भाष) वहलाता है, जैसे—"हभी बीच घरनारामों ने नावनामाना सारस्थ कर दिया, पर सहादेवती टल्स्सी-अस न हुए, अपने स्मात में ही समें रह गए, स्थोकि को सोग ध्यमे सन को बसा से कर लेते हैं उनकी गमाधि क्या असा कोई छुटा सकता है।" इस प्रकार के विवार रहित भन से पहले-यहत विवार ने पैदा होते से दगना नाम आप है। मिट्टी धौर जात के स्थोग से बीज ने शहुरित होने को पहले बीज को

त्रो दसा होगी है, वेशी हो सन को दसा वा नाम विवार है। इस प्र<sup>प्राट</sup> गर्वप्रयम मन में थाए हुए विवार का नाम भाव है—जैसे दृष्टि सार-गर्ता विभन्ति" (पृ॰ १६२ पर दसका सर्थ निला जा पुदा है।) सर्पा वैसे 'कुसारनाभव' से— 'वायदेव ने पार्वसीओं को पुत्रा करते देते १८२ जैसे--- 'श्रुगार करने वाली सुहायिन स्त्रियो ने पार्वतीजी नो

स्नान ग्रादि कराके कोहबर में ले जाकर पूरव की ग्रोर मूँह करके दिस दिया। अप्टमार की सब यस्तुएँ पास मे होने पर भी वे सब पार्वतीजी को स्वाभाविक सोभा पर ही इतनी लट्टू हो गई कि कुछ देर तक तो वे सुधदुष भूलकर उनकी ग्रीर एकटक निहास्ती हुई वैठी रह गई।"

दशरूपक

इत्यादि, भौर जैसे 'सभिज्ञान शाकुन्तल' मे -महाराज दुप्यन्त ब हुन्तला के विषय में कह रहे हैं— "मेरी दृष्टि मे उसका रूप वैसा ही पवित्र है जैसा बिना सूंबा पूर,

नलों से बिना काटे हुए पत्ते, बिना विधा हुआ रत्न, बिना चला हुया नमा मधु, तया विना भोगा हुन्ना अलग्ड पुष्यो का फल । पर पता नहीं इस रूप के उपभोग करने के लिए ब्रह्मा ने किसे बनाया है।"

मन्मथामापितच्छाया सैच कान्तिरिति स्मृता ॥३५॥

कान्ति—काम के विकार से बढ़ी हुई बरीर की झोमा को कार्ति

कहते हैं ॥ ३५ ॥ (बोमा ही जब प्रेमाधिक्य से बढ जाती है तो उसे कान्ति कही हैं।) जैसे नायिका के पङ्ग सुख के समिलापी सन्धकार ने जब उसके मुख के पास जाने की इच्छा की तो वहाँ से उसे नायिका ने मुप्तवन्द्र नी शिरणो ने निवास भगाया, उसके बाद जब वह उसके स्यूल हुवीं के

पास तया हायो के पास डेरा डालने के लिए गया तो वहाँ पर भी कुच भीर हाथो की कान्ति द्वारा दुत्कारा गया। इस प्रकार हर अगह से तिरस्कृत वह भन्धकार ऐसा लगता है यानी प्रकृषित हो पेरी। पर ही जाहर चिपव गया हो।

इसी प्रकार कान्ति का उदाहरण वाणमट्ट भी 'वादम्बरी' का मही दीता युतान्त भी है।

ग्रनुस्वराखं भाष्रयं मापुर्व-शिक्ष गुरा के रहने से नाविका हरेक ग्रदस्या में कारी मालम होती है उसे माधुर्य कहते हैं।

जैसे, 'ग्रमिज्ञान शार्न्तल' में—

"भी जानता जा जा पुरात माना भी किया है और चन्द्रमा में पढ़ी हमा के पढ़ि रहने पर भी क्या मुन्दर लगना है और चन्द्रमा में पढ़ी हूमा के उसकी दोना को बढ़ाता है, बैंसे ही यह रमणी चम्मल पहुने हुए भी बढ़ी मुन्दर लग पहुंगे हैं। बन्तुत बात यह हैं कि मुन्दर सारी र पर हरेक बस्तू मुन्दर लगती है।"

वीप्तः काग्नेस्तु विस्तरः ।

होपित—पत्यस्त विस्तार पाने पर कारित हो दाति कहलाती है। जैसे— "प्रार्थना करती हैं, क्यी प्रपत्नी मुखबड की ज्योग्ना में प्रत्यकार को दूर समाने बालों । प्रश्वन्त हो जायो, मेरी बाज मानकर प्रव पाने मत बड़ो । हे हतातिनी, जू प्रत्य बनिसारिकाओं की किन्द्र "प्रतिराति नभ मे चन्द्र पूरन हृदय वह तापत रहे। शह मृत्यु सो आगे वरे कहा, मदन चाहे नित दहे॥

मम इध्ट पावन परम, पितु श्री मातु कुल की मान है। तिहि त्यागि वस चहिए न मोहि, प्रानेस श्री यह प्रान है।

तिहि त्यांगि वस चहिए त मोहि, प्रानेस मी यह प्राने हैं।। प्रियारुकरण लीला मधुराजुविचेष्टितः ॥३७॥

सीला—नायिका द्वारा प्रियतम के शृङ्कारिक वेशव्यों, वेशमूया, बातचीत आदि के अनुकरण किए साने का नाम सीला है।।३७॥

जैसे मेरा (धनिक का) ही पद्य-

"उसका देखना, वोलना, बैठना चादि सब ठीक उसी प्रकार के होंगे हैं जैसे उसके प्रिययम का देखना, बोलना मादि उसके सीतो की साथ होता है !" म्रथवा जैसे — "उसका कहना, बोलना, धाना बैसा ही होता है जैसा इसका मादि !"

तस्कालिको विशेषस्त् विलासोऽज्जकियादिव ।

विलास—प्रियतम ने ग्रावलोक्त ग्रादि के समय नायिकामों को भाकृति, नेम तथा चेष्टामों में जो विशेषता ग्राजाती है उसे दिसार करते हैं।

भेते 'मालतीमाधव' में भाधव मालती के विषय में कहता है-

"इतने ही में जो वसुवाने वरधो

वहिये नहि यैनिन मे चतुराई।

जय सील भनेक विलासिन को,

प्रवटाइ छटा चहुँचा छिटबाई ॥ बहु सात्त्विक भाव सनी मिस काउने,

ऐसी मधीर जलाई दिसाई।

एक। भयार जलाइ ।दसाइ। बहुबाल बरी-बर्टी श्रीसिनि की,

मनु भेनु महीप ने बापु पदाई ॥"

विस्टिति—सस्य वेश विश्वास के होते हुए भी नाविका के सर्वों में सर्विक कमनीयता के बा आने का नाम विश्वित्त है.4

ग्राम्स्परचनात्पापि विचित्रतिः कान्तिपोषपृत् ॥३८॥ धर्यानु रान्ति विससे श्रविक चमत्त्रत हो उठती है उसरी विन्छिति बहते हैं ॥३=॥

वैसे 'नुसारनम्मव' मे-"पार्वतीकी ने नानों पर सटके हुए जी के धनुर तथा लोग में पूर्व तथा गोरोचना लगे हुए गोरे-गोरे गाल इतने मुन्दर लगने लगे कि सबकी बांखें हठान् उनकी बोर निष जाती थी।"

विश्रमस्वरया काले भुषास्यानविषयंय ।

विभ्रम-शौप्रतावश श्रामुबर्गों को सहाँ पहनना चाहिए वहाँ न पहनहर ग्रन्यत्र पहन लेना, इस प्रकार के आवरण को विभ्रम कहने हैं।

वैमे-"रान हो बाई चन्द्रमा निक्ल बाबा, यह देख नाविका है गौ प्रतावन प्रिय से मिलने के लिए बाभूपणों को पहनना बारम्भ कर दिया । दघर वह गहना पहन रही थी श्रीर उधर इसकी समियाँ इसके प्रिय की दुनी से बानचीत करने से नगी थीं, शो प्रिय की दातों की मुनने ने लिए इसन भी अपने मन और ब्रांचा नो उधर ही लगा दिया, निदान जो प्राभूषा वहाँ पहनना चाहिए या, समे वहाँ न पहननर बन्यत्र ही पहन बैठो, यह देख उन्तरी मिलदी हैंस पढीं।"

परवा बैना मेरा (धनिश का) ही पद-"नादिका धानूपणों से भारते भयो को सुजा ही रही थी कि इतने में उसने सुना कि उसका प्रिय-तम बाहर था गया है। बम बया था, भीध्र ही मंब-धववर तैयार हो गई। इस पर अन्धी करने का परिणाम यह निक्का कि उसने मास में धरन, भौतों में महाबर और बत्रोती पर जिलक कर लिया।

बोपायुर्वभीत्वादैः संबरः विलक्षिञ्चतम् ॥३६॥ रिपारिज्यन-उस बाबस्या को कहते हैं जिसमें नायक के सम्पर्क से माविश के अन्दर बोच, धन्न, हुचं, मय, वि चारों मिले हुए पैश होने हैं ।३६।

वैदे मेरा (पनिक का) ही पद्य-

नायर चारते भित्र के सहना है—"एनिजीश बन्दी दुक में मैंने दिशी

१८६

प्रकार से मौता पाकर ना, सा धादि वाक्यो को वहने वाली नायि<sup>का के</sup> ग्रधरों को तो नाट ही लिया। मेरे इस व्यवहार से पहले तो इस<sup>ते</sup> भोहो को चढाया, फिर बुछ लज्जा का अनुसब विया और उसके बाद थोडा-योडा रोनाभी भ्रारम्भ वर दिया। इसके बाद उसके मुहापर ईषद् हास्य दिखाई दिए, इतने मे नया देखता हूँ कि वह फिर शोष <del>है</del> विचलित हो उठी।"

दशहपक

मोट्टायित-प्रियतम-सम्बन्धी मनचाही बचावार्ता को सुनने तदा सोवते-सोवते शिव के धनुराग में तन्मय (सराबोर) हो जाने का नीन

मोट्टाविस सु तद्भावभावनेष्ट्रकयादिषु ।

मोट्टावित है। जैसे 'पद्मगुप्त' काव्य के इस पद्य में — "नाविव प्रिय के चित्र को देख रही थी, देखते देखते उसके मुद्

राग में इतनी विभोर हो उठी कि उसने उस वित्र को ही प्रियतम समस् भट से लज्जा के मारे अपनी ग्रीया को टेडा कर लिया।"

प्रथवा जैसे—''ऐ भोली, हृदय मे किसे रखकर रोगाञ्चित है

रही है, और सुन्दर ग्रपांग प्रदेश, जिसमे दशीनिकाएँ जैमाई के हाल उल्लक्षित हो रही हैं, धारण कर रही है। और तो भौर, उसके का<sup>रण</sup> सेपी यह दसा हो पाई है कि तूसोई हुई-सी, चित्रलिखी-सी वर्ता मात्र संविद्याच्य हुवयवाली हो गई है। हे सपने-झाप प्रपना विनार चाहनेवाली! अञ्जासमो कर रही है ? साफ-साफ बतायो भी ती सही मुभे तो ऐसा लगता है वि तेरे चन्दर में डिपा हुमा काम ही तुभे धनह

प्रवाद से सता रहा है।" द्ययदार्थंसे मेरा (धनिक का) ह्ये पद्य---मोई हुती नायन से उसके प्रेम में मरनेवाली विसी नायिना ने बारे

में बताती है—'हे सुन्दर! सखियों के मन मे अब यह झाता है हि उसने मन में छिपो हुई वामवासना को जरा उभार दिया जाए हो ये सब तुम्हारे अनुषम सीन्दर्य आदि था वर्णन वारना आरम्भ वर देती हैं। फ्रीर जब तुम्हारा बर्णन भ्रारम्भ हो जाता है तो फिर क्या कहना? उस चौडों पीट और मोटे स्तनो वासी के श्रग-प्रत्यगों में मरोड पैदा हो जाती है, जैमाई श्राने लगती है, और मुजाएँ बसयित हो जाती हैं। (दोनों हाथों के द्वारा अपने सीने को क्सना यहाँ बसयित सब्द से धरिमेंबर है।)

सानन्दान्तः कुट्टमितं कुप्येत् केशाघरग्रहे ॥४०॥

हुट्टिनित — सम्भीग में अनुत्त होते गमय नेतायहरा चीर प्रधासत है नारण भीतर से असन होने हुए मी कपर से नायिताओं द्वारा जो कोर का अदर्शन होता है उसे बुट्टिमित कहते हैं।। ४० ।।

जैसे—
"हापी वे सबमाग सर्थान् स्रोतियों से रोके जाते रहने पर भी
प्रियनम ने द्वारा कोटों के नाट लिए जाने से मूठमूठ का रदन स्रौर सीत्वारम के द्वारा कोटों के नाट लिए जाने से मूठमूठ का रदन स्रौर सीत्वार करने वाकी नायिकार्यों की जय होने, जिन्ना इस प्रकार का सीत्वार रिकर्पी नाटक के विश्वम का नारी पाठ है सपना कामदेव का सहस्वपूर्ण सादेश है।"

गर्वाभिमान।दिष्टेऽपि विद्योफोऽनादरिक्या ।

विकाश - मर्व और अनिमान से इच्छित वस्तु के अनादर करने को विकाश कहते हैं।

जैसे मेरा (धनित ना) ही पदा---

"मैंने भौहों को तानकर घनावर के साथ प्रियतय को जो देखा कौर हम प्रकार से जो उसकी धवहें मना कर दी, इनका परिचाम यह हुवा मि सेता भी मनोग्य कीन्ताय को हो सका। घरो, नैने भी शो हर कर हानी। केवल मौही का तरेरना ही क्या होना सो भी नहीं। मैंन बहाने से जीश के पावेश में निलंद मीट केशों को हाथों से विशेष रिया मीर मामवेश में मनेक सार धपनी जीती सामी है मौचल की स्त्रनों पर से उदासा भीर एसा।" **†**55 बहाहपूर्क

मुक्माराङ्गविन्यासी मस्रुणी लिततं भवेत् ॥४१॥ सिलत-कोमल प्रयों को सुकुमारता के साथ रखने का नाम सितत है ॥४१॥

जैसे मेरा (धनिक ना) ही पदा---

"इसका भोहो को नचाकर किसलय महश अंगुलियों को ४०० उधर घुमाकर बोलना, भौर लोचन के संघलो से झित मधुर देखना, तथा स्वच्छन्दता के साथ जाते हुए कमलवत् चरणो का रखना प्रारि देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह कमलनयनी चढती हुई जवानी के द्वारा विना सगीत के ही नचाई जा रही है।"

प्रा'तकालं न यर्ब्रूयार्बीडया विहतं हि तत्। विहत-उपयुक्त भवसर के पाने पर भी लज्जा के कारण न दोन

सकने का मान विहत है।

जैसे---

"पल्लव सद्व कान्तिवाले पैर के भौगूठे से घरती को सोदती हुई मौर उसी बहाने कालिया से चित्रित अपने चचल नेत्रों को मेरे करा फेंकती हुई, सण्या से नम्न मुखवाली, तथा बोलने की चाह से फडनते हुए मधरोवाली प्रियतमा सामने खडी होते हुए भी लज्जा के कारण जो-दुछ न बोल सकी, ये सब बार्ते स्मृति-पद मे आते ही हृदय हो

दूरियने लगती हैं।"

इसके बाद नेता के घन्य कार्य-सहायको को बताते हैं-

मन्त्री स्वं वोभयं वापि सला तस्यार्थचिन्तने ॥४२॥ धपने रोष्ट्र सथा ग्रन्य राष्ट्र की देखभास ग्रादि मानलों में राजा 🖺 सहायक मन्त्री हुवा करते हैं। कहीं राजा स्वयं श्रकेले कार्यभार वहने

करता है। वहीं राजा और मन्त्री दोनों सवा कहीं मन्त्री ही ॥४२॥

मन्त्रिणा सलितः शेषा मन्त्रिस्वायत्तसिद्धयः । कपर बताये हुए नायकों में से भोरलसित नायक प्रयंतिति के तिए द्वितीय प्रकाश १८६

मन्त्रियों पर प्रवसम्बत रहा करता है। प्राय नायकों (धीरोदास, धीर-द्यान्त और पीरोद्धत) मे वहीं राजा कहीं मन्त्रो ग्रीर कहीं दोनों कार्य-भार को बहन करते हैं।

इनने लिए (धीरोदात्त, धीरशान्त, धीरोदत ने लिए) नोई खास नियम नहीं है कि प्रमुख नायक का सहायक मन्त्री हो, ध्रयवा स्वय हो प्रथवा प्राप भी हो प्रोर सन्त्री सी।

ऋत्विबपुरोहितौ धर्मे तपस्विबहावादिन ॥४३॥ राजा ने धार्मिक कार्वों ने सहायता पहुँचाने वाले ऋत्विक्, पुरोहित, तपस्वी भीर बहाजानी हमा नरते हैं।

वेद ने पठन-पाठन करनेवाले और उसके व्याख्याता को कहाजानी कहते हैं। पुरोहित स्नादि के सर्व बतलाने की कोई सावस्यकता नही है क्योंकि इनके सर्व तो स्पष्ट ही हैं।

दुष्टो के दमन करने को दण्ड कहने हैं।

सृहत्कुमाराटियका दण्डे सामन्तसैनिकाः।

राजा के दण्डकाओं में सहायता पहुँचानेवाले मित्र, कुमार, बाटविक (सीमारक्षक) सामन्त बीर सैनिक होते हैं।

ये प्रयोग प्रयोग-प्रयम प्रमुक्ष नायों में लगाए जाते हैं प्रयोग जो जिस नायें ने योग्य होना है यह उस नायें में राजा नी सहायता पहुँचाया नरता है। जैसा नहा भी है—

प्रन्तःपुरे वर्षवराः किराता मूक्वामनाः ॥४४॥ स्तेन्द्रामीरदाकाराद्यः स्वस्वकार्योपयोगिनः ।

मात पुर में बचीब (नयुंसर) किरात, मूँगा, बौना, स्लेच्छ, झहीर, शबार, ये सब सेवा करने वे निए रहते हैं। देनमें जो जिस कार्य के उप-युक्त होता है उसे वह कार्य करने को दिवा जाता है।।४४॥

धवार राजा का साला हुया करता है। यह निम्न जाति का हुया करता है। (यह राजा के निम्नजातिवासी पन्नी का भाई होता है।) ज्येदडमध्याचमत्वेन सर्वेषां च त्रिष्पता ॥४५॥ सारतन्याञ्चलोक्ताना गुराानां खोत्तमाविदा । एवं नाटये विवातस्यो नायकः सपरिच्छवः ॥४६॥

एवं नाट्ये विञातस्यो नायकः सपरिच्छवः ॥४६॥ पहले बताये हुए नायक-नायिका, दूत दूती, पुरोहित, सन्त्री प्रारि

के उत्तम, मध्यम बीर सबभ, इनके द्वारा प्रत्येक के तीनतीन मेद होते हैं। यह को उत्तम, मध्यम बीर झवम मेद हैं बर गुरुो को घटती दढ़ती को ध्यान में रखकर नहीं किया गया है, किन्तु मुखाधिक्य को ध्यान में रखकर किया गया है।।४४-४६।।

षय अपर बताबे हुए नायक के व्यवहारों को बताते हैं— तद्य्यापारास्मिका गृत्तिइच्तुर्था तत्र केंक्षिकी। •नायक ग्रोर नायिका के व्यवहार को वृत्ति वहते हैं। यह बा

 नायक प्रीर नायिका के व्यवहार को धृत्ति वहते हैं। यह बार प्रकार को होती है— १. कंशिकी, २ सात्वती, ३ झारमशे झौर ४ भारती।

भीतनृत्यविलासाद्येष्ट्रं दुः शृङ्गारचेष्टितैः ॥४७॥

र्फीशको मूर्ति—क्षेतिको मृत्ति उसे बहते हैं जिसमे शायक-नाधिको पर स्वयहार गीत, कुरम, बिलास तथा कुन्दारिक खेष्टाओं (काम की इच्छा से मुक्त खेष्टाओं) के द्वारा सुकुतार शको प्रास्त हुसा रहता है।।४८॥

नमैतिरिक्जन्ततस्कोटनव्यार्थेश्चतुरिङ्गका । वैशस्यक्रीडितं नर्ने प्रियोपच्छन्दनात्मश्च ॥४८॥ क्रीशरी रे चार मेद होते हैं –१. नर्म, २ नर्म पिष्टम, ३ नर्म

केंब्रिकी ये चार मेड होते हैं — १. वर्म, २ नर्म क्लिंड , ३ नर्म हरोट मौर ४ नर्म गर्म। १ नर्म — ब्रिज को असन्म करने वाकी चाहुर्थ से पुक्त की डांकी

नमं रहते हैं। इसके तीन थेद होते हैं—१. हास्य क्रमें, २. सहस्य रहहार नमं धीर ३ सहस्य भय नमं। इसमें सहस्य रहहार नमं के ो तोत थेद होने हैं—१ आहंशेपद्योप नमं, २. सस्थीग नमं धीर दितीय प्रकाश १६१

३ मान नर्मा सहास्य मय नर्मके भी दो भेद होते हैं— १ शुद्ध भय नर्म, ग्रीर २ श्रृगाराल्बर्गत भय नर्म।

हास्येनैव सभ्युङ्गारमयेन विहितं निघा ।

भय नमं या सहास्य भय नमं के भी शुद्ध धीर म्युगारान्तर्गत भय-मर्म ये दो भेद होते हैं।

भारमोपक्षेपसंभोगमानैः शृङ्कार्यपि जिघा ॥४९॥ फिर ये बालो,बालोबेष झौर चेटा, इनके द्वारा सीन तीन प्रकार के

होते हैं। गुडमङ्गं भयं द्वेषा श्रेषा वान्वेषचेष्टितंः।

सर्वं सहास्यमित्वेवं नर्मा द्वादश्योदितम् ॥५०॥

सर्व सहस्यामस्यव नमे द्वादशयः।दतम् ॥५०॥ इस प्रकार सब मिलाकर बुल १० भेद होते हैं ॥४०-५०॥

पनिक की वृक्ति—प्रियतन को प्रसान करने के लिए किये गए परि-हास का नाम नर्म है। इसमें प्राप्य परिहास का होना निषिद्ध है। यह रे गुद्ध हास्य, २. महास म्हणार और सहास मध, इनके द्वारा तीन प्रकार का होता है। इसमें दूसरे का स्वानुराग निवेदन (अपने प्रेम को जतनाना) सम्मोगेड्स प्रकादान (अपनी सम्मोग की इच्छा को व्यवत करना), सारागि विच प्रतिमेदन (अपराय करके आये हुए नायर का सम्झापोड करना) इन नेहीं से तीन प्रकार का होता है।

इसमें वाली द्वारा उत्तम्न हाक्ष्ममं भा उदाहरू — "पामेतीओ ने परणो में सही जब महावर लगा भूनी तब उसने दिटोली भरते हुए मार्गावर्य दिया है प्रमाशन नरे इन पेरो से पतने पति के बिर भी भन्द-भग्ना में प्रमो। इन पर पार्वतीनी मूँह से मुख्य न बोर्नी पर एन माला उठानर (शीरे से) उसनी पीठ पर जब सी।

मेपनर्भ या उदाहरण 'नागनन्द' नाटह मे विदूषर शेखरन की वैद्य-भूपा मादि का वर्जन ।

क्रियानमं ना उदाहरण-'मालिनाम्निमित्र' नाटर मे स्वप्न देखते -

दशस्पर १६२

हुए विदूषक को डराने के लिए निपुणिका द्वारा उसके उत्पर इण्डेका भें हा जाना साकि यह सर्प समभवर चौंव उठे। इस प्रकार वाणी, वेश, चेल्टा ग्रादि के द्वारा हुए ग्रीर भेरो को भी

जानदा चाहिए।

धव सहास शृंगारनमं के भेदो का उदाहरण देखिए-

आत्मोपक्षेपनमं, जैसे-गरभी का दिन है, कोई पानी पिसाने वाती हत्रीप्याऊ पर बैठी है। इतने मे गरभी ग्रीर रास्ते से बलाना ग्रीर श्रान्त एक पश्चिक पानी पीने की इच्छा से वहाँ झाता है, उसे देव प्रयापालिका (प्याऊवाली) कहने लगती है—''हे बटोही, दौपहरी यही विताइए, पसीना सूल जाने दी जिए, थोडी देर रुककर जल पीजिए।

है पिथक, मैं यहाँ अकेली हूँ, यह सोचकर भ्राप यहाँ से चले न जाहर। यह मेरा पनीसरावाला घर बहुत ठण्डा है, ग्रत यही ग्रापना स्वता हर तरह से बारामदायक होगा । साथ-ही साथ यही से बैठे-बैठ नामरी

के बाणों से त्रस्त अपनी त्रियतमा का भी व्यान लगा सकते हैं। वशीह भापके मन को लुभाने में शायद पानी पिलानेवाली समर्थ न हो सके।'

सम्भोगनमं, जैसे — "ग्रभी सूर्य दिखाई ही दे रहे ये कि गृहि<sup>मी है</sup> मपने पति को पवडकर उसकी इच्छाकी परवाकिये विनाही हैं<sup>हती</sup> मीर हंसानी हुई गैरो को दशने लगी।

माननमें -- जैसे कोई शब्दायन किसी से रमण कर किसी दूसी नायिका के पास 'तुम मेरी प्रिया हो' इत्यादि कहता हुन्ना पहुँचा। नार्षिकी ने उसने दारीर पर दूसरी स्थी की साडी बादि को (नायद जल्दी

जरदी में साटी ही पहनवर चल दिया था) देख फटकारना गुरू 🔨 दिया--'तुम मेरी प्रिया हो' यह श्रापका कहना सर्वया सत्य है, वर्वोर्ड यदि मैं चापनी त्रिया न होती तो आप अपने त्रियनन (दूसरी नाविश

ने पहने हुए वस्त्र) उपयुक्त इस साडी वो पट्टनक्र न ग्राये होते । वह टीर भी है बामीजन वो धपने को बामूपण बादि से सुसन्जित रहनी

त्रियजन के देख सेने मात्र से ही चरितायें हो जाता है।"

हितीय प्रशास १६३

भयनर्भ---जेंसे, 'रत्नावती' नाटिया में चित्र देख लेने वे बाद मुमगता गहती है---' हाँ मुमे चित्र के साय-ही साय सारी वार्ते मानूम हो गई । ग्रव तो मैं जाकर देवी से यह बात कहाँगी", इत्यादि ।

श्यारान्तर्गत नवनर्ग—"सपने सपराय के व्यवन हो जाने पर नायन ने सपनी नायिका को प्रसन्त करने के लिए अनक उपायों का सहारा निया, पर जब किसी से सी सफतता निया सही तो बहुत मोजने पर एक जगाय की गूफ उसके मन में आई। वह यह कि इसको नयमीत किया जाए, सी बह तथा कहने, 'देखी यह पीठ-मीछे, क्या है ?' 'देखी यह पीठ-मीछे क्या है ?' 'देखी यह पीठ-मीछे क्या है ?' देखी यह पीठ-मीछे क्या है ?' इस प्रकार से नायिका को स्वर्मीत करने स्वर्मीत मार्थ का स्वर्मीत करने स्वर्मीत करने स्वर्मीत करने स्वर्मीत कर यह से हमार्थ का स्वर्मीत करने सार्थ सामित्र पह सठ नायक मन्द्र-मन्द सुस्कान करने वाली प्रिया का स्वर्मीत कर रहा है।"

नर्मस्फिञ्जः सुखारम्भो भयान्तो नवसंगमे ।

नमं स्किञ्ज —नायक-नायिका के प्रथम समायम को नमं स्थित्य करते हैं, जिसका झारम्य सुख के साथ तथा धन्त मथ तिथे हुए होता है। वैसे, 'मालविकामिनिय' नाटक में सकेन-स्थल पर आई हुई

नायिका (मालविका) से नायक (राजा) का यह कथन-

'हे सुन्दरि, मेरे गंने तगने से मत हरो। क्तिन दिन से मैं तुमसे मिसने के लिए ब्याकुल था। हे प्यारी घायो, और श्राकर मुक्ते बैसे ही लिपट जायो जैसे माजनी सता श्राम से लिपट जाती है।"

इमके बाद मालविका राजा से कहती है— "मुक्ते महारानी से बडा बर सगता है, ग्रत बाहते हुए भी ऐसा नहीं कर सकती।" इत्यादि।

स्फोट है॥ ५१ ॥

जैसे 'मानतीमाधव' मे भनरन्द माधव की दशा का वर्णन करता है-- चलत भे यह श्रिति हो सलतात ।

देह म बरित वृष्टि सुरामा वी सुनी दृष्टि लरात ॥

चिनातुर सो सास भरत छिन-छिन दुनौ दरताव ।

कारन भा, यहि वे सिवाय वछ श्रीर समक निंह प्रार्थ ॥

श्रियसरही फिरि भूवन-भूवन भे यनमध निवय दृहाई ।

जोर मरोर मरी कोनन निंद यहि तन से उमहाई ॥

गष्टित मधुर रमनीय भाव जब जोवन ज्योति प्रवार्थ ।

बरब मन वस बरत धीरता धीरव हू हो नाते ॥

यही पर माधव के समन प्रार्थ से प्रवट होने वाले बोडे भावो है ।

मासती के विषय में उसका धनुराग खोडी बाता में सूचित होता है।

## नर्मगर्भ—

छुन्ननेप्रप्रतीचारी नर्सवभॉडर्थहेत्वे ।

प्रद्भः सहात्विनिर्हास्येरीभरेषात्र कृष्टिको ॥५२॥

प्रायंतिष्ठि कृषित् नायक ने गुप्त व्यवहार को नर्नगर्भ वहते हैं।

यह कृष्टिको बा स्रात्तन कोषा नेद हैं। इसके भी हो मेद होते

हैं – सहास्य बीर निर्हास्य ॥ ५२॥

जैसे 'समस्यतन' से—एक प्रास्त पर प्रवशी दोनो प्रेमियामी की बैटा देख, भामतीज के बहाने पीछि ते आकर नायक एक की मौस मूँबर सपने कपी की जरा मोडकर प्रेम से उरातित मनवासी तथा धानाद है यिकतित मुख्यासी धपनी दूसरी नायिका को धानाद से चून रहा है!

भोर जैसे 'त्रियदींबन' के गर्भाकु में बरसराज का घेरा पारण करने मार्द हुई सुस्रगा में स्थान पर पास ही में स्वय बश्तराज का भा जाता!

## सास्वती---

विद्योगः सास्यती सत्त्वदार्थित्यागदयार्वयैः । संवापोत्वापषायम्यां साञ्चात्यः परिवर्तकः ॥५२॥ दितीय प्रकाश १६४

नायक के शोकरहित सत्त्व, शीर्य, दया, त्याय भीर आर्जवपुस्त व्यापार को सात्त्वती बृत्ति रहते हैं। इसके संलापक, उत्यापक, साधात्य श्रीर परिवर्तक, में चार जेट होते हैं।।१३॥

संलायको गभीरोक्तिनीनाभावरसा नियः।

सतापक---नामा प्रकार के भाव और रसों से युवत गम्भीर जीत की संतापक बहते हैं।

जैसे राम 'महाबोरचरित' नाटन में परजुराम से कहते हैं—
"निरुष्य ही यह बह फरसा है जो स्परिवार कानिकेय के जीने जाने पर भगवान शकर के द्वारा हुआर वर्ष तक जिल्म बने हुए मापनो

प्रसाद रूप में दिया गया था।"

यह मुनकर परशुराम बोलने हैं-

"है राम तुम्हारा कथन सत्य है, यह मेरे गुस्देव सकर का प्यारा यही परसु है।

"शहन-परीक्षा के दिन बनावडी मुख में गयों से घिरे हुए जुमार पाशिक्षेत्र को मैंने ट्राया, इससे प्रमान हो गुणों के प्रेमी मगनान शकर ने प्रसाद म्यामें इसे मुक्ते प्रदान दिया।" इंस्पादि । नीना प्रवाद के मावो और रसो ने गुक्त गम और परमुराम की सम्मीर युन्गि-प्रमुपिन सलायर है।

## टरयापक—

रत्यापकस्तु बत्रादी बुद्धायीत्यापयेत् परम् ॥५४॥

युद्ध के निर्प चर्हा नायक श्रम् को ततकारे, ऐसे स्थल पर उत्यापक रीता है। क्रयांत्र नायक के झारा मुद्ध के लिए श्रम् के सलकारने नो उत्यापक रहते हैं॥ १४॥

जैमे 'महाबीरचरित' मे परगुराम रामचन्द्र से वह रहे हैं-

"हे राम, तेरा दर्शन भेरे लिए बानन्दप्रद हुमा, मथवा बास्चमों-पादन हुबा, सा हुल देने के तिए हुबा, हुट समक्त मे नहीं सा रहा \$35 दशहपक

है। पता नहीं क्यों मेरे ऐसे नीरस के नेत्रों में भी तुक्ते देखते रहने <sup>की</sup> इस प्रकार की उत्कट तृष्णा पैदा हो गई है । खैर मेरी तकबीर मे तेरी

सगति का सूख नहीं बदा है, बत प्रसिद्ध पराक्रमी परशुराम के जीतने के लिए तेरी भुजाओं में मेरा यह धनूप प्रेरणा सचार करें।"

साघात्य--

मन्त्रायंदेवशक्त्यादेः साङ्गात्यः सङ्गभेदनम् । मत्र, धन या देवी शिक्त के सहारे किसी सघटना में जूट पैसा कर

देने का नाम साधात्य है।

मत्र-शक्ति द्वारा पूट पैदा करना, जैसे----

'मुद्राराक्षस' नाटक म भागवय वा अपनी बुद्धि के द्वारा राससं <sup>द्ध</sup> मित्रो म पुट पैदा कर देना।

मर्थरानिन, जैसे---वही पर (मुद्राराक्षस नाटक मे) पर्वत के माई

पण को राक्षत के हाथ में पहुँचाकर मलमबेतु से साथ फूट पैदा करा देना।

दैव-राक्तिया उदाहरण—रामायण मे राम का रावण से विभीष" की पोड लेना ।

प्रारम्योत्यानकार्यान्यकर्त्यात् परिवर्तकः ॥५५॥ परिवर्तक - प्रारम्भ विधे हुए वार्य को छोड़ दूसरे वार्य के ब्रास्ट

कर देने को परिवर्तक करते हैं ॥ ४४ ॥ जैसे 'महाबीरचरिता' में--- परशुराम बहते हैं कि 'हि राम, हरेगी है

मूमल में समान दांतो से विह्नित तथा स्वामी कात्तिवेय के तीक्ष्य हारी के प्रहार के क्रम से सुद्योभित मेरी छाती तेरे जैसे भद्मत परात्रम<sup>ासी</sup>

रे मिलने से रामाचित हुई (तेरा) भासियन चाहती है।" यह मुन्दर

राम कर्त हैं---"भगवन् । चालियन तो प्रस्तुत स्यापार (युड) वे विरड है।" दायादि । ग्रारवती में बाद बारमशी बुलि की बताते हैं--

इम वृत्ति मे माया, इन्द्रवाल, संग्राम, त्रोध, चद्घ्रान्ति, प्रस्ताव श्रादि बार्चे होती हैं।

एभिरङ्ग :श्चतुर्घेयं सात्त्वत्यारभटी पुनः ।

मायेन्द्रजालसंबामक्रोधोवुभ्रान्तादिचेष्ट्रितैः ॥५६॥ संक्षिन्तिका स्यात्मंकेटो दस्तुत्यानावपातने ।

प्रयास्तविक वस्तु को भंत्र के बल से दिखलाने आदि को माया कहते हैं। इसके चार नेद होने हैं—१. संक्षिप्ति, २. संकेट, ३. वस्तुस्यापन, भीर ४. प्रवपात ॥ ५६ ॥

संक्षिप्ति—

संक्षिप्तयस्तुरचना संक्षिप्तः जिल्पयोगतः ॥५७॥ पूर्वनेतृनिवृत्त्वान्ये नेत्रन्तरपरिग्रहः ।

शिल्प के योग से संक्षिप्त बस्तु-रचना को सक्षिप्ति कहते हैं। कुछ सीगों के मत मे प्रथम नायक के चले जाने पर उसके स्थान पर इसरे

नायक का द्रा जाना सक्षिप्ति है ।। ५७ ॥

मिट्टी, बाँस, पत्ती भीर चमडो भादि के द्वारा वस्तु का उत्पापन धर्मान् वस्तु के तैवार हो जाने का नाम सक्षिप्ति है। इमका उदाहरण है बाँस का बना छायी।

दूसरे लोग नायक की एक प्रवस्था के बाद दूसरी प्रवस्था के प्राने भी सक्षिप्ति बतलाने हैं। <sup>9</sup> जो लोग प्रयम नायक के चले जाने पर उसके स्मान पर दूसरे नादक का धाना सक्षिप्ति की परिभाषा बताने हैं, उनके

पुनुसार इसका उदाहरण है बालि का निवन हा जाने पर सुप्रीय का र प्रन्यकार धनंजय का मत पहला है और वृत्तिकार धनिक का टूसरा है, प्रयात एक नायक के बाद दूसरे नायक का ग्राना सिक्षित है यह प्रत्यकार धनजब का मत है। ग्रीर एक ग्रवस्था के बाद दूसरी ग्रवस्या का ग्राना वृत्तिहार धनिक का मन है।

₹€=

नायम बनना । श्रीर जो लोग एन श्रवस्था की निवृत्ति के बार रूपरी श्रवस्था के श्राने मा नाम सक्षिप्ति बताते हैं उनके श्रनुमार स्वना उदाहरण है—'महावीरचरित' में परसुराम का उद्धतता को त्यागरर सात्तसाथ का यहण करना।

इशहपक

सार्वमाय का यहण करना।

सफेटस्तु समाघातः ब्रुद्धसंरत्थयोर्द्धयो. ।।प्रदा।

सफेट-दो कुढ व्यक्तियों से एक की बूतरे के प्रति वो यातेः
गलीज होतो है उसे सफेट कहते हैं।

मलीज होती है जहें संबंद नहते हैं। संसे, 'मारतसीमाधम' में मायब और आधोर बन्ड का और राजन मारा में बांगत सारियों में से सक्माल और मेधनाव का सावसी बाजुड़

बस्तूत्यापन—

आहि।। ४६ ॥

मायाद्युत्यापितं यस्तु वस्तुत्यापनिम्घ्यते । माया ब्रादि से उत्पन्न वस्तु दो वस्तुत्वादन बहुते हैं।

जैसे 'उदात्त राषय' नाटक ग्रे--"विजयी होते हुए भी चयकती हुई सुर्य की सम्पूर्ण किरण पना

नहीं केसे प्राकाधस्थापी प्रति समन अध्यक्षार में द्वारा पराजित हो खें हैं। दूसरी तरफ भयानक नवस्थों के छेदों से निक्से हुए रनत को यो पी कर पेट गर जाने से डकारने वाली और अपनी मुखक्त कन्दरा से सर्ग

रणलनेवाली सियारियो का बंदण फ़दन हो रहा है।" श्रथपातस्तु निष्क्रामप्रवेशघासविद्ययः सप्रदा। स्रवपात—निकलका, प्रवेदा बरका, भय करता चौर भाषका, ये <sup>हार्ग</sup>

स्रवपात — निकलना, प्रवेदा करना, भय करना घोर भागना, ये <sup>झा</sup> स्रवपात के भीतर बार्ड बाती हैं ।। ४६ ॥ जैसे 'रत्नावची' नाटिका में, 'बदबदाता से बन्धन को तोडवर वर्ट सन्दर रिवयास के प्रवेदा कर रहा हैं। इसके गले में सोने की टरी हुई

सर्वनत पड़ी हुई है। वह उथे नीचे की तरफ खीचता हुमा वह <sup>रहा</sup> है। वह प्रपनी बानर जाति के प्रवस्प जब कीचा (घडकी देना मारि) न रता है उस समय उसके पैरो मे लगी हुई ठोटी-ठोटी घष्टियों मकृत होने लगती हैं। वह क्रियो नो डराने हुए तया घरवदाला के रसनो से पीछा निए जाने हुए रनिवास से प्रवेश कर रहा है।"

धौर भी---"मनुष्य में गिनती न होने में नपुमर करना छोडकर छिए गए, घौने टर के मारे क्युकी में यनक में दिवने तथे, निराता ने भी अपनी जाति के अनुष्य ही कार्य विया, क्योंकि वे इयर-टयर (कोने में) तितर-वितर हो गए। और मुक्ते भी, बन्दर करी देंग न से इसिलए और नीचे स्थित हो गए।"

'त्रियद्विता' से किन्यनेनु पर नियं गए भात्रमणनालीन नीलाह्न' भी इसना उदानरण हैं।

एभिरङ्ग दबतुर्वेदं नार्बद्धितरतः परा । चतुर्वो भारती सापि बाच्या नाटकसक्षरो ॥६०॥ कैदिकों सारवर्ती चार्बद्धितमारभटीमिति ।

फारका सास्पता चायकृतिमारमञ्जामते । पठन्तः पञ्चमी वृत्तिमीःद्भटाः प्रतिजामते ॥६१॥

[हील बृत्तियों को यहाया जा कुना हैं।] कीयो मारती बृत्ति का नादकीय ध्याक्षारों से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह वेयल वाचा यृत्ति है। इन क्यारों के बहावा हुए सीम एक 'क्ष्मेंदृति' नाम की वीवधीं यृति मानते हैं। इरके माननेवाले उद्भुद्ध कीर उपके कनुवादों हैं। पर इस यृति को मानने की कोई धावक्ष्म तहा नहीं है क्यारे इतका कोई उदा-हरए। निक्ता नहीं है। श्रीर यह हास्य घाडि रसों में मेरा भी नहीं हो। स्वप्ती, क्योंकि मारती के समान ही उसके हैंने से मोरतात प्रवृत्ति क्यारी नहीं हो। पर देश हो के कार होने हैं नोरतात कर होने के कार होने हैं। प्रवृत्ति इस व्यक्ति हैं। प्रवृत्ति कार होने के कार हो नारती मेरस होतो है क्योंकि रस सी ध्या ही रहता है और उनी के समान ही इस पॉवर्ज को मो माने तो यह भी नना हात्यदि रसों में की रहत सनेवी ?

राहित्य-प्राप्तत्र में बाद्य का व्यवहार रह्याद दे ही लिए होता है भीरत दे लिए नहीं होता; इत. तीन ही राज्यों, धारनटी धीर बैतियाँ वृत्ति मानना युवितसंगत है ॥ ६०-६१ ॥

कौन पृत्ति किस रस में रहती है इस बात को बताते हैं — शृङ्गारे कैंशिको बीरे सात्यत्यारभटी पुनः।

रसे रौट च वीमत्से वृत्तिः सर्वत्र भारती ॥६२॥

कैशिकी यूनि म्हनार रस में, सात्यती यीर रस में, झारमटी रीड़ झौर बीभरस रस में तया मारती वृत्ति सर्वत्र रहती है ॥ ६२ ॥

शर बोभत्स रस मे तया भारती वृत्ति सर्यत्र रहती है ॥ ६२ ॥ देशभाषाक्रियावेयलक्षर्णाः स्युः प्रवृत्तयः ।

लोकादेवावगम्यंता यथौचित्य प्रयोजयेत् ॥६३॥ नायक शांवि देश के मिन्न होने से भिन्न देश श्रांवि मे प्रवृत्त होते

नायक शाबि देश के मिन्न होने से सिन्न देश श्राबि मे प्रवृत्त होते हैं। सर्यात् जिस देश के नायक श्राबि होये उसी देश की माया सौर देश शरमा करते। पान जिस हेरा के नगरक नारि का स्थितस करती

देश धाररा करेंगे । पात्र जिस देश के नायक खादि का ग्रमिनय करती है जसी देश की भाषा, वेश, क्रिया धादि का व्यवहार करता है । पात्र

को लोक्कि व्यवहार बादि ज्ञान के द्वारा इस बात की जानकारी प्राप्त कर जहां जैसा उचित हो पहां वैसा करना चाहिए ॥ ६३ ॥

कर जहां जैसा जीवत हो वहां वैसा करना चाहिए ॥ ६३ ॥ पाठ्यं तु संस्कृतं नृराामनीचासां छतास्मनाम् ।

नाव्य यु तच्छत तृष्यामनाचाना कृतास्मनाम् । लिपानीनां महादेव्या मन्त्रिजावेदययोः स्वबित् ॥६४॥ स्त्रीरामं तु प्राकृतं प्रायः शीरसेन्यपमेयु च ।

कौन पान किस भाषा का प्रयोग करे, धन इस बात को बताते हैं—अंग्र पुरुष, महास्मा, बहाचारी संस्कृत साथा का प्रयोग वर्षे । वर्ही पर्ही सहस्यानी, सत्री वी लड़की बीर पेडया भी संस्कृत से घोत सहसी

यहा महाराना, संत्रा वा लड़को घोट चेड्या मी संस्कृत म घोत सः तः हैं। हित्रयों को प्राकृत मे हो घोलना घाहिए। अध्यस सोगों वे तिए घोरसेती भाषा उपयुक्त है।। ६४॥

द्योरसेनी भाषा जपपुरत है श ६४ ॥ प्रशति बहुत है सम्बत नो, धत उससे पैदा होने मे बारण देगी भाषामों को प्राहत कहने हैं। सौरसेनी झौर मागभी धपने स्वात <sup>प्</sup>र

ही होती हैं। सर्यान् सीरक्षेनी मध्यम और मागधी सधम लोगो ही योलनी चाहिल्। २०२

भी तरह देवर से भी सम्बोधित भी जाएँ।। ६६ ।।

एक स्त्री दूसरे को क्या कहकर बुलाती है इस बात को दताते हैं-श्रामन्त्रसीयाः पतिवज्ज्येष्ठमध्यादसैः हित्रयः ।

समा हलेति प्रेष्या च हज्जो वेश्याऽज्जुका तथा ॥७०॥

कुट्टिन्यम्बेत्यनुगतैः पूरमा या जरती जर्नः । विदुषकेस भवती राजी चेटीति शब्दाते ॥७१॥

द्भपनी सहेलियो यो हला, श्रेथ्या को हज्जे, वेरवा को घञ्जुका <sup>कह</sup>े कर पुषारे । कुट्टिनी सम्बा, पूज्या और जरती इन शक्तों से पुकारी लाएँ।

विदूषक रानी भौर घेटी दोनों को 'सवती' शब्द से बुलाये ॥ ७०-७१ ॥ घेष्टागुर्गोदाहृतिसस्वभाषानशेषतो नेतृदशाविभिन्नान् ।

को बक्तुमोझो भरतो न यो वा यो वा न देव जाजिखण्डमीतिः ॥७२॥

धाचार्य भरत और भगधान् दांपर के ग्रसावा ऐसा कीन होगा जो

घेण्डा, गुल, सास्विर भाव शीर अवश्ति नावक और नाविशामों ही

विभिन्न दक्षाओं का घर्लन करने थे समर्थ हो सरे ? ग्रर्थात् इनरे वर्लन में मगयाम् दाक्ष सीर साचार्य भरत के सलादा कोई भी समर्थ नहीं ॥५२॥

## वृतीय प्रकाश

यद्यार इस प्रशाम में रम दा हो याने होना चाहिए नयारि वस्तु धौर नेता के वर्णन ने बाद उची दा धम प्राप्त है, पर रम के विषय म बहुन महा है इसलिए उसनों छोड़ यहाँ (इस प्रकास में) वस्तु नेता धौर रम उसना पृथक् नुप्रकृताक में बचा उपयोग होना है दर दान की बताने हैं।

भारतात है।

प्रता- म्पन ने इस नेदों से से सर्वत्रयम नाटरू का ही ननी
स्नान है?

प्रकृतित्वावसान्येका समोदसपरित्रहाद ।

संपूर्णनकरात्वाचन पूर्व भाटरमुच्यने ॥१॥ चरार-नाटर ही सर रनमों का मूच है, एक सो यह काररा है।

दूमरी बान यह है कि इसी के धीतर रहीं दा प्राप्तुव रहता है। इसके बनान होतरा बारल यह है दि रुमूर्ण रुपयों ने सदार बेन्द इसीमें पटिन होने हैं। इन्हों बारलों से सर्वश्रयम नाटफ के ही भीतर बातु, नेता और रस के उन्थींन की बहात हैं।।१॥

प्रविद्य तहवपरः षाव्यमास्यापयेत्रटः ॥२॥ नाउर मे सर्वत्रवन दुवेरा होना पाहिए । पूर्वरम रे बार मुत्रपार

पूर्वरगं दिवायादी सूत्रधारे दिनिगंते ।

रो माना पाहिए और उसने चले जाते हे बाद बसी है हो समान रिसी दुगरे नट हो रमभव वर आनर धनिनेय हाय्य-रमा की मुख्या सामा-जिकों हो देनी चाहिए ॥२॥

ियारक की मुख्य कथा के काररूम से पहलेवाले कारे क्यों की

208

पूर्वरम नहते हैं। इसमे नाट्यशाला की रचना ग्रादि से लेकर देवस्तुवि यादि सभी बातें या जाती हैं।]

वृत्तिनार धनिक का कहना है कि पूर्वरम तो हुई नाटपशाना और उसमे होनवाला प्रथम जो प्रयोग है उसने झारम्भ नो पूर्वरवता बहुते

हैं। उसी पूर्वरगता का सम्पादन कर मूत्रधार के चले जाने के बाद उसके

ही सहस बैंच्याव वेषधारी कोई दूसरा नट प्रवेश वर, जिसका सिनिय होनेवाला है, उस बाब्य-क्याको शूचित करे। इस मूचना दैनेवाले

सुचित करता है।

सूच्येद्दस्तु योज था मुख पात्रमथापि वा ॥३॥

स्यापर को यदि दिव्य वस्तुको सूचना देनी हो तो उसे दिन

(देवता रे) रूप हे, धीर यदि प्रदिव्य यस्तु की सूचना देनी हो ती

मनुष्य वैदा से, सथा यदि निधवातु की सुबना देनी हो सो दोनों में से

विसी एक का रच धारण करके सुखना देनी धाहिए।

घोर ४. पात्र ॥३॥

यह मूचना चार बातों की होती है— १. वस्तु, २ बीज, ३. मुझ

दिग्यमत्यं स तड्यो मिथमन्यतरस्तयोः।

व्यक्ति को स्थापक कहते हैं, क्योंकि वह भूचना द्वारा कार्य-क्या को

वर्तीय प्रशास 30K

कर स्वच्य चन्द्रमा का हास्य निए हुए स्वच्छ-दारदृशास-म्पी राम प्रकटित हए !"

पात्र-मुचना--जैसे 'ग्रिमिज्ञान शाहन्तस' में---

"तुम्हारे गीत के मनोहर राग ने मेरे मन को बलपूर्वक वैसे ही सींच निया है जैस वेग मे दौडना हुग्रा यह हरिए राजा दुष्यन्त नो।"

रंग प्रमास मध्रैः इलोकैः काव्यार्थमुनकैः।

ऋतुं कंचिद्रपादाय भारतीं वृत्तिमाअयेत् ॥४॥

धनिनेय काव्यक्या नी जिससे लक्षित होती हो ऐसे मधुर श्लोकों से सामाजिकों को प्रसन्त करता हुन्ना किसी ऋतु को लेकर नारती वृत्ति का प्राथवण करे ११४॥

चदाहरमार्थे—

"प्रयम समागम ने ब्रवसर पर भाग्वान् शहर से ब्राहिनस्ट पार्वतीजी भाग सोगो की रक्षा करें। पार्वती, जो पति के पास जान की तैयारी कर इस दुवन है बाद भी जो नवीरा धरस्या है धनुकत स्वामाविक सम्भावत रोर दी गई और फिर समियो द्वारा घनन प्रकार की िक्षा पार दिविजी के पास पहुँचा दी गई तया वहाँ जाने पर दिरस्जी के मपूर्व दर्गन ने चहित हो गई और अनुगयनश उनने सरीर में रोमाञ्च हो भाए । इस ग्रवस्था को प्राप्त भगवानु शकर द्वारा ग्रालिंगित पार्वती पाप सीगों की रक्त करें।"

भारती संस्कृतत्रायो वाग्यव्यापारी नटाययः ।

भेदैः प्ररोचनायुक्तंयीयोप्रहसनामुखैः ॥५॥

मारती वृत्ति-मट वे झाध्य बरवे होने वाले संस्कृतयहूना वाएरी के ब्यापार को भारती बृत्ति कहते हैं। बर्यात भारती वृत्ति वह है जिसमें बातकोत सस्पूत में होतो है और जो नट दे बाबिन एहती है बौर कितमें पाएंगे की ही प्रधानता होती है, धर्म की नहीं।

इसके चार बंग होते हैं-१. प्ररोचना, २. वीपी, ३. प्रहसन बीर ४. घामुख ॥५॥

२०६ 2 शहर व

प्ररोजना—प्रस्तुत की प्रश्नंता कर सामाजिकों के भीतर उत्तप्या

भागृत घर देने का नाम प्ररोचना है।

जैसे 'रत्नावली' नाटिका भे सूत्रचार यहता है-"मेरे सौनाग्य से नाटन में अपेक्षित सभी गूण एक ही साद मिल गए। इनम से एव-एक बस्तुभी बाज्ञ्चित फल दी प्राप्ति के लिए

पर्याप्त है और जब सब मिल जाएँ तो फिर स्था बहुना ? देखी, इन

गुणबाही है बीर न्याबस्तु मा चुनाव भी अति उत्तम है। बारण यह है कि इसमें विधित बल्सरान उदयन का चरित्र भी लोगों ने मन नो मुरानेमाला (लुआनेवाला) सिद्ध हो चुना है तया इसना प्रश्नितय नी हम लोगों जैसे चतुर अभिनेनाओं द्वारा किया जा रहा है।" यीयी प्रहसनं पावि स्वप्रतगेऽभिषास्यते ॥६॥ थोयी 'त्रोर प्रहसन के बारे में आगे चलकर बड़ाँ उसका प्रसंग प्रार्णा बताया जाएगा । बीथी के जो अय हैं वही जानुत के भी हैं। सतः यह पर धामुख होने वे कारल बीची के श्रमों या बर्लन बर रहे हैं--यीरमगान्यामुर्तागत्वादुच्यन्तेऽत्रैय सत्पुनः । तूनपारो नटीं वृत्ते मार्च याय विदूष**ङम् ॥७**॥ स्वकार्मं अस्तुताक्षेपि लिजीवत्या यत्तवानुराम् । प्रस्तावना या तत्र स्युः कयोड्यातः प्रवृत्तकम् ॥द॥ प्रयोगातिदायरचाय बीध्यांगानि प्रयोदश । प्रस्तुत विषय पर विचित्र उत्तियों के द्वारा नटी, पारिपारिवर घीर बिट्रूपक इनमें से विस्ती एक से बातबीत करता हुन्ना मुत्रपार का पानिक्रण-पूर्ण हंग से हपद के धारक्य बारा देने का माम धामूल है। शागुल की रूमरा नाम प्रस्तावार भी है। बामुल के शीन शंप होते हैं—१. द वीर्<sup>पात,</sup> २. प्रदूषक कोर ३ प्रयोगानिहास । बीबी दे सेरह बांग होते हैं ॥७-वा

नारिका के रचयिता स्वय महाराज हुई है। सामाजिक (दर्जक) भी

जन्मुकीकरएां तत्र प्रशंसातः प्ररोचना ।

नतीय प्रवास 200

स्पेतिवृत्तिसमं वाषयमर्थं चा यत्र सूत्रिणः ॥६॥ गृहीत्वा प्रविद्येत्पात्रं व चीव्यातो द्विर्घेव सः । क्षीद्यात-अपनी बचा के ही सहझ सुदवार के मुख से नियते हुए पास्य या द्वर्थं को बहुत्त करने बाद के प्रदेश होने का नाम क्योद्धात है। यह दो प्रकार का होता है। यह ना बाउब ब्रह्म करके बाज का प्रवेश

करना धौर दूसरा कारवार्थ प्रष्ट्रच कर पात का प्रदेश करना सहस पहले ना उदाहरण है--

द्वीपादन्यस्मादिष--

इगरा धर्य पहले दिया जा बना है।

बारवार्च का उदाहरण, जैसे 'वेणीसहार' में मुत्रबार कहता है-"सन्धि केही जान ने तथा शतुधी के नष्ट हो जाते के कारण पान्त हो गया है मन्तिरपी द्वेष जिनवा, एवे पाण्डव भगवान् हुएन में राष बानन्दपूर्वक विचरण करें ब्रीर विवह-विहीन कीरव, जिन्होंने प्रेम-पूर्वर प्रजान्यानन से समस्त भूमण्डन को बलीभूग कर निया है, व भी

भवने भाषारी के गाय स्वस्य होवें।' इसके बाद पूर्व-सदित बानव के सर्व को लेकर भीम का यह कही

रुए प्रवेश करना--

205 क्षण्यहरू

जैसे — पृष्ठ १८ की टिप्पणी मे दिया जा चुका है। एषोऽयमित्युपक्षेपात् सूत्रघारत्रयोगतः।

प्राप्तप्रवेशो यर्जेष प्रयोगातिशयो मत<sup>्</sup> ॥११॥

प्रयोगातिशय-जहाँ सूत्रधार नटी से किसी प्रसग की वर्चा करते हुए ग्रभिनेय व्यक्ति का नाम लेकर सकेत करे हि 'ग्ररे ये तो वे ही हैं वा

'उनके समान हैं।' और उसके कथन के साथ ही उस व्यक्ति के प्रिमिय करने बाले पात्र का प्रवेश हो जाए उसे प्रयोगातिशय कहते हैं ॥११॥

जैसे सभिनानशाकुतल वा- एप राजेव दृष्यन्त " भ्रद वीथो र ग्रगाको बताया जा रहा है--

उद्घात्यकावलगिते प्रपञ्चित्रगते छलम् । वानकेत्यविवते गण्डमवस्यन्वितनास्त्रिके ॥१२॥

ध्रसंत्प्रलायव्याहारमृदवानि प्रयोदश ।

बीबी के तेरह अग होते हैं—(१) उब्घात्यक, (२) प्रवत्नित, (३) प्रपच (४) त्रियत, (१) छल (६) वास्केली, (७) प्रधिवत,

(द) गण्ड, (१) व्यवस्यन्दित (१०) नालिका, (११) द्वसस्प्रलाप, (१२)

व्याहार, (१३) मृदव १११०।।

ग्ढार्थपदपर्यायमाला प्रवनोत्तरस्य वा ।।१३॥

मनाग्योन्य समालापो द्वेघोद्धात्य तदुच्यते ।

रे. उद्यात्यक — गुढ़ार्थ की पर्यायमाला (कम से एक के बाद दूसरे

ना प्राना) प्रयवा प्रस्तोत्तर शृखता (तांता) है द्वारा जो दो व्यक्तियों की बातचीत होती है उसे उद्घात्यक कहते हैं ॥१३॥

प्रयम का उदाहरण, जैसे 'विकमोर्वशी' नाटक मे--

"विदूयक" — हे मित्र, वह बौन कामदेव है जा तुम्हे दुस पहुँचारी भारता है ? वह बया पुरुष है सथवा स्त्री ?

राजा-मित्र ! मन से ही उसकी उत्पत्ति होती है, यत मन ही

इसनी जाति है।

वृतीय प्रकाश २०१

यह स्वच्छन्द रहता है और सूख में ही इस पर चला जाना है। स्तेह ने इस प्रशार ने ललित मार्ग नो ही नामदेव नहते हैं।

विदूषक-न्या जो नोई जिस किसी वस्तु की चाह रखे वह उसके लिए नाम ही हो जाएगा?

राजा---ग्रीर वया ?

विदूषक—धच्छी बात है, तब तो मैं जान गया, भी ननालय में मेरी

भोजन करने की इच्छा का होना भी काम है।" दूमरे भेद का उदाहरण, जैसे 'पाण्डवानन्द' काव्य मे--"गुणीजन

विस वस्तु के होने से श्लाघनीय समक्षे जाते हैं ? 'क्षमा' । श्रनादर किसे महते हैं ? 'जो ग्रपने कुलवालो के द्वारा विया जाए।' दुख विसे कहते है ? 'दूसरे के बझ में रहना।' ससार में कौन प्रशसनीय है ? 'जो विपत्ति मे पडेलोगो को बाधय दे। 'मृत्यु क्सि कहते हैं ? 'ब्यसनो मे र्फीन रहने को।' चिन्ता-रहित कीन है 'जिसने समुद्रो पर विजय प्राप्त कर ली है। 'क्रपर कहे तथ्यों से युक्त कीन पुरूप है ? 'विराद

नगर में छिपे हए पाँचों पाण्डव-पूत्र ।' यत्रैकन समावेशात् कार्यमन्यत्त्रसाय्यते ॥१४॥

प्रस्तुनेऽन्यत्र बान्यत्स्यात्तन्वावलगितं द्विधा ।

भवनित—(१) एक ही किया के द्वारा जहां दो कार्यों की सिद्धि

होती है, तथा (२) प्राय वस्तु के प्रस्तुत रहते खग्य क्या जाए उसे मनलगित बहते हैं। इस प्रकार अवलगित दो प्रकार का होता है।।१४।।

उसम परने का उदाहरण, जैसे 'उत्तररामचरित' में गरिनणी सीता को ऋषियों के माधम देखने की इच्छा होती है पर इस इच्छा की पूर्ति में बहान पैसे हुए धपवाद के कारण वह सदमण के द्वारा छोड दी जाती हैं। हुमरे भेद वा उदाहरण, जैसे 'छलितराम' मे--"राम--लक्ष्मण ! पिताजी से रहित इस धयोध्या में विमान के द्वारा जाने से सममर्थ हैं,

मत उत्तरकर पैदल ही चलता है। "भरे सिहामन के नीचे पादुवाधीं की धार्य करके बैटा हुआ ग्रस-

दशहपह २१०

मालाम्रो तथा जटाजूटो से युक्त कौन पुरूप सुद्योगित हो रहा है <sup>?"</sup> यहाँ भरत के दर्शनरूप कार्य की खिद्धि होती है। ग्रसद्भृतं मिथः स्तोज प्रपञ्चो हास्यकृत्मतः ॥१५॥ प्रपच-च्यासत्कर्मों के बाररण आपस मे हास्योत्पादक प्रशंसा हरने

का नाम प्रपच है ॥१५॥

बसरक में के अन्दर परस्त्रीयमन में निषुण होना झादि दातें प्राती

총 1 जैसे 'कपूँर मजरी' मे भैरवानन्द का यह कथन —''कौन ऐसा व्यन्ति

होगा जिसको हमारा कौल घर्म पसन्द न खाए ? रण्डा (विध**दा**), वर्ग

प्रयान् प्रचण्ड पराक्रमशालिनी स्त्री ही तो हमारी शास्त्रविहित नारिरी

हैं। भिक्षाटन ही जीविका का साधन है। चर्म का टुकडा ही हमारी

रीया है तथा मध और मास ही हमारा पेय तथा खाद पदार्थ है।"

श्रुतिसाम्यादनेकार्थयोजन त्रिगतं त्विह ।

नटादिजितयालापः पूर्वरंगे सदिव्यते ॥१६॥

त्रिगत—शब्दों को साम्यता धर्यातृ जहाँ एक उक्तारण से प्रतेष

प्रयों की योजना होती है उसे त्रिगत कहते हैं। इसका प्रायोधन पूर्व रंग मे नट बादि तीन पात्रों की बातचीत से होता है ।।१६॥ जैसे 'विकमीवंशी' नाटक मे--- "क्या यह फूनो का रस वीरा

मदोन्मत्त भौरो भी युजार है, या कोयल की मस्तानी कूक? प्रवस मानारा मे देवतायों ने साथ भाई हुई भ्रष्सराधी की मीठी हान ?' प्रियाभैरप्रियैर्वाक्यैविलोम्य छलनाच्छलम् ।

धुमन -- अपर से देलने मे जो प्रिय लगे, धर हो स्रप्रिय, ऐसे बार्डी

हारा सुभा करके छलने (ठणने) का नाम छलन है। जैसे भीम-प्रजुन--"सूतरपी बपट का निर्माता, सास (साह)निर्मित

भवन में माग संगातिशाला, द्वीपदी ने नेश मीर वस्त्रों के मणहरण वर्ते

में बामु के समान पराक्तम को दिस्सानेवाला, बाण्डव जिनके सेवक है

भीर टु:शामन बादि भी भादयों में ज्येष्ट वर्ष का मित्र ट्यॉप्टन कहाँ है ?" विनिद्रस्यास्य बाक्तेली द्विखिः प्रत्युक्तितोऽपि वा ॥१७॥ वास्त्रेती-इसने दो नेद होने हैं। पहते का नक्षण-प्रकरण प्राप्त यात को कहने-कहने एक जाना या उसको बदन देने को बाकरेली कहने ग्रहार है जैने 'उत्तररामचरित' मे बामन्ती राम से यह रही है कि प्रापने जिस सीता से यह बहा था वि "तुम ही मेरा जीवन-मर्बस्व हो, सुम्हीं मेरा दूनरा हुदय हो, तुम्ही मेरे नेत्रों ने लिए नौमुदी हो, भौर तुम्हीं मेरे पंगो ने लिए बमुन हो, उसी सीता नो इस प्रनार से सैनडॉ चाटु-

पारिता-मरी बातें करने और भरमाकर उसकी जो दशा (आपके द्वारा) की गई उसका न कहना ही ठीक है।" वादरे ती दा इसरा लक्ष्म-दी-तीन स्वस्तियों की झस्ययहर दहिन- २१२

भीम भी धृतराष्ट्र और गान्यारी को प्रणाम करते हुए कहते हैं— यहाँ से खारस्थ कर फिर दुर्योचन के इस कवन तक—"गरे नीव

में तेरे जैसा डीग हॉकनेवाला नही हैं, किन्तु बीझ हो तेरे मार्द-१ तुम्हे समराञ्चय के बीच मेरी गदा से टूटो पसलियो के भयानक मार्द्र पण से मुसज्जित सीझ ही देखेंगे।"

यहाँ पर भीम और दुर्योचन का एव-दूसरे के प्रति बट-वन्तर स्पर्धा के साथ वाष्युत का होना ही स्रधिवल है।

गण्डः प्रस्तुतसंबन्धिभन्नार्थं सहस्रोदितम् ॥१८॥

गण्ड-भाकरिएए विषय से सम्बन्धित सिन्द सर्थ की प्रश्ट हरी बाले स्वरायका वापम को साथ करते हैं से ३० स

बाले स्वरापुक्त वाश्य को गण्ड कहते हैं ॥ १८ ॥ जैसे—'उत्तररामचरित' मे—''यह सीता घर की लक्ष्मी है, व्हें

नेत्रों में महत्वस्थाना है, इसना यह स्पर्ध धारीर में प्रचुर वर्श ना रस ने समान है भीर यह नाहु-गले पर शीतन भीर नोमन हुए हार है। इसनी मया वस्तु भियतर नहीं है? परन्तु इसना विभीरणे

बहुत ही प्रसहनीय है।" प्रतिहारी (प्रवेश कर)—महाराज, उपस्थित है।

रतीकस्यान्यथा व्याप्या यत्रादस्यन्दितं हि तत् । सवस्यन्दित साक्र साक्ष कहे हुए बावय का दूसरे हो द्वार

सबस्यन्दित साफ साफ कहे हुए बावय का दूसरे ही प्रणा दूसरी ही व्यादया कर वेने (लेडे) को सबस्यदित कहते हैं।

जैवे-'छनित राम' नाटक में "शीता तथ और हुश दोनो सही

से नहते हैं—बेटा, तुम सोगो को कम समोच्या जाता है। वहाँ व<sup>प्त</sup> राजा को नमनापूर्वक प्रधास करना।

मव---मातामी, नया हम कोगी को भी शाजा के बाधित होता

रहता पड़ेगा ?

सीता— बच्चो, वे तुम लोगों के पिता हैं। सद—क्या रामचन्द्र हम लोगों के पिता हैं?

सीता— (महाक होकर) केवल तुम्ही शोनों के नहीं प्रापितु सम्पूर्ण विरव के पिता है।"

सोपहासा निग्टार्या नालिकंच प्रहेलिका ॥१६॥ मासिका-च्यासपनं गढ साउदाती पहेली को नारि

नातिका - उपरासपूर्ण गूड भाववाती पहेली को नातिका कहते हैं। १६॥

र्रेंसे 'मुद्रागक्षम' नाटन से—चर-चरे ब्राह्मण, दृषिन सत होसी, मंभी मद-पुट नहीं जानने, दृष्ट तेरे गुरु जानते हैं सीर दुष्ट मेर ऐसे स्परिन भी जानते हैं।

प्यापन भा जानत है। विष्य---(शोध ने साथ) क्या तू गुरुजी की सर्वज्ञता नष्ट करना चाहता है ?

पर-धरे ब्राह्मण, यदि तेरा गुरु सद-कुछ जानता है तो बताए पद दिसको प्रिय नहीं है ?

रिया - मूर्ल, इन वेदार की बातों की जानदारी की प्या

प्रावस्थाता ?

रत बार्तों को सुनकर चाणक्य समन गया कि देनके (चर के) कहने का तात्यवं यह है कि 'में चन्द्रगुप्त के सनुयो की जानता हैं।'

भसंबद्धक्यात्रायोऽमरप्रतापो मयोत्तरः । धसरप्रसाप-- बसम्बद्ध बे-सिर-चर की बात कहने को असरप्रसाप

रहेंने हैं। स्वप्न में बर्रात हुए की, पागन की, उन्मत की बीर विद्यु पादि

स्वप्न में बराति हुए की, पागत की, जन्मत की बीर विश्व प्राप्ति की कही हुई केंट्रपटाग बार्ने इसमें बाती हैं।

पैसे—"वामुनि मर्प ने मूँह में हाय टालकर मूँह को पैताकर प्रिय में चित्रित दोतों को ममुली से ए-एकर एक, तीत, नव, मात, छ इस मनार में त्रमरहित पिती जाती हुई सम्बान स्वामि कार्तिकेय की बाल्याकस्या को तीतती बोली साथ लोगों की रक्षा करे।" २१४ दशरूपक

स्रथवा जैसे—"राजा हाय जोडकर हस से कहता है—है हस, मेरी जिस प्यारी की बाल तुमने चुरा लो है उसे मुक्ते बौटा दो क्योंकि चोर के पास यदि चोरी की हुई एक भी वस्तु मिल जाए तो उसे पूरे को बौटाना परुता है।"

भ्रमवा जैसे — नोई प्रचापी वह रहा है— "मैंने पर्वेदों को खाया है, मैंने भ्रान्त में स्नान भी किया है इसके

मलावा ब्रह्मा, विष्णु और चिव ऐसे पुत्रों को भी पैदा किया है। बस इसी खती से घानण्ड के साथ नाच रहा हूँ।"

म्रन्यायंभेव व्याहारी हास्यलोभकरं वचः ॥२०॥ स्याहार—इसरे को प्रयोजन सिद्धि के लिए हास्पपूर्ण सौर सोभ-

जनक सबन होतन को ह्याहार कहते हैं ।। २० ।। जनक सबन होतन को ह्याहार कहते हैं ।। २० ।। जैसे 'भावविवाजिनिम' में लास्य के प्रयोग के बाद मालियना

जाना चाहती है, उसको जाते देख बिद्दयक बहुता है—सभी नहीं, चौडी देर रखके उपदेस सुनवर जाओ। यहां से सुरू करके [सणदास मीर विद्रयक के उत्तर-प्रत्युत्तर पर्यन्त] सणदास विद्रयक से कहता है—

विदूधन के उत्तर-प्रत्युत्तर पर्यन्त] गणदास विदूधन से नहता है— सार्थ, यदि सापने इनने इस नार्थ में नीई नसभेद पाया हो तो नहिए। विदूषन----सर्वप्रथम बाह्मण नी पूजा ना विचान है, इसना स्वयस्य

इन्होंने उत्तपन निया है। यह सुननर मालविना हैसने लगती है। यहाँ पर हास्य पौर सोम॰

यह मुनवर मालविका हैतने लगती है। यहाँ पर हास्य प्रीर लोग-भारी वचन कहे जाने का भुस्य उद्देश नायक को विश्वस्थ नाथिका का दर्शन क्याना है, यत- यह प्याहार है।

दोपा गुणा गुणा दोषा यत्र स्युमृ दर्ग हि तत् । मृदव—कहा क्षेत्र को गुण बीर गुण को वोग समभा जाता हो ऐसे

मृदय—जहाँ क्षेप को पुरा और गुरा को क्षेप समक्षा जाता हो ऐरे बरान को मृदय कहते हैं।

चैसे 'मभिज्ञानवाहुन्सल' में मेनापति महाराज दुय्यन्त से पहना है— महाराज, यह व्यर्थ वी बात करता है। महाराज, ग्राप स्वय रण मासेट

रागुन देत ही रहे हैं—

"प्रासेट से चर्ची घट जाती है, तोद छोटी हो जाती है, पश्चर हसना और फुर्नीला हो जाता है (सुस्ती या जाती है), पश्चमों ने मूँह पर जो मय भीर नोच दिखाई देता है उचना ज्ञान होता है, और चसते हुए तह्यों पर बाल चलाने से हाथ सब जाता है। लोग व्यर्ष में ही प्रासेट को बुरा नहने हैं। भना इतना मनोविनोदन और नहीं मिल सनता है ?"

भीर मी जैसे— "इस विजेता राजा पर तो जरा दृष्टिपात करिए, इसका चित्त राज्य आदि के फ्रमटों में वडकर मर्वदा धशास्त बना रहता है और यह अनेक प्रकार के परिश्रम के कारण कप्ट सहता रहता है। चिन्ता के मारे इसे राज को मरपेट नीद भी नहीं झाती। यह राज्य के मामलों में इतना सखक रहता है कि किसी पर विश्वास नहीं करता।"

यहाँ राज्य के गूण को दोष-च्या में वर्णन क्या गया है।

मत्र एक ही पद्य में दोनो वातें सर्थान् दोष को मुण सीर गुण की दोष बताया जाता है—

"सदाचार का पालन वरनेवाल महातमा लोग सर्वदा आपितयों में ही पड़े रहते हैं। धौर सदा इस बात से समित रहने हैं कि नहीं कोई उनके चित्र में दीप न निकाल है। उनका जीवन ही सतत परोप-कारपरायण रहने के नारण दु समय बता रहता है। इससे तो अच्छा साधारण पुरम का जीवन है— मूलों को, पुछ सच्छा हमा तो, दुरा हमा तो, उनहें हुएँ-विधाद नहीं होता। इसिलए मेरी दृष्टि में क्या युक्त है, क्या प्रमुत्त है, इस जान से मुक्त व्यक्ति ही सन्य है थौर उसका ही जीवन समकर है।"

एयामन्यतमेनार्थं पात्रं चासित्य सूत्रभृत् ॥२१॥ प्रस्तावनान्ते निर्गन्द्वेसतो बस्सु प्रपञ्चयेत् । उपगुंबत बताए हुए बोची के भ्रंगों मे से किसी एक के हारा धर्य

यहाँ पर बालेट का दोच जुला राय से वाँगत है।

२१६ दशरूपक

ग्रीर पात्र का प्रस्ताव करके प्रस्तावना के अंत में सुत्रधार को चला जाना चाहिए। ग्रीर उसके बाद कथायस्तु का ग्रीभनय भारम्भ ही जाना चाहिए ॥२१॥

श्रभिगम्यगुर्गेर्युक्तो घीरोदात्तः प्रतापवान् ॥२२॥ कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपतिः । प्रस्यातवंशो राजिपविद्यो द्या यत्र नायकः ॥२३॥

त्तरप्रस्यातं विधातय्यं वृत्तमत्राधिकारिकम् ।

माटक का नायक धीरीवास होना चाहिए। नायक के ग्रन्वर मध्छे-अच्छे गुरा, प्रताप ग्रीर वीर्ति प्राप्त करने की इच्छा, महाइ उत्साह-सम्पान ग्रीर वेद का रक्षक होना चाहिए। इसके धलावा उसका जाम उच्च वश मे होना पाहिए। नाटक का नायक राजा या राजिय अथवा

दिव्य पुरुष होना चाहिए ॥२२-२३॥ ऊपर यहे हुए गुणो से युक्त नायक जिस प्रसिद्ध कया में हो वही

मया नाटश की माधिकारिक कथा कही जाती है।

जिस इतिवृत्त (क्यावस्तु) में सत्यवादिता, कौटिल्यरहित थेष्ठ मीसितता, ब्रादि से युक्त राजा, राजिंग या दिव्य पुरुष का चरित वर्णन हो, उसी प्रधान वया वो नाटक की प्रधान क्यावस्तु रखना चाहिए। इसके घलावा एव दाउँ इसमे यह भी है कि उस क्या का वर्णन रामा-यण या महाभारत में भवस्य हवा ही, तभी वह भीर गुणो से युवत होते हुए नाटक की प्रधान कवावस्तु ही सकती है।

यत्तत्रानुचितं किचिन्नायकस्य रसस्य वा ॥२४॥ विरद्धं तत्विरियाज्यमन्यवा वा प्रकल्पयेत्।

इस क्यावातु के भीतर यहि कहीं भावक के गुए। या नाटकीय रस का विरोधी बतान्त दिलाई देता हो तो उसे छोड़ देना चाहिए धथवा यदि उसे वर्णन करने को इच्छा हो हो सो उसे ऐसे ढंगसे वर्णन करे तारि विरद्धता न चक्षित होती हो ॥२४॥

जैसे 'उदात्त राघव' माटक के प्रणेता ने अपने नाटक में छल के साय वालि के वय का बृत्तान्त हटा दिया है। और 'महाबीरचरित' नाटक में सो क्वि ने इस प्रकार से वर्णन किया है कि बालि रावण का मित्र पा और राम-रावण युद्ध में रावण की तरफ से राम से सबने गया या, पर स्वय मारा भवा। इस प्रकार यहाँ पर कथा को ही अन्यया करने वर्णन किया गया है।

द्याद्यन्तमेयं निश्चत्य पञ्चथा तद्विभण्य च ॥२५॥ खण्डशः संधिसंज्ञाश्च जिभागाननि खण्डवेत ।

माटक की रचना करते समय साहि और अन्त का निरुच्य कर प्राधिकारिक कथा को पाँच भागों ये जिन्नत कर प्रत्येक खच्छों की सथि सज्ञा देनी चाहिए। उसके बाद पाँचों खण्डों (सपियो) में से प्रत्येक की प्रतेक भागों ने बाँट देना चाहिए ॥न्द्रश

अनुचित और विरोधी रसो को छोडकर युद सूचनीय और दर्शनीय वस्तुयो का विनाग कत क अनुसार विहित थीज, विन्दु, पताका प्रकरी और कार्य, इनको सारम्भ, यस्न, प्राप्ताक्षा, नियतास्ति कवागम, इन पांच अवस्याओं के अनुकृत पांच सथियों से विभन्त करना चाहिए।

चतु.पष्टिस्तु तानि स्युरङ्गानीत्यपरं तथा ॥२६॥ पताकावृत्तमप्यूनमेकाद्यैरनुसंधिभिः ।

इसके बाब सधियों के प्रत्येक भाग को बारह, सेरह, चौदह इत्यादि भागों में विभक्त करना चाहिए। इस प्रकार से सधियों के ६४ अग होते हैं ॥२६॥

उत्पर ग्राधिकारिक कथा की बात आ चुकी है, अब कथावस्तु का दूसरा भेद अर्थात् प्रासणिक कथा के बारे में बताते हैं।

हाङ्गान्यत्र यथानासससींघ प्रकरों न्यसेत् ॥२७॥ प्रासिक इतिष्ठत दो प्रकार का होता है—१. पताका घोर २ प्रकरो । पताका से प्रधान (श्राधिकारिक) क्यावस्तु को प्रपेक्षा कुछ ₹\$= दशरपक

(एक, दो या तीन) कम सधियों को रखना चाहिए। ग्रीर प्रकरी में तो इतिवृत्त के ग्रति ग्रस्प होने वे कारण सथि की योग्यता ही नहीं हे गरणा

**प्रादी वि**ष्करम्भक कुर्यादञ्ज् वा कार्यपुक्तितः । इस प्रकार से सब विभाग भावि कर चुकने के बाद प्रस्तावमा के मनतर काव्य-व्यापार को व्यान में एककर युक्ति के साम आदि में

दिस्क्रमक या सक की रचना करे।

विष्क भक भीर सक नी रचना किस प्रकार से होनी शाहिए, इस बात नो बढात हैं---

ध्रपेक्षित परित्याग्य नीरस वस्तुत्रिस्तरम् ॥२=॥

यवा सदर्शयेच्द्रेय कुर्याहिष्कम्भक सदा ।

यदा सु सरस बस्सु मूलादेव प्रवर्तने ॥२६॥

'त्रादायेव तदाञ्च. स्यादामुलाक्षेपसथय' ।

बस्तु के उस विस्तृत भाग को, जो बापेशित भी हो झीर नीरस भी हो छोडकर प्रविद्यास्य अपेक्षित भाग से विस्कशक को रचना होनी चाहिए।

म्रोर जहाँ पर सरस बस्तु भारन्म से ही हो वहाँ पर म्रामुख में की गईं सुबना का साध्य सेकर अक की रखना करनी चाहिए ॥२८-२६॥

प्रत्यक्षनेतृचरितो बिन्दुव्याप्तिपुरस्कृतः ॥३०॥

ग्रङ्को नानाप्रकारार्थसंविधानरसाथयः। भव - इसमें नायक के कार्यों का प्रत्यक्त वर्शन रहता है । यह बिन्दु

वे लक्षण से पुक्त तथा अपनेक प्रकार के प्रयोजन का करनेवाला तथा रस का ब्राधन होता है। रस के ब्राधय होने के कारए इसका नाम धक पड़ा है ॥३०॥

इसने घन भागवण्य का सात्पर्य यह है कि जैसे उत्सम (गोद) विमी बच्चे में बैठने ने लिए बाद्यय होता है, बैसे ही यह (बन) भी रसी

में बैटने (रहने) के सिए पाथय होता है, इसीसे इसको धर कहते हैं।

श्रनुभावविभाषाम्यां स्थाधिना व्यभिचारिभिः ॥३१॥ गृतितमुक्तैः वर्तेःयमाङ्गभः परिपोषरमम् ।

इसमें भी विभाव, क्रमुमांव, व्यक्तिवारीमाव तथा स्थायीभावों के द्वारा ग्रंगी (प्रधान) रस की पुष्ट करना चाहिए। कारिका में 'फ्रांगन', पर बावा है, इसका वर्ष है 'ग्रंगी रस का स्थायीमाव'। 'गृहीतमुक्तः' वा सर्थ है, 'परस्पर जिले हुए'। 'स्थायिता' का सर्थ 'ग्रन्थ रस वा स्थायी' होता है।।३१।।

न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत् ॥३२॥ रसं था न तिरोवध्यादस्त्वलंकारसक्षरोः ।

माटकों को रसपूर्ण को होना हो चाहिए, पर रस का इतना आरिश्य न होना चाहिए कि क्थावस्तु का प्रवाह ही विव्युत्न हो जाए धीर इसी प्रकार नाटक-रचना में बस्तु और अलंकार तो रहना चाहिए पर देता न हो जाए कि बस्तु और अलंकार के ही चडकर में पडकर रस ही गायब (नष्ट) हो जाए ॥वे२॥

एको रसोऽङ्गीकर्तरमो वीरः श्रृंगार एव वा ॥३३॥ झङ्गमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्तिर्वेह्गोऽद्भुतम् । नाटक मे प्रमानता एक ही रस को होनी चाहिए, वह चाहे श्रृंगार

हो या वीर ॥३३॥

[तात्पर्य यह है कि नाटक-मर में केवल एक रस की प्रधानता होती है] ग्रीर नाटक में आये हुए प्रत्य रसों को प्रधान रस के अंग क्य में ही रपना चाहिए। इसके प्रलावा नाटक में जहाँ निवंहण संधि का स्थल हो वहाँ पर श्रद्भुत रस की रचना होनी चाहिए।

प्रसन—यदि कोई यह कहे कि पहले दश्यी कारिका में 'स्थामिना' (स्यायों के द्वारा) ग्राया है उसका तो प्रषं 'श्रव्यरस का स्थायों' होता है, इसलिए इस दश्यों कारिका के द्वारा श्रन्य रसो को प्रधान रस का ग्रम होना चाहिए, यह यात कही जा चुकी है, फिर यहाँ पर देदेशों २२० इज्ञहणक

कारिका में फिर "श्रङ्गमन्वेरसा सर्वेकुर्यान्तिवंहणेऽद्मुतम्" इत्यादि से उसी बात को दोहराने से वया लाभ है ?

उत्तर — ऐसी शका करना ठीक नही है, क्योंकि दोनो स्यानो पर ग्रन्त- प्रत्य तिसे जाने का माव भी अध्य-ध्यत्य है — जहाँ पर अन्य रस का स्थायीमाथ अपने विभाव, अनुभाव ग्रीर व्यक्तिचारी भाव प्राचुर्येण हो, वहाँ प्रत्य रसी को प्रधान रस की अपना प्राप्त होती है मन्यया केवल स्थायी रहने पर तो व्यक्तिचारी मात्र ही रहते हैं।

नाटक मे निम्नविष्ठित बातों को नहीं दिखसाना चाहिए— दूराध्याने वयं युद्धे राज्यवेजाविष्ठ लयन् ॥३४॥ संरोध भोजने श्वानं सुरतं चार्नुते ानन् । प्रान्वरव्रह्मादीनि प्रत्यक्षास्मि न निर्विजेत ॥३५॥

दूर का रास्ता, च.ग. गुढ, राज्य-विध्नव, देश-विध्नय प्राटि और सुपरे राजा से दिवा गया नगर का घेरा, भीजने, स्तान, सुरत, अनुत्तेषन और यहत्रभारण करना इत्यादि, इन सब बातों को शत्यक्ष रूप से नहीं दिखाना चाहिए, किन्तु प्रदेशक स्वाटि के द्वारा सूचित कर देना चाहिए। ॥३४-३४॥

नाधिकारियधं स्वापि ह्याज्यमावस्यकं न च ।

षाहिए ॥३६॥

क्यायस्तु के प्रधान नायक को वय दिखाने की बात दूर रही, प्रवेशक भादि से भी उसकी सूचना न होनी चाहिए भीट ग्रावश्यकीय देवकाएँ, पितृवार्य ग्रादि को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए। उनका दिखाना भावश्यक है। एकाहा चरिती मार्थमिस्यमासामायकम् ।। ३६॥

पात्रीत्रवतुरंरजु तेषामन्तेऽस्य निर्णमः । एक प्रक में प्रयोजन से सन्धिन्यतं एक ही दिन को कवा होनी चाहिए। साम भावक को भी ग्रंक से प्रवस्य उपस्थित रखना नायन कें अतिरिक्त तीन या चार पात्रो को रहता चाहिए। अन्त में सबको (यहाँ तक कि नायक) को भी निक्त जाना चाहिए।

पताकास्यानकान्यत्र विन्दुरन्ते च बीजवत् ॥३७॥ एबमङ्काः प्रकर्तव्याः प्रवेशादिपुरस्कृताः ।

पञ्चाड्समेतदबरं दशाद्धः नाटकं परम् ॥३८॥

इसी प्रकार अयोजित स्थान पर पताकास्थानक तथा बीज के ही सहज्ञ जिन्हु को भी रखता चाहिए। बिन्हु की रचना अकों के अन्त मे होनो चाहिए। इस प्रकार से प्रवेशक खादि के साय अकों की रचना करनी चाहिए। नाटक वमन्से कम पाँच प्रकों का तथा अधिर-से-अधिक इस मंत्र का होना चाहिए।।३७-र=।।

इसके बाद प्रकरण-नामक रूपज-भेद को बताते हैं—
प्रथ प्रकररों पृत्तभुत्पाद्यं लोकसभ्ययम् ।
प्रमारविद्यविद्यालिक कुर्याच्य नायकम् ॥३९॥
धीरप्रशान्तं सापायं धर्मकामार्थतत्त्ररम् ।

शेर्यं नाटर वस्त्रंधिप्रवेशकरसादिकम् ॥४०॥

प्रकरस्य — इसवी कथावस्तु लीकिक तथा कविवरित्यत होती है। इसका नायक धीरशान्त होता है। इसके नायक खाइस्य, मानी, वैद्य, इनमें से कोई एक होते हैं। इसको नायक धर्म, धर्म काम फीर मोझ में तरदर रहा है। यह (नायक) जिज्ञान्त श्रामें का सानना करते हुए सपनी इस्हा पृति में काग रहता है। इसमें (प्रतरण में) धेय धार्में का सिन्य, प्रमेशक तथा रस झादि की नाटक के समान हो रचा जाता है। प्राथा

नायिका तु हिंघा नेतुः दुलस्ती गरिपना तथा। वर्वचिदेक्व दुलजा वेस्या वर्वाप हमं नवचित् ॥४१॥ दुलजाश्यन्तरा वाह्या देस्या नातिक्रमोऽनयोः। प्रामि. प्रकरसं प्रेषा संकीसं पूर्वसंकुलय्॥४२॥

प्रकरण में नायक की गणिका, कुलजा, दोनों प्रकार की नाविका विहित हैं। कहीं पर कुलजा (कुलोन), कहीं पर गणिका घोर कहीं पर दोनों ही नायक को नायिका होती हैं। प्रकरस मे तीन ही प्रकार की नायिकाएँ हो सक्ती हैं। इससे प्रधिक भेद नहीं किया जा सकता। इस नियम का उल्लंघन कदापि नहीं किया जा सरता। इस प्रकार प्रकरश के कुल सीन नेद हुए-पहला, जिसमे जुलकन्या नायिका होती है, यह गुद्ध सेद हुआ । जिसमे गणिका हो वह विद्वत तथा जिसमे दोनों हो उसे सकीर्सं कहते हैं ॥४१-४२॥

बर्य पैदा करनाही जिसके जीवन का प्रचान कर्म है उसे देखा वहते हैं, इसीमे कुछ और विशेषता या जाती है तो गणिका झब्द से मिहित हो जाती है। असे कहा भी है-

सामान्य वेश्याचो मे श्रेष्ठ, रूप, शील घीर गुणो से युवत वेश्या

समाज के द्वारा गणिका शब्द की स्पादि को प्राप्त करती है। जैसे-'तरगदत' की नायिका वेश्या है 'पुष्पदृतिका' भीर 'मालडी

माधव' की नाविकाएँ कुलजा हैं तथा 'मृन्छकटिक' की नायिका दोनी (मुलजा भीर बेस्या) दोनो हैं, अर्थात् सकीणं हैं। 'मृच्छक्टिक' की नायिका वसन्तसेना जन्म से वेश्या है पर उसका श्राचरण कुश्रजा-सा है। वह वेश्या-कर्म से घृणा करती है और अपना जीवन एक पूनीन सही नारी भी तरह धार्य चारदत्त से विवाह भर विताना चाहती है। ग्रत इसमे दोनो का मिश्रण होने से सकीणंता है। 'मुच्छकटिक' मे ध्रा, जुपारी, विट, चैट, ग्रादि भरे हैं। ऐसे सबीण प्रकरण में धूतं, जुपारी, विट प्रादि का वर्णन करना शावस्यक है।

लक्ष्यते नाटिकाप्यत्र संकीर्शान्यनिदत्तये ।

नाटिका-नाटक भौर प्रकरण से मिथित उपस्पक की नाटिका वहने हैं। नाटिका उपरूपको के १० भेदों में का प्रथम भेद है। नाटक भीर प्रकरण के सकीणों में से यदि कोई समभा जाए तो नादिका ही एक मात्र सदीर्ण भेद है। ग्रन्य उपरूपन (प्रकरणिना) नही। यस ग्रन्य उप-

म्पनो की निवृत्ति के लिए श्रन्य उपस्पकों के साथ इसे न रसकर नाटक ग्रीर प्रकरण के बाद हो इसे रखा गया ।

मुख क्षोको वा विचार है कि "नाटक और प्रकरन के मिश्रत" नाटिका और प्रकरितवा दो भेद होने हैं, पर धगर मिश्रित करके समभा आए तो प्रतिद्ध नाटिका ही है प्रकरितका नहीं।

यद्यपि उपर्युक्त मरतमुनि-विर्वित क्लोन की 'नाटी' सजावाले काव्य के दो भेद होने हैं। उसमें का एक भेद प्रसिद्ध है जिने नाटिका राज्य से कहा जाता है भीर दूसरा भेद प्रकरिपका है। इस प्रकार की व्याख्या दुख लोग करने हैं सी ठीव' है। कारण यह है कि सक्षण और सहस्य दे तेनों जब तक न भिनें तत तक चीज प्रमाणिक नहीं मानी जाती है। प्रकरिणका कह देने भाग से उचका प्रस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा मक्ता है जब तक उसका सक्षण कहीं न चटे।

नाटिना भीर प्रकरिणना थोगों का समान सलाय होने से दोनों में कोई मेद नहीं हैं। अगर कोई कहे कि प्रकरिणना और प्रकरण में वस्तु, रम सीर नायक एक ही जैंछे होते हैं, अत अवरणिया ही मानना ठीक है। तो हमना उत्तर यह है—तो किर प्रकरण के आंतिरिक्न प्रकरिणवा को सलगे मानना व्यव् है नयोंकि दोनों एक ही चीज हैं। इनलिए नाटिना वा नाम प्रव्यं है नयोंकि दोनों एक ही चीज हैं। इनलिए नाटिना वा नाम प्रव्यं है नयोंकि दोनों एक ही ही ही सक्ति ही ह सक्ता स्वित्र प्राप्त यह है—"गुद्ध सल्य के सक्त से ही मक्ति का सल्य स्वत सिद्ध था, प्रिर भी सकीर्य का लक्ष्य भरतमृति न जो बनाथा वह स्वयं बदता है और स्वयं प्रकृत जावन करता है कि महीर्यों म यदि किसी की गणना हो तो वस नाटिका की ही।"

नाटक प्रकरण के मेल से क्षेत्रे प्रकरिणका समनी है, इस बात की स्तान हैं—

तंत्र बस्तु प्रकररणात्राटनात्रायको नुषः ॥४३॥ प्रस्थातो घीरललितः श्रृङ्गारोऽङ्गो सलक्षराः । नाटिका का इतिनृत प्रकरण से और नायक राजा आदि नाटक से २२४ दशरूपक

सेना चाहिए। नायक को स्थातितक्य तथा सुन्दर लक्षकों से युक्त थीर-सितत होना चाहिए। नाटिका मे प्रधान रस प्रयार को ही रखना चाहिए।।४३॥

नाटक, प्रनरण और नाटिका, इन तीनो से बस्तु आदि के द्वारा प्रकरणिका में कोई भेद नहीं है। प्रयांत इन तीनो में झानेवाली वस्तुषों के खितरिक्त प्रकरणिका में कोई भी विशेषता नहीं रह जाती। प्रत उसके मानने की बोई धावहयकता नहीं है। फिर भी—

स्त्रीप्रायचतुरङ्कादिभेदकं यदि चेव्यते ॥४४॥ एकद्वित्र्यञ्जपात्रादिभेदेनानन्तरूपता ।

यदि कोई इस प्रकार से कहें—"'कं झावि के भेद से प्रश्रप्तिका को नाटिका में हिन्नयों को नाटिका में हिन्नयों को नाटिका में हिन्नयों को प्रधानता रहती है और कैशिको कुलि होती है और विश्वर्य मिश्र मिल प्रति हुए। तो इसका उत्तर यह है कि प्रदि अक, पान क्षावि के न्युनाधिवय से भेद सानने लयेंगे तब तो क्यकों के भेद को कोई सोमा हो नहीं रह आएगों और ऐसा होने से बड़ा प्रमुख होता। ब बद प्रकर्मणका को अलग ब्रान्ये की कोई प्रावश्यक्ता नहीं है।।४४॥

नाटिका में और कीन-कीनसी विशेषता होती है या रहती है, इस बात को बताते हैं—

विद्यातम् वृत्त्वे विद्यातम् वृत्त्वे व्यव्यातम् । । ४५।।

गम्भीरा मानिनी कृष्णुत्तद्व वान्नेतृसंगमः ।

नामिको ताहुको मृग्या दिव्या चातिमकोहरा ॥४६॥

ग्रन्तःपुरादिसंबन्धादास्रा खृतिदर्शनैः ।

ग्रनुरागो नवाबस्यो नेतुस्तस्यां ययोत्तरम् ॥४७॥

नेता तत्र प्रथर्तेत देथोत्रासेन शङ्कितः ।

कैतित्रयङ्ग स्वर्त्तभश्च युक्तकेरिय नाटिका ॥४६॥

नाटिका में महारानी राजवंश की प्रयत्मा नायिका होती है। घही घेषटा होती है। उसका स्वमान यम्मीर होता है और यह पर-पद पर मान करनेवासी होती है। दिसीय नायिका भी महारानी के ही वदा-परिवार की रहती है धौर उसके साथ नायक का मिसन किटनाई के साथ हुंगा करता है। नायक की दूसरी नायिका, जिसके भ्रम में यह बीचाना धना रहता है, बह भी राजकुमारी ही होती है। इसका कप श्रात्म सुन्या होती है। इसका सम्बाध राजमहान से नाथ रहता है। श्रात्म पुर में उसके माने शादि के देखने-सुनने से शाकुट हुंगा मायक पहली नायिका महारानी से दिएकार करते-करते उससे भ्रम करता है। यह भ्रम उत्तरीतर बदता ही जाता है। कीशको बुल्ति के बारिक श्रो को नादिका के चारों स्रकों से रखना करनी चाहिक। नाटिका के भीतर चार अक होने चाहिए।।४५-४६।।

भारणस्तु घूर्तंचरितं स्वानुभूतं परेण वा ।
यत्रोपवर्णयेदेको निपुराः पण्डितो विटः ।।४९॥
संयोधनोक्तिअत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितैः ।
सूचयेद्वीरण्डुद्धारौ शौर्यसौभाग्यसस्तवैः ॥५०॥
भूयसा भारती वृत्तिरेकाङ्कं वस्तु गल्पितम् ।
मुखनिर्वहरो साङ्को सास्याङ्गानि दशाणि च ॥५१॥
माण—इतमं केवल एक ही गात्र होता है। यह कोई वृद्धिमान
कार्यद्वास यिट होता है। यह प्रयो तथा दृतरे के यूर्ततायूर्ण कार्यो
का पर्यंत करता है। इसका वर्यंत वास्तिया के रूप में होता है। यह
किसी व्यक्ति को कर्यना करके उसको सम्योधित करको वृद्ध कहता है
और उसका मन से कुछ उत्तर विवाहर किर पर्यंत करित स्पति है।

कहते हैं। बौधं घोर क्षोमान्य के वर्णन द्वारा यह बौर घोर शृंगार रस को सूचित करता है। इसमें (आए में) आरती बृत्ति की स्रीपकता रहती है। यह एक का होता है घोर इसकी कया कविकस्पित होती है। इसमें मुस्त तथा निर्यहरण सन्यि घपने क्षमों के साथ रहती हैं।

इसके ग्रलाचा लास्य के निम्नतिश्चित दस ग्रग भी इसमे व्यवहृत

गेमं पदं स्थितं पाठयमासीनं पृष्पगण्डिका ।

होते हैं ॥४६-५१॥

प्रस्केदकस्यिग्रहं च संन्धवास्यं द्विग्रहम् ॥५२॥ उत्तमोसमकं चेव उक्तप्रस्युक्तमेल च । लास्ये वद्दविषं ह्येतदङ्कनिर्देशण्डपनम् ॥५२॥ सास्यके सग—ये इस सग् हॅं—र नेययर २ स्थित राज्य, ३.

भ्राप्तीन, ४ पुरमाध्यका, ४. प्रक्ट्वैरक, ६. निगुद, ७ सैन्यब, ८ द्विगुद, १. उत्तमोत्तमक क्षोर १० उत्तप्रस्युक्त ॥१२-५३॥

तहरप्रहसनं त्रेषा शुद्धवैकृतसंकरं ।

प्रमुतन—भारत के ही समान प्रमुतन भी होता है। भारा के ही समान इसमें क्याबस्तु, सन्धि, सन्धियों के अब और तास्य आदि भी होते हैं। यह तीन प्रकार का 'होता है—१. युद्ध, २. बिहुत और वे सकर।

पासिष्डिवित्रप्रभृतिचेटचेटोविटाकुलम् ॥१४॥ चेष्टितं वेषमायाभिः शुद्ध हास्यवचोन्चितम् ।

मुद्ध अर्सन — पाखण्डों, ब्रह्मचारों, सन्यासी, तपस्वी, पुरोहित, चेंद्र,
धेटी प्रीर पिट इनसे मदा हुपा रहता है। नायक तो सीपा प्राह्मए,
ब्रह्मचारों, सन्यासी, तपस्थी, पुरोहित श्राबि हुमा बरते हैं। इसकें प्राव्यापार चेट और चेटी के व्यवहार से पुक्त होता है। इसकें प्राव्यापार पर) हास्य टीता है। इसकें प्रव्यापार पर) हास्य टीता है। इसकें प्रव्यापार पर) हास्य टीता है। इसकें प्रवास सामाजिकों के भीतर हास्य नो पंत्रा बरता रहता है। श्रथा

दामुकादिवयोवेपैः पण्डकञ्चुकितापसैः ॥५५॥ विकृतं संकराहीष्या संकीर्णं घूनसंकुत्तम् । रसस्तु भूमसा कार्यः षड्विथो हास्य एव तु ॥५६॥ विहत भूसत----इत महत्तव ये गमुसक, बञ्चुको धौर तपस्वी लोग कामुको के वेश में तथा कामुको की तरह वातबीत बादि व्यवहार करते विकार जाते हैं ॥५४॥

संबोर्स-पह पूर्तों से बरा रहता है। इसमें बीधों के तरहों बग रहते हैं। बीधों के समी की संबोर्स्ता के नारण ही इसे सकीस्र कहते हैं। इसमें रस की प्रचुरता रहती है और हास्य वे छहों बेद होते हैं।।१६॥

डिमे बस्तु प्रसित्वं स्पान्कृतयः क्षीत्रकी विना ।
नेतारो देवगन्यवंपसरसोमहोरगाः ॥५७॥
भूतप्रेतिपत्राचाखाः योउशात्यन्तमृद्धताः ।
रसीरहास्यम्पुङ्गारैः यङ्भिवीन्तैः समन्वितः ॥५८॥
मायेन्द्रजालसंश्रमकोयोव्भ्रान्ताविष्ठिष्टैतः ।
यन्त्रसूर्योपरागेवच न्याय्ये रौडरसेऽङ्मिनः ॥५९॥
चतुरङ्कवतु,सीर्धार्नीवमशी विश्वः स्मृतः ।

डिम—डिम, अर्थीत् अनेक नायकों का सथात । इसको र यायस्तु इतिहास प्रसिद्ध होती है । इसने वैशिको के अलावा होय सभी दृत्तियों का प्रयोग होता है । इसके नेशा देवता, गम्यनं, वक, रास्त्रस, महोरग, भूत, प्रेत, पिशाव आदि सोलह होते हैं । इसने हास्य और स्पार के सलावा देव यहाँ रसों रा भी प्रयोग किया लगा है । यह भाया, इन्द्रजाल, नायास्त्रोप, उपनदा आदि को स्वाम संपार हमा विकास का साम से भरा रहता है । इसने वार के सीर वार ही सीम्पर्य होती हैं । दिनम सिम्पर्य होती हैं । दिनम सिम्पर्य होती हैं । दिनम सिम्पर्य होती । इसने प्रयोग रस दि रहता है ॥ १५७-११॥

"बह्या ने विषुरदाह में डिम ने इन संसणों को कहा था, इमलिए नियुन्दाह नो डिम नहा बाता है।" मरतमूनि न स्वय नियुरदाह की नथा **२२** = वडास्ट्रपंक

वस्तुनो डिम मी तुलनामे दिखलाया है, अर्थान् डिम का उदाहरण त्रिपूरदाह है।

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्यातोद्धतनराश्रयः ॥६०॥ होनो गर्भविमर्शास्यां दीप्ताः स्युडिमबद्रसाः । श्रखीनिमित्तसंद्रामी जामदम्यजये यथा ।। ६१।। एकाहाचरितैकाञ्जो व्यायोगो बहिभर्नरैः।

थ्यायोग—इसको वया-वस्तु इतिहास-प्रसिद्ध होती है। नायक इति-हास प्रसिद्ध ग्रौर धोरोद्धत होता है। इसमे वर्भ श्रौर विमर्श सन्धि महीं होती । इसमे डिम के समान ही रसो का सन्निवत होता है, प्रयान जो रस डिम में होते हैं वही इसमें भी रहते हैं। इसमें के सभी पान पुरुष होते हैं। इसमे युद्ध बादि भी हती में लिए नहीं होता। इसमे एक ही अकहोता है और उसमे एक हो दिन का ब्रुत्तान्त रहता है। उदा-हरणार्थ-सहस्रार्ज् न ने परशराम के पिता जमदिन को मारा । पिता की मृत्यु

की सबर पुनकर प्रकृतित परशुराम ने सहस्राजु न को भारा । इसमे (व्यापीग में) पात्रों की बहुलका रहती है। म्यायोग बारद का बारियक धर्म-"जिसमें बहुत पुरुष लगे हुए ही

ऐसे कार्यको ध्यायोग करते हैं। इसमे भूगार और हास्य को छोडकर

द्रीप सम रसी का परिपाक डिम के सहज्ञ होता है ॥६०-६१॥

समयपार-इसमे नाटक धादि के सहदा प्रामुख रहता धाहिए। इसकी कथायस्तु देवता और प्रमुरों से सम्बन्धित इतिहास-प्रसिद्ध होती है। विमर्श को छोड क्षेत्र चारों सन्यियां इसमे होती हैं। इसमे सभी पृत्तियों का प्रयोग होता है, किन्तु कीशकी वृत्ति का प्रयोग ग्रत्य ही यात्रा में होता है। इसके नायक देवता होते हैं और उनकी बुल सक्या बारह होती है । इनका चरित्र उज्ज्वस होता है । साथ हो ये बीर भी होते हैं । दन सारहों नायकों की कल-प्राप्ति भी पृथक्षुधक् हो होती है। जैसे समुद-मन्यन के समय में विष्णु को लक्ष्मी, इन्ह्र को रस्न, देवनामों को ग्राम्न, इत्यादि पृषक्-पृथक् फल की प्राप्ति होती है। इसमे बीर रस की प्राप्तता रहती है और ग्रान्य रस उसकी पृष्ट करते हैं।

कार्यं समवकारेऽपि द्यानुखं नाटकादिवत् ॥६२॥
स्थातं देवासुरं वस्तु निर्विमशास्तु संवयः ।
युत्तयो मन्दर्कशिक्यो नेतारो देवदानवाः ॥६३॥
द्वादशोदास्तिक्वाताः फलं तैयां पृयस्मृयक् ।
यहवीररमाः सर्वे यद्वदम्भोधिमन्यते ॥६४॥
इंकैद्विनिविक्रपटिक्युद्धारिक्विद्वयः ।
द्विसंधिरद्धः प्रयमः कार्यो द्वादशनातिकः ॥६५॥
चतुर्दिनातिकावन्यो नातिका यटिकाद्वयम् ।
वस्तुस्वभावदैवारिङ्गताः स्युः कपटालयः ॥६६॥
मनारोपरोधमुद्धे वाताम्यादिकविद्वदाः ।
प्रमार्थकामैः श्रृङ्कारो नात्र विन्तुप्रवेशकौ ॥६७॥
यौय्यद्भानि ययालाभं कुर्यात्महसने यया ।

इसमें तीन शंद, तीनों प्रकार के क्यट भीर तीनों हो प्रकार के क्यट होने हैं। इनका पहला श्रक श्रास्त नातिका का होना है। इसमें दो सिंदय होने हैं। इसमें दो सिंदय होने हैं। इसमें दो सिंदय होने हैं। इससे श्रीर तीक्सर करू कम्प्रा, बार भीर दो लिए हो हो। है। पहला तिकार (नाहिका) दो भीरो है याद्र र होती है। प्रहान के समान ही इसमें योगों के प्रमा वो रहता चाहिए। इसमें विचार दोर प्रदेश के समान ही इसमें योगों के प्रमा वो रहता चाहिए।

इसमा वन्दु चार प्रवश्न का रस्ता सवया लाय है। ६२-६७ स क्यट-स्यामाविक, दैविक, कृषिम (श्वपुत्त) इन मेदी के द्वारा सीन प्रकार का होना है।

विश्व (सप्रवि)—यह भी तीन अनार का होता है—१. चेतनहृत (मनुष्यहत), २. बचेतनहृत घीर ३ चेतनाचेतनहृत । दसमे पहते का हरण, जैसे—- क्षत्रुके नगर घेरने या श्रात्रमण करने के कारण भगदड श्रादिका होना।

दूसरे का उदाहरण, जैसे—जल, वाधु यांनि बादि के द्वारा बाद भा जाना, वर्षों का न होता, भाग सब काना श्रादि ! तोसरे का उदाहरण जैसे—हाभी बादि के छूटने ब्रादि से उत्पन्न उपद्वत का

होना। इसो प्रकार श्रृवार भो तीन प्रकार का होता है— १ धर्म श्रुवार

२ मध्ये प्रवार भीर वे काम प्रवार।
अपर बताए हुए तीनो प्रकार के विद्रव, तीनो प्रकार के कपट,
भीर तीनो प्रकार के प्रवार के मेदों को क्षमश समयकार के तीना अको
में रक्षना चाहिए।

समयकार बान्द का खाबिदक धर्य है "सब नायवों ने प्रयोजन का एकव रहना।" चूँकि समयकार रूपक से कई नायको का प्रयोजन निहित रहता है, खत इसे भी समयकार कहते हैं।

।हत रहता ह, भत ६४ ना समवकार कहत ह । बीची तु कैतिकीवृत्ती संप्यङ्गाकैस्तु भारणवत् ।।६८।। रसः सूच्यस्तु शृङ्गारः स्पृशेविच रसान्तरम् ।

रतः सुच्यत्तु न्युद्धारः स्युशक्षयः रसान्तरस् । युक्ताः प्रस्तावनाख्यातैरङ्ग् रुद्धात्यकादिभिः ॥६९॥ एवं वीथी दिधातय्या वृध्येषपात्रप्रयोजिताः ।

एवं विधा विधातिया दृष्येशपात्रप्रधीजता । धीयी—इसमे कॅरिको वृत्ति होती है। सथियाँ और उनके मण

तथा मंक भारा के समान ही होते हैं। इसमे काय रहों का कियित् स्पर्ध रहते हुए भी प्रधानता श्रुपार रक्ष की ही रहती है। इससे पाप्र को या एक होते हैं। यहने प्रस्ताथना के भीतर जो घोषों के उदूपारयक, सवसंगित साढि क्षम गिनाए हैं, वे सभी इसमे होते हैं ॥६८-६॥

उरपृष्टिकाञ्चे प्रस्यातं वृत्तं युद्ध्या प्रपञ्चयेत् ॥७०॥ रसस्तु करणः स्यायी नेतारः प्राष्ट्रता नराः । भारायत्तंपिवृत्त्वज्ञं युंक्तः द्वीपरिवेधितः ॥७१॥ याचा युद्धं विघातव्यं तथा जयपराजयी ।

मंत्र या उत्शिष्टांचू—इमनी वनादानु प्रसिद्ध पर विवन्तस्वता इत्ता भति विस्तृत की हुई रहती है। इसमें दिवमें के विनाप भावि का यर्गन रहता है। इसमें कदण रस की प्रधानता रहती है। इसरा नायक सामारण पुरस होता है। जब भीर पराज्य भावि का वर्णन इतमे रहता है। जुद्ध केवल चाली द्वारा प्रवश्तित किया जाता है, धर्माचू इसमें केवस बास्युद्ध दियाया जाता है। भोर बानें, जैसे स्वित बृत्ति भीर स्वत, इनको भाग के समान ही समस्ता चाहिए। 100-0811

मिप्रमीहामृते वृत्त चतुरङ्क् दिसधिमत् ॥७२॥
मर्रावय्यावनियमात्रायश्यतिनायशौ ।
स्वातौ योरोद्धताबन्त्यो विपर्यासास्युक्तपृत् ॥७३॥
दिव्यवियमनिन्द्धनोमपहारादिनेन्द्यतः ।
श्रृङ्कारामासमय्यस्य पिचित्तिस्यस्ययेत् ॥७४॥
सरंभं परमानीय युद्धं व्याजात्रियारयेत् ।
यप्रप्रातस्य कृतीत ययं नीय महास्मनः ॥७४॥

ईरान्य-इसमें बार धन तथा मुन, प्रतिमुख, बीर निर्मुण, बे तीन सिम्बर्ग होने हैं। इसने मानन धीर प्रतिनायक इनिमान-प्रमिद्ध मनुष्य और देवता होने हैं। इसने महित पीरोद्धत होनी है। प्रतिनायक दिस्तनायिका को बाहना है और कर वह बसे धामानों ने प्राप्त मही होती तो हरण करने पर तुल जाना है। इसमें गुराह गण का भी बर्गन धीरा-धीर होना चाहिए। इसमें युद की मन तरह से संवारों हो पुष्ते पर भी दिसों कहाने से दस जानी है, बर्धान् युद्ध होने-होने कर जाना है। प्रकरण इसमें महानुष्य का वस बिट प्राप्त भी हो तो भी क्यारि प्रतिन नहीं करना चाहिए। इसने नावक प्रतिनी के समान धानन साविका हो बाहना है, इस इसने हासक प्रतिनी के समान धानन २३२ दशरपक

इत्थं विचित्तय दशरूपकलक्ष्ममार्ग-मालोक्य वस्तु परिभाव्य कविप्रबन्धान् । कुर्यादयत्नवदलंकृतिभिः प्रबन्धं

वाक्येरदारमघुरैः स्फुटमन्दवृत्तैः ॥७६॥

।। धनजयकृत दशहपक का तृतीय प्रकाश समान्त ॥

ा धनजबहुत दसस्पर्क को तृताय प्रकाश समाप्त ।। इस प्रकार वसकपको के दसों भेदों के सक्षणो और उसके निर्माण के दंग और वस्तु देसकर तथा महाकवियों को रवनामों का प्रम्ययन करके सरस छन्दों में कृतिमता रहित झलकारों, उदार मधुर, वावयो

मार्वि के द्वारा प्रवन्य की रचना होनी चाहिए ॥७६॥ विद्युपुत्र धनिककृत दशरूपावसीय नामक व्याख्या वा लक्षण-

विष्णुपुत्र घनिककृत दशरूपावलीश नामक व्याख्याका लक्षण॰ प्रकास नामक सुतीय प्रकाश समाप्त ।

## चतुर्थ प्रकाश

मद यहाँ से रख के भेदों को बताने हैं—

विभावैरनुमावैरच सात्त्विकंज्यंभिचारिभिः ।

ग्रानीयमानः स्वाद्यत्वं स्यायीभावो रमः स्मृतः ॥१॥ वियान, प्रमुभाव, सास्विशमाव और व्यक्तिवारी मार्वो के द्वारा

परिपुष्टाबस्या (स्वच्छना) को प्राप्त किया हुमा स्यायीमात्र एस कह-

लाता है गरे।। धामे वर्णन विष् जाने वाले विनाव, धनुनाव, व्यनिचारी धौर

मास्तिक माबो के द्वारा कान्य में वर्णन धीर प्रश्निय में प्रदर्शन देख क्तव्य पदनेवानों भौग भनिनय देशनेवाले सामाजिको की अपने हृदय

में रहनेवार स्वायीभाव (जिनका वर्णन ग्रामे किया जाएमा) जब न्वाद बरने में योग्य हो बाते हैं तो उन्हें रम मी समा दी जानी है। स्वाद

ने योग्य बन जाने का ब्रामिशाय यह है कि काब्य पढने और सुननेवासों स्वाप्त धीर प्रतितय देवनेपाली के जिल में केवल ग्रानन्द-ही-प्रानन्द एह जाता है।

258 दशटपक ना प्रयोग करते हैं, ठीक उसी सरह से रस ने विषय में भी 'रसवान

कान्य है' इस प्रकार का व्यवहार होता है। बस्तृत काव्य रमवान् नहीं होता, वस्कि होते हैं सामाजिन । ज्ञायमाननया सत्र विभादो भावगोदछ्त ।

**प्रा**लम्बनोहीपनत्वप्रभेदेन स च द्विधा ॥२॥

विभाव—हान 🕏 विषयोज्ञत हो जो नावों वा ज्ञान कराएँ मौर

भावों को परिपृष्ट करें, उन्हें विमाब कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं-१. द्वालम्बन धौर २ उडोपन ॥२॥

'यह ऐसा ही है, यह ऐसी ही है' इस प्रकार का श्रतिशयोदित रूप में किया क्या जो वर्णन और उससे उल्लादित विशिष्ट रूप से जायमान

जो प्रातम्बन रूप नायक भीर नायिका, भीर उद्दीपन रूप जो देश, काल

भादि उनको विभाव महते हैं। विभाव का ज्ञायमान अर्थ में जो व्यवहार किया गया है, इसमें प्रमाण है- अरत मुनि का "विभाव इति विकातार्थ इति" यह वास्य !

इन वाक्यों को स्याप्तम, उनके सबसुर झाने पर, रस्रो में दिखाया जाएगा ।

[रपा विभावादिशों मे बस्तुशुग्यता है ?]

बाह्य सरवों की बपेशा न रखनेवाले इन विभाव आदि ला, रान्द की उपाधि के बल से उन मानों का सामान्य रूप से प्रपने प्रपने सन्विधयो

के द्वारा साम्रान् भावनों के चिस में स्फुरण कराने से साम्रम्बनत्व जहीपनत्व होता है । श्रत इसमे वस्तुज्ञन्यता का कोई स्यान ही नहीं है ।

इसी बात को भर्त हरि ने भी कहा है---"रास्त्र की उपाधि से आप्ता स्वरूप वाले जो विभाव धादि हैं वे

युद्धि में विषयोभूत होकर कस, राम, दुष्यन्त मादि को प्रत्यक्ष के समान ज्ञान कराने में कारण होते हैं।" पट्सहस्रीकार ने भी यि विभाव ग्रादि साधारणीव रण वे द्वारा रस-

निष्पादन में साधन होने हैं' इस प्रकार से लिखा है।

धालम्बन विनाव का टदाहरण, जैसे 'विक्रमोर्वधीय' नाटक में पुरूरवा उबंगी नो देखनर नहना है-"इननी मृष्टि नरने के तिए दौन प्रजा-पनि (उन्यादक) हुसा होगा ? काति का दाना चन्द्रमा, समबा शृगार रम का एक्साब रिमक स्वर्ध कामदेव, किया वसन ऋतु ? क्योंकि बेद पटने से घट भीर विषयों से जिसका मुनूहन शात हो नदा है वह

पराना मृनि ब्रह्मा मला इन मनोहर मप को कैसे बना सुरुता है ? चद्दीपन विभाव का उदाहरण, जैसे—"जिसकी चाँदनी में सारा विस्त घोषर स्वच्छ कर दिया गया है, सीर जिसकी अभा से सस्प्रण

माकाशमण्डल कपूर के समान घवलित हो गया है, तथा जिसकी चौदी के सीने-मोधे स्वच्छनमाना की स्वर्धा रखनेवाले चरफो (किरफों) द्वारा यह दिश्व, कमलदढ के बने हुए पिजटे के भीतर रखे हुए के समान प्रतीन होना है, ऐसे चन्द्रमा का उदय हो रहा है।

द्रमुभावो विकारस्तु भावसं**नूचनात्मकः** । धनुभाव—(१) धान्तरिक भावों की मूचना जिनसे मिलती है

ऐसे (भू कटास विसेष मादि) विकारों को मनुभाव कहते हैं।

(२) सामाजिनों को स्वामीभाव का धनुभव कराते हुए जो रम को

परिपुष्ट करें ऐसे भौही का बताना और कटास विशेष करने धादि की धनुमाव पहने हैं। ये रिमकों के साधान बनुमवक्म के द्वारा धनुमक हिए जाने हैं इसनिए इननो पनुमाय कहते हैं।

(३) रित धादि स्यायीमावों ने परवातृ इतनी उत्पत्ति होती है,

यतः द्वकी बनुमाय कहते हैं।

२३६ दशरूपक नायक और नाथिका के अन्तर्गत होनेवाले अनुभाव का अनुमान किया

केवल नारणता है। लोक से ऐसी बात नही होती, वहां तो नायक भीर नायिका प्रत्यक्ष ही रहते हैं, अत अनुसान करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अनुसाव का उदाहरण, अँसे भेरा (यनिक का) ही परा—कोई दूती किसी प्रत्यन्त सुन्दरी नायिका से उसके रूप-सम्पदा की प्रशस करते हुए कहती है—"हे सुग्मे, तेरे मुँह पर वार-बार जंभाई था रही है, स्तन-

प्राप्त बार-बार उल्लिसित हो रहे हैं, अबल भाँहे बार-बार घूम रही हैं,

जाता है। इसलिए खलौकिन रस नी दृष्टि से भूनटास विक्षेप आदि की

सारा धरीर पत्तीने से लयपय हो रहा है, अह्यधिन उत्मुकता के कारण लज्जा दूर हो गई है सारे धरीर में रोमाच ना प्राटुर्भीय हो गया है, दू जिसके ऊपर सीरिसम्बु के स्वच्छ फेन के सद्य प्रपती सुन्दर स्वच्छ कटाक्ष छटा को फेंक्सी है, यह कोई अस्यन्त सुन्दर परम सीभाग्यधासी सुवक थम्य है।"

भुवक बन्ध हा इस्मादि कातो नो रसो के असग में उदाहरणा के द्वारा त्रमानुसार स्पष्ट निया जाएसा।

हेतुकार्यात्मनोः सिद्धिस्तयोः संव्यवहारतः ॥३॥ स्रोतिक स्त्रे प्रति विभाव धौर घतुमाव का धापस में हेतु और

कार्य-सम्बन्ध है, प्रचाद लोकिक रस के प्रति विभाव तो हेतु और अनुमाध, कार्य होता है। ये बातें ब्यवहार से प्रवक्त होतो हैं। इसोसिए इनका प्रचा से लक्षस्य देना ठीक नहीं है।।३।।

कहा मी है—"विभाव धीर बनुभाव लोक से ही सिद्ध हैं, ये दिन-रात लीकित स्पवहारों में भाषा करते हैं धीर लीकित स्पवहारों के द्वारा जाने जा सकते हैं, डबलिए इनका पृथक् लक्षण नहीं दिया जा रहा है।"

मुत्तदुःसादिकैसीवैभीवस्ताद्भायभायनम् । नाव-प्रतृवार्ये (रामधावि) को प्राथय वनाकर विस्ता सुव-दुःख मायो वे द्वारा भावन के बित्त के धन्तवंत्ती सद्दन्द मार्थो के

दुल माया व द्वारा नायन व भागन को ही नाय कहते हैं। नहां भी है—"बारवर्ष की थात है कि रह से यह वस्तु भावित (भावना के विपयीभूत) कर दी गई है, इस गन्य से यह वस्तु वासित (सुग्राधत) कर टालो गई है।" इति ।

प्राचीन बाचायों ने बनुसार, "रमो को जो मनित (पोटा हुया) दनाएँ उनवो भाव बहुन है।" "कवि के धन्नग्रंत रहनेवाने मानों को जो भावना के विषयोधन करें उनको भाव कहते हैं।"

इस प्रवार से नाय के दो पूयक्-पूरक् सक्षण किये गए हैं, उनसे मेरे मात के सहाण ने विरोध भी बरवना करना उचित नहीं है, बसोकि उन सोगों ने भावात्मक बाल्य भीर भावात्मक समिनवा, इन दोनों बातों को स्थान में रावत उनने अनुमार क्षमता एक-एक सख्य बनाए हैं। अर्थात् इसने प्रयक्त पर भावात्मक पान्य को दुष्टि में रखकर तथा हुआ प्रावात्मक प्रावान्मक पान्य को दुष्टि में रखकर तथा हुआ भावात्मक प्रावान्मक पान्य को दुष्टि में रखकर तथा हुआ भावात्मक प्रावान्मक पान्य को प्रविच्छा है। और (प्रत्यवार ने) रितान के हुस्य में रहनेवाल नाव भी दुष्टि में रखकर प्रयन्ती मात की परिलाया ही है। यन विषय-नेद के कारण क्षम्यकार और प्राचीन साखायों ने सहानों में कोई विरोध नहीं है।

ये भार व्यक्तिचारी और स्थायी भी होते हैं, इनके विषय में प्रभी बताया जाएगा !

पृयामाया भवन्त्यायेऽतुभायत्येऽपि सात्त्विकाः ॥४॥ सत्यादेय समृत्यत्तेम्तन्त्र तद्भायभावनम् ।

सारियक माय—सारियक माय यद्यपि एक तरह से धनुनाय ही हैं, पर सत्य से उपन्त होने के कारण इनकी गणना अन्य अनुनायों से पृपद् की साती है ॥४॥

सरब — पूनरे ने नृत, हुन खादि बातों में धपने धन्त रूप्त की धरमत याने धनुकृत बना तेने का नाम सत्त्व है। विभी ने कहा भी है—सरब विशेष प्रकार के मनोविकार को कहने हैं, जो एकायिया से एप्तन होता है। धन्त्र को इस प्रकार में सममा ना सकता है कि जैसे जब कोई हुती हो जाता है धपना धरयिब प्रसन्त हो जाता है २३६ दशहपुर

तो रहा ए उसरी भौतों से भौतू भिरने बगते हैं। इसनिए मस्व में उत्तम होने में कारण दन्हें सास्विन कहा जाता है। अग्रु प्रमृति जो भाग हैं इननी दो स्थितियाँ होनी हैं। यदि ये किमी भावस्थि भाग की मूचना देनेवाने हो तो भनुनाब अन्यवा मास्विय भाव है।

मास्विक भाव भाठ प्रकार के होते हैं-

१ स्तम्म, २. प्रलय, १ रोमांच, ४ स्वेद,५ वंबण्यं,६ वेपणु, ॥ प्रथ मोर ८. वेस्वयं (स्वर भग)।

स्तम्भप्रलयरोमाञ्चाः स्वेदो वंद्यण्यंतेपयु ॥५॥ स्रभुवंस्पर्यमित्यष्टी स्तम्भोऽस्मिन्निक्वियाङ्गता । प्रलयो महसंज्ञत्यं होपाः सुध्यस्तलक्षरणाः ॥६॥

 १ स्तम्य—कर्मेन्द्रियों के सारे व्यापार के प्रचानक दक जाने का नाम स्तम्य है।

२. प्रतय-भूक्षां को प्रतय कहते हैं, जिसमे प्रास्ती चंतन्यरहित हो जाता है। उसकी चेतनता चाती रहती है। ४-६॥

भीर भेदी भी बताने की कोई बाबश्यकता नहीं है प्योक्ति उनक

नाम हो उनके लक्षण को समझाने में समर्थ हैं।

सबना उदाहरण एक ही थय में, जैते— नोई दूवी क्सी नायक को उत्तरे किरह में होनेवाली धपनी सली नी पीडा या वर्षन करती हुई बीस रही है— "पसीने से लक्ष्यथ सरीरवाली वह नेरी सबी बार-बार तेरी याद कर कौंच रही है, उसका सारा सचीर रोमाचित हो रहा है, इसता-वद्म उत्तरे हाथ के सुन्दर निमायक सिसकनर घीरे घीर पावात कर रहे है, कुछ उसका गाला पड रहा है, मुर्छ बार-बार झा रही है, घोर कही तहन उसकी पीडा वा पर्णन कर, वस केवल इतनी ही बात म समझ सबते ही कि नोगी-वाली जो उसकी मुख्यक्षी सता है वह झब पीड़ करते ही कि नोगी-वाली जो उसकी मुख्यक्षी सता है वह झब पीड़ पारण करते ही कि नोगी-वाली जो उसकी मुख्यक्षी सता है वह झब पीड़ पारण करते ही कि नोगी-वाली जो उसकी मुख्यक्षी सता है वह झब पीड़ पारण करते ही कि नोगी-वाली जो उसकी मुख्यक्षी सता है वह झब

विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिएः। स्यायिन्युन्मनिर्मग्नाः कल्लोला दव वारिधौ ॥७॥

क्यिनवारी का सामान्य लक्षाल्य— जीते समुद्र में तरगें उठती हैं बीर / उसी में बिलीन होती रहती हैं, उसी प्रकार से रित प्रावि स्वायीभामों में जो माद उत्पन्न बीर नष्ट होते रहते हैं उनको क्यिमिवारीनाथ करते हैं Inst

तिर्वेदातानिशक्षात्रमधृतिजवताहुपँदैत्यीपृपधिन्तास्त्रातेष्यामर्पपर्धाः स्त्रृतिमरणमद्याः सुप्तिनद्वाविष्योधाः ।
श्लोडापरमारमोहाः समित्रसत्तत्विगतकाविहित्या
ध्याप्युन्मादो विवादोत्सुकवपत्युतास्त्रिशदेते त्रयस्य ॥=॥
तत्वतानापदीव्यविनिर्वेदः स्वावमाननम् ।
तत्र चिन्तास्त्रिनःस्वासयैवर्ष्यास्त्रीनताः ॥६॥

तत्र । चनताश्चानः स्वास्त्यवण्या च्छ्यस्तितातः । । । । 
से ३३ प्रकार के होते हैं— १. तबँव २. ग्वानि ३. शदा ४. बान 
४ पृति ६. जदता ७. हर्ष ६. वैन्य ६. उग्रता १०- विन्तर ११- मृत 
१२. समुवा १३- घमणं १४- गर्व १४. स्मृति १६- सरस्य १७- मृद 
१६- स्वय्न १६- निहा २०- विजोध २१. बीहा २२- अरस्मार २३- मोह 
२४- जनता १६- विहा ३१- धोत्मुवय ग्रीर ३३- व्यन्तता ॥ ।। ।।

निर्वेद-सत्त्वनान, आपत्ति, ईर्था, बादि कारराँ में मनुष्य का धपनी प्रयमानना करना निर्वेद कहताता है ॥६॥

र्तमे मनुष्य धपने दारीर तथा सभी वीकिक पदाधी की प्रवहेनना करने मनता है। इन दत्ता में विन्ता, नि स्वाम-उन्ध्वास, प्रयू-विय-र्णता भीर देन्य, ये लक्षण प्रवट होते हैं।

तस्यज्ञान से होने बाला निवंद, अंसे---

"मगर हमने सकल मनोरफी को खिद्ध करनेवासी स्थमी को ही प्राप्त कर निमा तो उससे बया हमा ? भगर हमने सकल रिपुमण्डली २४० दशहपक

को प्यस्त हो कर दिया उससे ही क्यालाम ? अगर हमने अपने इस्ट-मित्रों को ऐक्वयँदाली बनाकर असन्त ही कर तियातों उससे ही क्या हुमा? भगर कल्यान्त तक आयुही आप्त कर जीतो उससे क्या हुमा? भाव यह है कि सारी वस्तएँ बेकार हैं।

भार भाष यह हाक सारा वस्तुए बका भापति से होनेवाला निर्वेद, जैसे---

"मैं घपने कटु निष्यत व्यर्थ के जीवन के फल का धास्तादन कर रहा हूँ। वे फल हैं—१. राजदण्ड, २ बधुवाधवो के वियोग से उत्पन्न

दु स, ३. देश-निष्कासन, ग्रीर ४ दुर्गम मागौ से गमन का परिश्रम ।" ईच्यों से होनेवाला निवंद, जैसे —रावण की यह उनिठ---

"मुझे यिक्कार है कि भेरे ऐसे पराक्रमशाली को भी शक् हो गए। धीर राजु भी हुए तो ऐसे जिनका तपस्या करना ही पान कार्य है। धीर इससे भी सर्व्या की बात तो यह है कि ये (शजु) भेरे सामने ही राक्षस वीरो ने भार रहे हैं तथा इतने पर थी रावण जी रहा है ? इन्द्र को जीतनेवाले मेपनाद को भी धिक्कार है। घरे कुम्भवर्ण को हो जगाने से क्या साम हुषा ? धीर भेरी इन मुजाबो के रहने ही से क्या लाभ जो ऐसा कर्म भेरे देवले-देवते हो रहा है ?"

बोर रस और शुनार रस में झानेवाले व्यक्तिवारी निर्वेद, जैसे—
"निननी मुजायो ना नन्य प्रदेश शत्रुओं के कठोर कठ से छतकते
दिवर से सुरोजित नहीं हुया और प्रियतमा के विशाल स्तनसम्बन

ानगर। भुजामा ना बन्ध प्रदश् सामुझा क कार के से स्वतन्त्र हुए रविष्ठ से सुसोभित नही हुमा और प्रियतमा के विशास स्तनमण्डल से करर एमभन की रचना करते समय बुकुम रम से रजित न हो सना, ऐसे सोगों का जीवन निश्चय ही निष्कल है।"

यह वयन किसी ऐसे बीर पुरूष वा है जिसे या दो घपने धनुष्रत धारु वी प्रास्ति धपना पुरूषायँ दिखलाने ने लिए नहीं हो पाई थी, धपना निसी ऐसे बिलासी पुरूष वा है जिसे धपने बन ने धनुकूल विसी सुन्दर रमणी वी प्राप्ता नहीं हो बाई थी।

रसी प्रकार से निवेंद भीर रसी का भी भग हो जाता है। ऐसे निवेंद का स्वतहरूथ को दिसी भी रस का भंग नहीं है। जैसे- "किनी पिवक ने रास्ते में खिन्न खड़े शांखोटक (विहोर) के वृश्य से पूठा—'भाई तुम कौन हां?' उसने उत्तर दिया—'(पूठ हो बैंडे तो) सुनो, मैं देव वा मारा सिहोर वा वृश्य हूँ।' यह सुननर पिवक ने फिर पूछा—'तुम तो विरस्त के समान बोनते हो?' उसने उद्धर दिया— 'प्रापता पवन सत्य है!' किर पिषक ने पूछा—'इसना (वैराग्य ना) पवा पारण है?' उपर से उत्तर धाया—'यदि शाएको मेरे वैराग्य ने वारे में बानने की प्रति उत्तर धाया—'यदि शाएको मेरे वैराग्य ने वारे में बानने की प्रति उत्तर होती सुनिए—चारण यह है कि मेरे पान हो थोड़ो दूर पर एर यट ना वृश्य है। उसके यहाँ दिन-रात पिवकों का जमयट लाग रहता है धीर एन मैं प्रमाणा है कि प्रपत्ती छाया के हारा दूमरे के उपनार के नित् रात्ते में ही सदा प्रस्तुत रहता है पर पर यहाँ ने ही सदा प्रस्तुत रहता है पर एर यह ने से स्वार प्रस्तुत रहता है पर एर यह से सिंह से स्वार प्रस्तुत रहता है पर सेरे यहाँ वोई साता तक नहीं है (यहाँ वेरे वैराग्य ना नारण है।")

विभाव, ग्रतुभाव ग्रीर रस के ग्रगों के भेदोपभेद से निवेंद के मनेक

प्रकार होते है।

रत्याद्यायासतृद्युद्भिक्तिनिर्मिष्ठाएतेहः च । वैवन्यं तन्यानुस्ताहसामाङ्गयदनक्रियाः ॥१०॥

ग्नानि—रिंग्डना के घन्यात से मूख, प्यात, परियय आदि कारलो से भो जदातीनना मा जाती है उसे ग्लानि बहुते हैं। इसमे विवर्णता, इन्म, जनुरनाह चादि चनुमाव दीख पडते हैं ॥१०॥

जैमे नाद का यह पद--

"नींद से मरी हुई भेत बनीनिकामों से मुसोनित (बन्द्रनसम्बाती) रमणर'डा से शीण मुख (बन्द्र) बाली नामिकाएँ राधि की तरह खुले हुए नेसपास (प्रवसार की तरह) ने भूषित बनी, राजा के पर में मंत्रेरे जा रही हैं।"

वेर बातो को निबंद के हो समान समस्ता आहिए। समर्थेत्रतिभा शङ्का पराजैर्थात्स्वदुनेयात्। सम्पन्नोपाभित्रोसादिरत्र यस्त्रस्वराज्यता॥११॥ 5,8,5 टशस्पक

शंका-इसरे की कूरना या प्रवर्ते ही दुव्यवहारों से धपनी इष्ट हानि की जो बातंका पंदा होती है उसे शंका कहते हैं । इसने शरीर या जीवना मीर मुखना, चिन्तायुक्त हृष्टि-विश्रेष, विवर्शता और स्वरं-मेट भारि सक्षए सक्षित होते हैं ॥११॥

इसरे की क्रस्ता के कारए। होनेवाली शंका, जैने 'रतनावली' नाटिना में महाराज उदयन रत्नावसी ने बारे में बह रहे हैं-- "वह इस बात से मशक्ति रहती हुई कि नहीं ये लोग राजा के साथ चलनेवासे मेरे प्रेम-वर्ताद को जानते न हो लज्जावस मुंह को छिपाए रहती है। मीर जब दी या तीन लोगो को ग्रापस में बातचीत करते हुए देखती है ती सोचती है कि सायद ये लोग हमारे ही बिगय में कानापुगी न करते हो। इसी प्रकार में हमिनी हुई मिनियों को देख भी वह मद्यक्ति हों जाती है कि ये सब मेरे उसी सम्बन्ध से हैंस रही हैं। इस प्रकार से मेरी प्रियनमा रत्नावली (मागरिना) हृदय-प्रदेश मे रखे हुए सातक से पीडा पा रही है।"

धपने इर्व्यवहार से होनेदाली शका, जैसे 'महावीरचरित' मे-"जिसने पर्वतानार शरीरवाले मारीच, ताबबा, मुदाह बादि राक्षश्री ना महार किया है नहीं राजपुर्मार मेरे हृदय के लिए सन्तापनारी ही रहा है।"

इसी प्रकार से मन्यों को भी समभ लेना चाहिए।

श्रमः स्दैदोऽव्वरत्यादेः स्वेदोऽस्मिन्मर्दनावयः ।

धम --धात्रा, रति ग्रादि बारहों से जो चकाबट उत्पन्त होती है उसे थम करते हैं । इरामे पसीना बाना, अन्यवों में वर्द बादि का होना बादि यातें होती हैं।

रास्ते दे परिचम ने होनेवाला श्रम जैसे, 'टत्तररामपरित' में--"राम भीता से बहुने हैं-तुष मार्ग में अलने ने परिश्रम से प्रालस्यपुन्त, कोमल घोर सुन्दर, हद धालियनो से दावे गए घोर परिमर्दित कमल की डिन्डियो के सहस दुवंत ग्रमो को मेरी छाती पर रखकर मो नई थी।"

रित से होने वाला थम जैसे माप मे-

"नुग्त परिधम से चीवी सम्बी लटदाली शामिनियाँ गारी चुन-भा" तथा प्रेम की पराशास्त्रा की पाकर थक गई।"

इसी प्रकार से ग्रीर बार्नों भी भी समझ लेना चाहिए। संतोषो शानशनतवादेवुं तिरायग्रभोवकृत् ॥१२॥ पृति-जान थयवा दरित प्रादि की प्राप्ति से जो धप्रतिहत प्रानन्द

का देनेवाना सन्तोप उत्पन्न होता है उसे पृति बहते हैं ॥१२॥

शान ॥ होनेवाला चृति, जैंड 'भर्नु दिखतुव' में---

'मैं बन्दल मात्र से प्रसन्त हूँ और तुम पदमी की प्राप्ति से। हम दोनो ही प्रमन्त हैं, तम सो तो की प्रमन्तवा म कोई प्रस्तर नही है।

बान टीक भी है, दरिद्र हो वह है जिसक पास विद्यास तृष्णा पढी हर

हो। मन की अनल्तता ही प्रधान बस्तु है। सन प्रसन्त है तो कीन बनी है ? और बीन वरीज ?"

२४४ इशरपक

पहते हैं। इसमे पतको कान गिरना और मूक हो जाना झादि सक्षरा दिखाई देते हैं। ११३॥

इष्ट दर्शन से होनेदाली जड़ता, जैसे, 'नुमारसम्मव' मे---'यानेतीजी नी सखियाँ उन्हें सिखाया करती नि देखी सखि, टरना

मत, भीर जैसे-नैसे हम स्विदावी हैं विसे ही-वैसे भकेते छ करवी के साथ भरत, भीर जैसे-नैसे हम स्विदावी हैं विसे ही-वैसे भकेते छ करवी के साथ करना, पर इतने सीरने-पढ़ों के साद भी वे शिवजों के सामने पर्नेषये ही घवरा जाती भीर सविदा की सब सीम उनके ध्यान से उतर जानी भी।"

क्षतित्र के श्रवण से होनेवाची जडका, जैसे 'उदातराधव' नाटक मे— "राष्ट्रच—ऐसे-ऐस बीर राक्षतों को जिनके सेनायित प्रीवद बीचा सरद्वपण, निकर चादि थे, किसने मारा ?

दूमरा--धनुर्घारी नीच राम ने ।

दूसरा-जिना देवे प्रता दिसको विदयास होगा ? देखो हमारी सेना की दगा-बीध कटे हए सिरवास मुद्दों का समृह रक्त मे दूबा हुआ

पड़ा है तथा उनके बनको का देर ताल इतना ऊँचा दिखाई पड़ रहा है। गयम---मिन यदि ऐसी बात है ता फिर हम सोगो के लिए बया

भरना विवत है ?" इत्यादि।

प्रसित्तरस्मयादिश्यो हर्षेऽधुस्वेदपद्गदाः।

हर्य-शिव वा बायमा, पुत्रजन्म, इत्यादि उत्सवों से चित के प्रशन्म हो जाने वा नाम हर्य है।

रिन्त हो त्यते का नाम हर्ष हैं। इसने जीको मे आंसू का बा जाना, पंसाना निकरना, गर्गद क्यन

इतन जीको में मांसू को मा जाना, पक्षांनी निकरनी, गर्नेड कर्वन बोनना प्रयादि मनुभाव परिलधित होते हैं। जैवे---

"मंपिनपतिना ना पति अब केंद्र पी सवारी से उसके पास पहुँचा तो वह मारे प्युची से आंगो में प्रेमपत्रल भरने पति के वसहन की सवा स यह नावरत सग गई कि इसी ने प्रियतम को इस विदाल बनर भूमि नो पार वरन स सहायता भी है। किर क्या का, वह जस्ती स पीछ दानी तथा वरीर ने पत्ती की तीहर-तीहरू प्रास्त वना-वाकर िरतिन सभी और सात ही अति प्रादरका अपने गाँचत से उम करें के बच्चे के केशो पर सभी हुई धून को धीरे-धीरे पोछने सभी।"

निर्वेद की तरह इसकी (हुएँ की) ग्रीर वातों को भी जान नेना चाहिए।

दीर्गरयादौरनीजस्यं देग्यं दारण्यामृजादिमत् ॥१४॥

र्दन्य—दिस्ता ग्रॉर तिरस्तार ग्रादि से ट्रोनेवाली वित्त को जबा-क्षीनता का नाम दैन्य है । इस दशा में भनुष्य के खेहरे का रग कीका पढ़ जाता है ग्रीट बक्तो की मिलनता ग्रादि बातें देखी जाती हैं ॥१४॥

जैमें कोई युद्धा सोच नहीं है—"मरे पित एवं शो बृद्ध, हुसरे सम्पे
ठहर, प्रत केवल मवान पर ही पठे रहने हैं, जनम बनोपार्जन का अब
पुग्पार्थ रह नहीं गया है। घर में वेचन पून ही माम बच पाया है। और इयग बरतात का समय भी मा यया है। लक्ष्म कमान के लिए परदेश गया, पर कुछ भेजना तो दूर वी बात दी, सभी त्व उसने कोई चिट्ठी-पर्शा भी नहीं भेजी। बढ़े दन्त के साथ मैंने एक गगरी देल भरते राजा रहा सो भी बैंब ड्रॉबिंगल से एटकर वह निकला, सब प्या वर्ग ने कि बहुत है जि सास सपनी गर्भमार से सससाई हुई पुत्रवपू गो देश उत्तर विस्त सारी को चना सेवार कहत देर से रो रही है।"

प्रीर बातो को पहले ही के समान सम्बना चाहिए।

दुप्टेऽपराधवीर्मुं स्यक्तीर्येश्चण्डत्वमुग्रता । ता स्वेदिवार कम्पतर्जनाताङनादयः ॥१४॥

उधता—ितसी हुट के चुत्रमं, चुत्रेथन, जूरता धादि से स्वभाव के प्रचण्ड हो जाने घो उद्यता करते हैं। इसमें सेट का खाना, स्टूबचन बोतना, सिर काँचना, दूसरे को मारने पर उताह होना धीर तर्जनता खादि पाया जाता है ॥१॥॥

जैसे 'महाबीरचरित' में परशुराम-"दानियों पर प्रशुपित हो मैंने दक्षीम बार जनता सहार विया और सहार वरते समय जनने गर्भ में २४६ दशरपक

पडे हुए बच्चो को भी खुरैच-खुरैचक गार डाता, भौर शिम्पो के रक्त से मरे हुए ताबाबो से कैंगे धपने पिता के श्राद्ध सस्नार नो सम्पन्न निया। इस प्रकार के भेरे कसी को देखते हुए भी मेरा स्वभाव क्या धर्मी तर प्राणियों से भविदित ही है ?"

ध्यानं चिन्तेहितानाप्तेः शून्यतास्वासतापकृत् ।

धिन्ता—इह वस्तु के न प्राप्त होने थर इसोके विषय में प्यान बने रहते का नाम चिन्ता है। इसमें पदार्थ के न मिलने के जीवन का पूर्य मासूम होना, साँस का कोर से चलना, जारोरिक ताप का यह नाना कारि बातें पाई जाती है।

चिन्ता — जैसे मोई दूती प्रियतम के वियोग से दुखी निशी घोषित-पतिका से कह रही है — "ह बढी-बढी झांखोबासी, तुम झप्नी पपनियों के मणमाग में मोती को स्पर्धा करनेवाले स्वच्छ झांसूचों वो भरवर धौर हृदय में भगवान शकर की हैंसी वे समाव स्वच्छ मनोहर हारों वो पहनवर, तथा कोमल-कोमल कमलनाक्ष ने बसय (बिजायट) बाले अपने मुख्य हाथों के ऊपर मुख को रखकर विश्व परम सीभाग्यशालीं के विषय में सोच रही हो ?"

धयवा यह दूसरा उदाहरण--

"हर गया है वियय-वासनाओं से मन जिनना और बन्द हो गए हैं नमल के समान नेत्र जिनने, बार-भार चल रही है श्वास-प्रच्यूत्रार त्रिया जिनमे, इस प्रकार की असदय बस्तु का ब्यान नरमेवासी बांसा की देशा योगी के समान हो गई। [घोषियो की तरह नेत्रो को मूँदनर बार-बार मिसक्ती हुई एकमात्र प्रियतम के विषय में सोच रही है।]

र्गाजतावेर्मनःक्षोभस्त्रासोऽत्रोत्किम्पतादयः ॥१६॥

प्राप्त—बादल ने धर्मन तथा ऐसी ही चाय सम्प्रद घटनार्घों से जो सीम उत्पन्त होता है उसे त्रास कहते हैं हैं इसमें कम्य ब्रार्टि ना धाना रेसा जाता है ॥१६॥ यया, माय मे-

"बचल पोटी (त्रोष्टी) महली निसी सुन्दरी ने टर युगल मे एर बार छ गई। डरकर वह रमणी नाना प्रनार नी धनर्भागों दिलान लगी। धारवर्ष है नि रमणियाँ दिना नारण विलासतीला में शुन्य हो जाती हैं दो फिर कोई नारण मिल जाय तो फिर नया नहना ?"

## परोत्कर्वाक्षमासूया गर्वदौर्जन्यमन्युजा ।

दोयोधतयवत भू कुटिमन्युक्रोयोज्जितानि च ॥१७॥ प्रमुया—दूसरे की उन्तित न सह सक्ते का नाम प्रमुया है। इसमे दूसरे के अन्दर दोष निरास्ता, ध्रवक्षा, ध्रोष, चीह का चडना तथा प्रत्य स्रोयमुचक चेटराएँ दिवाई देती हैं। यह तीन कारणों से हो सक्ती है:

१. गर्वते २. बुट स्वमान से, सथा ३. जीय से ॥१७॥ गर्वसे होनेकालो असूबा, जैसे 'बीरचर्रित' मे—कोई राक्षस किमी से यह रहा है—

"मेरे स्वामी रावण ने मीतारपी एस की प्राध्य के लिए मिधुक धनकर पाज्या भी की, पर वह उन्हें न विलक्ष स्वामी के विरद्ध सावरण करनेवाली, राम की मिस गई। अब यह बात समफ में महीं स्नाती कि शत्रु के मान और यस में बुद्धि और अपने ह्वाम को तथा नित्रयों में रस्त उस सीता को दूतरे के हाथ में देव मखार के स्वामी रावण की सदीका कर ससी।"

दुष्ट स्वमापदा होनेवाली धसूया, जैसे —

' मिंद तुमें दूसरे वे पुणो को देस ईम्पों पैदा होतों है तो किर गुणों ना हो उपार्जन क्यों नहीं करता ? हो, उनना समक रसो कि तुम दूसरे में मान को जिन्दा के द्वारा यो नहीं सकते । मगर तुमने मपनी इच्छा के महानार हो दूसर से इंच करना नहीं छोडा तो तुम्हारा परिश्रम केंग हो बेकार हो आएका जैसे मूर्य की किरमों को रोकने के तिए हायक्यी छाते का प्रयोग। "

कोच से होनेवाली धनुया, जैने 'धनरवातर' मे-

१४६ • दझरपक

कोई पुरुष ग्रपनी दवनीय स्थिति ना वर्णन ग्रपने मिन से वर रहा है—

"जब मैं अपनी त्रिया के पास गया तो वाताचीत में अवानक मेरे मुंह से अपनी नृतन प्रेयसी का नाम आ गया, फिर मैं लग्ना के मारे भीचे मुंह करके कुछ यो ही भूठभूठ ना लिखने लगा। सवीगवत ऐसा हुमा कि मेरे हाथों ने अनावास ही ऐसी रेपा खीच दी जिम्में वहीं रमणी, जिसका नाम मुंह से पहले आ चुका या, परिलिशत होने सगी। उसके अरोर के सब अवयब हुबहू बेंसे ही आ गए! फिर क्या पा, यह देख मेरी देखीओं के गाल तोघ से लाख हो आए, प्रोठ कडकने लगे, भीर वेग के साथ वाणी भी नव्यव होकर निकलने वगी भीर नित्र को दिला दिसावर लगी कहते—आक्ष्य में ने बात है कि इसके मतई बुल गई। यह लो बही रमणी है जिसके विषय में मुमें बहुत दिनों में सन्देह बना हुया या। बस क्या या उनने बहाहक स्वरण गपने वार्ष पर नो मेरे सिर पर जड ही तो दिया।"

## द्यवित्तेपादमानादेरमधीऽभिनिवष्टता ।

तत्र स्वेदशिरःफम्पतर्जनाताडनादयः ।।१८।।

समयं—विसी के गुरे बबनों श्रथमा किसी वें द्वारा विए गए धर-मान शादि के दारएा प्रतिकार ये उस ध्यक्ति से बदसा लेने की भावन। को समयं वहते हैं। इसथे पसीने का झाना, सिर की दपक्षों, भारतना

"पूजनीय के सम्मान के महित्रमण न पत्तरकरण भने ही मुभे आवर विषया भरता पढ़े, पर मैं इस प्रवार से सहस्वहण भनी महाबत की इपित कवाणि जहीं कर सक्ता।"

भ्रमचा अँधे विशीसहार से--"आपने आजोस्तपन रुपी जल में दूबना हुमा मैं ऐसी सम्भावना बरता है ति सान्नापालनस्त भादमी में भीप निन्दनीय भने ही समझा जाते, पर जोप ने साथ रुपिर से निष्त नदा को पुनात हुए तथा कौरतो का सहार करते हुए प्राव एक दिन् के निग् न तो आप मेरे ज्वेष्ठ भाता हैं और न मैं आपका कनिष्ठ भाई।"

नर्वोऽभिजनलावण्यवलैश्वर्यादिभिर्मदः ।

नर्माण्याधर्वराग्वता सविनाताङ्गवीक्षणम् ॥१६॥

पर्व- प्रश्ने सेटा कृत नुस्ता है। इसी प्रश्ने मार्च मार्च मेर्टा कृति है। दूसरे को प्रश्ने के ही हो तेवाले मार को पर्व के पूर्व हैं। दूसरे को प्रश्ने की हैं। देवाना, तथा प्रमान प्रादि करना, इस क्यस्या में देवे आने हैं। साथ ही गाँवन पुरव में विज्ञानपूर्वर क्रपने अगों को देवने की वात भी पाई जाती है।।१६॥

जैमें 'महाबोरचरित' मे—रामचन्द्र परमुराम वे झाने पर जय-निह्नल सिनयों को सम्बोधित करते हुए पहुँवे हैं—'हे सिनयों, हरकर माँचना छोड़ दों, निर्मय हो जालों, क्योदि मुनि ने साय-साय ये बीर भी हैं, ऐसे पुरुष का सम्मान मुले जिय करता है। तपन्या के बारे में फंगी हुई हैं कीनि जिनकी, और बला के दर्य से सुज्या रही हैं भूजाएँ चिनती, ऐसे परमुरामबी का सल्लार करने में मैं रपूनु रोज्यल रामकार नाम का कर्जी समर्थ है।"

घरवा जैसे उसी 'बीरचरित' का यह पद-- 'ब्राह्मपाति श्रमःवागी ''
ग्रादि ।

[इमना धर्म द्विनीय प्रसाध में धीरोदात नायन के उदाहरण में बताया जा चुना है ]

सहराज्ञानचिन्नाचैः संस्नारात्म्मृतिरत्र च । ज्ञातत्वेनाचैभासिन्यां भ्रासमुन्नयनादयः ॥२०॥

स्मृति—पर्ने को देखी हुई यस्तु के सहा हिमो छन्य बस्तु को देखरर संस्कार के द्वारा मन में उस पहली देखी हुई बस्तु का जी हम जिब जाता है उसे स्मृति कहते हैं। इस बता में मौर्गे को निकोइना साहि सरस्त देखें कार्त हैं। प्रशा २४० दशहरक

जैसे—सोता को हरण कर ले जाने हुए जटायु को देख रावण की यह उक्ति है—

'क्या यह मैनाक तो नहीं है जो मेरे रास्ते को रोक रहा है?
(फिर सोचकर) पर उन्ने इतना साहन कहाँ? क्योदि वह तो इन्द्र के वस्त्र से ही इरता है। भीर यह गरुट है ऐसा भी मनुमान करना टोक नहीं है, कारण वह सपने प्रमु विप्तु के साथ मेरे परात्रम को जानता है। (फिर सोचकर) घरे, यह तो वृद्ध जटायु है जो वृद्धावस्था के क्योग्ने होकर (वृद्धावस्था में बुद्धि ठीर नहीं रहती यही तास्पर्य है) मपनी मृख्य चाह रहा है।

धयवा जैसे 'मामतीमाधव' में माधव--

'सीन पियो प्रतिविभिन्नत यिनित क्रेंबी उभारिक खोदि दई है। बादित वश्वर सेपसो वा चिपवाइ, वी बीज समान वई है। के चित पांचहुँ बावन सो अठि सुदर काम ने ठीव ठई है।

सोच निरन्तर तन्तु के जान सिई बुनिक बहु प्रेम मई है।'

मरएं सुप्रसिद्धत्वादनर्थत्याच्च नोच्यते ।

मरर्ग सुप्रसिद्धत्वादनर्यत्वाच्च नोच्यते । मरण—मररा के सुप्रतिद्धतया धनर्यकारी होने से इसकी परिभाया

महीं दी जा रही है।

जैसे —

"पनि के माने की तिथि को, जिपर से उसके माने का रास्ता का उपर ही यह ऋरोंसे के पान बार-बार जाती रही। कुछ क्षण तक इस प्रकार के वार्यक्रम को जारी रसने के साद काफी देर तक बैठकर उसते कुछ सोचा, भीर उसके दाद कोड़ा में आनेवाली कुररी पक्षी को आगुमा के साथ मिलयो को सम्मित करके, चट माग्र के साथ माभनी सता के करनापूर्ण पाणिबहुल-सस्कार को सम्मन्त किया।"

इस प्रकार से श्रुगार रस ने धालस्वत ने रूप से जहीं मरण ना सर्णत नरना हो यहाँ सान्तविक भरण नो न दिसानर मरण नानेयल

माभाग-मात्र ही दिखवाना पाहिए।

श्यार रम को छोड अन्य रमो के तिए विव को पूर्ण स्वतन्त्रता है वह जिस प्रनार ना चाहे वर्णन कर सकता है। जैसे 'महावीरवारित' मे—"आप सोग जरा ताडका का तो देखें—रामचन्द्र के बाणो के उसके इस्य के अमेस्थल में लग जाने में उसके अम का हो मये हैं, और उसकी नासिका की दोनों कोहों से एक ही जैसा बुद्बुद राज्द करते हुए रक्त कि पर ही है। इस प्रकार यह एक तन्ह से भर-सी गई है।"

> ष्ट्योतकर्यो मदः पानातस्यलदञ्जवचोगतिः ॥२१॥ निद्रा हासोऽत्र रदितं ज्येट्ठमव्याधमारिष् ।

वैसे 'माघ' मे-

' जिलानी तरण के समान नई सम्बी ने प्रधिक मात्रा म (प्रौडामो के समान) शीला मनोहरहास्य, वावर्षों का सौदाल तथा स्थनों में विशेष विकार भोती वसुष्यों में जलन्त कर दिया है।

मुर्प्त निजीद्भय तन श्वासीच्छ्यासक्रियायरम् ॥२२॥ मुप्त-निज्ञ ते उत्पन्न होनेथानी घवस्या को स्वन्ताशक्या (मृप्तिन) कहते हैं। इतमें श्यासीच्छ्यास चलता है॥२२॥

वैद्य---

भी ने सेत ने नोने मे पदी हुई छोटी नृतिका ने भीनर नमें भानो ने पुमानों ने विष्टीने पर सिटे हुए हुएन दस्पति नी नींद नर स्नन-मण्डन नी दस्पता के नारण नेपाबद नुपार मन नर रहा है।।

> मनःसंभी ननं निद्रा चिन्तालस्यक्लमादिश्यः । सत्र सुम्भाङ्गाक्षिमीलनोत्स्यम्ननादयः ॥२३॥

२४२ दशस्यक

निदा—िवन्ता, प्रालस्य, यकावर द्वादि से मन की जियाधों के का जाने को निदा कहते हैं। इसमे जेमाई का बाना, अर्थो में द्वाराई, अस्थि का कर हो जाना, बदवबाना स्माद बातें वाई जाती हैं।।२३॥

जैसे---

थोई पुरुष मन-ही-गन सोच रहा है—"मद से खलसाई हुई मीर नीद के कारण प्राधी मुंदी हुई प्यारी के मुंह से निश्यते हुए वे शब्द जी न सार्यक कहे था सकते है और न निर्यंत ही, इतने दिन के बाद भी प्राज मेरे हदय की कुछ विचित्र स्थिति कर रहे हैं।"

श्रथवा जैसे 'माय' में---

'कोई पहरा देनेवाला, प्रपना पहरा समाप्त करने, निदा लेने भी पुच्छा से दूसरे प्रहरी को 'जास-आग' ऐसा कह-वहकर ऊँचे स्वर से बार-वार जागो लगा। उसको उस दूसरे प्रहरी ने निदा के वस में होकर प्रस्पदासरों से प्रयंकृत्य आय से बार-वार उत्तर दिया, पर-तु यह जाग न सना।"

विद्योघः परिस्णामादेश्तत्र जुम्भाक्षिमवेने । (१) विद्योध-नोंद के खुल जाने को विद्योध कहते हैं । इस बगा

(१) विवोध-नोंद ने खुल जाने को विवोध कहते हैं। इस बाग मे जैसाई प्राना और आंदो वा मलमा आदि विवाएँ होती रहती हैं। जैसे 'माध' से---

जस म

दुराचाराविभित्रींडा षाष्ट्रयीभावस्तमुन्नवेत् । साचीष्टताञ्जावररणवैवर्णाघोमुखाविभिः ॥२४॥

(२) बीडा—दुराबार स्नादि कारएगें से एवता के समाव का नाम बीडा है ॥२४॥

र्जंमे, 'धमस्त्रतव' मे-

"प्रियतमा ना पति जब उसके वस्त्रों में सम जाता है तो यह सब्जा से मुख मी तीचा नर सेवी है भौर जब यह हठाल मालिगत मी उचत होता है सो वह प्रपने प्रामें को मिनोड सेवी है। सारियों से मुस्नान ने माथ देवी जाती हुई दह प्रियतम नै ग्रनेन प्रयानों ने बावजूद भी दोलने में भनमर्थ ही रहा। है। इस प्रकार से नवेली दबू प्रियनम के प्रथम परि-हास के ग्रवसर पर जरूबा के मारे ग्रन्दर-हो-ग्रन्दर गडी जा रही है।"

> ग्रावेशो प्रहटुःलाग्ररपस्मारो । ययादियिः । भूपातकन्यप्रस्वेदलासाफेनोव्गमादयः ॥२४॥

प्रदश्नार-प्रश्नें के योग से, दिपति तथा ग्रन्य कारण से उत्पन्त क्षावैश को अपस्मार करते हैं। इन दशा में मृज्दी वर गिर पडना, पमीना बहुने समना, साँग था खोर-खोर से चलना धौर मुख से फेन बा नियलना इन्यादि यात्रें होती हैं ॥२४॥

वंदे 'बाच' से--

"समुद्र पृथ्वी की आसिगन विधे हुए था, चयल बाहुमी के नमान रमनी बडी-बडी तरनें इया-उमर गड रही थीं; बह रूच नाद बर रहा या घीर भाग फेंच रहा था। ऐसे सम समूद्र की श्रीहरणजी ने मृती ने रोगी ने समान समझा।"

मोहो विजित्तता भीतितुः रावेदानुदिन्तनैः ।

तत्रात्रानभ्रमायातघूर्णनादर्शनादयः ॥२६॥

मो ्--- भम, हु:पा, बादेश सथा स्मरल बरने दादि के बादरा उपन हुए वित्त के दिलेन की मीट बहते हैं। इस दक्त में बदान, भन, आधान घूर-पूरर दे पता भावि तक्षण दिलाई देने हैं ॥२६॥

क्षेत्र 'कमारसम्बद्ध' य--

278 टशस्यक मेरे ज्ञान नो कभी तिरोहित करना है और नभी प्रवाधित नरता है।

प्रथवा मादन द्रव्या ने सेवन से उत्पन्न मद? यह निश्चय नहीं किया जा सदता है।" भ्रान्तिच्छेदोपदेशाभ्या शास्त्रादेस्तत्त्वदीर्मतिः जो तत्पज्ञान होता है उसको मति बहते हैं।

गह (विकार) सुख है या दू ल, मुर्च्छा है या निज्ञा, विष का प्रसरण है

मति -- दास्त्र आदि के उपदेश से प्रथवा भागत के मष्ट ही जाने से

जैने 'किराताजुँ नीयम्' मे -- "विना विचारे कोई भी कार्य न करे मयोगि विचार वरके न वरना हो सब विपत्तियो वा स्थान है। इसके सिवार गुण का लाभ रखनेवाली सम्पर्तियाँ लुटही विचारकर काम करनेवासे के पास बा जाती हैं।'

धौर भी उँमे—

'पण्डित लोग भटपट दोई नार्यं नही करते धौर किमी की बात की सुनदर पहुले वे उसके तत्त्व की छानवीन करत है और फिर उस तत्व को ग्रहण कर अपने कार्यको सिद्धिके साथ साथ दूनरे के भी प्रयोजन को सिद्ध करते है।"

द्यातस्य थगगभदिनैह्वयज्ञम्भासितादिमत् ॥२७॥ भातस्य-चनावट, गर्भ था भार, भावि के कारण उत्पन्न जड़ता

को आसर कहते हैं। इस बन्ना में जैसाई बाती है और पड़े रहते की इच्छा बनी रहती है ॥२७॥

जैमे मेरा ही परा-"वह बड़ी मुख्तिल में किसी प्रकार चतनी-पिरती है धौर सलिया के द्वारा पूछे, जान पर भी बडे क्य्ट के साय उत्तर देती है। इस प्रवार ऐसा लगता है मानो गर्भ वे भार में धल-मार्ट हुई मुन्दरी हमेशा बैठे ही रहना चाहती है।"

द्याचेगः संभ्रमोऽस्मित्नभिसरजनितं शहतनापानियोगी यातात्वांमुपदिग्यस्यरितपदगितर्धयंजे विण्डिताञ्चः ।

उत्पातात्त्रस्तताङ्गे व्यहितहितष्टते शोकर्त्पानुभावा बह्ने षूर्वमानुसान्यः करिजमनु भयस्तम्भरम्पानसाराः ॥२५॥

ध्रावेत—मन के संजन को ग्रावेत बहुते हैं। यह कई बारदर्सों से हीता है, वैसे—राज्य-वित्तव से, बाजु के प्रकोध से, वर्षों से, वाना प्रकार के दत्यातों से, प्रनिष्टवाली बस्तुधों से, इस्ट बस्तुधों से, धरिन से, हाषी ने, हुमी प्रकार अन्य कार्लों से जी होता है ॥५८॥

राज्य-विष्यव या धावमण में होनेवाले धावेग में सम्यान्त्रों का टूटना फीर हायी घोडे धादि का सजाया जाना होता है।

बायु के (म्रोधी) डारा होने वाले मावेग में यूत्र-वृमरित हो जाता, तथा उन्हीं-नरदी चलना कादि बातें होती हैं।

तथा ज्ला-तरदा चलना स्नाद बान हाता है। वर्षा में होनेवाले आदेग में गरीर की सिरोड सेना होता है।

उत्पानों से होनेवाले प्रावेग में प्राप्तों में शिविलता प्रा जाती है। इस्ट से होनेवाले प्रावेग में हमें ब्रीन प्रानिस्ट से होनेवाले में शोक

परिलक्षित होता है। श्रीन स होनवार्थ आवेग में घूम के कारण त्यानुस्ता छा जाना देना जाता है।

धीर हायी के डारा होनेबाने आदेग में भय, स्तम्भ, कम्म धीर भागन का प्रयत्न देखा जाता है।

राज-विष्यव से होनेबाले आवेष का उवाहरख-"बल्डी धामी, जल्दी मामी, पोडों को तैयार करो, ग्रंद उन्द मुख्ने ततवार दो, करार मीर कवच को लाग्नो । ग्रंद क्या ग्रंदे शारीर में शाम भी लग गया ? इस प्रकार के वक्षों को आपके जगत में छिपे हुए शतु स्वप्न में भावके दर्यन-मात्र से भावत में किरोने लगते हैं।" इत्यदि

ग्रीर भी — "सरीर का रक्षक बबल वहाँ है ? कवत वहाँ है ? सन्त्र कहाँ है ? इस्पादि बचनो को कहते हुए प्रसिद्ध आपने बीर शत्रु देखे गए।"

प्रयदा—' वे ऋषि-बन्याएँ जो वृक्षों के भालवालों में जल सींच रही मीं नहमा उमें छोट भागुन ही क्या देख रही हैं ? भाशम से ये

दशहपर २५६

थच्चे भी दृक्षों के ऊपर चुल्पी साधे चढ रहे हैं। इसके अलावा तपस्या मे रतावानप्रस्थाभी अपनी समाधियों नो भगकरके पैर के धश्रभाग पर खडे हो इपने ग्रासन से ही देख रहे हैं।"

बांधी से होनेवाला बावेग-

जैसे---'हवा के कोको से उत्तरीय थस्त्र इघर-उघर बिखर जाता है।'

वर्षा से होने दाला सावेग---जैसे-- ' मूसलाघार वृष्टि मे भोजन बनाने वे लिए प्रनित की सीज

म स्त्रियाँ कीचड के डर से पलको (बीच बीच मे रखी हुई इंटो मादि) के क्यर पैर रखकर ग्रौर पानी से वचने ने लिए सूप दी छतरी ग्रोड-कर स्रोरियोनी के पानो को हाथ से फॅक-फॅक्कर एक घर से दूसरे घर जारही हैं।"

उत्पात से होरेवाला झावेय---जैमे---"रावण की मोटी-मोटी भूजाबी के हारा उठाए हुए कैलाश

वे हिलने से चचल नत्रवाली प्रिया पावंती वे साथ भूठ मूठ के दिसला-वटी कोप के यहाने आलियनपूर्वक भगवान् शकर का हँसना आप लोगी का बल्याण वरे।"

महित चर्यात् मनिष्ट के द्वारा होनेवाला शावेग दखने धीर सुनने दो कारणो से होना है। जैसे उदासराधव' मे—चित्रमय (वेग वे साथ)—

भगवान् रामचन्द्र, रक्षा व रो, रक्षा करो, इत्यादि । 'पिर मृत्तस्य को छोड विश्वास भवानक शरीर बनायर इस राक्षस

के द्वारा युद्ध के विषय में संसक्तित सदमण से जाए जा रहे हैं।'

राम--- 'ग्रभव का समुद्र प्रयात ग्रत्यन्त निक्र लक्ष्मण इस राक्षत से भवान्त्रित है, यह पैसे हो सनता है? ग्रीर इषर यह वहनेवासा

 विषत भी ठरा हुमा सा वह रहा है, इसलिए मेरी समझ मे नही प्राता भि यम सब है और बम भूठ ? ग्रीर जानवी वा ग्रवेले होडकर जास भी उचित मही है बयोकि गुरुवनीं ने मुसमे यह नहा है कि प्रवत

जानकी को सत छोड़ना। इस प्रकार से क्यूलाई हुई मेरी बुद्धिन स

जाने ही वे तिए निर्णय दे रही है और न रुत्ने ही वे तिए । दस कर्टकुछ समक्ष मे नहीं साता।"

इस्ट-प्राप्ति से होनेवाला खादेग-

जैसे---वहीं पर (पटारेप के नाम संघान नानर का प्रवेश)
'महाराज ! पवनमुन हनुमान के यागमन में स्वपन्न प्रदर्ध प्रदर्भ है।'
इस्मादि से सारस्य कर 'महाराज के हुद्य को धानन्द देनेवाला मधुकन
विद्यालय कर दिया गया।' यहाँ तक।

ययवा जैसे 'महावीरचरित' मे-

"पूर्णिमा के चन्द्र के समान रष्पृष्टुल को झानन्द्र देनेशाले बेटे रामचन्द्र, सासी, प्राधो, मैं तुम्हारे सस्तत्र को चुमना तथा धानियन करना चाहना हूँ। मेरे मन मे घा रहा है कि तुम्हे अपने हुवब मे स्टब्स्ट दिन-रात होता वर्षे प्रथवा नमववन् चरणी की ही बन्दना करें।"

र्मान से होनेवाला ग्रावेग--

जै5— "निवुसमुर वे नगर ने बाह के समय अपवान् मवर ने झार से निक्सी हुई धीन वहां को युवतियों के धयों में लग जाती है तो व उसे मटकबर आगे बटती हैं। जब आगे बदने लगनों हैं तो वह उनके भीवल को पकट लेती है और यदि किसी प्रकार इनसे भी वच निवलता हैं तो केशों में लग जाती है और यदि वहाँ भी उनको प्राम्म मिल गया तो वह पैरों में लग जाती है। दून प्रकार सक: अपराम हिन्दों हुए अपराधी के समान धावण व सने माली मयवान् मकर की हारानित हार कोगों के समान भवण व सने माली मयवान् मकर की

श. संस्कृत में प्रांति द्वार पुलितग है पर हिन्दी में स्थालित । बिट ने प्रांति की सम्बद्ध-पुरुष रूप में अस्ति क्या है, इसलिए हिन्दी में यद्यपि प्रांतिन को स्त्रीलिंग में ही प्रयोग क्या गया है पर प्रार्थ तगाते समय आपकों को पुलितग ही समग्र लेना चाहिए सन्दर्भा स्त्रोड का स्वयंत्र ही विवाद वाष्ट्रणा ।

बशहपक

मगदह मचा दी।"

नो नचाता है। जैसे---

पर महाराज उदयन उसको बचाने की चेप्टा करते हुए ग्रन्ति से बहते है-''ग्रम्नि, तू प्रपना श्रत्याचार बन्द कर शान्त हो जा, श्रपने धूम से

जल सका उसका तू नया विमाड सकती है 1'' हायी के द्वारा होनेवाला द्वावेग-त्रीसे 'रघुवश' मे---

ऐन्द्रजालिक के द्वारा सागरिका को ग्रम्ति मे जलते हुए दिखाए जाने

ग्रयवा जैसे 'रत्नावली' नाटिया मे---

षण्ट देना छोड दे, तेरी ऊँची-ऊँची श्राम्त की चित्रगारियों से मैं हरने-वाला नहीं हैं। प्रलयान्ति ने सहस्य प्रिया की विरहान्ति में जो (मैं) न

"उस विशाल जगली हायी को देखते ही सब घोडे भी रस्ता तुडा-तुडाकर भाग चले । इस भगदड ये जिन रथो के धुरे ट्ट गए वे जहीं-सहाँ गिर पडे । सैनिय लोग प्रयनो स्त्रियो को छिपाने के लिए सुरक्षित स्थान दूँढने लगे। इस प्रकार श्रवेले उस मदमत्त हाथी ने सेना मे भारी

लक्ष्मण अपने-आप सोच रहे है-- "बबा भरत वे लोभ के चकर में पद्रस्ट इस प्रकार से सर्यादा का अतिश्रमण तो नहीं किया? प्रथमा मेरी भेंभरी माँ ने स्त्रीजन्य स्वासाविक लघुतावदा स्वय ही ऐसा वर्म बर हाला? पर भेरा इस प्रवार का सोचना-विचारना ठीव नहीं है गयोगि भरत बढ़े भाई ग्रायं राम के लघु भ्राता हैं ग्रीर मॅमसी मौ भी मेरे पुष्परलोग विता महाराज दशरथ की धर्मवस्ती हैं।" भयवा-"विद ऐसी बात नहीं है तो गुणों में श्रेष्ठ तथा ग्राभियेन ने यथार्थं सधिकारी बडे भाई राम को खिहासनच्युत करने में किसकी

तको विचारः संदेहा द्वा शिरोऽगुलिनर्तकः । दितर्रु या तकं --सन्देह को हटाने के लिए उत्पन्न विचारों की तर्क कहते हैं। इसमे व्यक्ति व्यक्ती मोहों, अगी, सिर बीर अँगुलिमी

भारमना स्वीकार करें? (पिर सोचकर) मुक्ते तो ऐसा समना है कि मेरे पुर्ची का ही यह फल है जिसके क्या ब्रह्मा ने उसी बहाने मुक्ते नेवा करने का अवसर प्रदान किया।"

सम्जार्द्धविक्रियागुप्ताववहित्याङ्गविक्रिया ।

चवहित्या—सञ्जा ग्रादि माधों ने नारण उत्पन्न अग ने विनारों पे द्विपाने को ग्रवहित्या कहते हैं।

जैने 'बुमारसम्भव' मे-

"दबिंग नारद जिस समय इस प्रकार की (पार्वती के विवाह-मम्बन्धी) आर्ते वर रहे थे उस समय पार्वतीकी घपने निर्वा के शस मीह नीचा करके जीजा-समत के पत्र बैठी विन रही थी।"

व्याधयः सन्निपानाद्यास्तेषामन्यत्र विस्तरः ॥२६॥

ब्बाधि-सिल्पान रोग झाडि को व्यक्ति कहते हैं। इसका दिस्तृत वर्षन खोर बन्धों में हैं इसलिए वहाँ पर इनका वर्णन संक्षेप में हो किया जा रहा है।।२६॥

जैसे-

बोर्ट् दूनी विभी नायक में उसकी नायिका की विरहतनिन पीडा या वर्णन करनी हुई कह रही है—"मनकरल प्रवहमान सांमुसों को उसने सपने सम्यग्नियों के जिस्से और विन्ता गुरुक्तों के निष्, सपनी मारी दीनता कुटुश्वियों की, और नन्ताय विस्था ने हवाले कर दिया है। इस प्रवार स्वास-अच्छ्यामों के हारा परस दुर्गा वह नेगी गर नर्श है गाँवा एक या दा दिन की ही भीर सेहमान है। इस प्रकार उसने सपने सारे दुन्यों का यशीचत स्थानों से बीट दिया है सन सब साप विरहत्त रह।"

ब्रप्रेक्षारारितोन्मारः सन्निपातव्रहादिनिः। ग्रस्मिन्नवस्या रदिसपीतहासासिनादयः॥३०॥

उन्माद-विना शोवे-सम्बे काम करने की उन्माद करने हैं। यह

दशरूपक २६०

सन्निपात प्रादि द्वारोरिक रोगों से तथा ग्रह ब्रादि बन्य कारण से भी होता है । इसमे रोना, बाना, हॅसना ग्रादि बातें पाई जाती हैं ॥३०॥ जैसे---

'बरे शुद्र राक्षस, ठहर-ठहर, मेरी प्रियतमा को लिये नहीं जा रहा है ? " क्यो क्या ? अरे, यह ती अभी-अभी बरतनेवाला बादल है, राक्षस नही है। बीर यह जो टप-टप की बावाज बा रही है यह उस राक्षम के बाग नहीं वर्षितु बूँदें हैं तथा यह जो कसौटी पर बनी सोने भी रेखा के समान चमन था रही है यह मेरी प्रिया उर्वशी नहीं घणितु बिजली है।

प्रारम्यकार्यासिद्धचारेविचादः सत्त्वसंक्षयः ।

निःश्वासोच्छ्वासहत्तापसहायान्वेपगादिकृत् ॥३१॥

विषाद-किसी बारम्भ विषे हुए कार्य मे सफलता म प्राप्त कर सकते के कारता धर्म को जाने को विवाद करते हैं। इसमें निरायास और उच्छुवास दर निवसना, हृदय से हु स दर सनुभव वरना और सहायकों **की बूँड़ना चादि बातें पाई जाती हैं ॥३**१॥

जैस 'महाबीरचरित' मे---

हाय र मार्था ताहिया ! बया यहा जाए वितलीकी अस मे दूव रही है भीर पाधर संद रहे है।"

मनुष्य दे बच्चे के द्वारा इस प्रकार की चदभूत वराजय की प्राप्त करना निरुप्य ही राधमपनि के स्मिनित प्रताप का मूचक है। इस प्रकार का सपने इस्टमित्रों का विनाश देखकर भी जीवत क्या हुया में दीनना भीर वार्थक्य में जनह दिया गया है, क्या करें, हुछ गमभ में नहीं भारत !"

बानासमस्बमीरसुबयं रम्बेष्यारतिसभ्रमैः । तत्रोष्ट्वासस्वनिःददासहत्तापस्वेदविश्रमा ॥३२॥ शीतुष्य-विसी गुखरायर धरतु की धाकांशा से अवदा प्रेमास्याई को धवराहट वे बारल समय न बिता सबने को खीत्सुवय कहते हैं। दममे स्वास-प्रनष्ट्रवास का झाना, हडबडी, हृदय की बेदना, पसीना धीर 'अम खादि वार्ते पार्ड जाती हैं 1871।

जैने 'बुधारमध्यत' मे---

"प्रपूर्व इस सजीने रूप को देखकर पाईनीजी उन रह गई और महादेवजी से मिलने के लिए सचल उठी, क्योंकि स्थियों का श्रागर सभी समन होता है जब उसे पनि देने।"

यथवा उसी 'क्यारसम्भव' का यह पर---

"पार्वतीजो से निष्कं थे लिए महादेवजी इतने उनावंत हो गए कि तीन दिन भी उन्होंने बढ़ी बठिनाई से बाट । बतादए, जब महादेव जैंने लोगों को प्रेम में यह दता हो जाती है तो मचा दूसरे लोग अपने मन को कैंसे में बाद सबते हैं ।"

मात्सर्बद्वेषरागादेश्चापलं त्वनयस्थितिः । तम् भत्संनपारम्बस्बन्धन्दाचरणादयः ॥३३॥

चपनता—राग, हेय, माससं आदि ने कारण एक स्थिति में न रह मनते की चपसता करते हैं। इसमें मस्तेना, कठोर बंधन, स्वयद्धन आवरण, प्राटि लक्षण पाए जाते हैं ॥३३॥

जैसे 'दिवट नितम्बा' वा यह पद-

"ह असर । तूब पने चचल मन कारमधस्यल ऐसी सुन्दर नदा पादना जो ठेरी मसलन वरदादन कर सने। पर जिसमे रजना शरम्म ही अभी नहीं हो पासा है ऐसी नूतन नवसन्तिका की वनियों को धकाल ही से क्ष्ट पहुँचाना तो टीक नहीं है।"

प्रथवा जीने-

विषट निजम्बा करें रही है—"परम्पर सम्परेग से सब्दयुक्त करोर दोत रपी मारो से अस हम्मा केवरा ने समान सम्यसाय बाता सेरा मुख क्या प्रकृषित होकर सभी-सभी नुस्तारे उपर गिरे रे" २६२ इशस्पक

उपरिक्षित भावो के प्रतिरिक्त थन्य वित्तवृत्तियाँ इन्ही नवने भीतर विभाव, धनुभाव प्रादि स्वरूपो ने द्वारा आ जाएँगी । श्रत उनका प्रतम नहीं गिनाया गया ।

## स्थायीभाव

विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैविच्छिद्यते न य ।

ग्रात्मभावं नयत्यन्यान्स स्थायी सवर्गाकरः ॥३४॥

स्थायोनाव—विरोधी प्रथवा प्रविरोधी भावों से जिसका प्रवाह विच्छिल न हो तथा जो प्रत्य भावों को प्रात्यसात् कर से उसे स्थायो-माव कहते हैं।।३४।।

संगातीय एव विजातीय भावान्तरों से जो तिरस्कृत में होकर काव्य में उपनिबंद होते हैं जन रखादि भावा को स्यायोभाव कहते हैं। जदाहरणार्थ हम बृहरक्या भ नरक्षाह्नदक्त का मदनमजुका के प्रति जो अनुराग है उसे ले सकते हैं। वह अनुराग अन्य नायिकाओं ने अनु राग से दूटता नहीं है अर्थात् यहाँ सजातीय अनुरागों से भदनमजुका में भनुराग में आधा नहीं पहुँचती है। उसका प्रवाह गतिसील ही बना रहता है।

विजातीय साथों से स्थानी का उदाहरण मालतीमायव के इनसाना हूं में मायव का मालती के प्रति अनुराग में दिलाई देता है। यहाँ यदारि मायव की वित्तकृति बीमत्त रस से म्राप्तावित है, जो एन विजातीय भाव है फिर भी इससे मालती के प्रति जो रित की मावना है वह टूटवी नहीं है। वहाँ उसके हृदय में मालती का करूण वन्दन कुछ शण वे तिए दवे हुए रित भाव को जना देता है। भाषव का यह यावय इसम प्रमाण है—

ंभेरे उस सस्कार के जागृत रहते ते प्याची नी स्मृति-धाग इतती प्रवत्त हो गई है कि क तो उनका प्रवाह दूसरी बातो द्वारा रोके रनता है धोर न उसके मार्ग से कोई विषयान्तर का विचार वाधा पहुँचा मनता है। बान तो वह है कि उनने अविराम स्मन्य होने से मेरे प्रन्त -बरण की वृत्ति तदाकार (प्रियतमाकार) हो गई है। मीतर-वाहर सर्वत्र उन प्राणप्यारी का रूप अनुदृष्टिगोचर हो रहा है। दस इसी ज्ञान-

च्यान ने मुभे ततु-(प्रियतमा-) मय बना दिया है।" च्चत' इस प्रकार से विरोधी और चुविरोधी का समादेश काव्य में स्थापी ना बायन नहीं होता क्योंनि विरोधी दो प्रकार का होता है-

१. सहानवस्यान ग्रीर २ वाच्यपायरभाव । यहाँ पर दोनों प्रनार के विरोधों की सुम्मावना नहीं है क्योंकि

इमना पार्यन्तिक धवसान एकाकार होकर होता है।

स्यायी ने विरोध-स्थल में 'सहानवस्थान' हो नहीं मुन्ता न्योंनि

ररवादि मावना ने उपन्तत अन्त वरण में अविरोधी व्यक्तिचारियों का जैसे वह प्रतुमन से सिद्ध है वैसे ही काव्य-व्यापार के प्रावेश में

टपनिदद्धन सक्यत्र न्याय से समस्त्र भावकों की घपनी समवेदना से मिद्ध है। बनुवार्य में भी निवेद्यति विया हुवा साधरणीवरण के माध्यम से एसी प्रसार ग्रानन्दा मन ज्ञान ने उन्मीलन में नारण बनता है। घन, मादा बा सहानवस्थान सम्भव नहीं है।

२६४ दग्रह्पक

पविरोधी रमान्तर से व्यवहित होतर उपनिवद्ध हो तो वहाँ दिरोधी मही हो सकता है जैसे प्राष्ट्रत ने इस दरोत में—

प्रस्त—हों (मैं) मान लिया कि जहीं एवं शास्त्रयें से विरद्ध भीर भविन्द्ध भावों को सग रूप सं रक्षा आता है उनम गोर्ड विरोध नहीं होता नवींकि एक प्रधान रहेगा दूसरा (विरद्ध और सविरद्ध) उसरा प्रग रहेगा, प्रन विरोध नहीं होगा पर जहीं पर दोनों मनदयान रहेंग यहाँ पर क्या स्थित होगी ? जैसे निष्नांत्रिख स्तोब में—

एक तरफ प्रिया रो रही है दूसरी तरफ समर-हुन्द्रीन का निर्पोप हो रहा है, घत प्रेम धींगरण के ध्रावेग से बीर कामन दामायित हो रहा है। '

यहाँ रित भोर उस्माह सम प्रया हैं। इसी प्रनार नीचे के रतोन म—

ह सञ्जन साम आप नपट ना छाड नियार दृष्टि से बिचार "रके मर्योदा के माय निर्णय दें कि पवटों की नदराएँ सेवन के योग है। अयबा नामदन के नाणों से विद्व विसासितियों के निदस्य ?"

यहाँ पर रित छोर क्षम भाव थी समप्रधानता है। ऐसे ही—रावण नी यह उनिन है—"इपर यह (भीता) तो निमुदन दी मुद्धियों में सेंप्य जनक ने नेवाती है धीर उपर यह दुग्दा मा वहीं है पिसने मेरी वहन के साथ दुग्यंगहार (मुनणना की नाक नरटना) विचा है। इधर उसना देव नाम की तसनवीं साजमा आगृत होती है उपर उसे देव नोम की तसनवीं साजमा आगृत होती है उपर उसे देव नोम की सार सारीर जल उठना है। धीर मैंने भी तो प्रपने वेप की एकमा (साबु वंप) भी निचन हो कर सो है पया वर्ष हुछ समम मनहीं मा रहा है?

यहाँ पर रित क्रीर क्षोब इन दोनों स्थाबीआओ का समप्रायास है। ऐसे ही---

। ऐसं ही— • इन पिदाचिनियों ने बन्तडिया का एक्शमूत्र बाँघ रूपा है। इन्होंन

१ यह श्लीन इतना कटिल है कि इसका प्रयं स्पष्ट नहीं होता है।

२६६ दशहपक

होता है। इस पक्ष में 'मट' पद का उपादान मौर भी प्रमाण हप में है। इसलिए यह कहना भी ठोक नहीं कि करुण एवं उत्साह का समग्रापान्य पारस्परिक स्वमाणीमान का प्रतिन्यक है। दूसरी नात यह भी है कि जब समाम का मारस्म हो चुना हो उस समय सुभट सोग कामान्तर में प्रमृत हो, यह तो महान् अनुचित है। सत भाग की मग्राम में यह रिसकता सौर्य को ही प्रवाचित करती है। भीर फिर प्रियतमा के करण निम्नसम्म से बोर रख वा ही पोप होता है। सत दोनो सममयान नहीं, प्रस्तुत मगानी मानापन हैं।

इसी प्रवार 'मास्सव' ' दृत्यादि दलोल मे चिरदाल से प्रवृत्त रित्र वासना ना हैय दुद्धि से उपादान होने के कारण शमभाव के प्रकाशन में तत्दरता जान पड़ती है। धीर इसके थोप मे 'बार्या समर्थादिमद बदन्तु' में बदन्तु बद्ध परिवर होजर खड़ा है। इसी प्रवार 'इय सा जोतासी' भादि' इत्यादि में रावण प्रतिपक्ष नायक है धौर वह निशाचर होने से माया-प्रधान है। धत निशाचर प्रकृति के व्यक्ति मे रौद्धरस ना प्रति-पादन निया गया है। यहाँ रिति एव कोच के व्यक्त का उपादान सन्वेह

पादन निया गया है। यहाँ रित एव कोष के ध्यवन का उपादान सम्बेह का प्रत्यापन है जिससे 'वितक' ध्यभिचारी भाव का जन्म होगा, धौर इस वितक' ध्यभिचारी आव का रीद्ररस के बोध के लिए उपादान धावध्यन है। 'यन्ने करिपत गगल प्रतिसरा' इत्यादि दलीक केवल हास्यरस का

ही व्यवस है। 'एव प्यान निमीलनान्' इत्यादि भी एकसात्र 'याम' के प्रत्यायन में सत्यर है। यहां 'यान' भाव के रियत दान्धु को भावान्तर याहप्ट नहीं कर रहे हैं। यह चन्य योगियों की चर्यसा दान्धु को जिन-सान्ता है। फिर विचलान योगी के 'याम' को जावान्तर स्पतित करें यह धमसम्पद है। देशों चटा का चोए करनेवाला 'समध्यसमय' यह दक्ष में है। 'एनेनाइना' इंग्यादि से सम्पत्त बालय मार्थी विध्यत्यमपरंत्र ही है। (यह स्थित धन्तिस्टार्थंक स्लोकों से नही) यह स्लिट स्तोकों में

(यह स्थित क्यांस्क्टायंव दलावा स रहा) यह स्थित हासि स वहाँ प्रनेव रसो वे तालुयं से यह प्रदार्थ की संघटना है वहाँ पर श्री विरोध की सम्मावता नहीं है। नारण यह है कि विरोध समझायान रहते पर होता है। दिस्तष्ट न्यस में दो स्थितियाँ हो सकती हैं—पहसी तो वह नहीं दोनों अर्थों में स्प्रमानोपमेश मान स्थापित हो जाता हो। और दूसरी वह नहीं दोनों अर्थ स्वतन्त्र हों। इस प्रकार प्रयम न्यित में उपमान बाच्य ना थग वन बाएगा। यत दोनो वाक्यों में प्रमाणिमाव नी स्वत्या सम्मद है। यत समझायान्त्र नहीं है। दूसरी स्थिति में भी पृथम् पृथम् बाक्यार्थ दो विमिन्न रखी के प्रतिपादन में तत्यार होंगे। इस स्थित में भी प्रति नामाय पीदे एक सर्थ की ही प्रयानता रहेंगी। इस स्थार्थ स्थारी स्थान प्रामाय की होने से स्वत्य प्रशा वाक्यां

[मुद्रगंतन्तर] जितना नेवार हाथ ही मुख्या है। ध्रियदा मुद्रगंत यह होने से मुद्रगंतर र विष्णु जिल्होंने नेवल वरणार्शन्द ने सौन्दर्य में क्षिया यह निष्णु हैं] दीनों सोनों को आशन्त दिया है और को पद्मार सि वेदन हैं विष्णु ने को आएए परते हैं ध्रियांचू वित्तवा नेवार एक नत्र ही नद्रमाथ हैं] ऐसे विष्णु ने अस्ति देहनायी गोन्दर्यगातिनों, मुख्या नेवार से नेताय विवय नदनेवारी भीर नद्रमाध्य प्रमूगे मुख्यों सादरा करनेवारी को दिवस नद नेवारी को दिवस नद में ही अपने स्पर्ण के दें ही उन्हांच सुन्य हो सादरा करनेवारी को विवत नद से ही अपने स्पर्ण के उन्हांच सुन्य होना हो जिल्हा नदा हो ही स्वत्ते गया करें।

[यहाँ व्यक्तिक की ठाया का परिपृष्ट करनेवाला क्षेत्र वाष्य शर में प्रतीव होता है।]

इस बहार उन्ह बिबि से रासादि स्थायोताओं ना उपनिकासन सरों म मर्वत्र विरोध नी स्थिति परिहृत हो बाएगी । बिस प्रवार उन बाव्यों ना जी, रिजर्स ड सादि वाजन पर उपनिषद है, तार्ल्य एन ही स्थायोत्याव में है, इस बात जो हुस आपि दिलाईयाँ। उत्तुत 'सवाबाध्ययाना' ना सारण्य नगता चाहिए। 'वाई-ध्ययूवाना' इस्यादि'—स्थाद्यं उन बाच्यों ना तार्ल्य निनमें रस्यादि स्ववायन धन्द से उदाल न हों उनी को ध्यवका के द्वारा का सक्त पर रसोहायोगी 256 दशरूपक स्यामित्व को प्राप्त इर सर्वेष । ग्रन्यथा बाब्य वृत्ति से ग्रालिंगित रहने

पर तो रत्यादि भाव नहीं नहे जा सकेंगे और फिर उनके लिए स्थायित भी प्राप्ति चसम्भव हो जाएगी। भौर दे [निम्नलिखित स्थायीभाव हैं]--

रत्युत्साहजुपुष्साः क्रोधो हासः स्मयो भय शोकः । शमम्बि केचित्प्राष्ट्रः युष्टिनद्येषु नैतस्य ॥३४॥

'रित, उत्साह जुरुसा, क्रोध, हास, स्मय, भय, शोक, ये धाउ

स्यायीनाव हैं। पूछ शोग शम को भी स्यायीभाव मानने हैं पर इसकी पुष्टि नाट्य मे नहीं होती ।' ॥३४॥

इस स्थल में आन्तरस से प्रतिवादियों भी बनेक प्रकार की विप्रति-पतियाँ हैं। उनमे से एक दल का कहना है कि बान्त नाम का वोई

रस हा नहीं है। इसमे नारण है श्राचार्य के द्वारा इसने विभागादिनो बा बर्णन न बरना तदा लक्षण का ग्रामाव ।

कुछ दायहमाहै विवेवल बाबार्यभरत ने विभाग बादिका प्रतिपादन नहीं दिया है, इसीलिए चान्तरस नहीं है यह बात नहीं है।

प्रत्युत पश्तुत पान्तरम नहीं है। इसका बारण स्वध्य है---समबी पुष्टि ही सान्त है और सम भी उत्पत्ति राग-होप में समूल नष्ट होने पर निर्भेग करती है। यह राज्ञ-द्वीय जो सनादि काल में स्नत करण में चत्ता चला बा रहा है, उसमा उच्छेद बास्तविकता के दिना ध्याव-

हारिक प्रयस्त्रा में होना भी धमम्बद है। र्सागरा दल यह बहुना है। जि. बान्तरस का धन्नर्भाव थीर, धीमर्स

भादि ही में जिया जा सकता है। इस प्रकार कहते हुए वे सर्भ भाव की भी सरदन कर देने हैं।

चारे जो भी हो, पर इसना तो मुनिदियन है कि रूपनो में सम का स्वाधित्य मुर्के दाहा नहीं है। शारण यह है कि नार्य ग्रानिनयाम<sup>व</sup> हाता है भीर 'श्रम' समस्त स्थापारों का पविसम रूप है। मत' इन

दोनों (शम धौर सन्तिप) का गम्दम्य भीते हो शकता है ? समीएँ

क्सि प्रकार इन दोनो का सम्बन्ध नहीं बैठ सकता ।

बूछ लोगों ने नामानन्द में श्रम' को स्वामीमाव माना है। उनके नयन का स्पष्ट विरोध श्राप्रवन्धप्रवृत्त मलयवती के श्रनुराग एव विद्याघर की चक्वतिस्व प्राप्ति से है। कहन का आव यह है कि यदि जीवमूनवाहन सम प्रधान होता तो उसे मलयवती मे धनुराग भीर चवदित्य दी प्राप्ति स्वीवार नहीं होनी । एवं ही अनुवास स्वरूप विभाव का ब्राध्यय करके परस्तर-विरोधी श्म एव रति (कात एव गृगार) की उपलब्धि कही भी नहीं देखी गई। धत बस्तुत वहाँ दया-वीर के स्थायीभाव उत्साह का ही उपनिबन्ध मानना चारिए। इस प्रवार से यहाँ भूगार का ध्रममाय तथा चक्रवतित्व की प्राप्ति का विरोध हट जाता है। बर्तव्य मात्र म इच्छा चिपकी ही गहती है। शत परोपना नप बर्नेध्व म माभिनाय प्रवृत्त विजिमीय (विजय वी इच्छा रमनेवाते) वा पल की प्राप्ति अवस्यभावी है। नामिलाय कनन्य और फल बानित्य सम्बाध है। इस विषय वी चर्चा दिसीय प्रवास मही पर्याप्त रप से की जा चुकी है। बात वस्तृत बाठ ही स्थायी (भाव) हाने हैं।

प्रधन-उत्त मिद्धान्त पर बुछ लीगो बी यह धरिब है कि बस्तुम मधुर श्रुगार झादि रही के नमान ही दा निबंद भादिकों की रम एप मी प्राप्ति रसन अर्थात भाग्याद के बारण ही है। क्यांकि जिस प्रकार शुगार चादि बास्वाच होन के कारण रग कहे जाते हैं यह मान्याद-रपता जब शम ब्रादि में भी पर्याप्त दिखाई देती है तो बयो इहें रस न माना जाए ? इन मृश्तियों से धन्य न्सों की भी कन्पना कर उनके विभिन्त स्वामी भावों की कापना की गई है। फिर इस प्रकार जब कई रम हा यहने हैं ता 'पप्टावेब' में रमी की गम्या को घाठ ही म मीउना वहाँ तक देश्य मगत है ?

उत्तर-[इयुक्त उत्तर बाबाय धनिश निम्नतिनित प्रकार मे 計 2-1

२७० दशहपक

निर्देदादिरताद्रूप्यादस्यायी स्वदते कथम् ।

वैरस्यायैव तत्पोषस्तेनाच्टी स्थायिनो मताः ॥३६॥

निवंद ग्रांद माव अपने विरोधी एव श्रीवरोधी मात्रो से उन्धिल हो जाते हैं, अत स्थाधित्व के मुन कारए का ग्रमाब होने से धे ग्रस्थायी हैं। फिर इनमें भना रस कोटि का श्रास्थाय हो कैसे सकता है? इस स्थित में भी यदि इसे स्थाधी मानकर इसवी ग्रन्थ रसों को भांति पोष करने के लिए सामग्रियों इकट्ठी की जाएँगी तो उनसे बैरस्य उत्पन्न होने को होड़ सरसता कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकती ॥३६॥

विसी भी भाव के स्थायी होने वा तारपर्व है, उसका विरोधी एवं स्विदीयी भावों से उच्छित न होने हैं वे वारण इन्हें हम प्रस्थायों ही कहेंगे । उनका स्थायी नी भीति सास्याद न होने हो के वारण सपने त्यक्षित्राधी भाव विकास पार्व का वीच-रीम में निक्षित्र होने से परिपुष्ट किया जातों हुया भी बातुत विकास होने हो के वारण सपने क्यायाचार हुया भी बातुत विकास हो बनी रहती है। इसकी सस्यायिता वा कारण इसकी निक्कता नहीं है अन्यवा हास्यादिकों के भी स्थायीभावों की निक्कता-वात् प्रस्थायित हो सनवार है। हास्यादिकों में इस दोष (निक्कता-वात् प्रस्थायित हो सनवार है। हास्यादिकों में इस दोष (निक्कता-वात् प्रस्थायित हो सनवार है। हास्यादिकों है, वेशीन राजों भावित वर्ष में परम्पत सम्पत्त विवे हुए है, निक्कता नहीं है, वेशीन राजों भावित स्थान मन्यद है प्रस्थाय स्थान सम्भावित है। सन्य हास्य साद वी सफनवता उसने स्थान नरी साविता ही। होगी, मार्कित वी वाधिया नहीं।

पर स्थिति यह है कि यदि इस प्रवार परस्परा या वन्त-बन्धना की पर्या तो साग्त कादमियों वे भी स्थापीआयों को है फिर तो यह (सान्त) भी न्यायीआय की बोटि में का जाएगा। चतः निष्यत्तता स्थायीआदि का प्रयोजकानही है, प्रयुत्त विरुद्ध एवं धविषद्ध आयों से उच्छितन न होना ही स्थापिता का प्रयोजन है। निवेंद पादि से इस प्रयोजकार के में होना ही स्थापिता नहीं बन सवनी। बन निवेंद पादि हो स्मार्थ की प्राप्ति भी नहीं हो सकती। उसलिए अम्याभी होने के कारण इनकी अरमना है अर्थान में रम नहीं हो सकते।

यब विवारणीय यह है वि इन नावों ना नाव्य से व्या सम्बन्ध है ? नाम्य से भावो ना नाव्य-वाचन भाव-सम्बन्ध स्वित्य सम्मन नहीं है नयोगि भाव भी स्वयन्य से विवित्त नहीं होंगे अपिनु विभावादियों से बोध्य होते हैं। यु गार आदि रखों से युक्त नाव्यों में युगार आदि अपना रचार होते हैं। यु गार आदि रखों से युक्त नाव्यों में युगार आदि अपना रचार रचार नहीं निवृत्त हमा भी युविगोचर तो होंगे नहीं निवृत्त हम मानों ने ध्यवत इनके वर्डमान स्वरूप नो धानिष्य वहते। सपना मान निया जाए नहीं रचादिकों ना स्वयुक्त साम पर (रित या युगार) से बोध होता मी हो तो वही इसमें आस्वादत ना नारफ वह प्रमिष्यक राज्य नहीं होता अपनुत विभाव खादि वें हो नारण इनकी रसस्वता सम्बन्ध से वह साम्याद होता हो ऐसा विभी सम्मन नहीं है।

माबों का माध्य के माथ नदय-सप्तक भाव-उम्बन्ध भी नहीं बन मक्त्रा, क्योंनि दिश्रेण रम को प्रतीति के सिए सामान्य पद (रम) का प्रयोग होता हो नहीं है। एस सामान्यवाचक है और प्रतीति निमी दिश्रेण एस की होती है। मामान्य रम नृगार खादि विशेष के वाचक हो नहीं सकी।

वहीं तिन्ति सहामा भी नहीं हो सनती है न्योंकि निय प्रकार 'गा। में पोप है इन स्थर में स्रोत-स्वरूप गगा में पोप की सावारता (गहता) ग्रेम्मद नहीं है, यन गगा शब्द निविशत पर्य की प्रतिति कराने में पूर्वत प्रकार है। पत्रत क्यांचे प्रोत से निय सम्बद्ध तटन्य प्रूपें में पूर्वत प्रकार निविश्व करात है। इसी प्रकार कियां में रख की मिनति न कराने में निविश्व करात है। इसी प्रकार कियां में रख की मिनति न कराने में निव्य प्रकुत राज्य विविश्व क्यों क्यों कराने में ममिति गति (प्रक्षिप) नहीं होता है तो किर मता वे क्यों स्थान में रम भी प्रतिति कराएँग ' यहि बनान् इन पदी की स्थान की भी जाए सा है मार पूर्वत है कि जना ऐसा कीन हाना जो निव्य सा स्थोनन की

२७२ दशस्पक

भिना ही अन्यार्थ में अन्यार्थदाचक सब्द का श्रीपचारिक प्रयोग करेगा ? इन कारणो से हो 'सिहोबायवक' मादिनी मौति गुणवृत्ति की भी

सम्भावना नही है। दूसरी बात यह है कि यदि रस वाच्य रूप से प्रतीत होता तो इस

स्यिति म बाच्य-वाचव मात्र का जान रखनेवाले असहदयजनो को भी

दाव्य के रम का आस्वाद होने लगना। यह रमकी प्रतीवि केवल काल्पनिक नही है जो इसे नकारा (बस्वीकार करना) जा सके, क्योंकि सभी सहदय रस की सत्ता का एक

मत हो समर्थन करते हैं। इसीलिए इस बर्य नी सिद्धि ने लिए परि-महिनन प्रशिषा, सक्षणा एव गौणी ने ब्रतिरिनन व्यवस्त्व सक्षणनाता

व्यजना-व्यापार स्वीशार करते हैं। दिनाय प्रमुशाय और व्यक्तिचारी ने द्वारा प्रमुश्न होशी हुई

रसादि की प्रतीति बाक्य कैसे हो सकती है ? जैसे 'कूमारसम्भव' मे-"पार्वतीजी क्रो हुए नये कदम्ब के समान पुलिश्त भगो से पेन जतसानी हुई, सजीली घांग्यो से घपना घरवन्त सुन्दर मूख पूछ तिरहा मरने नदी रह गई।"

इत्यादि में चनुराग से उत्पन्न होनेनाती को धनस्या विशेषस्य

भनुनाय है उससे युवन गिरिजास्य विभाव के वर्णन से ही रम की प्राीति होती है, बर्जाय रत्यादियाचर अब्द वहाँ नही हैं। प्राय रती के विषय में भी ऐसा ही समकता चाहिए। देवल रस ही नी बात नहीं है बन्यु मात्र में भी यही हिचति है। जैसे-

यह बात धननारों में भी पाई जानी है। जैसे--

हे चचल श्रीर विशाल नेशोंत्रानी, लावण्य श्रीर वाल्ति ने दिगलर मो परिपूरित कर देनेवाली तुम्हारे मुख के मन्द-मुस्तान में युक्त होने पर भी दन समुद्र में जरा भी क्षीम पैदा नहीं होता है, ऋतः मानूम होता है हि यह बाध्वब में मूदना से भरा हुआ है [जलराधि का जड राशि करना पटता है दबोकि सुन्छन में ल भौर इ में भेद नहीं माना जाना,] इत्यादि में नन्यों या बदनारविन्द्र चन्द्र के सून्य है इत्यादि उपमा बारबार को प्रतीति व्यजना धाकित के ही बारण है। इस प्रतीति की ग्रर्गापत्ति ने आया हुमा नहीं कह सकते क्योंकि अर्थापति के निए अनुपपदामान अमें भी अपेक्षा रहती है पर व्यवना के निए इसकी कोई बादरयाता नही है। इस प्रनीति को बाच्यायें भी नहीं कह सकते क्योरि व्यज्ज्ञायं है नृतीय कलाका विजय। उदाहरणार्थं 'भ्रम धार्मिक विध्यान ' इत्यादि स्दल में पहले पदार्थ प्रतीति होती है जो श्रीभधा ना नायं है। इस प्रथम नक्षा नी पदायं प्रतीति ने प्रनन्तर दितीय नहा में किया बारन समग्रे स्वरूप बाच्यार्थ की प्रतीति होती है, तदननार नृतीय बन्ना में 'श्रमण निषेध' स्वरूप व्यव्यार्थ, जो व्यजना-शक्ति के प्रधीत है, स्वय्ट ही जासित होना है। यह दिनीय क्या में प्रतीति बाहमार्व ने नृतीय क्या में प्रतीति होनेवाला व्याधार्य मदैन भिन्त है। प्रत व्यापार्थ और बाच्यार्थ स्थमित एक नहीं हो सकता।

यदाव 'बिय भुर्दर' इत्यादि वावयों में वहाँ पहार्थ-तात्ययं पारत श्रूयमाण नहीं है, बीर तात्वयं है 'फोडन नियेव' बादि । बहाँ वास्यायं की तृतीय क्या है हैं। इस स्वतं में व्यक्तावारी की भी 'नियेवायं प्रतीति' वाक्यायं मानना ही पटेगा, नयोदि तात्ययं में व्यक्ति वर्षयः किन्ते हैं। यहाँ नियेव का हो तात्र्ययं है व्यक्त का नहीं बीर वह स्वप्टन नृतीय काला का विषय है। नवायि इस प्रकार तात्वयाँ स्वक्त्य वाल्यायं भी तृतीय कथा का विषय हो स्वा, यह बहुता टीक नहीं है।

बस्तुनः 'निष भुट्दन' जैसे बादवों का स्वार्थ द्वितीय क्या में

दशहरक

श्रविश्वान्त ही रहता है—उस क्का मे श्रिभवा नी सहायता प्राप्त पराप्तें के परस्पर ससर्ग रूप बाच्यार्थ से जो दितीय क्का में श्रतीत होती है— जिज्ञाना शान्त नहीं होती, श्रत जब तक स्वार्थ मे बान्यार्थ विश्वान्त न हो तब तक दितीय कथा ही चलती रहती है। तृतीय नथा तो स्वार्थ-विश्वान्ति के श्रनत्तर प्रारम्भ होती है और उसे व्यन्य (कक्षा) कहते

हैं। यहां द्वितीय कक्षा में किया, कारक, सतर्ग, रूप वाज्यार्थ धनुपपन इसलिए है कि इस वाज्य का अवस्ता पिता अपने पुत्र को विप सक्षण में नियक्त कैसे करेगा?

308

पर सरस वाषयों में विभाव मादि की अतीति दितीय कका में होती है, रक्षों की नहीं । यत रम रूप व्यव्धार्य की नृतीय कका निर्विवाद सिद्ध हुईं। कहा भी है—"स्वार्य में प्रतिष्ठित न होने के नारण प्रविश्वान्त बाबय जो तास्पर्य बोधित करना चाहता है उस तास्र-यार्य में तास्पर्यवृत्ति का ही मानना उचित है। किन्तु जब बाच्च स्वार्य में विशान्त होकर प्रतिष्ठित हो चुका हो घीर फिर भी किसी मन्य भिष्ठत कर्य को बताने में उन्मुल हो तो उस प्रयं में निश्चय ही व्यत्ति की स्थिति है।" इस प्रकार सर्वण त्या सर्वण व्यत्त ही रहेगे। परत्यु यन्तु धौर प्रजनार तो कही व्यत्या थौर कही व्यव्य होगे। इस स्थिति में सभी व्यत्य ध्वति नहीं कहे व्यास्त्रार्थ में प्रधान क्ये से तास्त्रमं नहीं हो, बहाँ व्यास के प्रधान न होने से गुणीभूत व्यत्य की स्थिति होगी। वहीं भी है—

'तिस स्थान में भाषने सर्थ को गुणीभूत बनावर सन्द एवं धर्षने हों को प्रप्रधान बनावर सर्थ सन्य धर्व के स्रोतन में सत्यर होता है उसे विद्वानों ने प्यति नामन बाव्य का एक (उत्तम) भेद माना है।" परन्तु जहाँ दिवीय बसा बावसाय ही प्रधान होता है धौर रस सादि उसने भग होत है ऐसे बाव्य में रस मादि प्रधान के उपस्वारक होने के बारण कावार हो होते हैं।" जैसे 'चपोडरायेण' इत्यादि स्थल में रसादि सलकार हैं। उस घ्वनि के विवक्षित वाच्य और अविवक्षित वाच्य दो भेद होते हैं। श्रविवक्षित वाच्य के भी अध्यन्त तिरस्कृत और अर्थान्तर सन्नमित दो भेद होते हैं। विवक्षित वाच्य के भी दो भेद होते हैं—

रे. असलस्यनम् और २. सलक्ष्यनम् । इसमे रसादि असलक्ष्यनम् मै माते हैं । वे रसादि अङ्गीरण (अधानरण) मै रहें तभी ध्वनि बहे जाते हैं और यदि अञ्चान हो जाएँ तो रसवद् असकार कह्लाने लगते हैं । अञ्चान रहने पर ध्वनि नहीं रह जाते हैं ।

इस प्रचार तृशीय नजा में जात समें की व्यागता को पूर्व पता से रायकर उसके तालवार्यता सिद्धालित करने के सिए प्रव 'वाच्या' इत्यादि से प्रारम्भ करते हैं।

बाच्या प्रकर्शादिग्यो बुद्धिस्या वा यया क्रिया । बाक्यार्थः कारकेर्युं का स्थायी भावस्तयेतरैः ॥३७॥

जिस प्रकार वाच्य प्रयदा प्रकरण प्रादि के द्वारा गम्य जिया लारकों से युवत होकर वाक्याय बनता है, उसी प्रकार विभावादिकों से युक्त स्यापीमाव भी बाज्याय की कृषित से या सकता है ॥३७॥

जिस प्रचार 'मामन्याज' इत्यादि लाविन नाययो में स्ववीचन पद से सूपमाण लया 'खार डार' इत्यादि में प्रकरण खादि बचान् बृद्धि में उपान्द किया ही नारनो से समृष्ट होकर बाच्याये बनती है, उसी प्रचार ना यो में बही 'प्रीर्त्य नवीडा प्रिया' इत्यादि स्थल से स्ववाचन सार (श्रीदिनाचन द्याद) ने उपारान नरने से सूपमाण एव नही प्रव-रणादि वचान किया स्ववाच होने ने नारण साक्षान मानन ने नित्त म स्कृतित होनो हुमा रत्यादि स्वायीमान ही प्रपन प्रपन पत्र ने नित्त म स्कृतित होने साथ मिला मानन ने नित्त म स्कृतित होने हुमा हुमा रत्यादि स्वायीमान ही प्रपन प्रपन पत्र ने नित्त म स्ववाच साव उनके प्रवाचन प्रवाचन साव स्वाचन साव स्वाचन साव स्वाचन साव स्वचन स

२७६ दशहपक

हाँ, इस पर यदि झाप यह कहे कि यानवार्ष पदानों के पारस्थािक सम्बन्ध से सिनिन्धनन होता है सत नानवार्ष मे पद से सिनिहित पदार्थों की ही (ससर्पसिहत) प्रतोति होगी, जो पद से सिन्धन के द्वारा सावेदित होगे ऐसे अपदार्थों की प्रतीति नाम्यार्थ से सम्भन नहीं। रित सादि भावों की यही स्थिति है, वे दूसरे के द्वारा कभी भी बोधित नहीं हो सनते सत अपदार्थ ही होगे। और अपदार्थ इत्यादि (पुट्ट प्रथन सपुट्ट) वानवार्थ कैसे बन सक्तेंगे? इस पर हमारा कथन यह है कि तालवार्थ तो नामवार्थ है ही, इसे

तो माप रुयमपि अस्वीकार नहीं करेंगे और तात्पर्यकार्यसिद्धिकरने पर पर्यवसित हुमा करता है। कहने का भाव यह है कि सभी बार्य दो भागो में विभाजित किए जा सकते है—पौच्येय भीर भपौरपेय। भौर में द्विविध वावय किसी-न-किसी उद्देश्य से प्रयुक्त होते हैं। यदि इनका कोई तात्पर्य नहीं—उद्देश्य नहीं तो वे उन्मत्तो के प्रलाम से मधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध नही हो सकते । काव्य वाक्यो का यदि झन्दय व्यतिरेक से जिस कार्य के प्रति कारणता देखी जाती है वह निरतिशय मुलास्वाद से ब्रतिरिवत कुछ नहीं है, ब्रत बादग्दीत्वत्ति ही कार्य रूप से निर्णीत किया गया है ३ इस बानन्द के श्रीतरिक्त किसी मान्य पदार्थ कान तो काव्य प्रतिपादक है, जो प्रतीतिषय में बाएगा घौरन ती इसके अतिरिक्त अतीविषय में आनेवाला कोई पदार्थान्तर अतिपाध ही है। इस बानन्दोद्भूति का निमित्त विभाव बादि से सम्बन्धित स्थायी ही भवगत होता है। बतः वान्य की ब्राभिधान शक्ति (ताल्पर्य) उस स्यल के (यावयार्थ रस रूप) स्वायं की निप्पत्ति के लिए प्रपेक्षित श्रवान्तर विभावादिको का प्रतिपादन करती हुई पर्ययसन्त होती है। ऐसी स्थिति में माप विभाव मादि नो तो पदार्थ स्थानीय समर्भे । उन्हीं रो ससुष्ट इत्यादि स्थायीमाव वाच्यार्थं पदवी प्राप्त करते हैं, प्रयत् रस इस प्रकार द्वितीय कक्षा में प्रविष्ट होनेवाला वाक्यार्थ ही है। इस प्रकार काव्य काक्य ही है जिसका सर्व पदार्थ एव बावयार्थ दोनो ही है।

इस पूर्वनिवत विद्वान्त पर यह पूर्वपत सदा हो सनता है कि जिम प्रचार गीत आदि का उसके द्वारी उत्तन्त सुन से बाज्यवावक भाव नहीं है, उसो प्रकार कान्य वाक्य से उत्तन्त रसादि का भी कान्य-वाक्यों में वाच्यवाचर नाव का श्रमाव होना चाहिए।

पर यह बयन निम्मितिवित कारणों में आहा नहीं हो सनता—

सहीं तो त्यान्वाद उन्हों को हा सबता है जिन्हें पुष्ट के निमेदित

प्रनीतित निनाब भादि सामग्री का भान है तथा उपने प्रनीर को तत्यावि

प्रनीतित निनाब भादि सामग्री का भान है तथा उपने प्रनीर को तत्यावि

प्राचा हो चुकी है, भन गहाँ गीठ भादि को माँगि वाच्य वाचक भाव

वा उपयोग नहीं है यह क्यन ठीक नहीं है। विना वाच्य-वाचक भाव,

नान एव महदयना के रम के नारणों का हो धन्त करण में उपमित्त

होना प्रसामक है। इत युक्ति से ग्रव यह भापित नहीं की वा सकती

कि गोत भादि से उन्यम्म होनेवाल मुन्त का भान्वाद सेनेवाला जिस

प्रशार वाच्य-यावक भाव भादि के रहित व्यक्ति भी हो सकता है, जती

प्रशार वाच्य के उत्यम्त भाव्याद का भी वह भाव्यादक कम सकेग। वाच्यावया के मान प्रशार निरुप हो जाने पर परिकल्पत धर्मिया प्रमृति

पान की सहायता से ही समस्य रसादि रच बान्यामं का बोप हो

वाच्या, मत व्यवना-जैशी नुनरी मन्ति की क्यना प्रयाम मान ही

है ना कि हमने बाव्य-निर्णय से बताया है—

प्यति शास्य वी त्रिति है। व्यवना-व्यापार धोर उनत शीन से बह सप्ट देव निया नहा गया है कि व्यवना-व्यापार तास्पर्य से पृष्ण नोई तस्य नहीं है। प्रत प्रति नाव्य नी नोई प्रशाप नहीं है मध्या प्रय परार्थ नहीं है। यदि हमारी उनन व्यवस्था प्राप्तों स्वीनार नहीं है— प्रया्त्र प्रयुत्त तस्पर्य यो घाप तृतीय नहां ना विषय साननर व्यव नी एन तीमरी नोटि बनाते हैं धीर उसे बावार्य से मिनन मानवर व्यत्ति मता प्रदान नरते हैं तो धापसे पूछते हैं कि बहु बाव्य ना तास्पर्य नाव्य से निविद्य नहीं है ऐसी ध्यांतिन धतनुनि में प्राप नरा नरेंदे ? यहां भी तो धाप प्रति नाव्य स्वीनार नरेंग ? नरािंप नहीं कर सकते । किर इस ग्रव्यवस्थित व्यवस्था में क्या ग्रास्था ? भ्रयवा इस रलोक के पूर्वाई को तात्पर्यवादी का एव इत्तराई की

व्याजनावादीका मत समिक्किए। फिर पूर्वीई की व्याख्याती ऊपर के

भनुसार की जिए, रही बात उत्तराई की, सो उसे यो लगाइए-

'मा बिद्धि साखोटकम्' इत्यादि अन्योक्ति के उदाहरण मे जहाँ तात्पर्यं शब्दत श्रूयमाण नही है-शाप नवा कहेगे ? ग्रथीं समुक

सात्पर्य है, यह कैसे कह सक्षेप ? वाल यह है कि—"तात्पर्य वन्तुरिष्छा"

तात्पर्यं वक्ता की इच्छाका नाम है। यहाँ पर बाखोटक में इच्छा सम्भव नहीं है, ब्रत इस स्थल पर तनत्पर्य कहां सन्भव हे ? अत यहां निर्वेद जो द्योतित हो रहा है, उसे ग्राखोटक का तात्पर्य कैसे कहेगे ? इस स्थिति मे यह तात्पर्यभी न बन सकेगा। पर व्यापार्थ के होने मे

क्या हानि है ? श्रत व्यग्यार्थकी पृथक् कल्पनाकरनी ही पडेगी, जिसकै उत्पर ध्वति की ग्रहालिया सहयं खडी की जा सकती है ॥६॥

'विष भक्षय मा चास्य' इत्यादि ब्याख्या से प्रतीयमान मे प्रधानत

हात्पर्य में होने से प्रसज्यमान ध्वनि का निषेध कीन चर सकता है ?

घ्वनिवादी व्यग्य एव सारपर्य का भेद दिखाते हुए बहुता है कि घ्वनि तब होती है जब स्वार्थ मे प्रतिध्ठित होकर बाक्य प्रयन्तिर हा

भोग कराए धौर यदि स्वार्थ भे ग्रविधान्त होकर भ्रयन्तिर को प्रतीति बाच्य कराता हो तो तात्पर्यार्थ कहा जाता है ॥२॥

परन्तु व्वनिवादियों के इस भेद नधन में अविच ना नारण यह है कि बाच्य की तब तक विधानित ही नहीं होती जब सक पूर्ण सभित्रेत धर्म वो न दे लेता हो धयना यह वह सकते हैं कि यदि ग्रयन्तिर भी

उससे निवालना है तो उसने पूर्व बाच्य को विधान्ति हो सम्भव नही है। इस प्रकार यह उक्त भेद जिस विश्वान्ति के भाषार पर किया गया है यही मनम्भव है। वस्तुत यह भेद का कारण नही है, छत. ताराये

भौर प्वति एक ही चीज है, इनमें पार्थवय नहीं है ॥३॥ एतावन्यात्र धर्यं में ही विश्वान्ति होती है। यह निवम विसने बनाया है ? तात्पर्य तो कार्यपर्यथसायी होना है—जब तक घिभिन्नेत प्रयं नहीं मिलता तब तक वाष्य का कार्य समाप्त नहीं होता । तात्पर्य तराजू पर रस्तर तोला थोडे ही गया है जो तात्पर्य एक घरा के भीतर ही रहेगा। तात्पर्य यहां तन होगा और साथ व्यय्यार्थ होगा इतना कोई माप नहीं है। इस रीति से व्यय्य और तात्पर्य अभिन्न हैं।

ध्वनिवादी ध्वनि के लिए फिर दशील पेश करता है---

"भ्रम धार्मिक विश्वन्थ," इत्यादि वाक्य भ्रमण-रूप मर्थ ना है। प्रतिपादक है। यहाँ पर भ्रमण का निर्णय वीचक पर तो है नहीं जिसके साच्य मर्थ से भ्रमण के निर्णय का निर्णय हो सके। पर हमारे मत से तो वाच्य व्यवणकाल में विश्वव्य भ्रमण रूप विच्यात्मक सर्थ हा बीच कराकर एक प्रकार के बाक्य विश्वान्त हो जाता है, उत्तक बाद कुलदा स्त्री की विषयता के सान होने से उत्तथा उद्देश भ्रमण के निर्मय-रूप सर्थ में कात होता है। इस प्रनार क्यायार्थ की पृथक् सत्ता विश्वान्ति के स्वान्तर प्रति से पुषे हैं। होने से सम्बन्ध है। ॥।।

[ध्वति ने सण्डन करनेवाले सन्यनार इसना उत्तर निम्नलिनिन प्रनार से देते हैं]—

श्रोता को प्राकाशा निवृत्ति के लिए यदि उक्त वाक्य में विद्यास्ति मान ती जाती है और विद्यानि के सम्भव होने से व्यावार्थ को सत्ता स्वीकार कर की जाती है तो हम यह हर सकते हैं कि वक्ता के विश्वादित प्रमुं का लाभ जब तन नहीं होता तब तक विनित्तमन के प्रभाव में वाक्य को प्रतिशासित ही वसी न मान की जाए ॥६॥

पीरपंप बाज्य निर्मान-विस्ती सामान्य विवक्षा से उच्चरित होते हैं, मत. वनना ना सम्पूर्ण प्रतिमेत धर्य नाव्य ना तात्स्य ही नहा जाएगा भीर जब तन मान्मित सुर्य ना विवक्षित प्रयं न भा जाए तब तक विद्यानि ही नहीं, क्योंकि जब वात्य विद्यान्त हो जाएगा तो किर वह मन्य प्रयं ना प्रत्यापन नवी नरेगा ? भीर यदि फिर भी नरता है भे दुनना स्पष्ट प्रयं है कि मुनी वह विद्यान्त नहीं हुणा है 1151 ॥ ₹=• **ट**शहपक

इस रसादि का काव्य के साथ व्याय-व्याजक भाव भी सम्भय नही है। तो बया फिर इनका आपस में भाव्य भावक सम्बन्ध होगा ?

हाँ, बस्तुत काव्य है भावक और रस है भाव्य । वे स्वय होते हुए मलौक्कि विभाव का ज्ञान रखनेवाले सहृदय से भावना के विषय बनाए जाते है । यदापि अन्यत्र अर्थात् काव्य से श्रतिरिक्त वेदादि वाड्मय की भन्य शालामी मे शब्द का प्रतिपाद्य के साथ भाव्य-भावक सम्बन्ध नहीं देला गया है ब्रत वहाँ स्वीकार करन में कूछ ध्यय्य प्रतीत हीगा तबापि भावना-व्यापार माननेवालो ने ऐसा वाच्य ही मे होने के कारण स्वीकार किया है। दूसरी बात यह है कि अन्यत्र बाध्द का रसादि के प्रति ग्रन्वय-व्यक्षिरेक वशात कारणता नहीं देगी गई है भीर यहाँ शतग सहृदय हृदय से बनुभूत है। इस पक्ष के बनुवूल एक उदित भी है-

नाटय-प्रयोक्तामो न भाव की सबाइमलिए दी है कि इनसे ग्रीर प्रभिनव से खपदा भाव दें ऋभिनय से इसका सम्बन्ध होने के कारण ये

रस को भावित वरते है।

प्रश्न उठता है कि पदो से स्थायी आदि भायों की प्रतिपत्ति कैसे होगी? पद उन्ही के प्रत्यायन हो सकते हैं जिन पदो भी शक्ति होती है। भावनावादियो या उत्तर यह है कि लोक म जिस प्रकार में भावों की बोधिका जो चेप्टाएँ होती हैं स्त्री पुरुष में, वैसा ही यदि वाव्य में भी उपनिवद्ध है तो रत्यादि भायों के निरयक्षीयक विष्टाक्री के प्रति-पादव धन्द ने मुनने से बन्द प्रतीति ब्टा रूप मिभवेय स्वताम्यन्य भाय वी प्रतीति वराएवा ही। प्रतीति 'अभिधेयाविनाभूत' होने के गारण लाशणियी वही जाएगी। भाव्यार्थ की भावुकता और भी प्रापे बताई जाएगी।

रसः स एव स्वाद्यत्यात्रसिकस्यैव वर्तनात् । मानुषार्थस्य भूत्रत्यात्काव्यस्याततपरत्वतः ॥३८॥

रत पद से काम्य में वॉलित विभाव चादि से पृष्ट स्वायीभाव की ही प्रतीति होती है क्योंकि ग्रास्थाच बही है। दूसरा सर्व है उसकी

चतुर्यं प्रशास २८१

रस का ब्रापुराय से कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि वह रसपाल में बर्तमान ही नहीं रहता और रसवान शाय्य प्रनुशाय के लिए लिखे भी नहीं

प्रयः प्रनीतिवींडेर्चारागद्वेषप्रसङ्गतः ।

लौकिनस्य स्वरमणीसंयुक्तस्येव दर्शनात् ॥३६॥

अनुकार्य से सम्बन्ध मानने पर धन्य आपत्ति यह है कि वह अपनी स्त्री से सयुक्त किसी शीरिक नायर का शुगार बादि का प्रतीति मात्र

होता, उसमे रसता नहीं रहेती। प्रथवा देखनेवाले के स्वमाध्यत बीटा,

ईर्फा, राग, हेव का भी प्रतम था सकता है 113811

जाते ॥३८॥

रसिवनिध्टता का धर्यात् यह रसिक में उनत स्यायी ही रहता है। उस

२५२ दशरूपक

में उसको देवने से लौकिक भूगार की भौति उस भूजारी सोकिक नायक के ममान जो भपनी स्त्री से समुबन है दर्शन से नेवल यही प्रतीत होता

नहीं होता है। सत्पुरयों को तो जिस प्रवार लौकिक शृद्धार का दर्शन सन्त्रास्पद है उसी प्रशार यह भी होता, धन्य दुष्टों को ईप्नी, पसूर्या, धनुगान, मपहरण इत्यादि वी भावनाएँ भी जागृत होती । [पर ऐसा नरी होता प्रतः बनुरायं मे पाथित शृङ्कार पादि रम नही होते।] इस प्रवार रसं व्याग्य नहीं हो सकता। बारण यह है कि व्याप बही बहा जा नगता है जिसनी नता अभिव्यवन से पूर्व ही स्पित हो, बदाहरमार्थ जैसे बदीप से (ध्याय) घट । व्यवन बदीप से घट नी मत्ता रा बोर्ड सम्बन्ध नही है, धनिष्यस्य धनिष्यत्रक से भपनी सता प्राप्ति नहीं करता केवल प्रशासित मात्र होता है। धौर यह बात परने ही रपष्ट कर दी गई है कि ब्रेशकों से रग विभाव धादि से प्रकाशित

है कि घमुक नाम का यह शृगारी है। इसके मितरिकत वहाँ रसास्वाद

न होगर भन दूबमान होते है।

घीरोदासाग्रवस्थानां रामादिः प्रतिपादकः । विभावयति रत्यादीन्स्वदन्ने रसिकस्य ते ॥४०॥

और किर वही सीता प्रमृति सामारण मायिना ने रूप में रस ने विमाय बन जाती हैं। भौर तब सीता भादि शब्द जनक नी पुत्री के इस धर्म का प्रतिवादन करनेवाले महीं रह जाते। इस धर्म के प्रतिवादन की जनकी (सीता श्राहि) की शर्मिक हारित हो जाती है। १४०॥

वं स्त्री मात्र वं बाचन रहुवर ध्रिनिष्ट उत्तादन से रहित हो जाने हैं। फिर प्रतन यह हो सनता है कि यदि उनती प्रतीति सामान्य रूप से ही उपयोगी होनी है तो उनना विदोप रूप से काव्य में वर्णन करने की क्या मानदयनता है ? शास यह हि यदि सीता को सीता रूप से जान लेने से कोई साम नहीं तो उन्ह के क्या का विषय बनाया ही बयो जाता है ?

ता एव च पश्तिकक्तविकेषा रसहेतवः ।

क्रीडता मृण्मयैयंद्वद्वालाना द्विरदादिभि ॥४१॥

इसर उत्तर यह है कि जिस प्रवार मिट्टी वे बने प्रसाय हाथी प्रादि से खेलते हुए बानगों को उत्साह प्रीर धानग्द मिलता है, उसी प्रकार असत्य प्रजुन धादि से धोताओं को घपना उत्साह भी धनुमून होने सगता है ॥४१॥

बहुत का भाव यह है कि जिस प्रकार सौरिक शूगार में न्यी धादि या उपयोग होना है उसी प्रकार यहाँ भी होना हा मा बान नहीं है। यस्तुत उक्त रोति से सौकिक रस में बाटण रसा की जिलसानता है। यस्तुत के

'नाटप में घाठ ही रम हीते हैं।'

स्वोत्नाह स्वदने तदृच्छ्रोतृशामजुनादिभि ।

काच्यार्थभावनास्वादी नर्नक्स्य न यार्यते ॥४२॥ यदि कान्यार्थं की भावता वसानु नर्नक को जी धास्याद हो जाए तो हम जसे मस्वीकार नहीं करते ॥४२॥ २६४ इशस्पक

यभिनय-काल मे जो नर्तक को रस का शास्त्राद होता है वह सीनिक रस की मांति नहीं होता है, बारण यह है कि वह प्रभिनय-नात में यभिनेत्री को अपनी स्त्री के रुप में नहीं सममता । काव्यार्थ की भावना से यशीमृत होकर यदि वह भी सामाजिकों के समान ही रस का अनुभव करें तो उसे हम नहीं रोकते ।

का॰य से क्सि प्रकार स्वानन्द की उद्भृति होती है स्रोर उसका स्वरूप क्या है, अब यह बताया जाएगा—

स्वावः काव्यार्थसभेदादात्मानन्दसमृद्धवः ।

बिकादाविस्तरसोभविक्षेपैः स चतुर्वियः ॥४३॥

जायमान काभ्यार्थ से अनुभूषमान आत्मानम्ब है बही रस पद वा वर्षे है। यह स्वाद, भ्रुगार, बीर, बीमस्स एव रोड मे ज़यस मन के विकास, विस्तार, विभोन और विश्वेष प्रवस्था वसातु चार प्रकार का होना है॥ ४३॥

शृङ्गारबीरबीभःसरीद्रेषु मनसः क्षमात् ।

हास्याद्भुतभयोत्कर्षकरत्यानां त एव हि ॥४४॥

श्रतस्तर्ज्ञस्यता तेपामत एथावधारसम् ।

क्रमञ्ज्ञ हास्य, घर्गुत, सप एवं करुण से भी सन की वही घरस्याएँ होती हैं। यही कारण है कि पूर्व के चारों ना (श्वापर-योर-योगस्स रोडे का) घरन्यर नुरुष्य (श्वापन स्थापनक स्थापनक स्थापन

का) स्नत्तर चतुष्टय (हास्य-सद्भुत-सम्बद्धन-कस्त्र का) स्ना जनक कहा गया है। और यहा रहस्य श्रष्टायेव (वेचल स्नाठ ही) मे स्रवपारल का भी है॥भेर॥

भाग्यार्थ विभाव चादि से सम्बन्धित स्वायों स्वरूप हैं। इस प्रवार वे माव्यार्थ से भावन ना चित्त चनुनार्य की चितावस्था पी समता प्राप्त नर सेता है, जहाँ राग देव का मूल मैं-तुम ना भाव विमातता हो जाता है, —दस खबस्चा ने चनन्तर जो प्रवत्तर स्वानन्द नी मनुपूर्ति रोती है वही है स्वार । मचित्र महस्वारस्पता सक्त रह्यों मे एकरण् है तथापि निवत विभाव धादि के नारण विद्ता को चार धवस्थाएँ होती हैं। जिल नो धनस्या ने ही लक्ष्य में रखनर हास्य सादि वा ग्रागार सादि के माय जन्य-जनक माज नहा गया है। नार्य-नारण नो दृष्टि में रमनर नहीं नहा गया है।

स्लोकार्य- "रामार से हास्य, रीत से करण, बीर से प्रवृत्त फ्रीर वीमस्य से भयानक की उत्पत्ति होती है।

इम उरासि का रहन्य उमी वित्तवृत्ति की प्रवस्था से मम्याध रमता है। ग्रुगार से हास्य उपनन्त नहीं होता प्रस्तुन प्रपने ही विभावादियों से होता है— 'ग्रुगार जुड़ निर्वातु' इत्यादि स्त्रों के ग्रुगार एवं हास्य भी एक ही प्रनार की वित्तवृत्ति की भवन्या का स्टुडीनरण होता है। भीर प्रवधाण्या भी इमीतिल उपपन्त हो जाता है— चित्तवृत्ति की चार प्रवस्था दुनुनी होकर प्राठ हो होती है, अन वरनुनून रखी की भी निषत सक्या – ही है। नेदालर के अभाव से स्वाँ रस नहीं हो सकता।

सभी रखें की जुतस्पता—सीक के ग्रांगार, वीर, हान्य प्रमृति के प्रभोदातमय होते (शका) से सुपत्यस्य होते में कियी बात की शका नहीं होती, पर दु खात्मक करण आदि से सुवारमकता का अनुसद होता किस सम्भव है ? कारण यह है कि दु गात्मक करण-आयों के शवण से दु ल का साविभाव एवं शक्यात आदि रसिकों को भी अनुभूत है। यदि से मुनारमक होते सो ऐसा क्यों होता ?

समापान—बात तो टीन ही है, परन्तु यह मुख बैचा ही सुव-दु सार्तन है जैना नि सम्भोगावस्था ने बुद्दमित में प्रहरण प्रादि बचने पर सिन्मों नी होता है। इसरी बात यह भी है नि सीनित्र बचने से बाम्य ना मरण मुछ विलक्षण होना है। यहां उत्तरोत्तर रिमिनों भी प्रवृत्ति वहां जानी होना नी दर्भनी और (पाठनों) नी मभी प्रवृत्ति ही (नाटन देगने भीर बाय-अवस्थ में) नहीं होनों। पनस्वन्य बच्चा राम या निषाल रामायुव प्रादि में रिजी जी प्रवृत्ति न होने के द्वाना उच्छेर ही हो जाना। यही प्रशृत्ता वी बात, सो बह सोज्युत वे प्राकर्पण से जौकिन विकलता के समोन विकलतावश यदि हो ही जाए तो उसना हमारे पक्ष से कोई विरोध नही है। ग्रत रसान्तर के समान करण रस को भी बानन्दात्मक ही मानना चाहिए।

शान्त रस के श्रभिनेय न होने के कारण यद्यपि नाट्य मे उसका श्रनुप्रवेश श्रसम्भव है संयापि थव्य काव्य मे उसका निवेश इसलिए नही ग्रस्वीकार किया जा सकता, क्योकि वहाँ तो शब्द का राज्य है। शब्द से जब ब्रसम्भाव्य बातें भी बौधी जा सकती है तो फिर शान्त का वर्णन क्यो नही हो सकता?

वहा जाता है--

शमप्रकर्षो निर्वाच्यो मुदितादेस्तदात्मता ॥४५॥ 'राम का प्रकर्ष (ज्ञान्त) श्रकथनीय है, मुस्तित प्रभृति बृत्तियों से

चसे प्राप्त किया जा सकता है ॥४५॥

यदि ग्रान्त रस का स्वरूप---

"अहीं सुख, दुख, चिन्ता, द्वेष, रागया इच्छाग्रादिका धर्माव

हो वही बान्त रस का स्वरूप है ऐसा मुनीन्द्रो का कहना है, पर सभी भावों में यह शम प्रधान है।" यही है तो उसकी प्राप्ति मोक्षावस्था हो में स्वरूप-प्राप्ति पर होती

है। स्वरूपत उसकी प्रनिवंचनीयता ना प्रतिपादन खुति भी 'निर्ति' 'नेति' वहवर अन्यापोह रूप से ही करती है। इस प्रवार के शान्त रस की धास्वाद सहदयो नो नही होता। फिर उसने घास्वाद के उपाय भूत

मुदिना ब्रादि वृक्तियों हैं श्रीर वे अनश विकास विस्तर, क्षीम, विक्षीभ रूप हैं अत इस उविन से ही शान्त रस को शास्त्राद का निरूपण होता है।

इस समय विभावादि से सम्बन्धित जो ग्रवान्तर काव्य व्यापार हैं

उनने प्रदर्शन के साथ-साथ प्रवरण का उपसहार किया जा रहा है-पदार्थेरिन्दुनिर्वेदरोमाञ्चादस्वरूपकै. ।

काव्याद्विभावसचायनुभावप्रस्यता गर्तै. ॥४६॥

भावितः स्वटते स्वाधी रसः स परिकीतितः ।

चतुर्यं प्रशास २६७

फाव्य व्यापार के हारा खूब ग्रन्छी तरह से वर्णन किया हुआ जो चन्द्रमा स्नादि उद्दोपन विभाव और प्रमदा ग्रादि रप आतम्बन विभाव, रोमाञ्च, स्रथुणत, भू और क्टाश विकेष आदि अनुनाव तया निवेद स्नादि सचारोमांव जो पदार्ज स्थानीय हैं इनसे प्रवान्तर व्यापार के द्वारा पोय को प्रान्त होनेवाला स्थायोमांव रस नाम से पुकारा जाता है। इसना हो पहले प्रकरण में किये गए वर्णन का तास्पर्य रहा है। ॥४६॥

प्रव इनके विशेष सक्षणों को बताया जा रहा है। प्राचार्य (मरत) ने स्थायोभावों, रत्यादिकों और शुकार फादि रकों का पुनक्-पृथक् सक्षण ने देकर केवल विभाव षादि के श्रीतपादन के डारा ही दे दिया है। प्रित में भी वैसा ही कर रहा हैं।

लक्षणैवय विभावेवयादभेराइसभादयोः ॥४७॥

श्रुगार द्यादि रसों और रत्यादि स्यायोभावों के सझरा एक ही हैं, द्यारः श्रुगार द्यादि रस द्योर रत्यादि नावों ने कोई द्यन्तर नहीं है ॥४७॥

रम्यदेशक्लाकालवेयभोगादिसेवनैः ।

प्रमोदातमा रति सैव यूनोरम्योन्यरक्तयोः ।

प्रहरयमाराग श्रुङ्गारो मघुराङ्गविचेष्टितं ॥ ४८॥ एक चित्त के दो ध्ववितयों (युवन ग्रीर युवतो) ये धानग्दस्वरप

एक चित्त के दो क्यावतया (युवन आर युवता) में प्रातम्बरवरम् रित ना मुन्दर स्थान (बाग-वर्गोचे, एनग्त स्थान ध्रावि) मुन्दर समाग्रें (विष्ठस्ता ध्रावि में नियुत्ता), मुन्दर समय (सन्ध्रा ध्रावि) धौर मुन्दर भीग विनामों तथा मपुर ध्रायिन चेष्टाम्बी (क्टास विषये व ध्रावि) के द्वारा परिणेय के प्रान्त होने को भूगार (स्त) कट्ते हैं ॥¥६॥

इन प्रशार का बर्णन मुक्त नाव्य ग्रुगार के धास्त्राद की योग्यता को पारण करता है, अन कवियों को अपने वर्णन में बातों का ध्यान एतना काहिए 1

देश (स्यान) के विभाव का बर्णन, जैसे "उत्तर रामचरित" में राम की यह उक्ति— २८६ दशरपक

"हे मुन्दरि, उस पर्वत में सहमण द्वारा की गई गुथूना से स्वस्य हम दोनों के उन दिनों की याद करती हो? धयथा वहाँ स्वादु जसवाती गोदावरी की याद करती हो? उथा गोदावरी के तट पर हम दोगें के रहों की याद करती हो?"

कला का विभाव जैसे—"धन्तितिहित हैं वचन जिनमें, ऐसे हायों द्वारा प्रभ्जो तरह से यथं की सूचना भिल्ल जाती है। पाद विश्वप से रस में तन्त्रयता थे साथ लय प्राप्त हो जाती है। मृदु अभिनय छही प्रभार के प्रभिनयों का उत्पत्ति स्थान है। और प्रत्येव साथ में राग्व प विषयों को ज्यन्त करते है।"

घषवा जैंछे— श्रीमृतवाहन कह रहे हैं—' इसनी बीणा के तित्रपा से दमों प्रकार के व्यजन धातुआं (बीणा वाल ने स्वर्के १० भेदी) का प्राकटण हो रहा है। दूत, प्रच्य और लिम्बत, ये तीनो प्रचार के सम भी विलक्षस स्वय्ट सुनाई पड़ रहे है। इसने गोपुच्छ आदि प्रमुख यितमों का

भी सुन्दर सम्पादन किया है, इसी प्रकार वास के विषय मे तीनो प्रकार के तत्त्वो का जो समृत है थे भी अच्छी तरह से दिखाए गए हैं।

काल के विभाध का बर्रान, जैसे 'कुमार सम्मव' मे— "प्रशोक का बृक्ष भी तत्काल मीचे से ऊपर तब फूल-पत्तो से सद

"प्रचाक का वृक्ष भी सत्काल भीचे से ऊपर तक फूल-पता से तथ यया भीर उसने भनभनाते विख्योगाली सुन्दरियों के चरण के प्रहार्ष भी बाट तक भी नहीं देखी।" यहाँ से आरम्भ कर—

"भारा प्रपनी प्यारी भोरी के काय एन ही फूल की कहोरी म मगरन्द पीने हका ! काला हरिण प्रपत्ती उस हरिणी को सीग से खुन-धाने लगा जो उसके स्पर्ध का सुख सेती हुई घाँख मूँदे बेटी थीं।"

वेष पा विनाव, जैसे वही पर—

"उस समय पार्वतीओं के धरीर पर लाग मणि मी लिज्जित करते वाले प्रदोक ने पत्तों थे, सोने शं चवन को घटारे बाले यणिनार है पूजा ने प्रीर मोतियों की माला के समान उजले खिन्युवर वे बाहाती पूजा ने प्राप्त्रपण सभे हुए से ।" उपभोग के विभाव का वर्षण जैसे—कोई अपनी सन्ती से कहती है कि ऐ मान करनेवाली । ऐसा लगता है कि तेरे प्रणयी ने किसी प्रकार से तेरे मान को तीट दाला है और इनीसे सुन्हारत कुछ मन भी बड़ा हुमा-गा लग रहा है। तेरा मान भग हुमा है रनमें ये की जे प्रमाण रूप में प्रमुत हैं— रे तेरी औप वा वाजल साफ हो गया है। २ प्रधर भाग में सभी हुई पान की ललाई चाट दाली गई है। ३ वपोल-पलक पर केरालाश विवारे पढ़े हैं और ८ सुन्हारे सारीर की की सीन न हो गई है।

मान-वस्वरूप रति का उदाहरण, जैसे 'मालती माघव' मे —
"नव इन्द्र बनादि विभाव सवै जग वे दिरही मन जीनत हाल ।
हिंच भीरतु के लहरावत हैं उत्तरे इत वेही समावत ज्वाल ।।
क्रुंजो यह सोचन विद्राह्म वाक अने इन नैनित हुए रहा है।
क्रिकेट के जन्म में सोही महोज्यव (महो सब),

एक्टि बार में हीई निहाल।।"

पुत्रित का विनाय जैसे, 'मासिवकामिनिम' मे—
राजा मनन्ही-मन सोच रहा है— 'बाह । यह तो खिर में पैर तक'
एकरम मुन्दर है । क्योंक इसकी बडी-वडी लॉमें, 'चमक्ठी हुमा सार्द् वे चन्द्रमा-नेमा मुन, क्यों पर थोजों जूकी हुई मुजाएँ, उनरते हुए कटे स्त्रमी के जक्की हुई छातीं, पूँसे हुए-से पावर्व-प्रदेश, मुट्टी-मर की कमर, मोटी-मोटी जॉमें भीर थोडी-मोधी मूनी हुई दोनो पेरों की जैगितयाँ सम ऐसी जान पहती हैं मानो इसका सरीर इसके बाटपपुर (गणदासत्री) के कहने पर ही क्या महा हो।'

पुरत घोर सुपती, होनों के विकास जीते, 'भारती मात्रक' (१११०) में— नगरी की गलीन में बारहि बार फर्म यह शायब घाटतें जाम। नित्र केंची धटारी में बीठ के बारहि बार विजोत्ति सामग्री बाम।। यह बाम-मो क्य विद्वारि विहारि घड़ी विषयी वित्यो घमिराम। ससरें, पुरतें, हुनसें, मुनसें घर की सुत्रोमन धम मधाम।।

दशस्यक

२६०

वोनों का पारस्परिक धनुराय जैसे, नहीं (मा० मा० मे १।३२)—
यह बार मरोरि के श्रीना निहारति कृषित कनमुसी वह वाल।
धने कारे वडे हम कोर ते नेधि गई कोड तीखी कटाक्ल करात।
नहिं जानि परै कि सुधा सो सनी किथों वोरी मई है हलाहत कात।
भी हिये में धेंसी सो बसी कसिक य कटाक्ल की तानुकी जो ससाल।।

ष्रयों को प्रजुर वेध्याएँ, जैके, वही (सा० मा० १।३०)— कबहूँ सकुचे कबहूँ विकसं, कबहूँ ठठ मीह, तरगित गात। कबहूँ चिकवाइ सनेह सो मुद्रित, कावन सौ वबहूँ चित जात। बहि बद्रमुखी की चितौति कवाँ सकुचै, मिमक्तै, टलफ रसमात। मनभावनी ऐमी विलोकति को मैं निसानी वन्यौ वितही बहु भौति।! ये सच्यकाः स्थायिन एव चाष्ट्री निशास्त्रयो ये व्यभिचारियाच्य। एकोनयञ्चाशदनी हि भावा युक्त्या निवद्धाः परिपोधयनित।

स्रानस्यमोग्नय भरणं जुगुस्ता तस्याध्याहैतविरुद्धमिष्टम् ॥४६॥
पहने जिन आठ सात्विन भावों द्वाठ स्वायोभायो और तैरीत
व्यभिवारो भावों को बता धाए हैं वे सभी श्वाररत को पृष्टि के तिए
उपयोग में धाते हैं । पर हां, एक बात स्वयंथ है कि वे पृष्टित के साम

उपनिवद्ध किए जाएँ तो हो, नहीं तो रस-विरोध होने वे कारण झास्वा इन मे ब्यवधान ही पडेगा।

म्रातस्य, उथता भरशा भीर जुगुप्पा इनको बाधय-भेद से ध्रदण एक ही धासबन दिमाद के सम्बन्ध से प्रमुदत नहीं करना चाहिए ग्रायमा

रस की धनना में बाबा पडेगी ॥४६॥

त्रयोगो विष्रयोगस्य संभोगस्येति स त्रिधा ।

श्रुपाररस के नेद-श्रुपाररस तीर प्रकार का होता है-र घयोगः र विप्रयोग स्त्रीर ३ संयोगः।।४०॥

षयोग गौर वित्रयोगये वित्रलम्भये भेद हैं। वित्रलम्भ ग्रन्द

सामान्यवाचव है।

चतुर्यं प्रकाश २६१

[प्राम]—विषयोग का जो साब्दिक वर्ष है वही विषयम का भी है फिर विषयोग के स्थान पर विषयम ही क्यों नहीं रखते ?

[उत्तर] — नित्रयोग में स्थान पर तिप्रसम्म में रखने से तिप्रसम्म में स्थान पर तिप्रसम्म में स्थान सर विप्रयोग अर्थ साता परेगा। ऐसी दगा में तराणा के बिता बाम नहीं चल सकता, वयीकि सामान्यवाचक दाव्यों के विधीय सर्वामियायी गरदों से लक्षणा हुमा करती है। पर यहाँ लक्षणा मरता समीव्य नहीं है। यदि स्विध्या से ही सर्थान् सोधे-सादे ही सर्थ निक्स साए से लक्षणा प्रयात पुला-फिराकर टेटै-मेंड रास्त्रे से जाने की बचा सामान्य स्थान के स्थान के स्थान मर दिश्रमाम की मही रखा। सब विद्यमम्म दान बही स्थान कर विद्यमम्म को मही रखा। सब विद्यमम्म दान के बारे से बताते हैं कि सक्ष वेयन सीन ही जगह मुस्त भ्रम भ्रम विद्यमम्म को मही रखा। है कि स्थान के स्ववहत होता है। इन तीनो स्थानों के श्रमित्स सर्वत्र लक्षणा करनी पड़ती है। की स्थान की स्थान स्थान सर्वाम स्थान से स्थान स्था

१ ग्राने कामकें त देकर नायक का बाबा, २ नायक के द्वारा ग्राप्त माने की अवधि का स्रोतित्रमण कर जानाभीर ३ नायक का ग्राप्त नायिका में प्राप्तकन ही जाना।

मेवल इन तीन स्वलो पर विश्वलम्ब शब्द अपने मुख्य अर्थ अर्थात् अपना देने में अर्थ में व्यवहत होता है।

तप्रायोगोऽनुरागोऽपि मध्योरेकवित्तयोः ॥५०॥

पारतन्त्र्येश देवाहा विप्रवर्षादसंगमः ।

मयोगर्मामा — जहाँ वर नई सवस्थायाथ नायक नायक नायक सार् एक्विस होते हुए भी वरतन्त्रतावदा संयवा नायवदा या दूर रहने धारि के कारण संयोग न हो सने इसको प्रयोग कहते हैं ॥४०॥

एक का दूसरे के द्वारा स्थाकार कर सेने का नाम मोग है भीर इसके प्रभाव का नाम स्थाग है। [इसम नायक घोर नायिका का स्थापन में स्थान हुए। हो नहीं रहना।]

परसम्प्रता के कार्या होनेवाले क्योग का उदाहरूक सामार्गका का करसराज से घोर मासती का माधव से संगोग न हो सकता है। २६२ दाहपक

देवात् प्रयत् भाष्य प्रादि के कारण होनेवाले ग्रयोग का उदाहरण पार्वतीजी का अववान् शकर से (विवाह के पूर्व तपस्याकाल तक) समागम का न हो सकना है।

दशावस्यः स तत्रादाविनलायोऽय चिन्तनम् ॥५१॥ स्मृतिर्गुगम्थोद्वेगप्रलायोन्मदसञ्चराः।

जडता मररण चेति दुरवस्यं ययोत्तरम् ॥१२॥ प्रयोग को दस ब्रवस्याएँ होती हैं। यहले दोनों के हृदय मे प्रशिसाय,

किर वितन, उसके बाद स्पृति किर गुणकथन, ततुषरान्त उद्वेग किर प्रलाप, चन्माद, सज्यर (ताप का बढ जाना) जडता और मरुए ये बनदा पैदा होते हैं। महले वी अपेका दूसरा, दूसरे की अपेका तीसरा, इस प्रवार से कमना उत्तरोत्तर होनेवाली अवस्थाएँ पहले की अपेका उत्तरोत्तर प्रिषक इ चदायिको होती हैं ॥४१-४२॥

म्रभितायः स्यृहा तत्र षास्ते सर्वाङ्गसुन्दरे । हष्टे श्रुते वा तर्गापि विस्मयानस्वसाध्वसाः ॥५३॥ साक्षादप्रतिकृतिस्वप्तस्वयामायासु वर्षानम् ।

साक्षात्प्रतिकृतिस्वन्नस्त्रायामायामु वर्षानम् । भृतिर्व्याजात्सतीगीतमागधादिगुर्गस्तुतेः ॥५४॥

प्रभिताय—सर्वाङ्ग सुखर प्रियतम के देखने प्रयदा उसके गुर्ही के भवाए के द्वारा उसके गुर्ही के भवाए के द्वारा उसके ग्राप्त करते की इच्छा को धामिताय कहते हैं। इसके उत्पन्न होने पर नायिका में विस्मय, भानन्त्र भीर भीति, ये तीन अनुमाव होते हैं। नायिका को निन्नालिखत प्रकारों से से किसी भी प्रकार से नायक को देख तेने से अभिलाधा उत्पन्त होती हैं। नायक नायिका के

स नायर की देस तेन से बोभलाश उत्पन्त होतो है। नायक साथर र द्वारा निम्निसित प्रकार से देसा जाता है—ह. साक्षाक्तार के द्वारा, र- चित्र देसकर, दे. स्वय्न से, ४ छाया और ५ साया के द्वारा । इसी प्रवार नायर के गुरा का श्ववस्थ भी भागिका की निम्निसित प्रकार से होता है—ह. सत्ती के द्वारा, २ वदीवन ग्रादि के द्वारा भायक विषयक दलायनीय गुल-कर्गन से। [इससे भी गाविका के हृदय में नायक के **75**8 दशस्यक

धगवा जैसे---

"पार्वतीजी इतनी लजाती थी कि शकरजी के कुछ पूछने पर भी बोलती न थी ग्रीर वे यदि इनका गाँचल पकड तेते थे तो भागने नी कोशिश करती थी। इसी प्रकार शयनकाल में भी ये दूसरी ही तरफ मुंह करके सोती थी। पर पार्वतीजी द्वारा इस प्रकार का ध्यवहार भी

शकरओं के लिए कम आनन्दप्रद नहीं होता था।" सानुभावविभावास्तु चिन्ताचाः पूर्ववर्शिताः ।

ग्रनुभाद श्रीर विभावों के साथ चिन्ता प्राविको पहले वताया जा-पुका है। [प्रतः वहां उनको पुनः संकित करने की ग्रावश्यवता नहीं।]

गुण-कीतन के बारे ने लिखने की कोई भावश्यकता प्रतीत नहीं हैं। रही है क्योंकि यह तो स्पष्ट ही है।

दशावस्थत्वमाचार्यः प्रायो धृत्या निर्वाशतम् ॥४४॥ महाकविप्रबन्धेषु दृश्यते तथमन्तता ।

धयोग मे प्राय: इस अवस्थाएँ पहली हैं, धतएव आचार्यों ने दस हैं।

मेर गिनाए हैं। पर महाकवियों की रचनाओं की छानबीन से इसके मनग्त मेर बीख थड़ते हैं ॥४४॥

हृद्दे श्रृतेऽभिसायाच्च कि नीत्सुवयं प्रजायते ॥५६॥

घप्राप्ती कि न निर्वेदो ग्लानि: कि नातिचिन्तनात् । उदाहरकार्य संक्षेप के उनदा दिग्दर्शन किया जाता है। देखिए--

मायक को देख खबवा उसके गुलों के धवरू-मात्र से यदि नायिका है भन्दर सनिसापा बागुत होती है तो त्या उसके धन्दर प्रियतम समागम के लिए उत्पुकता नहीं हो सकती ? झोर उत्पुक्ता घीर धरिमताया 🕏

होते हुए भी यदि वह उसे नहीं मिला हो क्या उसके ग्रन्टर निवेद पैदी महीं हो सपता है ? इसी प्रकार यदि यह अस्यधिक चिन्ता वरे तो स्वा

उसके भीतर ब्लानि का प्राहुर्योग नहीं हो सकता है ? ॥१६॥ इसी प्रशास की, दिव-दिवकर समायम करना इत्यादि बाली की जानकारी कामसूत्र से की जा सकती है।

वित्रयोगस्तु विश्लेषो रुढविलम्भयोद्दिषा ॥१७॥ मानप्रवासभेदेन मानीऽपि प्रस्पेपर्पयोः ।

विश्रमो -- एक-दूसरे के प्रेम में आवद (आवस्त) ध्रतएव विश्वसित ग्रीर संयुक्त रहनेवाले नायक-नायकाओं के वियुक्त हो जाने का नाम विश्रमोग है। यह रो प्रकार का होता है---मान-अनित भीर प्रवास-अनित। मान भी दो प्रकार का होता है। एक प्रख्यमान, दूसरा ईट्यांमान ॥१९॥

तन प्रख्यमानः स्वात्कोपावसितयोर्ह्योः ॥५८॥

प्रेम से बजीमूत होने वा नाम प्रस्तप है। इसके अंग होने से को इन्तह होना है उसे प्रशायकान वहते हैं। यह नायक-नाविका दोनों में शो सपता है।।४८।।

नायक में होनेवाले प्रशासमान का उदाहरण, जैसे 'उत्तररामवरित'

मे—हमी विवागृह में म्राप सीता के मायमन मार्थ में हिट्ट लगाए हुए
ये फ्रीर सीता हुखी से कौतुक कर गोदावरी के तट में दहन काम तक रकी गही। इतके परचान् वहीं से बौटकर घावी हुई सीवा ने प्रापकी विनित्त-चित्त की सरह देवकर कातरता से कमस के मुकृत की सरह मुनदर प्रणामाञ्ज्ञाति को बीध निया।

नायिकागत प्रसम्बनान का उबाहरण जैसे, याश्यतिराजदेव शा यह पद्य-

"प्रणयकुषित जम्बजननी पार्वती की देश धारवर्षचित हो थेग ने साप विमुचन गुरु मगवान सनर भय से तत्थाण उनके जरको पर धार-नत हो गए। अगवान सनर ने धवनत होने पर यगानी नो देख भौर प्रदूषिन हो पार्वतीजी ने उन्हें जरकों से उनरा दिया। इस प्रकार दुनराए जाने धादि के कारण जिस्पता नो प्राप्त सगवान शवर की दुवनीय दना धाप कोवों की रक्षा नरे।"

दोनों (नायक धीर नायिका) में रहनेवाले प्रमयमान का उदाहरण,

२६६ इज्ञरूपक

जैसे---

प्रणय-चलह के कारण मूठमूठ का बहाना करके, मानकर "नायक भौर नायिका दोनी एक साथ सीए हुए हैं। दोनो प्रणय-कनह से कुषित हो सीए तो सबस्य हैं पर उनके मन मे एक-दूसरे के प्रति इस प्रस्त पर सकत्य-विकल्प चल रहा है कि यह सबसुच सो तो नही गया ? भौर वे दोनो प्रपते दवास नो रोब-रोककर एक-दूसरे के सोने नी परीक्षा कर

रहे हैं। इस स्विति को देख उनकी सखियाँ भाषस में बातचीत कर रही

हैं कि देनो इस होड में नीन विजयी होता है।" स्त्रीणामीट्यांकृतो मानः कोपोऽन्यासिद्धिनि प्रिये।

खोगामोध्यक्तिते मानः कोपोऽन्यासिङ्गिनि प्रिये । श्रुते वाञ्चिमते हय्दे श्रुतिरसत्र सखीमुखात् ॥५६॥ उत्स्वरमाधितभोगांकगोऽन्हखलनकस्थितः ।

त्रिधानुमानिको हृष्टः साक्षादिन्द्रप्रयोचरः ॥६०॥ गायक विभी कारी हुनी है प्रनरकत है हम बात को सनने, देखें

नायक दिनी दूसरी हती में घनुरक्त है इस बात को सुनने, देखने सपदा प्रमुपान के हारा नायिका के भीतर प्रकुषित होने से जो रियाँ पैदा होती है उसे ईर्म्यामान कहते हैं।

गुनना सनियों के द्वारा ही हुधा करता है क्योंकि नाविका का उन (सितियों) पर विश्वास जना क्ष्ता है। धनुभान से होनेवासा ईध्यांमान भी तीन प्रकार का होता है—है. स्वप्न से कहे गए वसनों के द्वारा । २. नायक के सरोह में बाव माधिकाहत जोग-चिहों को देशकर सवा १. धनजाने वातकोत के प्रसम में धन्य हत्री का माय गुरा से विकस मारे से 128-4-81

यांच में प्रत्यक्ष कर लेने ही को देशना कहते हैं। सारित्यों के क्षूने से भावक वर सारेह कर ईट्यांबारवासी मारिका का प्रसहरण हमारे (पनिक के) ही इस पछ में देशिए---

मायर नाविता को असर वसने को घेटरा करने हुए जहना है कि 'हे सुरदर औहोबाको ध्यारी ! तेरा हृदय तो मनतन के समान कोमन स्वन्त में क्षत्र्य नायिका का नाम मुख से वा जाने के कारण प्रमु-मानत ईर्प्यामानवाली नाथिका का ख्वाहरण-

जैने—''पाघ से मानर संखियों में कहा कि कृष्णवन्न जिस समय जनकी हा नर रहे थे, उम समय उन्होंन नामदेव ने सरा से प्रेरित हो, किसी नामिक्त का मानिक किया। इन वार्ती की मुनकर राजा प्रकृषित हो गई। इसके बाद जब कृष्णवन्न मर साए तो किया प्रकृष्ण राजा प्रकृषित हो गई। इसके बाद जब कृष्णवन्न मर साए तो किया प्रकृष राजा प्रकृषित हो गई। इसके बाद जब कृष्णवन्न मर साए तो किया प्रकृष राजा प्रकृष्ण के कृष के वाद आप क्षेत्र कृष्ण के कृष्ण कर में ना का प्रकृष्ण के कृष्ण कर वे वीद आ गई भीर की में में हो वे दिन ने समान राधा को मनाने लगे। राधा को इप सितिसके में उसी सखी का नाम 'कृष्णवन्न के मुत्त से सुनकर कृष्णों हो आई, सो उन्होंने कियो प्रकृष कृष्णवन्न की गति से वशी हुई अपनी भुनाएँ सिथित कर औ। विव वहता है कि राधा की व सिथित मुनाएँ सिथित कर औ। विव वहता है कि राधा की व सिथित मुनाएँ सामिकी करमान प्रदान करें। कृष्णवन्न ते स्वष्ण में यो सन्द कह वे ये ये—हे राधा, सुर्हे विसों ने कृष्णकृष्ण साकर यह बतला दिया कि मैंने जलवीडा करते सुम्म जल में हुवे हुए कामदेन ने और से सत्य प्रति सिसी मां सानयन किया है। नुम व्यर्थ म ऐसी वातो पर विद्वास कर दिवत हो रही हो।"

भोग के बिल्लों को देखकर शतुमान के द्वारा ईर्प्यावाद करनेवाली नायिका का उदाहरण---

जैसे--"मन्य स्त्री हारा किए हुए ताजे नखझत को तो तुमने कपडे

२६= इतहरह

से हैंन निया है भीर उसने हारा निए गए दन्तशत नो भी हायों है किं निया है, पर यह तो बतायों नि परस्त्री के समीग नो व्यक्त परदेवना को मुन्दर मुवास तुम्हारे इदें-गिर्द भीन रहा है, यता उसनो केंसे थेरे सकोग ?"

गोत्रस्थलन से ईव्यामानवाली नायिका का उदाहरण-

जैंसे—"प्रनजान में बातचीत के प्रसम में अपने नायक के मुख है किसी नायिका के नाम नो सुननर प्रदुष्तित हुई नायिका हो सदी नायक के मुख है किसी नायिका के नाम नो सुननर प्रदुष्तित हुई नायिका हो सदी नायक हो फटकार रही है—" थरे हुएट ! हुटिलता से अन्यास्त मेरी मोली माली प्रिय सब्ती से तूने परिहास म विभी भाग्य नायिका का गुर-वर्ष रा दिया, फिर नया था, वह मोली माली तरे नयम हो स्त्य मातकर रो रही है।" नायक के अपराध आदि को देख ईप्यांमान करतेवार्व नायिका का नायकार की

नायिका का उदाहरण, जैसे मुजराज का 'प्रथम कुपिता।' (इससे पूर्व ही नायिकागत प्रथमनान का उदाहरण देते समग्र प्र पद्म का सम्में सा चुका है, दे० प्र० २६४)

ययोत्तरं गुरः यड्भिरयायैस्तग्रुपाचरेत् । साम्ना नेदेन दानेन नत्युपेक्षारसन्तरः ॥६१॥

तप प्रियवचः साम भैदस्तरसद्युपार्जनम् । दानं व्याजेन भूयादेः पादयोः पतनं नतिः ॥६२॥

सामादौ तु परिस्तीरो स्यादुपेक्षावबीरराम् । रभसनासहषदिः कोपश्रं हो रसान्तरम् ॥६३॥ कोपचेष्टादव नारीरा। प्रापेप प्रतिपादिताः ।

विषय नाराया प्राचय प्रतियादिताः । उत्तर बताए हुए तीनो बारणो मे धर्यात् (१) सुनवर, (२) धर्यः मानवर, धोर (३) देखवर, इनसे होनेवाले ईर्व्यामान उत्तरोत्तर प्रधिक

नरेशनर होते हैं। इननो उपाय से शान्त नरता पाहिए। शान्त करने में छ उपाय हैं—१ साम, २ भेद, ३ दान, ४ नित, ४ उपेसा मीर ६ रसायदर

- १. सान-प्रियवधन बी रने का नाम साम है।
- नेद —नाविका की सिख्यों की अपनी और मिला तेने का नाम भेद है।
- ३. दात--प्राप्नुषण, साडी आदि देवर प्रसन्त वरने की कीशिश करने को दान कहन हैं।

४. नित-पाबों में पड़ने ना नाम नित है।

. ४. वर्षसा-साम बादि उपार्थों के प्रिकत हो जाने पर गाविका की वर्षसा करने को वर्षसा कहते हैं।

६ रसान्तर—डराना, घपराना, हवें आदि के द्वारा भी कोर-भी रिया जा सकता है। यह अन्तिम उपाय है जिसे रसान्तर कहते है। क्षिपों की भोषकेट्या का वर्शन पहले किया जा चुका है क्षत जनके बारे में रिय सताने की मार्थस्यता नहीं है॥६१-६३॥

प्रिय वचन के द्वारा प्रतन्त करने के प्रयन्त को साथ करते हैं, जैसे, भेरा ही पदा—कोई नायक मान की हुई बनसे नायिका से कहता है— "तुम्हारा मुक्तवन्द्र मितक्षी ज्योत्स्ता से सारे विस्त को घवनित कर नहा है। देगी सोनें बागों तरफ साना धमृत बरमा रही हैं, तेरा सरीर प्रदोक दिशा से मासुर्गमुन सावध्य को विकेट रहा है, पर पता नहीं तेरे हथेय में क्रोरना न करों में स्थान कर विया है?"

ग्रयवा जैसे—कोई नायक ग्रपनी प्रेयसी से वह रहा है—हे प्रिये, अग्रा ने सेरे नेथों को नीसकमल से, मुल को साल कमल से, सेरे दौती को हुन्द के देवेत पुणों से, प्रथमों को नए-नए लात पहलतों से, तथा प्रप्राचिष्ट ग्रमों को अध्यक्त के सुप्यों में बनाया है, पर पता नहीं तेरे चित्र की एप्यर से क्यां बनाया ?

मायिका की सक्रियों को प्रपती और बिता लेनेवाले नेट नामक उपाय का उदाहरण, वैसे मेरा (धनिक का) ही पश्च--

"नायक अपनी प्रेयसी से कहता है कि भाज के नुम्हारे कोप को तो में प्रतीम और भग्ने ही समभ बैठा था, क्यों कि इसके ट्र करने के

दशरूपक

तिए सिलियो द्वारा नी गई अधुर नाणी ना प्रयास भी व्ययं हो गया या। पर मुक्के प्रथमी इस सफलता पर प्राइनमं हो रहा है कि तूने देदि, मेरे द्वारा याज्ञा-भग किए जाने पर भी ध्रपने चरणो पर नत होते देस, हैं सकर हायों से मुक्के उठा लिया। साथ ही तू खबने त्रोध को छोडने में भी प्रयत्नशील दील रही है।"

प्राप्त्रपण मादि देकर प्रतन्त किए जानेवाने दान मामक जनाय का उदाहरण, जैसे 'माध' मे—कोई नायिका प्रपने नायक से कहती है— "बार-बार अमरो से उपहांशत इस मजरी को मुक्ते काहे को दे रहे हो! रे दुस्ट, तूने तो माज रात को उसके पास जाकर मुक्ते बहुत वही मजरी प्रदान कर ही दी है।"

पावों मे पड़ने को नित कहते हैं जैसे — "नायिका के चरणो पर गिरे हुए नायक के कैसपास उसके नुपुरों में ऐसे तब गए हैं मानो ने जनसे कह रहे हैं कि सम्मान प्रदानार्थ उन्मुक्त हुदय तेरे पास प्राया हुया है।"

उपेक्षा नामक जवाय का उदाहरए, जैसे—"नायक मनाकर नाराज हो चना गया। उसने जाने के बाद नायिका अपने किये हुए पर परचा गार कर रही है। सबी से बहती है—अब उसके पास (मनाने के लिए) जाने से बया लाभ ? पर हे सिल, वहाँ न जाना भी ठीक नहीं है क्योंकि समर्पवान से कठोरता का बरताव भी ठीक नहीं होता, दो पुन उनके पास जावर अनुसन्वित्वय परने जिस प्रकार से हो लगे उस अपनर के पास जावर अनुसन्वित्वय परने जिस प्रकार से हो लगे उस अपनर के लाभ आहे। दे र रककर किर कहती है— मच्छा जाने दो, उसकी खुलाने की आवर्यन ता नहीं है। भी जिसमें भी सावर्यनता नहीं है। भीर जिसने भेरे साव ऐसा अपनय नाय विषय है उसकी आवंता करना उचित नहीं है।"

रसान्तर नामक जयाय का जदाहरण,

[श्रृहारान्तर्गत अयन्तर्भ के उदाहरण मे पहले दिया जा पुरा है।]

बार्यतः संभ्रमाच्छापात् श्रवासो भिन्नदेशता ॥६४॥

## द्वयोस्तनाथुनिःश्वासकाश्यंलम्बालकादिता ।

स च भावी भवनभूतस्त्रिचाऽऽद्योबुद्धिपूर्वकः ॥६४॥

नायक घौर नायका का सलग-प्रलग देशों में रहते का नाम प्रवास है। वह तीन कारलों से हो सकता है— है. कार्यवसात, २. सभ्रम से, धौर है. शाप से।

प्रवास को दता में मायक चौर मायिका को निम्मलिखित दताएँ होती हैं—एक का दूसरे को याद कर-कर रोना-योना, नि.स्वास, हताना और केंग्रों का यह जाना झारि।

प्रवास सीन प्रकार का होता है— १. मिबच्यत्, अर्थात् आगे आने बाला. २. वर्तमान और ३. अतः।

१ इसमे का पहला प्रयांत् कार्ययसात् होनेवाला प्रवास सनुप्र-यात्रा, सेवा ग्रावि कार्यों के लिए होता है। यह तीन प्रकार का होता

है—१ मविष्यत्, वर्तमान् भीर मृत ॥६४-६४॥

भविष्यत् प्रवास जैमे—प्रियतमा प्रिय-विरह हे विषय मे सशक्ति सजाती हुई पडोसियों के घर पूछती फिरती है कि—"जिसका पति परदेश जानेवाला होना है उसकी स्टिग्वी कैसे जीवी हैं 7"

वर्तमान प्रवास का उदाहरल, जैसे 'अमरदातक' मे-

कोई पुरुष सैन डो देखी, धनेन निर्यो, धर्वता धीर जगको से घन्तरित किसी दूर प्रदेश में स्थित अपनी बात्ता से निमुत्त है। नह यदापि इस बात को जानता है कि कितने ही प्रयत्नों के बावजूद भी यहाँ से में अपनी प्रिया को देख नहीं धनता फिर भी अपनी प्रिया के स्परण में इतना विभोर हो उठता है कि यपने पन्ने के बल खबा होकर, धौतों में धौतू भरेकर उत्ती दिशा में, जिथर उत्तरी प्रेयसी ना स्थान है, युष्ट धोषता हुशा बहुत देर से देख रहा है।"

गत प्रवास अर्थोत् मूतकालीन प्रवास का उदाहरण, जैसे मिपटूत मे---'हे मित्र, जब तुम मेरी प्रिया के पास पहुँच जाग्रोमे तो देखोगे कि

बहु अपने रारीर पर मलिन बस्तों को पारण किये हुए अपनी गोद में

302 वीणा को लेकर मेरे नामों से सम्बन्धित गाने योग्य बनाए हुए पदो को गान को चेय्टा करती होगी, पर इतने ही से मेरी स्मृति उद्युद्ध हो जाने

<u>बर्शस्यक</u>

के कारण नेत्रों के आंसुओं से भीगी हुई ग्रपनी बीणा को किसी प्रकार पोंछ लेने पर भी अपने सधे हुए स्वरों के उतार-चढाव को बार-वार भूल रही होगी।"

द्वितीयः सहसोत्पन्नो दिव्यमानुषविष्तवात् ।

द्वितीय धर्षात् सभ्रम (धनराहट) से होनेवाला प्रवास दिव्य ध्रयदी मनुष्य प्रादि के द्वाद्य किए गए विश्वव से सहसा उत्पन्न होता है।

दिव्य के द्वारा होनेवाले विष्लव के भीतर उत्पात, निर्धात, बात मार्दि का प्रकोप कारण होता है। जिरे से ग्रांबी ग्राना, धनशोर वृष्टि के बीच बादल भी गडगडाहट, बिजली की चकाचौंध, हाथी ग्रथदा जगली

द्याय किसी पमुद्रारा उत्पात ग्रादि बाते दिव्य के द्वारा होनेवासे उत्पाद मे पाई जाती हैं। भीर मनुष्य ने द्वारा होनेवाल सभ्रम के भीतर सनु सादि ने द्वारा

नगर ना पिर जाना भादि बातें पाई जाती हैं। सभम से होनेवाला प्रवास बाहे दिव्य वारणो से हो ग्रदया प्रदिम्य

भारणों से, पर बुद्धिपूर्वत होने दे बारण यह एवं ही प्रकार या होता है। दिव्य के द्वारा होनेवाला सधम प्रवास का उदाहरण, जैसे 'वित्रमी' यंशी नाटव में गण्यवीं भादि के द्वारा राजा का उवंशी से वियुक्त हाना मदिथ्य (मानुपत्रम्य) उत्पात से हीनेवाले सभम प्रवास ना

उदाहरण है-भागती माधव' प्रवारण में वपासनुष्टला द्वारा मालसी के धर्महरण

हो जा। से दोनों या प्रवासित होना ।

स्यएपा-यत्वः रह्णाच्छापजः सन्निधावपि ॥६६॥

द्माप प्रवास---द्मापवस श्रम्म क्षारीर धारए कर क्षेत्रे पर महि नाम्बर (बेमी) बानाधिका (बेंबिका) यास में भी हीं किर भी यह प्रवास ही P HEEH

जैते—'कादम्बरी' में बैराम्पायन ना । भृते हवेकज यजान्यः असपेन्छोक एव मः । न्याश्रमत्वानन स्पृष्ट्वारः प्रत्यापन्ने तु नेतरः ॥६७॥

नावक और नाविका थे यदि कोई एक पर पदा और उसके वियोध में दूतरा होता हो, ऐसी हानत से वह मोक है अर्थान् वहाँ दर क्रकारस है। शासवक्हीन होने के कारण वह म्हमार नहीं है। और पिंड उसके जीने की आजा अर्थात् सयोग की प्राप्ता देवयोग से उदक्क हो जाए तब तो वह करणरस कदापि नहीं हो सकता बल्दि यह विप्रतम म्हमार हो आरामा 16 511

करुगरस का उदाहरण 'रमुदया' में इन्ट्रमती के सर जाने पर भहाराज की कार्याणक स्वयम्या का हीना है। संयोग की साम्रा उत्तरन हो जाने से करूण का विश्लम्य ग्रागार वहें जाने या हो जाने का उदा-हरण है। 'कादम्बरी' में पहले करूण फिर स्नावाबाणी द्वारा 'यह नी लाएगा' इनके यवण में प्रवास क्ष्मार हो जाता है।

ग्रद नापिका के प्रति नियम बतान हैं--

प्रसम्प्रायोगयोरत्का प्रवाते प्रोवितप्रिया ।

क्तहास्तरिटर्याया विप्रत्याया च खिण्डता शहना। प्रकृष के रहते अयोग हो तो ऐसी नाविका को खरना या जर्माच्य

भहेंग के रहत क्यान हो तो दूस नावश व चंदर वा वद वहां जत भहेंते हैं। फ्रिय से वियुक्त रहने पर प्रयांत प्रियतम के प्रवासकाल में उसे भोषितिसमा करते हैं। नायक वे प्रति ईप्या रखने से वर कलहत्तरिता, विमतन्या और खण्डिता वहीं जाती है।।६८।।

श्रमुकूला निवेवेते यत्रान्योन्य विलासिनी ।

दर्शनस्पर्धनादीनि स संभोगो मुदान्तितः ॥६८॥ सम्भोग मृतार—कतः श्रवस्या विदेश का नाम सम्भोग है जिसमें युवक और मुक्तो दोनों एक-दूसरे को सेवन, दर्शन, स्वर्धन (पूमना भारि) मारि श्रियाओं के द्वारा प्रसन्तनापूर्वक वेरीक्टोक स्वतन्त्रता के ३०४ दशरुपर

साय आनन्दसागर में घोते समात रहते हैं ॥६८॥

जैसे 'उत्तररामचरित' मे---

राम सीता से कह रहे हैं— "अनुराग के सम्बन्ध से गाल सटावर कुछ-दुछ धीरे-धीरे त्रम के बिना कहते हुए मीर एव-एक बाहु को गाड आर्तियन में सगाते हुए हम बोनो को, बीते हुए प्रहरों का भी पता न सगकर रातें यो हो बीत जाया करती थी।

प्रथवा जैसे 'उत्तररामचरित' का यह पद्य-

रामचन्द्र सौता से कहते हैं.—"प्रिये, यह क्या है ?
"तुम्हारे प्रत्येक स्वयों में इत्त्रिय-समूह को मूढ करनेवासा विवार
मेरे ज्ञान को कभी तिरोहित करता है और कभी प्रवासित करता है।

भेरे ज्ञान को कभी तिरोहित वरता है और कभी प्रवाधित वरता है।

यह (विकार) मुख है वा दुख, प्रुच्छा है वा निद्रा, विष का प्रसरण है वा

मादक द्रव्य से उत्पन्न सद है? यह निश्चय नहीं कहा जा सकता है।"

मयवा जैसे भेरा (धनिक वा) ही पद्य—

"नोई नायक अपनी प्रेयसी में कह रहा है कि हे त्रिये, सावण्यरूपी समृत की वर्षी करनेवादा, नाते अगर के समान कृष्ण वर्ण का चौरारका (बारो तरफ से) अत्यपिक ऊँचा उठा हुम्मा तेरा स्वनमण्डत नायं-काले अगर की आभावाले तथा चारो दिखामो में उपनीत तक सटके हुए मेमनच्दन के समान सुवीजित हो रहा है।" [वर्ष ऋतु में केदनी मा पुष्प वर्षा की वृष्टि से विकसित होता है और इपर नायक के सारोर के अवयय स्थलभण्डल-रूपी संवमण्डल के सायप-स्थी वर्ष पृष्टि से विकसित हो रहे मायेर स्वे

वेरा मतर ही पुज रह ने पान करनेवाले असर हैं।" चेट्टास्तत्र प्रवर्तन्ते सीलाद्या दश योधिताम् । दाक्षिण्यमार्देवप्रेम्णामनुरुपाः प्रियं प्रति ॥७०॥

लगा हुमा सुन्दर वस्तूरी वातिलक ही उसके पुष्प हैं मीर हेलायुक्त

चतुर्पं प्रकाश ३०%

पुवित्यों के झन्दर लीना भावि वस चेष्टाएँ होती हैं।, ये दर्धों चेष्टाएँ प्रिय के प्रति वालिष्य, मृदुता चीर प्रेम के अनुरूप होती हैं।।५०॥ इनको द्वितीय प्रकार में नायिकाओं के बारे में बताते समय बहु भाए हैं।

र रमवेचवाटुकृतकान्तः कलाक्षीडादिभिश्च ताम् । न ग्राम्यमाटरेरिटविद्यमेश्रं शकरं न'च ॥७१॥

नायक नापिका के साथ बाहुकारितायुक्त अपुर बवनों से फ्रीर वना, जीडा धादि के साथ रमरण करे प्रयवा कराए। यर इन क्रियाओं के साथ प्राप्त (निज्दनीय) कार्य नहीं होना चाहिए। भीर न नमें का भ्राप्त करनेवाते हो कार्य होने चाहिए। रागमव वर प्राप्त्य सम्भोग का विकाना सो नियिद्ध ही है, फिर यहाँ प्राप्त्य के नियेष करने का सास्पर्य यह है कि ध्रव्यकाच्य में भी इसका वर्णन नहीं हो सकता है ॥५१॥

राजा दसराज वायवदत्ता से वह रहे है वि त्रिये, कामदेव की पूजा की समाप्ति के बाद तेरे हाथ वा स्वर्ग किया हुआ असोक ऐसा लग रहा है मानो इनके अन्दर अपने और किसलयों से भी मृदुतर किसलय निकल आए है। यहाँ पर वासवदत्ता के हायो की ग्रेंगुलियों पर उत्वेदा की गई है।

नामक, नामिका, कॅलिकी वृत्ति, नाटक और नाटिका आदि के लक्षणों को जानकर और विन-परम्परा ने सबगत होकर तथा स्वयमि भ्रीवित्य की सम्मानना के अनुकृत करूपना करते हुए नई-नई सुम्मी को दिसलाता हुआ प्रतिमासाक्षी कवि स्ट्रह्मार रस की रचना करे।

बीरः प्रतायविनयाध्यवसायसत्त्व-चोहावियादनयविस्भवविकमार्खः । चत्साहभूः स च दयारण्यानयोगा-स्त्रेषां किलान यतिगर्ववृत्तिग्रहर्षाः ॥७२॥ बीरस—प्रताय, विनय, अध्यवसाय, सत्व (यतक्रम), ध्रवियक्र 308 दशस्यक

(हर्ष), नय, विस्मय, निकम ग्रादि से विमायिक शोकर कदएम, युद्ध, दान प्रादि से प्रतुनावित घौर गर्व, धृति, ह्यं, श्रमर्थ, हमृति, मित, वितक यादि से भावित होता हुया उत्स ह नाम का स्थायीनाथ वीररस की संज्ञा को प्राप्त करता है 110 राध

यही अपनी भावना करनेवाले के मन को विस्तृत गरनेवाला तथा आनन्द का कारण होता है। यह तीन प्रकार का होता है।---

१ दयावीर, २. युद्धवीर बीर ३ दानवीर।

, दयादीर के उदाहरण 'नागानन्द' नाटिया के प्रधान नायक जीमूत-बाहुन हैं। युद्धशीर ना उदाहरण 'महाबीरचरित' में वॉणत मर्यादा-पुरुषोत्तम राम हैं। दानवीर वा उदाहरण पंखरामजी भौर राजा बलि मादि हैं। द्विनीय प्रशास में 'त्याग सप्त समुद्र' मादि इलोक के द्वारा इसका उदाहरण दिया जा चुका है। राजा बिल के विषय में उदा-

हरण दिया जा रहा है—

राजा बंदि की परीक्षा लेते समय भगवान् ने जब प्रथना वामन रूप त्यागकर भपना विराट रूप धारण किया उसी समय का यह वर्णन है: "भगवान् के शरीर वी छोटी छोटी गांठो ने जद सन्यि के बन्धन से मुनित पाई प्रयात् जब भगवान् ना द्यारीर बढने लगा तो उनके विक-सित वक्षस्थल पर नौस्तुभ मणि चमकने लगी, निक्लते हुए मानिकमल थे फूड्मल कुटौर से गम्भीर सामध्वनि होने लगी। घपने यार्थन की इस प्रयार पा उत्मुक्तापूर्वक और ग्रानन्द के साथ राजा विल उन्हें देखने लगे। विव बहुता है कि अमश बढ़ते की महिमाबाला अतएव धारचर्ष हारी भगवान् विष्णु का शारीर आप लोगो की रक्षा करे।"

**प्रयवा जैसे** मेरा (घनिक का) ही पद्य—

यि दे ही राजा बलि है जिनने द्वारा लक्ष्मी के स्तनमण्डल मे लगे हुए कर्मनी घरण बर्णेशले भगवान विष्णु भिक्षत बनाये गए।

बीरस के उत्पर बताये हुए तीनी भेदों नो कुछ लोग मानते हैं

भौर मुछ नहीं भी मानने।

युद्धवीर में प्रस्वेद (पतीना) होना, मुँह ना चाल हो जाना, नेधा-दिकों में त्रोव मादि यनुमावों ना होना मादि वार्ते नहीं होती। यदि ये मद बार्ने रहे तो फिर वह रीड कहनाएगा।

बीमत्स रस-इसका स्थायी भाव जुगुप्सा है 1 यह तीन प्रकार का होता है-1 उद्देव से, २. सोम से, और ३ युद्ध ।

वीभरसः कृषिपूर्तिगिष्धवषदुप्रापैर्जुपुत्सैकपू-ब्रद्धेगो रिषरान्त्रकोकसवसायासादिभिः क्षोभएः । वैराग्याज्जननन्त्रनाश्चिष्ठ घृरणाशुद्धोऽनुभावेर्नु तो नासायवत्रविकृरणनादिभिरिहावेगातिर्वाकादयः ॥॥३॥

- हृदय को जिलकुल ही क्षक्ते च सलनेवाले कोडे, शहन, पोब, के प्रांदि विनायों से पैदा हुम्मा जुगुस्स नामक स्थायीनाव को पुष्ट करने-यांसे सल्लाओं से युवत पहेंगी नामक बोनस्स होता है।
- २. रविर, अतर्थी, हड्डी भीर भज्जा, भास भावि के देखने धर्यात् इन विनावों से होनेवाले लोग से उपान होनेवाला बीमस्स होता है।
- द, बंदाम के द्वारा दिनमों की कुन्दर अमाओ तथा स्तन प्रावि अंगो में भवानक विकृति को देखकर होनेवाची जुगुन्ता को गुद्ध बीमस्स कहते हैं।

श्रीमश्स रस मे नार या सिकोडना और मुख मोडना माहि मनुभाव भीर मादेग, थ्यायि तथा शरा, ये सवारीमाव होते हैं ११७३॥

उद्वेग से होनेवाला बीमत्सरस का उदाहरण 'मानतीमायय' का यह पद्य-

उतिन उतिन चाम फेरि शाहि शाहन हैं, लोगि को उठाइ भन्नें एसे वे धतक हैं। सर्मः मास कथो जाँच पीठ जो नितम्बनु को, मुलस पबाइ लेख खीब शो नियक हैं। lot ष्टशस्यक

रौथि हारें बाडी नेत्र भांत भी निवारें दाँत. सियरे सरीर जिन सोनित की पक है।

मस्थित पै ऊँची नीची श्रीर तिनपीच ह भी,

धीरे-धीरे वैसे मास स्नात प्रेत रह है। क्षोम से होनेवाने बीमत्स का उदाहरण, जैसे 'महावीरचरित' मे---

"बातो मे बडे-बडे मुण्डो के गुँथे हुए बाभूयणो से सुसज्जित ताटका राम-लहमण पर वडे वेग के साथ ऋपट रही है। वेग के साथ दौड़ने से मुदौं की वे नहीं, जिनको उसने करूप के रूप में पहन रखा है, ग्रापस मे लगकर भयानक ऋनभनाहट पैदा कर रहे हैं। मुख्डो की मालारूपी ब्राभूषण की व्यनि बाबाय भर मे ब्याप्त हा रही है। सरीर का ऊपरी भाग विशेषत स्तनभण्डल वडा ही भयानक लग रहा है।"

गुद्ध बीमत्स, जैसे---

क्सि विरक्त पुरुषको उवित है--"काम के वशीभूत पुरुष युवतियो मी लार को मुखमदिरा, मामपिण्डो नो कुच ग्रीर हाड मास को जघन समभने हैं।"

[यहाँ पर बान्तरस नहीं मानना चाहिए न्योकि यह किसी विरक्त

में द्वारा भूषा व साथ वहा हुबा है।]

क्रोधो मत्सरवैरिवैकृतमयैः पोषोऽस्य रौद्रोऽनुजः क्षोभः स्वाघरदंशकम्पभक्रटिस्वेदास्यरागैर्यतः। शस्त्रोत्लासविकरयनासघरगोघातप्रतिशाग्रहे-

रत्रामर्थमदौ स्मृतिश्चपलतासूबौग्रयवेगादयः ॥७४॥

रोद्ररस--रोद्ररस का विमाय शत्रु के प्रति मत्सरता भीर पृशा चादि हैं। इसके बनुभाव, क्षोभ, अपने बोठों को दवाना, कम्प होता,

मृकुटि का टेढ़ा करना, पत्तीना आता, मुख का साल हो जाता, द्वारत्रास्त्रों को धमकाना, वर्षोक्त के साथ कर्यों को फैसाना, पृथ्वों को खोर ने साथ पैरों से खाँपना, प्रहार करना धावि हैं ॥७४॥

भीर इसके संवारीभाव—श्रमवं, मद, स्वृति, चपलता, भ्रमुया, उपना ग्रावेग ग्रादि हैं।

क्यर वहं हुए विभाव, धनुभाव ग्रीर सचारीमानो से पुष्ट होता हुमा त्रीय नामक स्थायीमान रोजरम की सज्ञा प्राप्त करता है।

मात्सर्पं नामक विभाववाला श्रीहरस, जैसे--

अनुपित परजुराम विस्वामित्र में कहते हैं—"तुम इस समय सपस्या के बत से बहार्षि हो, पर जन्मना क्षत्रिय हो । मतः यदि तुम्हें मपनी तपस्या का भगण्ड है तो भेरे भन्दर तपस्या का बह यत है कि मैं मपने तपोबल से तुम्हारी तपस्या को नष्ट कर सकता हूं भीर यदि तुम्हें क्षत्रिय होने का गर्व है तो पिर तहत्रास्त्रों के साथ मा जाओ, जवका भी मुँहतीड तत्तर देनेवाला फरसा भेरे पास ही विधमान है।"

वंदिकृत सीत का उदाहरण, जैसे-

"सीमसेन सगलपाठ करनेवासो को ढाँदते हुए कह रहे हैं—जिन मृतराष्ट्र के पुत्रों ने लाखनिमित महल, विपामिश्रत झाहार क्षमा पूत भीडामें समागृह प्रवेश सादि के डारा हम लोगों के प्राण भीर मन के प्रपट्टरण की केटा की, श्रीपदी के केशपाशों को खीचा, वे मेरे रहते स्वस्थ हो, ऐसा क्यापि नहीं हो सक्ता।"

'महावीरचरित' श्रीर 'वेणीसहार' में विजन परसुराम, भीमसेन

भीर दुर्योषन के व्यवहार रीटरस के उदाहरण हैं। विकत्ताकतिवाग्वेर्यरात्मनोऽय परस्य वा।

हासः स्यात्परितोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिः स्मृतः ॥७५॥

हास्परस—प्रयमे या अन्य के विकृत आकृति, वरणो भ्रोर वेप के द्वारा पैदा हुए हास के परिपुष्ट होने का नाम हास्परस है। इस रस के दो आश्रय होते हैं— १, श्रात्मस्य और २- परस्य ॥७६॥

भारमस्य का जदाहरए। है--रावण द्वारा कथित यह पदा--''मेरे सरीर में सभी विभृति ही चन्दन की पूर्ति का सेप है, यज्ञो-

720 दशरपक पबीत हो सुन्दर हार है, इधर-उधर विखरी हुई, क्लिप्ट जटाएँ ही सिरो-

भूषण है। यसे मे पटी हुई स्टाक्ष की माला ही रत्नजटित द्याभूषण है। बल्यल ही चित्रानुब है, इस प्रकार से मैंने मीता को लुभाने लायक (योग्य) कामीजनोचित सुन्दर वेश-विन्यास विया है।"

परस्य हास्य, जैसे---विसी दाता ने विसी भिक्षुव से पूछा---'क्यो

तुम मास भी खाते हो ?' उधर से उत्तर मिला—'मद्य के बिना मास का सेवन कैसा ?' दाताओं ने फिर पूछा—'क्या तुम्ह मदा भी प्रिय है !' उधर से उत्तर ग्राया— 'वैश्याक्षो के साथ ही मुक्ते तो मद्यपान में मङा ब्राताहै। दाताने पुन प्रश्न किया— 'वैश्याएँ तो रपये की लालभी होती हैं, तरे पास घन कहाँ से बाता है ?' उत्तर मिला--'जुधा खेतकर तथा चोरी से। दाता नाफेर पूछा—'बरे तुम चोरी भी नरते हो बीर जुमाभी लेलते हो <sup>?'</sup> उत्तर मिला— 'जो ब्रपते वो नप्ट वर चुना है उसकी इसके ग्रताबा ग्रीर क्या गति हो सकती है। स्मितमिह विकासिनयनं किचित्लक्ष्यद्विजं तु हसितं स्यात्।

म्रपहसितं साजाक्षं विक्षिप्ताङ्गं भनस्यतिहसितम् । हें हें हसिते चैया क्येब्डे मध्येऽधमे कमञः ॥७७॥ हास्य के आत्मस्थ श्रीर परस्य भेदों को बता चुपे । ये दोनो भी-उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष शीर ग्रथम पुरुष के प्रश्नति-भेद से प्रत्येण तीन-

मधुरस्वरं विहसितं सक्षिरःकन्पमिवमुपहसितम् ॥७६॥

सीन प्रकार के होते हैं। इस प्रदार हास्य दृः प्रकार का होता है। ये 🖣 —स्थित, हसित, विहसित, उपहसित, अपृहसित, ग्रतिहसित । जिस हास्य में केवल नेय विवसित हों उसे स्मित रूहते हैं। जिस हास्य में हुछ हुछ दाँत थी दिखाई दे उसे हसित वहते हैं। जिस हास्य में हेंसते समय मधुर स्वर भी होता है उसे विहसित गहते हैं।

जिस हास्य मे सिर मी हिलने लगता है उसे उपहसित क्टते हैं।

चतुर्थं प्रकाश

जिस हास्य में हेंसते हेंसते ग्रांखों में बांसू तक ग्रा खाए उसे ग्रप-हसित कहते हैं।

जिस हास्य में सारा शारीर कांपन लग जाए उसे अतिहसित कहते हैं।

ये जनका शुर के वो उत्तम पुरय मे, उसके बाद वे जनका दो मध्यम पुरय मे और दोय क्रथम युवय के होते हैं ॥३६-७७॥

निद्रासस्यथमम्लानिमूच्छीस्य सह्याचित् । क्रतिलोक्रीः पदार्थिः स्याहिस्मयास्मा रसोऽद्भुतः ॥७=॥ कर्माऽस्य सायुवाबाध्येषपुरवेवनद्गवाः ।

हर्यावेगनृतिप्राया भवन्ति व्यक्तिचारियाः ॥७६॥

इने उंदाहरलों को स्वय समक्ष लेना याहिए । निद्वा आनस्य, थम, क्वानि, मुख्युं, ये क्षमके व्यक्तियारीमान होते हैं ।

प्रदेशत रस—लोकिक सोमा को शतिकमरा करनेवाले प्राव्यव-जनक पनायों से विमाधित (ये जिसके विमाव हैं) सामुवाद, अपू, नेपपू, स्येद, गद्गद वाणी झादि से प्रतुमाधित (ये जिसके श्रदुमाव होते हैं) हवं, त्रावेग, पृति, ब्रावि से व्यक्तिचारित (अर्थात् ये जिसके व्यक्तिचारी भाव होने हैं) होता हुन्ना तथा पोयण, भास, विस्मय नामक स्वायोभाव प्रदेशत रस कहनाता है ॥७=-३६॥

जैसे लक्ष्मण की यह उक्ति-

' भुजाओं के द्वारा चढाया गया जो भगवान सकर का धनुष उसकी टकार की व्वति व्यति नहीं है, प्रपितु वेट भाई रामचन्द्र के बालचरित्र का नगाडा बज रहा है।"

"मित बीझता से मरा हुमा साथ ही मिला हुमा कवाट सम्पुर-रूपी ब्ह्याण्ड भाण्ड के अन्दर घूमती हुई विषडीभूत हुई राब्द-ध्विन की चण्डिमा (बहु) क्या सभी तक द्वारत न हो सकी ?" 712 दशरूपर

विकृतस्यरसत्त्वादेभंयभावी भयानकः। सर्वाङ्गवेययुस्वेदशोषवैचित्त्यलक्षरणः । देन्यसंभ्रमसंमोहत्रासादिस्तत्सहोदरः ॥८०॥

मयानक रस---विकृत स्वर, (मयानक, दरावने भादि) व्याध सिंह मादि जीवों के देखने-सुनने आदि विभावों से उत्पन्न भय स्थायी भाव से भयानक रसकी उत्पत्ति होती है। इसमें सब भगो मे डर के मारे कॅपकेंपी, पसीने का धाना, शोक हैं चेहरे का फीका पर लाना, सादि मनुभाव सया दैग्य, सभ्रम, सम्मोह भास आदि व्यभिवारी भाव होते र्वे शहरा है

जैसे — 'शस्त्र को छोडकर बुज्जे की तरह नम्र होवर धीरे-धीरे येन-

वेनप्रकारेण (अँसे-तैसे) जासकते हो।' इसी प्रकार से पहले बताये हुए 'रत्नावली नाटिका' के 'नष्टपर्य

वरे.' इस ब्लोक को भी इसका उदाहरण समझना चाहिए !

इत्यादि । भीर भी जैसे-

"कोई कवि विसी राजा से कहता है कि महाराज, ग्रापकी विजय-बाता की सबर सुन छापके शत्रुको की बुद्धि चकराई और वे डर के मारे घर पे भाग सड़े हुए। फिर उनने मन में यह शका बाई कि कही पकड़ न लिए जाएँ, भत जगस में चले गए। फिर वहाँ से पर्वत पर भीर जब वहीं भी भय ने छुटकारा नहीं मिला तब घने बृक्षोवाली पर्वतो की भौटियों पर सीर उसके बाद उसकी कन्दराओं में वले गए। कन्दराओं से रहते हुए भी उन्होने धपने सारे बागो को ऐसा सिकीड सिया है मानो उनका एक बग दूसरे से प्रविष्ट होता जा रहा है । सो हे महाराज, धापके सनुभों की यह दशा है, ये कहीं उहे, कहीं जाएँ, इस विषय में उनकी मुद्धि नाम नहीं दे रही है।"

इष्ट्रनाशादनिष्टाप्ती ज्ञोकारमा करलोऽनु सम् । नि दवासोच्छ्<u>षासरदितस्तम्भत्रल</u>पितादयः ॥८१॥ स्वापायस्मारदैन्याधिमरएगलस्यसभ्रमा ।

विधादज्ञडतोन्नादिचन्ताद्या व्यनिचारिसः ।।८२॥

करता रस—यह शोक नामक स्यायीभाव से पैदा होता है। इष्ट का नाश, प्रतिष्ट को प्राप्ति आदि इसके विचाव और निश्वास, उद्गास, एवन, स्तम्भ, प्रताप प्रार्टि अनुमाव तथा निशा, व्यवसार, बैन्य, व्यार्थि यरण, प्रातस्य, प्रावेग, विचाव कडता, उन्माद धौर विन्ता आदि सवारी माव होते हैं। १०१-६२॥

इप्टनाम ने उत्पन्न करण, जैन 'हुमारमम्मव' मे—
"है प्राण्ताय, स्वा तुम जीते हो यह कहती हुई वह ज्यों हो बढ़ी
हुई तो देवती क्या है कि धकर के कोम से जता हुआ, पुरुष के प्राक्तर
का राल का एक देर सामने पृष्टी पर पढ़ा हुआ है।"

इत्यादि रति का प्रलाम]

भ्रतिष्ट-प्राप्ति का उदाहरण 'रत्नावली नाटिका' में सागरिका का वैद किया जाना है।

प्रोतिभवत्यादयो भावः मृतयास्तादयो रसाः । हर्योत्साहादिषु स्पष्टमन्तर्भावान्त्र कौतिताः ॥८३॥ प्रोति कौर भवित क्रांदि भावों को श्रीर मृत्या, खूत, हे होनेवाले रसों का हर्य कौर वत्साह है' भीतर कलार्भाव हो जाता है। स्पष्ट होने

के कारण इसकी ब्याख्या नहीं की गई ॥=३॥

पर्जित्रार्भूषसादीनि सामादीन्येक्वित्रति । सक्यसम्यन्तराङ्गानि सालकारेषु तेषु च ॥८४॥

३६ विनुष्य प्रादि का जपमा प्रादि श्रतकारों में मौर २१ साम भादि का हर्ष, उस्साह भादि के मीतर अन्तर्गाव हो जाता है। यह बात स्पष्ट है, प्रत इसको प्रलय से बताने की भावस्यक्ता प्रतीत नहीं हुई ॥५४॥ रम्य जुनुस्सितमुदारमयापि नीच-

मृत्र प्रसादि गहन विकृत च वस्तु ।

717

विकृतस्वरसस्वादेभंगभावो भयानकः। सर्वाङ्गवेययुरवेदशोपवैचित्त्यलक्षागः ।

दैन्यसंभ्रमसंमोहत्रासादिस्तत्सहोदरः ॥८०॥ मयानक रस---जिकूत स्वर, (मयानक, डरावने भादि) ध्याप्र सिंह मादि जीवों के देखने-सुनने थादि विमावों ही उत्पन्न भय स्थायी भाव से

भयानक रस की उत्पत्ति होती है। इसमें सब झगो मे डर के नारै कॅंपकेंपी, पसीने का ब्राना, बोकिसे चेहरेका फीका पड जाना, ब्रादि षतुभाव तथा देन्य, सभ्रम, सम्मोह भास आदि व्यक्तिचारी भाव होते 중 하드이

**जैसे** ─ 'शस्त्र को छोडकर कुब्जे की तरह बच्च होनर धीरे-धीरे येन-केनप्रकारेण (जैसे-तैसे) जा सकते हो।'

इसी प्रकार से पहले बताये हुए 'रस्तावली वाटिका' के 'नष्टवर्ष

धरै 'इस स्तोक को भी इसका उदाहरण समझना चाहिए। इत्मादि । ग्रीर भी जैसे---

"कोई कवि किसी राजा से कहता है कि महाराज, मापनी विजय-

यात्रा की खबर सुन भाषके शत्रुमों की बुद्धि चकराई और वे डर के मारे घर छै भाग खडे हुए। फिर उनमें मन से यह शका आई कि कही पकड ने लिए जाएँ, मत जगल में चले गए। फिर वहाँ से पर्वत पर मीर जन वहाँभी भय से छुटकारा नहीं मिला तब घने वृक्षोवाली पर्वती की चोटियों पर ग्रीर उसके बाद उसकी वन्दराग्री मे चले गए। कन्दराग्री मे रहते हुए भी उन्होंने अपने सारे अगो को ऐसा सिकोड लिया है मानो उनका ए<del>व</del> भग दूसरे मे प्रविष्ट होता जा रहा है । सो हे महाराज, भापने धनुभो की यह दशा है, वे कहाँ रहे, कहाँ जाएँ, इस विषय मे उनकी बुद्धि नाम नहीं दे रही है।"

इष्टनाशादनिष्टाप्तौ शोकात्मा कदर्गोऽनु तम् । निःश्वासोच्छ् बासरुदितस्तम्भप्रसपितादयः ॥६१॥ स्वापापस्मारदैन्याधिमरएगलस्यसंभ्रमाः ।

विपादजङतोन्मादचिन्ताद्या व्यनिचारित्यः ॥ ६२॥

ब्दला रस—यह शोक नामक स्वाधीमाव से पैदा होता है। इष्ट का नाश, अनिष्ट को प्राप्ति आदि इसके विमाव और निष्यास, उद्मास, ददन, स्तम्भ, प्रताप श्रादि अनुमाव तथा निक्षा, अवस्मार, दंग्य, क्याबि स्परण, प्राक्षस्य, श्रावेग, विचाद, अवता, उत्माद और बिन्ता श्रादि संबारी साद होते हैं। 10 १-278

इप्टनात ने उत्पन्त करण, जैसे 'कुमारसम्मन' मे—

"है प्राणनाथ, नया तुम जीत हो यह वहती हुई वह ज्यों ही बडी
हुई तो देवती क्या है कि शकर के कीय से जमा हुआ, पुरुष के मानार
का राज का एक देर सामने प्रजी पर पढ़ा हुआ है।"

इत्यादि रिं का प्रलाप]

श्रनिष्ट-प्राप्ति का उदाहरण 'रन्नावली नाटिया' में सागरिका का कैद हिया जाना है।

प्रोतिभक्त्यादयो भावा मृगयासादयो रसाः ।

हर्षोत्ताहाबिषु स्पष्टमन्तर्भावान्तं कीतिताः क्षव ३॥ भीति स्रोर मन्त्रि सार्वि को और मृगया, जून, ते होनेवाले रसों का हुएँ स्रोर उत्साह के भीतर श्रन्तर्भाव हो जाता है। स्पष्ट होने

रसा का हुथ आर उत्साह के आंतर अन्तनाव हा जाता है। के कारण इसकी ब्याख्या महीं की गई शक्तका

पर्जित्रार्भूषरगादीनि सामारीन्येकविद्यति । सस्यसंध्यन्तराङ्गानि सालंकारेषु तेषु च ॥८४॥

३६ बिनुष्ण भ्रादि का उपमा प्रादि सतकारों में भौर २१ सान भ्रादि का हुयं, उत्साह भ्रादि के मीतर भन्तर्गाव हो बाता है। यह बात स्पष्ट है, मत इसको अलग से बताने को भ्रावस्थक्ता प्रतीत नहीं हुई ॥४४॥

रम्यं जुपुष्तितमुदारमयापि नीच-मुत्र प्रसादि गहन विष्टतं च वस्तु ।

## यद्वाप्यवस्तु कविभावकभाव्यमानं तन्नास्ति यन्न रसभावमूपैति लोके ॥८४॥

रमणीय हो प्रयवा धृत्ति शब्दी हो या बुरी, उद्र प्रयवा प्राह्मार-कारी, गहन हो अथवा विकृत, [किसी भी प्रकार की दयों न हो] विह में ऐसी कोई भी वस्तु महीं है, वस्तु ही क्यो ग्रदस्तु भी, जो कवि भी

भावक के भाधना के विषयी मृत होने पर रस और भाव को पैस ह करे अद्रश

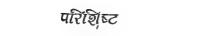
बिटरतोः सुतेनापि धनंजयेन विद्वन्थनोरागनिबन्धहेतुः ।

द्याविष्कृतं मुखमहोशगोण्ठीवैदग्ध्यभाजा दशर पमेसत्।। दशा विष्णु के पुत्र धनवय जिनके पाण्डिय की थाक महाराज पुत्र के

पण्डित पश्चिद मे जमी हुई है उन्होंने खिद्वानों के मनबहुलाय के लिए दशस्यक नामक इस धन्य की रचना की ॥६६॥

#### दिशरूपक समाप्ती

विष्णु के पुत्र धनिक द्वारा दशरूपक के ऊपर सिखी गई 'दशहपकार' लौक' नाम की ब्याख्या हा रस विचार नामक चतुर्थ प्रवाश समाज।



# धनिक की संस्कृत वृत्ति

इह सदाबार प्रमाखबद्भिरविष्टेन प्रकरलस्य समाप्यपेमिटयोः प्रशृतामिनतदेवतयोनेमन्त्रारः नियतं स्नोक्टयेन ।

नमस्तरमैं .... भरताय च ॥१-२॥

यस्य कष्ट पुष्टरायने मृदञ्जवाषरति भवाभागेन घनावानो निविद्यव्यतिः नीतक्ष्टम्य यिवस्य ताण्यते उद्धते नृत्ते तस्यै गर्गुशाय नम् । प्रत्रं व्यव्हत्वपातिन्यमार्ग्गोपमाण्डापालकूरः। नीतक्ष्टम्य मयरस्य ताण्यते ययां नेपक्विनः पुष्टारावतः इति प्रतीते ।

दशस्यानुकारेखीन । एकत्र अन्यक्मीदिप्रविधानामुद्देवेनान्यकानु-इतिस्पनाटकादिना यस्य भावका ध्यातारी र्यक्षकार मावन्ति हृप्यन्ति सन्मै विष्युवेतीममताय प्रकृताय सरताय च नवः ।

योतुः प्रवृत्तिनिमित्त प्रदश्येते ।

कस्पविदेव \*\*\*\*\* धेन वैदाधीम् ॥३॥

न किन्यह विषय प्रकरशादिरम क्वाचिदेव कस्यचिदेव करे सरस्वती योजयति येन प्रकरशादिना विषयेशाज्यो बनो विदागी भवनि !

स्वप्रवृत्तिविदय दर्शयति ।

**बर्**षत्योर्कृत्य \*\* \* सङ्क्षिपामि ॥४॥

य नाटपंबेर बेदेच्यः सारपादाय ब्रह्मा इनवान् यसम्बदमिनय भरतस्वनार वरणाङ्गहारानकरोत् हरस्तान्वयपुर्वन नास्य सुकुमार नृत्तं पानंती कृतवती तस्य सामस्येन नसाण कर्तुं कः सनन तरेक-रेसस्य तु दशस्पस्य सर्वेष जिल्ला इत्यवं । ३१८ दशरूपक

विषयैनयप्रसन्त पौनस्क्य परिहरति । स्याकीर्षे क्रियतेऽञ्जला ॥॥॥

ब्याकीर्णे विक्षिप्त विस्तीर्णे च रसशास्त्र मन्दबुद्धीना पुता मनिनीरा भवति तेन तस्य नाट्यवेषस्याज्यंस्त्रत्यदेनैव सक्षिप्य ऋजुवृत्या विषठ इति ।

१९ । १६ प्रकरिश दशस्पज्ञानफलमः । दशस्य किम्फलमित्साहः ।

आनन्द० पराष्ट्रमुखाय ॥६॥ सन्दे वेचित् ।

धर्मावंकाममोक्षय वैचक्षण्य क्लास् च ।

करोति वीति प्रीति च साधुकाव्यनिवेवसम् ॥

इ यादिना त्रिवर्गादिब्युत्रांत काव्यक्तस्य नेच्छन्ति तन्तिराग्नेत स्व सर्वेश परमानन्दरूपो रसास्वादो दशरूपाणा प्रस न पुनरितिहासादिवा

विवगारिक्यु परिचारिकोति दर्पतन्यु । तम् इति मास्तुष्टम् । नाटकातः सक्षणः मास्त्वामीस्यन्यः । वि वनस्तन्त्राहणमित्याह

नाटचाना सक्षण सक्षिपामीत्युक्तम् । वि युनस्तन्नाटचिमत्याह । चवरचानुकृतिर्वाद्य

भवरभावक्रशासमञ्जूष्टातमाञ्च शास्त्रोमनिवद्यधीरोदात्ताचयस्यानुकारस्वतुर्विषाभिनयेन तादास्या पत्तिनीटचम ।

रूप दृश्यतकोन्यते ।

सदेव नाटम दुरवमानतमा रपमित्युष्यते नीलादिरपवन । स्पक तत् समारोपाव

दिति । नटे रामायवन्यारोगण वनमानस्यान् रूपक मुखणप्रादिन। इत्येतिसम्बद्धे प्रवर्गमातस्य प्रव्हवस्य इन्द्र पुरन्दर सक दविवत् प्रवृतिः निविचानेती द्वितः ।

दश्येव श्लाष्ट्रवय् ।।।।। **१**ति । रतानाजित्व वर्नमान दशयकारसम् । एवेत्यवयारस्य सुद्धाभित्रा<sup>दान्</sup> नारिनाया सञ्चास्तुरने। वदयमासस्यान् ।

वानेब दश्मेदान्दिन्ति।

नाटकं · वीच्यङ्के हामृगा इति ॥द॥

नत् ।

दोम्बी श्रीगदिन भाषो भाषीप्रस्थानरासका । शस्य च सप्त नृत्यस्य गेदाः स्मुस्तेऽपि भाषावत् ॥ इति रूपकान्तराकामीप भावादवपारणानुपात्तिरित्याशस्त्रुयाऽछः ।

ग्रन्यह् भावाश्रय नृत्य

सायद् भावास्य नृत्यः
इति । रसायपान् नाटपाद् भावाध्यः नृत्यम्यदेव । तत्र भावाध्यः
मिनि विषयमेदान् नृत्यमिति नृतेगीनविशेनायँदिनाऽजिङ्गुरुमाहृत्यात्
तत्कारितुं च ननक्त्यदरितात् सोकेऽति चाऽन प्रेयाणीयक्रमिति व्यवहारान् नाटकदेरत्यन् नृत्यम् । तद्भेदः वात् श्रीविदतादेरत्यारणोपपत्तिः । नाटकदिरत्यन् नृत्यम् । तद्भेदः वात् श्रीविदतादेरत्यारणोपपत्तिः । नाटकदिरत्यन् नृत्यम् । तद्भेदः वात्यर्योग्नुतिवमावादिर,समागिनचानपर्वेतुं त्याद् चाव्यप्तिनयात्मकस्यः स्ताप्रमित्यनेन
स्रातित्यः । नाटप्रमिति च नट मत्रकत्यन्तः इति नटे किन्चिच् चलतायंद्यात् साद्यक्वसहृत्यम् । धतप्र तत्कारितु नटव्यपदेशः । यथा चमाप्तरिज्ञेनायत्वे समानेश्यवृत्रारात्यकदेन नृताद्यन्त्यन् तृत्यः सया चमाप्तर्यन्तिनात्मकान् नाटप्यात् पदार्याभिननात्मकम्त्यदेव नृत्यमिति ।

प्रसङ्गान् नृत्तं व्युत्पादयति ।

मृत तालसयाध्यम् ।

इति । सालस्थ-वत्युटादि सयो द्वादि तन्मात्रापेशोऽङ्गविशेषो अभवय-कृत्यो नृत्तमिति ।

भनन्तरोक्त द्वितय व्याष्ट्टे। भारा '' तथा परम् ॥६॥

दशह पर ३२ ∙

धान्तरपदार्घाभिनयेन नृतस्य च बोभाहेतुत्वेन नाटकादावृषयोग इति।

धनुकारात्मक्त्वेन रूपाणामभेदात् विन्द्वतो भेद इत्यात्रङ्कृयाध्य । बस्तु नेता रसस्तेषां भेदको

इति । वस्तुभेदान् नायनभेदाद् रमभेदाद् स्पाणामन्योऽय भेद इति । बस्तुभेदमाह ।

बस्तु च द्विया ।

कथमित्याह । तत्राध्यिकारिकं .... 'विदु ॥११स

इति । प्रधानभूतमाधिकारिक यथा रामायणे शामसीतावृत्तान्तर्। तदञ्जभूत प्रासञ्जिक यथा तत्रैव विभीषणसूचीवादिवृत्तान्त इति।

निरुक्त्याऽऽधिकारिक सक्षयति ।

प्रिकार " "स्यादाधिकारिकम् ॥१२॥ इति । फलेन स्वस्वामिसम्बन्धोऽधिकारः फलस्वामी चाऽधिकारी वेनाऽधिकारेणाऽधिकारिणाः वा निर्वृत्तः फलपर्यन्तता नीयमानमिदि<sup>वृत्त</sup>ः

गाधिकारितम् ।

प्रासिक्षक ध्याचव्टे ।

प्रासिद्धक "प्रसङ्खत । यस्येतिवृत्तस्य परप्रयोजनस्य सनस्तत्त्रसङ्गात् स्वप्रयोजनसिद्धिस्तर् प्राचित्रकृतिवृत्त प्रसञ्ज्ञतिव् ते ।

प्रातिज्ञनमपि पतानाप्रभरोभेदाद दिविधमित्याह । सानुबन्धः अदेशभाक ॥१३॥

दूर यदनुवतंते प्रासिङ्गिक मा पताना सूबीवादिवृत्तान्तवत्। वर्षा

ने याऽसाधारस्मनायकचिह्नवत् सदुपकारित्वात् । यदत्य सा प्रवरी धवः

र्गादिवृत्तान्तवत् । पताकात्रसङ्गेन पताकास्थानक ध्युत्पादयति ।

प्रस्तुतावन्तुभावस्य \*\*\*\* संविधानविशेषसम् ॥१४॥ प्रावरणिवस्य भाविनीऽधंस्य सूचन रूप पतानावद् भवतीति पराना स्थानकम् । तस्य तुन्येनिवृत्ततया तुन्य-विशेषणनया च द्विष्रकारमन्योस्ति-ममानोक्तिभेदान् । यथा एलावन्याम् ।

> यात्रेऽस्मि पचनवने समयो मर्मय मुन्ता मर्वेव भवनी प्रतिबोधनीया । प्रत्यायनामयमित्रीय संगीर्वास्था भूषोऽस्तनन्त्रमृतिबिष्टकर कृशीत ॥

यया च तन्यविशेषणतया ।

उद्दामीन्वितिका विषाण्डुरुष्य प्रारच्यवृम्मा सस्माद् मासाम द्वमनोद्दामीरविर्वरागनवितामन ।

प्रवोद्यानसनामिमा समदनर नार्गीमबाध्या धृव पत्यन् भौनविनाटनगृतिसुन देखा करिप्यास्यहम् ॥ एवमाधिनारिकरिकवित्रासिङ्गनेयनान्विवियस्यार्शयं नीबच्यमाह।

प्रवानो पार्यास्थातम् । प्रवानो पार्यामध्यस्यमेदात् " "दिव्यमर्त्यादिनेदनः ॥१५॥ इति निगदन्यान्यातम् ।

तस्येनिबत्तस्य कि फलमित्याह ।

कार्यं त्रिदर्गस्तत् शुद्धमेकानेकानुबन्धि च ।

धर्मावेशमा पत्म् । तच्च शूढमेरीकमेशानुबन्ध द्वित्रपनुबन्ध वा । नामाधन व्यागादयति ।

स्वल्पो:इष्टम्तु तद्धेतुबीब विस्तार्यनेक्या ।

न्वीकोहिट कार्यसायक पुरस्तादनेकप्रकार विस्तारी हेतुविग्रेको बीजबद् बीजम् । यथा एत्सुबन्या बासराबन्य रत्सावसीप्राचिहेतुरनु-बुन्दको सीनन्यराबस्यव्यापारो विष्याम्यके न्यस्तः । सीनन्यरायणः । क सन्दर् । जीवादन्यन्यादिति यटित इत्यादिना ।

प्रारम्भेऽस्मिन् स्वामिनी वृद्धिहेती। इत्यननः । यथा च वेश्वीसहारे द्वीपत्रीवेशास्त्रममहनुर्मामकोयोपविद-मुधिष्टिरो साहो बीजिमिति । तब् च महाकार्यावान्तरनार्येनुभेदार-नेकानारमिति । **३२२ द**शहरपक

ग्रताः

ग्रवान्तरवीजस्य सञ्ज्ञान्तरमाह । ग्रवान्तरार्यविच्छेदे विन्दुरच्छेदकारएम् ॥१६॥

यया रत्नावत्यामयान्तरभ्रयोजनातङ्गपुत्रापरिसमाग्तौ वर्षार्दै-विव्देदे सत्यनन्तरकार्यहेतुरुदयनत्येन्दोरिबोढीशते । द्यागरिका । यूला । गैक्ट एमो सो उदयहासुरिन्दो जसस सह तादेण दिरहेत्यादि । बिन्दुः

जेन तैनविन्दुदत् प्रसारित्वात् । इदानी पताकाच असङ्गाद् खुरत्रमोक्न त्रमार्थमुपसहरम्ताह । योजविन्द्रपताकास्त्रवः ' ''परिकीतिता' ॥१७॥

धर्षप्रकृतयः प्रयोजनसिद्धिहेतदः । धन्यदवस्थापञ्चकमाहः ।

स्वरयायञ्चः ""फलागमा ॥१६॥

यथोहेश लक्षणमाह ।

घौत्मुरयमात्रमारम्भ कसलाभाय भूपसे ।

इदमह सम्पादमामीत्वध्यवसायमात्रमार्क्य इत्युच्यते । समा रलाः

इदमह सम्पादयामीत्यध्यवसायमात्रमार सम्योम ।

बारम्भेऽस्मिन् स्वामिनो वृद्धिहैतौ

देवे चेत्य दत्तहरतावलम्ब । इन्यादिम स्रज्ञियसप्तिदेवेतसराजस्य कार्यारम्भे यौगन्धरायसमृदे<sup>त</sup> टाँगरु ।

पाय प्रयतनः ।

प्रयत्नस्य सरक्षान्ती ध्यापारोऽतित्वरान्तिः ॥१६॥

तस्य पानस्याऽद्याप्तावुपाययोजनादिन्यद्येष्टाविशेष प्रमातः। यसा रन्नावन्यामानस्याप्तिस्तादिवस्तराजनस्यागमोतायः। शहावि पदि

धपो दम्स्युवामो लि जहा नहा मालिहिम च्या समीहिम वित्तुत्त

१. रूप एव स उद्देशननरेग्द्रः यस्याऽहं तातेन बत्तेत्यादि । २. विदूर । तयापि मासस्यस्यो दर्शमीपाय इति स्था तथा स्मानित्य

यया समीहित वरिद्यासिः

इत्यादिना प्रतिपादिन ।

त्राप्त्याशासाह ।

उपायापायशङ्कास्या प्राप्त्याशा प्राप्तिसस्यव ।

उपायन्याञ्चायबद्धायास्य मावादिनयाँरिनैकान्ता पलप्राप्तिः प्राप्त्याद्याः । यथा रत्नावस्या नृतीयेऽक्ट्रे वेपपरिवर्ताभिमरणारौ समाग्मेषाये सित वासवरत्तानक्षणापामयङ्काया भएव जदि प्रधासवादाली विस्न प्राप्तिकृत्व धरणदो स्य साहस्रवादिन वासवरत्ता इत्यादिना वर्षात्वन्ताः ।

नियताष्तिमाह ।

त्रवायाभावतः प्राप्तिनिवताप्ति सुनिश्चिता ।

प्रपामामाषाद्यक्षारिकैशान्ता एकप्राप्तिनियतान्तिरिति । वसा रत्ना-वस्या विद्यक्ष । वसारिका दुक्कर सीविस्यदि इत्युपक्रम्य कि रा उपाय चित्तिति । इत्यनन्तर राजा । वयस्य देवीप्रसादन मुक्त्वा नाज्यमनोपाय पस्थामीत्यनन्तराङ्कार्थविन्दुनाऽनेन देवीसक्षणापायस्य प्रसादनेन निवारियान् नियता फलप्राप्ति भूविता ।

फलपोगमाह ।

समप्रकलसम्पत्तिः कतयोगो यथोदितः ॥२०॥ यया रत्नावस्या रत्नावसीलाभचन्नवतित्वावाण्तिरिति ॥

सन्धिलक्षणमाह । चर्चप्रकृतयः ''''पञ्च सम्धय ॥२१ ॥

चर्चप्रकृतयः ''''पञ्च सम्बय ॥२१ ॥ भ्रषंप्रकृतीना पञ्चाना ययासङ्ख् येनाऽवन्यामि, पञ्चमिर्योगात् ययासङ्कर्यनेव वस्त्रमाणा मुखादा पञ्च सन्धयो जायन्ते ।

सन्धिमामान्यलक्षरामाह ।

श्रन्तरेकार्यसम्बन्ध सन्धिरेकान्वये सति ।

एकेन प्रयोजनेनाऽन्विताना क्याधानामवान्तर्वत्रपोजनसम्बन्धः

र. एवं यदि श्रक्तानवातालीव श्रागत्यान्यतो न नेष्यति वासवदत्ता ।

२. सागरिका दश्करं जीविद्यति, दृष्यवद्रश्य हि. म. द्याग्रं जिल्ल्यति ।

३२४ दशहपक

```
सन्दि।
```

के पुनस्ते सन्वयः । मुखप्रतिमुखे वर्षः सावमर्शोषसङ्गति ॥२२॥ यथोड्स नक्षणमाहः ।

ययाद्दः सद्धलमाह । मृतः \* \*\*\*वीजारम्भसमम्बयात् ॥२३॥

मुल र र वाजारम्मसम्बयात् ॥२३॥ वीजानामृत्पत्तिरनेकप्रयोजनस्य रसस्य च हुतुर्मृतसन्धिरिति ब्यास्प्रेयम् ।

वाजाना कुनात रजन्त्रयाजनस्य रहत्य च हतुनुसत्तान्या रात व्यास्यय च तेनाजिनन्यं क्ले प्रहस्तनदौ रस्रोत्पत्तिहेतोरेव वीजस्वमिति। अस्य च

थीजारम्मायंयुक्तानि द्वादक्षाऽङ्गानि भवन्ति । तान्याह । उपलेव " सक्षायम् ॥२४॥

एनेपा स्वसन्ज्ञाव्याम्यानानामपि सुखार्च सक्षण त्रियते ।

बीजन्यात उपक्षेप.

यया रत्नाबन्या नेपध्य ।

द्वीपादन्यस्मादिष मध्यादिष जलनिशेविस्तोऽन्यन्तात् ।

भानीय भटिति घटयति विधिरिभवतयभिमुलीभूत ॥ १२वादिना योगन्यरायको बत्सराजस्य रत्नावसीमान्तिहेत्भृतमन् स्तरीय

स्त्यादनः योगन्यरायस्य यस्त्रराजस्य रत् स्वद्यापार् बीजत्येनोपशिप्तवानिस्मृपक्षेप ।

परिकरमाह ।

सद्वाहृत्य परिव्रिया ।

यया तकेव । धन्यया वव तिद्धादेशाश्र यवशाविताया शिहले त्वरहीतु समुद्दे प्रवहत्वम ह्नमनोरिक्ताया कावशासात्वमित्यादिना सर्वेषा स्पृयन्ति स्वामिनसम्प्रदेशा हत्यनेव बीजोन्यतेरैव बहुवरहणान् परिहरः ।

परिन्यासमाह ।

त्तनिष्यति परिन्यासी

यमा तर्शव।

प्रारम्बेजन्मन् स्थानिती भृतिहेती देवे केस्य दतहरू

**32**4

मिद्धेर्क्रान्तिनांऽन्ति सत्य तयाऽपि स्वेन्छाकारी भीत एवाऽस्मि मर्नु ॥

इत्यनेन योगन्धरावस् स्वय्यासार्वेदयोर्नित्यन्तिमुक्तवानिति परिन्यानः । वित्रोधनमारः ।

गुराारवानाद् वित्तोमनम् ॥२१॥

यथा रत्नावस्याम् ।

ध्रम्नापाम्नस्त्रमन्त्रवासि तमसः पार प्रयाते व्या-बाम्यानी समये मम नृपत्रन सायन्त्रने । सम्प्रत्येप मरोस्हरृतिसूयः पारास्त्रवाऽवेशितृ श्रीसुत्ववेष्टनो द्यामुदयनस्येन्द्रीरिवोडीसङे॥

इति वैनालिकमुक्षेत्र चान्नतुत्त्यकन्तराजगुण्यर्गतमा सामरिकाया समागम-हरवदुरागबोजरानुगुष्येतेच विकोधनाङ् विजोधनमिति। अया च वेर्गी-सहारे।

मन्यायस्तार्णवाम्मः प्लुनष्टुहरवनस्पन्दरभ्वानधीर कोर्णाधानेषु मर्वन्यस्यमन्यद्वायोन्यसङ्गृङ्कण्यः । इप्पाकोनायद्भवः कृष्णुसनिवनीत्यावनिष्यतयाव केनाऽन्मीन्यहनादप्रतिरसिवससो दुन्तृपिस्ताहिकोऽनम् ॥

इत्यादिना बरोदुन्दुक्तिन्त्यन्तेन द्रौपद्या वित्रोजनाद् वित्रोजनिति ।

त्रय युक्ति । सम्प्रपारसमर्थाना युक्ति

सभा रलावस्या सवार्यप बैना संबीहर्तः सबहुमान निश्चित्रता सुमन-मेवाज्यित्व निश्चन सम्या स्वा वाम्रस्य सञ्जूबी मिहनेरवरामा येन वसुन्तिना सह वय न्यनिष समुद्रादुतीयं नीतन्तिस्त्राप्ते गतस्य स्मय्वरो विटित इसनेन सागरिकाया सन्त पुरस्थाया सन्तरायस्य मुखेन दर्गातिक प्रमोजनावपारसाद् बाम्रव्यनिहनेरवरामा यथो स्वनायवनसाममहेनु प्रयोजनन्त्रपारसारसाद्वार पुरिनानित । नुम ग्रज पराहीएो परिप्राणे मग्रणसने सारिग्र मोनूए। इहागदा ता तहिं 
जनेव गच्छ इत्युपक्रमे सागरिना स्वमन सारिग्रा दाव मए सुसङ्कदाए हत्य
समिणदा पेक्सिद् च मे कुतुहत ता अविनस्त्रा पेक्सिस्सिम्दिनेन वासवदताया रत्नावतीवत्सराज्योदंदांनश्रतीकाराल् सारिकाया सुसङ्गतापंग्रेन
अत्तिक्षितप्रेसाग्रेन च बत्तराजसमागमहेतोबीजस्योपादानात् समाधानमिति । यथा च वेणीसहारे । भीम । भवतु पाञ्चानराजतन्यं श्रूपतामचिरिग्रीव कालेन ।

सञ्जूणितोष्ठुगतस्य सुयोधनस्य । स्त्वानाबनद्धमनशोणितशोणपाणि-रुत्तसविष्यति मचास्तव देवि । भीम ॥

चञ्चद्भु जभ्रमितचण्डगदाभिषात

द्रस्पनेन वेणीसहारदेवो श्रीघवीजस्य पुनरुपादानात् समाधानम् । मय विधानम् ।

वियान सुखहु शक्त् ॥२६॥
यथा मालतीमामन प्रयक्ते हुः । माध्य ।
यान्या मुहुर्वितितकन्धरमानन तद्
प्रावृत्तवृत्तकरपनिनम नहत्या ।
साम्यान्तवृत्तकरपनिनम नहत्या ।
पाइनितात दव मे हृदये कटाश ॥
पाइनियात दव मे हृदये कटाश ॥
पाइन्यमन्दममृतन्द्वनादिवाऽभूत् ।
तन्पनियो तदयुना हृदय मदीयम्
पाइन्यमुम्बत्तिमव व्यथमानमारत ॥

इत्यनन मालस्थरकोन नस्थाञ्जरानस्थ समागमहेतोबीं आनुमुखेनैन माघनस्य मदनोत्सवे सारिका मुक्खेहागता, सस्यात्तन्त्रेय गट्छ, इत्युप्तमे सागरिका स्वयत सारिका ताबन्मया सुसङ्गताया हस्तै समर्पिता प्रेसितुं च मे मुत्तहर्त तन् धानिका शिक्षको । मुसदु सकारित्याद् विधानमिति । यथा च वेगीसहारे । श्रीपदी । भगम पूर्णादि तुम्भोम्ह यह यात्रान्ध्यि समासासिदस्या । भीम ।

ननु पाञ्चालराजतनये विमद्याश्यसीवास्यासन्याः ।

मूयः परिभववकान्तिलज्जाविषुरिताननम् ।

ग्रानि,शेषितकौरव्यः न पस्यसि वृकोदरम् ॥

इति सङ्ग्रामस्य सुखदु खहेतुत्वाद् विधानमिति ।

ग्रथ परिभावना ।

परिभावो ड्रू तावेश

इति । यथा रत्नावत्थाम् । सागरिका । वृष्टा सविद्मयम् । <sup>२६</sup>४ पष्टमक्को ज्जेव झणङ्को यूय पडिच्छेदिता प्रहृषि इषट्टिद उपेट्य ए प्रव-इस्स । इरयनेन वस्तराजस्य अनङ्ग्रस्थवया अपह्नवादनञ्जस्य च प्रत्यक्षर्य पूजाप्रहणस्य लोकोत्तरःत्वादद्भुतरक्षावेदाः परिभादना । वदा च देशो-सहीरे । द्रौपदी । <sup>3</sup>कि दार्शिण एको पत्रवज्ञस्वर्रस्य विद्मयत्त्वी खर्णे वर्षे समरदुन्दुमी ताब्येयदित्ति । इति लोवोत्तरसमरदुन्दुभिष्वनेविद्मयद्शारे-चाह् द्रौपदा परिभावना ।

षयोद्धेद ।

चर्द्रा गढमेवनम् ।

द्दति । यया रत्नावस्या वत्सराजस्य भुसुमायुध्य्यपदेशमूदस्य श्रीतानिः यचमा प्रस्तापास्तेत्यादिनोदयनस्येत्यन्तेन बीचानुपुष्येनीबोद्देषेदमादुद्धरः ! यया च वेणीसहारे । आर्थं किमिदानीमध्यवस्यति गुश्चरित्युपन्नमे । वेपन्वे ।

यत् सत्यवतभङ्गभीरमनसा यत्नेन मन्दीवृत यद् विस्मर्तुमपीहित दामवता द्यान्ति वृत्तरयेच्छता ।

१. नाम पुनरिष स्वेशाहमागृहम सम्राभासियतस्या ।

२. वर्ष प्रत्यक्ष एवानङ्ग यूर्य अतिक्क्षेत्रिता धहमपि इह स्थितंदेनं पुत्रविष्यामीति ।

किनिदानीमेच प्रसवजनवरस्तनितमाससः काले काले समरदुः
 निस्ताब्यते ।

नद् धूनारणिष्ठम्मृत नृपकुनानेप्ताम्बरानपंखी न्रोयम्बोतिरिंद महन् नुध्वने यौषिष्ठिर जूम्बते ॥ मीम । महयंन् ।ज्म्मता सम्बत्सप्रतिहत्तमार्थस्य कोषम्बोद्धदेनादुद्धेद ।

ग्रय करणम् ।

करणं प्रकृतारम्नो यद्या प्लाक्त्याम् । वैग्रमो दे प्रमुमान्ह ता यमोह्दमणो मं मिवम्-स्रामे ति दिद्ठ ज पेक्सद्रक्ष ता जाव गा बांवि म देक्षण ता गमिन्स इत्यनेता अन्तराष्ट्रप्रकृतीनिक्त्यमंतारमणात् करणम् । यदा च वेणी-महारे । तत् पान्चाति गच्छामो वयस्यिमां कुण्युक्तस्यायेति । सहदेव । प्रायं गच्छाम इदानी गुरुजनानुजाता विज्ञमानुस्यमाचरितुनिस्यनेनाऽनन-गद्धुप्रस्तुपमानमङ्शामारम्मणान् करणमिनि । सर्वत्र चेहोद्देशप्रतिनिर्देग-वैषम्य जिस्साप्तम्ममान्याविकासन्त्यादिति ।

ग्रस भेद∗।

नेद. प्रोतसाहना मता ।। २७ ॥

इति । यथा वेपीनहारे । <sup>६</sup>णाण मा बलु जणसेणीपरिमदृद्दीनिदक्तोना

प्रणुवेदिगदनरोरा परिकामिस्मध जदो प्रप्यमत्तमञ्चरणीयाइ मुणीयितः

रिजनताई । मीम । असि मुक्तियि ।

श्रन्योन्यास्फालभिन्नदिष्रिधन्वसामान्द्रमस्तिष्वच ह्रू मन्ताना स्यन्द्रनानामुपरिकृतपदन्यासविज्ञान्तपत्तौ । स्क्षीतामृक्यानगोप्ठीरमद्दगिवधिवातुर्यनृत्यस्ववन्ये

सङ्ग्रामैनार्शवान्त पयिन विचरित् पण्डिता पाण्डपुत्री ।। इत्यमेन विषप्त्याया द्रीपद्या कोपोरमार्श्वीजानुगुम्येनेष प्रोत्मार्ट्राइ नेदः इति ।

- नमस्ते कुमुमायुष तदनोघदर्शनो मे भविष्यसौति, ह्प्टं यत् प्रे क्षितन्य तत् यावन्न कोऽपि मा प्रे क्षते तत् गमिष्यामीति ।
  - नाय मा सत्तु बाजसेनीपरिसवोद्दीपितशीमा अनपेक्षितप्तरीरा परि- विषयय यतोऽप्रमत्तगञ्चरखीयानि श्रूयन्ते रियुवतानि ।

330 बजारूप क

एतानि च ढादरामुखाङ्गानि बीजारम्भद्योतकानि साक्षान् पारम्पर्येख वा विवेषानि । एतेषामुबक्षेतपरिकरपरिन्यासम्बन्धुद्भेदसमाधानानामकस्य भावितेति ।

यय साङ्ग प्रतिम्त्रसन्धिमाह।

लक्यालस्य " "प्रयोदश ॥ २८॥ नम्य बीजस्य किञ्चिस् लक्ष्यः किञ्चिदलक्ष्य द्वोद्भेदः प्रकाशन तत् व्रतिमुखम् । यदा रत्नावस्या द्विनीयेऽद्ये वत्सराजसागरिकासमागमहेतोर-नुरागबीजस्य प्रयमाञ्चोपक्षिप्तस्य मुसञ्जताविहूपराभ्या ज्ञायमानतया विञ्चित् सदयस्यवासवदत्तया च चित्रफलकवृत्तान्तेन किञ्चदुन्तीयमानस्य दृरपादृश्यम्पतयोद्भेद त्रतिमुखसनिधरिति । वेग्रीसहारेर्अप दितीपेरद् भीरमादिवमेत्र विञ्चल् लहयस्य वर्णात्तवधान् चाऽनहयस्य त्रोधबीत्र-

म्योद्धेद ।

सहमृत्यगण सवान्धव सहमित्र ससुत सहानुजम् । रववलेन निहान्ति गुगुगे न विरात पाण्डगृत सुवीधाम् ॥

द्रस्यादिकि ।

दु कामारम 💎 हृदयक्षमजाम्बुपान दुवाँधनस्य च यथा गदयोरभङ्गः। नेत्रस्विता समरगुर्द्धति पाण्डवाता

मया जयद्रथवधेद्रि तथा प्रतिशा ।।

रत्येवनारिभिष्योद्भद प्रतिमुक्तसन्धितित । शस्य च पूर्वाच्चोपसिन्त-बिग्हुरपबीत्रवयनार्थानुवताति त्रयोदगाङङ्गानि भवन्ति ।

तग्याह ।

दिगारा पर्यं वासनम् ॥२६॥

षया पुरानुपादासी बार्नेमहार हरवपि । मधार्थं मध्यामातः

शायवाँहा .....१म ॥१०॥

यरिहासक्को " निरोधनम् ॥६१॥

पर्युपास्तिरनुनव \*\*\*\* इच्यते ॥३२॥

रसर्येहेित । यया रत्नावत्याम् । सागरिका । <sup>१</sup>हिमम् पसीद पतीद रि इमिला प्राप्राक्षमेत्तफरेल दुन्वहजणप्यवरात्मुवन्येखेलु पत्रमे तहावि स्रात्नेखगद त जल बहुम्र जया समीहिद करिस्स । तहावि तन्त रागित्य स्रात्मे दमलोवाजित इत्येनैक्सराजसमागमर्यात विमादिबन्यामप्युद्दिस्य सागरिकायारचेष्टाप्रयत्नोजनुराजवीजानुगती विसाम इति ।

स्रय परिमर्थ । इटरित । यथा वेश्मीतहारे । बञ्चुकी । योज्यमुष्ठतेषु चलवत्मु अववा णि वलवत्मु बाहुदेवहहायेषु प्ररिष्ठ प्रधाऽत्यन्त पुरमुष-मनुभवति । इदमपरमयवायय स्वामिन ।

प्रासन्त्रग्रहणारकुरूपरलोस्तरयापि चेता मुने-स्तापामाञ्चम न पाण्डुसुनुमिरय भीष्म सार्टः सामिन । प्रीकानेनप्रमुपरारिविजयधान्तस्य चैनाविनो बासस्याज्यमरातिस्नप्यमुष प्रीनोर्डाममस्योवेषान् ॥

दर्शनेन मीप्मादिवये दृष्टस्यार्डममण्युववान् नष्टस्य वलवता पाण्डवाना वासुदेवनहायाना सह्यामलक्षणविन्दुवीनप्रयानत्वयेन कण्चित्रसुवेन सोनानुसर्गण परिमर्ग इति । यथा च रालावत्या सारिकाववनित्रदर्गनाम्या साराज्ञानुरावीनस्य दृष्टनष्टस्य ववाज्ञ्योत्वाज्यादिना वास्या साराज्ञिनुराववीनस्य दृष्टनष्टस्य ववाज्ञ्योत्वाज्यादिना वास्योतनाज्ञमरस्यान् परिसर्ग इति ।

षप विद्युतम् । विद्युतिमिति । यया रत्नावन्याम् । सागरिना । न्यिहि प्रहित्र मे मतावो बाधेदि । सुराङ्गता । दीधिकाता निवनीदमानि मृशालिकादकानीयाऽन्या यन्द्वे ददाति । सागरिका । तानि सिपन्ती । न्यहि स्रम्शोहि एदाङ निक्षयाराशे स्रताश स्रायासेसि स्र भणामि ।

- हृदय प्रसीद प्रसीद किमनेन धावासपात्रफलेन वुलंभननप्राधंनातु-यग्येन । तथापि आलेखगन त जन हृत्वा यया समोहित करिष्यागि । तथापि तस्य नास्त्वन्यो दर्शनोपाय इति ।
   सिंत प्रथिकं में सन्तापो वायते ।
- ३. सिल अपनयेनानि कयमकारलमात्मानमायासयसि, नत् शामामि "

३३२ दशहपक

ेडुल्लहञ्जाखुराक्षो लज्जा गर्ह्य परस्वको धया । पिग्रसिह विदास पेम्म गरण शरण श्वर एकः ॥ इत्यनेन सागरिकाया बीजान्वयेन घीलोपचारविष्कृतसङ् विधूतम् । यदा प वेगीसहारे मानुमत्या दु स्वप्नदर्शनेन दुर्योधनस्यार्थनण्टशङ्क्या पाण्टविवज्य-राष्ट्रया वा रहेविधननीमितं ।

श्रथ राम । तच्छम इति । तस्या घरतेरुपश्चम राम । यथा रत्ना-बत्याम् । राजा । वयस्याञ्जया चिकितो व्हिमित वन् सत्यमासम्वयि मे यहमानस्ततः कथ न पश्यामीति प्रक्षमे । सामरिका । ध्रास्मवतम् । "हिंधम समस्सस म्योरहो वि दे एत्तिश्च सूमि रा गदो इति किनिवरस्टु-पश्चमत् राम इति ।

स्य नर्म । परिहासवव इति । यथा रत्नावत्याम् । मुसगता ।

उसिह जस्स वए तुम आसदा सो यध्य पुरदो चिट्ठदि । सानरिता ।
सास्यम् मुसजुद्रे वस्त वए सह सामदा । मुसजुता । सह प्रप्पादि है ए
विषयक्तप्रस्ता गेएह एदिम्पनेन बीजान्तित परिहासवचन नर्म ।
सवा च बेपीसहारे दुर्योधन । चेटीहरतादर्यपात्रमास देखा समर्थाति ।
पुनर्योत्नरती सर्म दत्या । \*हला उस्तिहि में कमुसाइ जाव समर्पाप है
विशास सहरिम णिवतिम हरनी प्रसारवि । दुर्योघन । पुरपाप्युपनर्यात ।
भातुमस्यान्तरस्वर्याजावस्याया हरतात् पुन्यास्य पत्तिन नर्मण पुनर्यान्तरस्वर्याजावस्याया हरतात् पुन्यास्य पत्त्तीसमेन नर्मण पुनस्यान्तरस्वर्याजावस्याया हरतात् पुन्यास्य पत्त्तीसमेन नर्मण

दुर्लमजनातुरागी लज्जा गुर्बी परवश कारमा ।
 प्रियसित विषम प्रोम भरता द्वारण केवलमेकम् ।

२ हृदय समास्यसिहि, धनोरषोऽपि ते एतावर्ती मूमि न गत इति ।

 सिंत यस्य कृते ख्यामता क्षोऽय पुरत्तित्वच्यति । सागरिका सामूर्य मुगञ्जते कृत्य कृतेज्ञामता ? व्यय बात्मशाञ्जते वतु विष्ठप्रतक्त्य सर्गहार्व्यविति ।

Y. हला उपनध मे बुसुबानि याबदधरेखामपि देवानी सपयी निवर्त-

वामि ।

प्रतिमुखाङ्गत्व युक्तमिति ।

भव नमंद्युत । पृतिरिति । यथा रत्नावन्याम् । सुमगता । १सिह मर्दिाल्ट्ट्ररा चालि खि तुप जा एव पि भट्टिला ह्रन्यावसविदा कोव ख युज्यति । सागरिवा । सभ्यू मञ्जूभीपदिहस्य । सुमञ्जूदे दालि पि स्त विस्-मसी यनेनाज्यरागवीओद्घाटनान्येन धृनिनंभंजा धृतिरिति द्वितिमिति ।

सम् प्रत्यणम् । उत्तरेति । यथा रत्नावस्थाम् । बिन्तवरः । १ नो वपस्य दिठ्ठिया बह्दसे । राजा । सकौनुवस् । वयस्य किसेतत् । बिद्रू-यरः । १ मो एद बख्त ज नए भणिद तुम एव्य मातिहिरो हो अस्तो नुस्माउहस्वददेशेण णिण्हवीप्रदीत्यादिना ।

> परिच्युतस्तरहु चकुम्ममध्यात् वि शोषमायाति मृत्गानहार । म मूरमतन्तोरपि तावकस्य तत्राज्ववायो जवत कियु स्याव्॥

इ यनेन रात्रविद्वयक्तागरिकासुरुङ्गतानामन्योन्यवचनेनीतरोतरातृत्तग्न-बीबोड्पाटनान् प्रगयनिर्मात ।

प्रय निरोध । हितरीय इति । यथा रत्नायत्याम् । राजा भिड्मूसं ।

प्राप्ता बयमिष दैवात् कण्डमनीतैव सा प्रकटराया । रत्नावसीव कान्ता भग हस्ताद् श्र शिता भवता ॥

इत्यनेन व सराजस्य सागरिवानमागमरपहिनस्य वासवदत्ताप्रवेशमूचवेन विद्रपनवचता निरोधान् निरोधनमिति ।

भय पर्युपामनम् । पर्युपास्तिरिति । यथा रत्नावत्याम् राजा ।

- रै सिंह प्रतिनिष्ट्रासीयानी त्यं या एवमपि सत्री हस्तायनिक्रवा कोर न मुज्बति । सामरिका। सजू मङ्गमीपडिहस्य मुसङ्गते इदानी-मपि न विरक्षति ।
  - २ भो वयस्य दिष्ट्या वर्षसे ।
  - मो एनत् समु तत् यनमया जिलत त्वमेव प्रानिस्तित । कोलपः कृतुमाय्यम्यपदेदोन निद्धायते ।

३३४ शतहपर

प्रसीदेनि प्रयामिदमप्ति बाग न पर्ने वरिष्याम्येव नो पुर्रारिन भवेदस्युवनम । न मे दोषोप्रनीति स्वमिदमपि हि झास्यित मुगी विमेतस्मिन् यानु धामिति न वेपि प्रियतम ॥

विमेतिसम् यानु सर्मागीत न वीचि त्रियतम् ॥ इत्यने । चित्रमतयोनीया यादेशनात् गुपिनाया बासयस्ताया प्रानुनयन नायर्-मोरकुरागोद्धाटान्वयेन पर्वं वामनीमिति ।

भारपुरागर्वाटम्बयन पश्च पानगामातः । स्य पुरुषम् । पुरुषिति । विद्युपनः । भो एसा अपुरका मिरी हर्ए इस्ते गृहीस्त्रा स्पर्धे गाटयति । विद्युपनः । भो एसा अपुरका मिरी हर्ए

समासादिदा । राजा । घयस्य <sup>।</sup> सत्यम् । श्रीरेषा पाणिरप्यस्या पारिजातस्य पत्सवः । युतोऽस्यया सवत्येष स्वेदच्छपानुतद्वव ॥

इत्यनेन नायनयो साक्षादन्योन्यदर्शनादिना सविद्येपानुरागोद्पाटनात्

पुष्पम् । प्रयोपन्यास । उपन्यास इति । यथा रत्नावत्याम् । सुसगता । "भट्टा 
प्रयोपन्यास । उपन्यास इति । यथा रत्नावत्याम् । सुसगता । "भट्टा 
प्रत सङ्काए मएवि भट्टिणो पसाएण कीतिव एव्व ता कि क्णानरणवेग 
प्रदोवि ने गदमो पसाधो ज कीस तए ग्रह एत्य ग्रासिहिम्र ति कुविया 
मे पिप्रसही सामरिका ता पसावीमनु इत्यनेन सुसगतावत्रसा सागरिका 
ममा निक्षिता सागरिकया च त्विमिति सुचयता प्रसादीपन्यासेन बीनोद्धेरा-

हुक्यात इति । ध्रयः बज्जम् । बद्धमिति । यथा रत्नावत्याम् । बासबदता । कतरु निदिश्य । <sup>2</sup>शञ्जुन्त एसानि जा तुह समीवे एद कि वसन्तप्रस्स विणाण ।

१. भो एपा मपूर्वा श्री त्वया समासदिता ।

मतंरन अञ्चया मयापि अर्ज्ः प्रतादेन श्रीष्ठितमेव तत् ि कर्णाश्रर-णेन । असायपि भे गुरु प्रताद यत् कथ त्वयाहमत्रातिश्रितेति कुपिता मे प्रिमसक्षे सामरिका तत् प्रताद्यताम् ।

प्राप्तेषुत्र एषापि या तथ समीपे । एतत् कि वसन्तकस्य विज्ञानम् । प्राप्तेषुत्र समापि एतत् चित्रकमं पश्यन्ताः शीववेदना समुरणनाः। पुत चण्डातः समावि एद चित्तवस्य पेचवन्तीए सोसवेसणासप्रस्पप्तः इत्यनेत बासवरत्तया बन्यराजस्य सागरिकानुगयोद्भेदनात् प्रयक्षतिष्ट्रगानियान वस्यमिति ।

भय वर्णं क्ष्ट्रार । चातुर्वर्णेति । यथा वीरचरिने तृतीर्वोऽद्दे ।

परियदियमृपीसामेप वृद्धे युधाजित् सह नृपतिरमात्यैलींमपादश्व वृद्ध । भयमविरतयको ब्रह्मवादी पुरास्स

प्रमुरपि जनकानामद्वहो याचनस्ते ॥

द्यनेन ऋषिक्षत्रियामात्यादीना सञ्ज्ञताना बर्णाना बचता रामिनज्ञया-त्राक्षिन परमुरामदुर्णयस्याऽद्रोहमाञ्चाहारेखोद्भ दनाद् बर्णसहार इति ।

एतानि च प्रयोददा प्रतिमुचाञ्चानि मुत्तस्ययुप्तिस्त विन्दुनसर्गान् वान्तरवीजनहाबीजप्रयानानुगतानि विषयमिति । एतेषा च मन्ये परिसर्गप्रयामक्योपन्यासपुष्पार्गा प्राधान्यम् । इतरेषा स्थामन्भव प्रयोग इति ।

मय गर्मनन्धिमाह।

गर्भस्तु """ प्राप्तिसम्भवः ।।३३॥

प्रतिमुन्तस्यो सस्यासस्य प्रवस्य स्वीकेदिस्तनस्य बीकस्य स्वियेपोद्धेदपूर्वत् सान्तरायो लागः पुनिक्टेदः पुन प्राप्ति पुनिक्टेदः पुनस्य प्रयासाः प्रवासाः प्रतिक्रियः प्रम् प्रतिक्रियः स्वाप्ति । तत्र क्षेत्रस्ति प्राप्तायाः प्रतिक्रम् स्पार्वेति द्यादि । स्या स्तावन्या नृतीकेद्वे स्वस्यक्ति स्यादि । स्या स्तावन्या नृतीकेद्वे स्वस्यक्ति स्यादि । स्याप्ति । स्याप्त

तान्युद्दिशति ।

प्रभूताहरसा 'तथा ॥१४॥ उद्वेगसम्भ्रमाक्षेपा सक्ष्म् च प्रामीवते ।

इति । ययोद्देश लक्षरामाह ।

प्रमुताहरसा छुदा इति । यथा रत्नावल्याम् । 'सायु रे प्रमण्य वसन्तम सायु । प्रदि सइदो तए चमच्चो जोगन्धराग्रणो इमाए सन्धिवन्गहिबन्ताए इत्यादिना प्रवेशकेन गृहीतवासवदत्तावेषाया क्षामरिकावा वत्सराजामिसरस छप विदूपकनुसङ्गतावल्मकाञ्चनमालानुवादद्वारेण दश्चितमित्यभूताह्ररण्म्। स्य मार्ग ।

### मार्गस्तस्य।यंकीतंनम् ॥३१॥

द्ति । यथा रत्यावत्याम् । विदूषकः । रदिट्ठिया बङ्दसि समीहिर स्मिथिकाए करनसिद्धीए । राजा । वयस्य कुशल प्रियाया । विदूपका । <sup>9</sup> ब्रइरेश सम्र ज्जेब्ब पेक्किम जासिहिसि । राजा ! दशनमपि भविष्यति । विदूषक । सगवेम् । भेनीस गा भविस्सदि जस्स दे उहसिदविद्रप दिबृद्धिविह्वो यह भमच्छो । राजा । तथापि कथमिति श्रीसुमिच्छामि । विदूषकः । क्रमें कथयत्येविमत्यनेन यथा विदूषवेखा सागरिकासमागर्म मुचित: तथँव निश्चितरूपो राज निवेदित इति तस्वार्धवयनान् मा इति ।

ग्रय रूपम्।

रूप वितक्षेत्र यापय

इति । यथा रत्नावल्याम् । राजा भही विभिष् काविजनस्य स्वगृहिणी समागमपरिभाविनोऽभिनव जन प्रति पक्षपात । तयाहि ।

 सापु रे मनात्व वसन्तक! सापु। मतिप्रवितस्त्वपानास्यो यौग यरायसोऽनया सन्धिवप्रहश्चित्तया ।

२ दिष्टचा वर्धसे समीहिताम्यधिकया कार्यसिटचा ।

ग्रविरेश स्वयमेव प्रेक्ष्य शास्त्राति । षय न अविद्याति यस्य ते उपहासतवृहस्पतिबुद्धिविभवोऽहममास्य । प्रस्तविद्यादा दृष्टि बन्न ददादि न शक्तिन पटपति घन रण्यान्तेषे स्तान न पर्योषसै । बद्दि बहुतो सच्छामीति प्रयत्नपृताऽच्दरे रमयतिनम सङ्केतम्बा तथापि हि सामिनी ॥

ग्मयोतनग् सङ्कनम्भा तथापि हि बामिना ॥ र प विरयति बनन्तरः । किन्नु सर्वु विदिनः स्वादय वृत्तास्तां बय्या इ.पने । रसापनीसमामक्राज्यागानुगुपैनैव देवीगङ्काबास्य विनर्काद् स्पप्तिति । सर्योदाहरसुमः ।

भोग्हर्च स्याटुर हुति ।

इति । यथा रत्तावन्याम् । बिद्रुषतः । सहर्पम् । ही ही भो बोहबीररनमहत्तावि स्म द्वारियो बमन्यन्य परिदोमो पानि यारियो मम समावादो पिमबम्सर् सुनिम प्रविस्त्यदि ति तब्बेमोत्सनेन रुनायची-प्रास्तिवानौजीय बोहाम्बीराज्यनाक्षादितिरूयन इत्युक्तपीक्षिदानादुराङ्गीन-वित ।

धंद क्षमः ।

दमः सञ्चित्रवानातिः

इति । यथा एतावन्याम् । राजाः । उपनद्वियामगाप्तमोत्सवस्याजीयं मे विभिद्यमयसम्बद्धान्त्रति चेतः । धारवाः ।

तीय. सम्मन्तापी न तयाध्यी बाधने प्रयाध्यमने ।

वपित आवृषि सुनेरानस्यगुननाममो दिवस ॥ इति विदूषक । साक्यरे । क्षोति मागिए एको पियदसस्तो तुम क्येब उद्दितम त्रस्य टास्ट्यर सन्तेरि ता निवेदीन से तुरानस्यान पनेन कस्य-राजस्य मागिरकायनायनपित्यक एव आस्टलायरिकाया व्यिति श्रम ।

#### प्रम प्रमान्दर मतपेदन ।

- १ मी वीराम्बीराज्यसामेनापि व ताहशी बबस्यस्य पन्तिय बासी-बाहमी मम सवालात् व्रियवचन श्रुत्या भविष्यनीति सवेषामि ।
- मधीर सन्तरिक्षे एव विवयदस्य स्वानेवीहित्य प्रत्कारणिर्नरे सन्त्र-धीर सीनवेदवाधिनस्ये वदायमन्त्रः ।

#### भागतानमयाऽपरे ११३६॥

इति । यथा रत्नावस्थाम् । राजा । चपमृत्य । त्रिये सागरिने ॥ शीताशुमुंखमुत्पले तत्र दृशी पद्मानुकारी करी रम्भागभैनिम तबोरुपुगल बाहु मृख्यलोपमौ । इत्याह्नादकराखिलाङ्गि रमसान् नि शहुमालिङ्गम मान्। ग्रज्ञानि त्वमनज्जतापविष्रराष्ट्रेष्ट नर्वापय ।।

इत्यादिना इह तदप्यस्त्येव विष्यापर इत्यन्तेन वासवदशया दत्सराज-भावस्य ज्ञान्तवात् कमान्तरमिति ।

धय सङ्ग्रह ।

सङ्ग्रहः सामदानोत्तिर

इति । यया रत्नावत्याम् । साथु शयस्य साधु इद ते वादितोषिक वटक ददामीरयाभ्या सामदानाभ्या विदूषकस्य सागरिकासमागमकारिए

सद्यहात् सङ्बह इति ।

मधाञ्चमानम् ।

भन्यूहो लिङ्गतोऽनुमा । यमा रत्नावस्थाम् । राजा । धिङ् मूर्श्वं ! स्वत्तृतः एवाध्यमार्पत

तो अमारमान्यः । कृतः।

समारूडा श्रीति श्रणयदहमानात श्रतिदिन ब्यलीक वीध्येद कृतमकृतपूर्व शल मया।

विया मुञ्चरवद्य स्पृद्यसहनाजीवितमसी

प्रकृष्टम्य श्रेम्ण स्टालितमविष्यु हि मवति ॥

विदूषकः । भौ श्रेषक्ष वासवदत्ताः वि वरहस्सदि ति ए जाणामि । सागरिया उग्ग दुवर र ओविस्सदि ति सब्बेगीत्यत्र प्रकृष्टप्रेमस्सत्तेन सापरिवानुसम्बन्धाः वागवदत्ताया भरत्ताभ्यूहनमनुमानमिति ।

मपाऽधिदसम् ।

रे मो वदस्य वासददता कि करिय्यतीति ल जानामि । सागरिका पुरद्रेदकरं भीविष्यतीति सर्वयानि ।

पाताम्यतास्यनयामि विलक्ष एव लादााङ्कता चरशायोस्तव देवि ! मूर्घ्ना । रोपोपरागजनिता तु मुखेन्दुविम्वे हत्रे धनो यदि पर बच्छा मिम स्यात् ।। मग्ब्यबद्दन यतः तु तोडल तद्बाहृतम् ।

यथा रत्नादण्याम् । राजा । प्रिये वासव्यने <sup>।</sup> प्रभीद प्रसीद । बासव-दत्ता । मधीण बारवन्ति । १ बज्जवर । मा एव भण मराससून्ताइ लु एदाई बन्बराइ नि । यदा च वेणीमहारे । राजा : गये सुन्दरक ! कषिया हुदातमञ्जराजम्य । पुरच । कुसल र सरीरमेतकेए । राजा । वितम्य निरीदिना हता धीरेगा । अत सारवि । भानी वा रव । पूरव । वदेव । म भग्यो रही भग्यो से मणोरहो । राजा । ससम्भ्रमम् । क्रविमित्वेवमादिना नरस्यदचसा तोटकमिनि ।

भयोदग ।

उद्वेगोऽरिकृता भीति

यथा रत्नादस्याम् । सार्गरका । मारग्वतम् । ४वह मन्दि-पुणेहि सत्तगो इच्छाए मरिल पि ए पारीचिर । इत्यनेन बामवदत्तात-सार्गारकाया नयमित्युद्रेगः। या हि यस्याध्यकारी स तस्यागर । यया प वेग्गीसहारे । सूत । शुस्ता समयम् । सथमासन्त एदाःमी कीरवराजपुत्र-महाबनीत्वानमाहनो भारतिरनुपलब्धसन्दरच महाराज । भवतु दूरमपन ष्टरामि स्यन्दनम् । सदाभिदयमनार्थोः दुशासन इवार्श्वसमन्त्रपनार्यमा-

षरिध्यतीति वरिष्टता भीतिरद्वेग ।

पर सम्भ्रम । शङ्काथाती च सम्भ्रम ।

- र पार्व्यंपुत्र । मेर शए चन्दसनानतानि सनु एतान्दशरासीति । २. पुरास दाशीरमावदेण ।
- ३. देव न मानी रवः, मानीऽस्य मनीर्थ ।
- रममदृतपुर्व्यस्त्वतः इच्छ्या मतुँगपि न शक्यते ।

यया रत्नावत्याम् । विदूषकः । १९वरम् । १ नग उत्स एसा । सम्भ्रमम् । नय देवी वासवदत्ता अत्ताण वावादेदि । राजा । ससम्भ्रममुष्यपंन् । नयाऽसी मगासानित्यनेन वासवदताबुद्धिगृहावाया सार्गात्वाया मग्णवाद्ध्या सम्भ्रम् इति । यया च वेणीग्रहारे । नेष्यये क्लास्त्र । अद्यत्यामा । सम्भ्रमम् । मातुला । मातुला । वण्टम् एय आतु प्रतिवामक्रमीर निरीटी सम चरवर्षेद्रीयनरायेवाशिद्रवित । सर्वया पीत वीस्त्रित हु गासास्य भीमेनेत्याज्ञद्धा । तथा प्रविद्य सम्भ्रान्त सम्हारः सून । नायवा प्रायता नुमार इति नाम । द्रयोवाभ्या प्रावता स्वाया द्वासादोश्यवधमूचवाभ्यापाण्डव-

मयाऽऽशेप ।

गर्भबीजसमृद्धेदादाक्षेष परिकीतित ॥३८॥

समा रत्नावन्याम् । गाता । वयस्य देवीप्रसादन मुत्रता नाऽयमशे-पाय परमामि । पुन नमान्तरे सर्वया देवीप्रसादन प्रति निष्यत्य पीप्नुताः स्म । पुनन्तन् विनिह्न स्थितन देवीन्य गत्वा प्रभादयामीत्यनेन देवी-प्रसादायता मानारिवासनागमिनिदित्ति गर्मशेवोद्भेदादासेयः । यथा च वेणीसहारे । गुन्दरन । वर्षह्वा विनेत्य देव्य वधासहामि तस्म वस् एद गिन्निच्छिदिवृद्यमण्योग्रस्य परिभूदिवानहिह्दोवयेगङ्गः इस्स सर्वणिविद्याहरणाव्याहरू स्वस्ताहिणो प्रम्थावोदेसग्युच्युम्सस पस परिमादि । इस्यनेन वीजम्य पत्नीन्युवतवाऽद्यियद्यवाहर्ये

एनानि द्वादरा गर्भीद्वानि प्राप्त्यासाप्तदर्शनस्वेनोपनिवन्यनिवानयेवा च मध्ये प्रभूताहरणनार्गनीटवाधिवलाशेषारणा प्रापण्यम् । इतरेवा यपासम्बद्ध प्रयोग इति शाद्भो गर्भसन्तियस्वतः ।

मधाज्यमशं ।

३४२ दशस्पर

कोथे गाउथमृदीद् " " सोऽवमर्जोऽङ्गसप्रह" ।। ३६॥

। धवमर्धानम्बमधं पर्यातोषनम् । तच्च त्रोपेन वा अपसनार् वा पिलोमनेन वा मितिद्वयमनेनाऽयेनेत्यवमारिर्तदान्तप्रसमार यससयारमा-नाभीलन्द्रुद्विन्नवोजार्यसम्बन्धो विमर्धोऽत्रमधं । यया रह्नावत्या वतुर्थेऽद्वे । घनिवृद्वयपंत्तो वासवद्ताप्रसक्या निर्पायरत्नवसी आप्रव्यवस्थातस्या विमर्थो दर्शित । यया च वेधीमहारे । दुर्योपन-हिपास्वरोमसेनायसप्रवेता ।

तीर्णे भोष्ममहोदधी कथमपि द्रोणानले निर्वृते नर्णांशीविषभोगिनि प्रश्नमिते शल्येत्रीप याते दिवम् ।

भीमेन प्रियसाहसेन रमसादल्यावदीचे जये

सर्वे जीविनसदाय वयमभी वाचा समारोपिता ॥

इरवत्र स्वल्यावशेषे जम् इत्यादिभिविज्यम्तर्यायसमस्तभीध्मारिमहार्यः बभादवभारितैकान्नविज्यायमशंनायसमशंन दशितमिरयदमशंसिन्धः ।

तस्याऽङ्ग संग्रहमाह ।

तत्राः : प्रयोदन ११४०।। यथोद्देश लक्षणमाष्ट्र ।

ययाद्य लक्षणमाह । बोचप्रस्याऽपदाद स्यात

यथा रत्नाबल्याम् । सुसगता। भैसा सु तबहिनस्ती भट्टिणीए उज्जबित गोप्रदित्ति पदाद सरिध्र उवस्थिदे बहुरते ता धाणीमिरि स्टिपि गोदिति। विद्वयक्षः। सोट्यम् । व्यदिनिगृधिण स्तु स्त्र देवीए। पुन । भो दमस्स भा सु ध्रम्सचासम्बद्धिः सा स्टेवीए उज्जदनीए पेसिरा। घटो मणिश्र ति स्टिद । राजा। बहो निरमुरोधा

उज्जईपाए पोसरा । सरा भाष्यम् । त कोहर । राजा । सहा । गर्श प्राप्त रे. सा ससु तपस्यिनी महारिक्या उज्जियनी नीमल इति प्रवार कृष्या उपस्थितेऽर्द्धराने मानीयते कृषादि मौतीत ।

 प्रतिनिष्ं रा छनु वय देव्या। भी वयस्य मत छनु प्रत्यवा सम्मादया सा छनु देव्या जन्मविन्या प्रविद्या प्रतोऽप्रियमिति व्यवस्था मिष देवीहरनेतः वासवदत्तादोषप्रस्थापनादपवादः । दशाः च वेधीमहारे । युधिष्टिरः । पाञ्चासनः चिच्चदासाहिता तस्य दुरात्मनः वेरिवास्सदस्य पदवी । पाञ्चासनः । न वेवल पदवी सः एव दुरात्मा देवीवेद्यपाद्य-स्पर्यापातमः प्रधान-हेतुस्थलस्य इति दुर्योधनस्य दौषप्रस्थापनादपवाद इति । स्पर्य गरनेतः ।

# सम्देटो शेवभावलम् ।

इति । यथा वेस्पीसहारे । मो कौरवराज कृत बन्धुनागदर्गनमन्युना मैन विपाद कृता । पर्योग्ता पाण्डवा समराबाहमसहाय इति ।

पञ्चाना सन्यवेश्रमाङ य मुद्दोध सुदोधन । दशिवस्यातसम्बद्धयवेन वेश्रमु उत्गोत्तव. ॥

इत्य युन्वाञ्चचात्मका विधिष्य कुमारयोदिष्टिमुननबान् पार्टराप्ट्रः । वर्णेडु गासनवधान् सुन्यावेव धुवा समः । प्रत्रिचोर्जप त्रियो योद्ध<sup>े</sup> न्वमेव प्रियनाहरुः ॥

द्वारुपाम च परम्परणेषाधिक्षेपररवनान्त्रहाहरतादित पोग्सङ्गामा-वित्यनेन मीरमदुर्वोषनमोरम्योग्यरोशसम्बाष्णाः दिवसवीतान्त्रपन सन्द्रदर्शन ।

धय विद्रव । विद्रवी बधबन्धादिर् यथा छलितरामे ।

> नेनाध्यम् मुनानि सामगढनामत्यनमामासिन राज्ये येन हृतासमूबनतयायांचे शीटतम् । मुप्ताक हृदयः स एए विमित्ययपुनिनामस्मतो मूर्फांभीक्तमञ्जदेशविषयो यम्बा सबी शीवन ॥

यया च गलाबस्याम् ।

हर्म्यांना हेमञ्जान्न श्रियमिव निवर्गन्यं वासादयानः साजोद्यानक्ष्माद्यस्त्रपृष्ठिता यन्त्रतीवासिताप । मुर्वन् त्रीहामहीध्र सजलजसभरस्यामस यूमपाउँ र एष प्लोषातेयोथिजन रहसहसेवोस्यितोञ्ज पुरेरीन ॥ इत्यादि । पुनर्वासवदत्तार । "धन्कप्रस्त व वसु श्रह्म श्री नारणाण भरमामि । एसा मए शिष्यियाहिश्वमाए सञ्चदा सागरिमा विद्यार्थि इत्यनेन सामरिकाचधनमानिशिव्यत इति ।

श्रम दृष्टाः ।

# बबो गुवितरस्कृतिः ॥४१॥

इति । ययोत्तररामचरिते ।

बृद्धास्तेन विचारशोयबरिताग्तिष्ठःतु हु वर्षने सुग्दस्त्रीदमनेऽव्यक्षण्डयवसो लोके महान्तो हि ते । यानि त्रीव्यकुतोमुखान्यपि एदान्यासन् खरायोधने

यद् वा कौशलिक्द्रसुमुद्दयने तमाञ्च्यिक्षणे जन ।। इत्यनेन लको रामस्य मुरोस्तिरस्वार हृतवानिति इव १ यदा च वेणीसहारे । युधिष्ठिर । भगवन् हृष्याप्तण सुभद्राभात !

> ज्ञातिश्रीतिनंतिस न कृता क्षत्रियाणा न धर्मे रह सस्य सदि गणित नाष्ट्रकस्यार्ज्यन । तुरय नाम भवतु भवत विश्वपयो स्तेहवन्य नोध्य पथा यदित विश्वणी सन्द्रसाये स्तीरवम् ।

इरवादिना बसभद्र गुर वृधिष्टिरस्तिरसङ्कृतवानिति इव । प्रथ राक्ति ।

मय दक्षित ।

थिरोपशननं शक्तिस्

इति । यथा रस्नावस्थाम् । राजा ।

सच्यात्रै शपये धियेस वचसा चित्तानुवृत्याऽधिक वैसथ्येण परेसा पादपतनैवनिये सक्षीना मुद्दुा

सार्यपुत्र न समु श्रष्ट्यारमनः नारकान् मरणानि । द्वा मद्रा निर्ध्यः हरपयः सपक्षा सागरिका विषश्चते ।

प्रत्याशतिमुषारमा न हि तथा देवी स्वस्या यथा प्रसान्येव तथ्ये शायस्तियं शोषोऽपतीत स्वयम् ॥ इत्यमेन सागरिकानाभविरोधिवामद्दत्ताकोषोपद्यमगान् प्रपित । यया योत्तररामकरिते । सब प्राष्ट ।

> विरोधो विधान्त अगरिन रह्नो निर्वृतिष्कम् सरीढत्य नवाऽपि क्रश्नि वितय प्रसुद्धति माम् । फटिरयस्मिन् दुष्टे निर्माप पण्यानस्मि यदि वा महार्थस्नीयानामिव हि महन्। कोऽधनिशय ।।

भय चुतिः। तर्जनोद्धेजने छति ।

यमा वेगीमहारे । एनच्य वचनपुरमुद्दर रामानुकस्य सनतानिकु-जपूरिसाधानिरिक्तमुद्द्रभात्तत्तिलचरनतमङ्कुलः त्रास्नोदक्तनम्माहमासोटय सर सन्तिल भैरन व स्रजित्वा कुमारवृक्षेदरेखाऽभिद्वितम् ।

जन्मेन्द्रोरमसे कुसे व्यवदितस्यवाऽपि घटमे गदा मा हु मामनकोप्णशोक्षितमुरासीत रिपु भाषमे । दर्यांचा ममुक्टेब्बिटिय हरावपुद्धत चेट्टरी मरतामान् वृषशी विद्यास समर पहुंच्युना सीयसे ॥ स्वाक्षरीका स्वाक्षरायांक्षर द्वान्यद्वारकोष्ट्या भाषास्त्रीका

द्रसादिना स्वतातिक व प्रमित्तिक वृत्तेष्वत्र नावको वना भा वृत्ती वन-तर्जनो द्वेजन हारिस्या पाण्डविवयानु कूलपुर्योधनो स्थापन हेतुस्या भीमस्य वृत्तिरुकता ।

भ्रय प्रसग्।

गुरकोतंन प्रसङ्ख्या

रित । यमा रत्नावत्याम् । देव याऽको चिह्नवेदवरेख स्वबृहिता रत्नावत्ती गामाऽखुरमती बाधवदत्ता दम्यानुपश्चत्व देवाय पृषेप्राधिता स्वी प्रति-दोरस्तेनेत रत्नावत्या आमानुब्जाभिकनप्रवाधिता प्रसमाद पुरकीतेनेत प्रमा । तथा मुच्छकटिनायाम् । चाण्डावकः । भैएन वागवदत्तत्तः सुधी १ एव सागरदत्तस्य मृत साम्यंविनयदत्तस्य नस्ता खाददत्ती व्यापा-

दशहपक 345

मज्जविशादत्तस्त जत् चालुदत्तो वावादिदु व=मद्वाश शोधदि । एरेए

श्लि गणिया वमन्तरेणा सुवगुलोभेण वावादिदत्ति । चाहदसः । मसदातपरिपूत गोत्रमुद्भासित यत् सदिस निविज्ञचैत्यब्रह्मघोषै पुरस्ताद् । मम निधनदशाया वर्तमानस्य पापैस्

तदसदसमन्धीर्यवते चोवणायाम् ॥ इस्यनेन चारुदत्तवधाञ्युदयानुक्त प्रसगाद् गुरुवृत्तकीर्तनमितिप्रसग ।

धय छलनम्।

द्यंतन चाऽवमाननम् ॥४२॥

यया रत्नावस्याम् । राजा । बाहो निरनुरोधा मयि देवीस्वनेन वास्त्र-दत्तमा इष्टासम्पादनाद् बस्तराजस्याऽवमाननान् छलनम्। यभा न

"रामाभ्युदये सीताया परिस्यागेनाऽवमाननाच् छलनमिति । ग्रय व्यवसाय । ब्यवसायः स्वदावस्य वितः

यया रत्नावत्याम् । ऐन्द्रिजालियः ।

कि धरणीए मिमङ्को भा शासे महिहरो जले जलगो।

मज्मण्हिम पद्मोसो • दाविज्जु देहि धार्णीत ॥

प्रह्या कि बहुचा जस्पिएए।

मज्फ पद्गा एसा भगामि हिवएन ज महसि दर्दु । त ते दात्रीम फुड गुरुसी मन्तप्पहाबेसा॥

दियतुं बव्यस्थान नीयते । एतेन क्लि शशिका वसन्ततेना मुंदर्गः सोनेन स्थापादिवैति ।

२. कि घरण्यां मृथाञ्चः, धाकाते महोधरो, जले व्यसनः । मध्याद्धे भदोयो बहर्यता देहि झाश्रप्तिम् ॥

भपवा हि बहुना जिल्लीन । मम प्रतिर्देषा भगामि हृदयेन यद् बाञ्छलि बच्द्रे ।

तसे दर्शयामि स्पूरं गुरोमंग्नप्रमावेल ॥

राजनेनेन्द्रजातिको मिष्याग्निसम्प्रमोध्यापनेन बत्तस्यस्य हृददम्य-सागरिकारसैनानुकूला स्वराक्तिमाविष्कृतवान् ।

पया च वर्गीसहारे।

नून तेनाव्य वीरेखः प्रतिज्ञामगमीदमा बच्चते नेश्वपाशस्त्रे स बाष्ट्र्याध्वर्वकुं क्षमा ॥ इत्यनेन युधिष्टिरः व्यवण्यवित्यसिष्क्रपोनि ।

भव दिरोधनम् । सरव्यानः विरोधनम् ।

सरभागा वराधनम् । इति । यना नेरासिहारे । राजा । रेरे मरुननम क्लिन बृद्धम्य राज्ञः पुरतौ निन्दितस्यमान्यकर्मः स्वायसे । सापि च ।

कृष्टा केवेषु मायां तब तब व पर्गान्तस्य रामस्त्रवार्षा प्रयक्ष पूपतीमा मम मृनमप्तेराज्ञया यूवदासी । प्रस्मिन् वैरानुबन्धे तब विभयकृत तैहँता ये नरेन्द्रा बाह्मोबीमातिसार्द्रविश्णुरम्ब मामनिद्वैव दर्गे ।। भीमः कोध नाटयति । धर्मृतः । सार्ये प्रसाद विभव कोरेन । प्रप्रियाशि वरोत्येष वाचा शक्तो न वर्मेसा ।

हनभान्यतो हुन्दी धनापैरस्य का व्यथा॥ भीमः। घरं मरतङ्गतकलङ्कः। भर्मैद कि न विमृत्येयमह भवन्त

दुसावनानुगमनाय बदुप्रवादिन् । विष्न गुरू न बुस्तो यदि मत्तराग्र-निभिद्यमानर्राणुनास्थिन वे धनोरे॥

क्ष्यच्च मूद्र । द्यांत स्त्रीवन् नवननानितंत्रंन् परित्यादिनोद्रीन आवुर्वस्थ्यत्वदस्य चच्च साक्षीहरोजिन । सामीदेजन् तब शुनपूर्व कारणः वीतिनन्य कृद्धे सुध्यनुस्तरमानिकृत्यरे सीमंत्र ॥

राजा । दुरात्मन् भरतकुलापसद पाण्डवपद्मी माझ भवानिव दिनत्य नाप्रगतमः । किन्तः ।

द्रध्यन्ति न चिरान् मुप्त बान्धवास्त्वा रागाङ्गरो । मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेशिनाभगभीपसम ॥ इरमादिना सरब्धयोभीमदुर्योघनयो स्वधनत्यृ वितिवरोधनिनित ।

द्यय प्रतोचना ।

सिद्धानम्बर्गतो भाविद्यशिका स्वात् प्ररोधना । क्या केलीसहारे। पाञ्चालक । स्टह च देवन चन्नपासिने युप्तम्

इत सन्देहन ।

पूर्वन्ता सल्लिन रत्नकलया राज्याभिवेकायते कृष्णा ज्यन्तविरोजिसते च बवरीवन्धे करोत् क्षणम् । रामे शातकुठारभासुरकरे क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि त्रोधान्य च वृक्षोदरे परिपतत्याजी कृत सशय ।। इत्यादिना समलानि कर्तुमाज्ञापयति । देवो बृधिष्ठिर इत्यन्तेन द्रौपदीरेग त्त्रथमनगुधिष्ठिरराज्याभिषेकयोर्मादिनोरपि सिद्धत्वेन दर्शाना प्ररोवि<sup>ति।</sup>

भ्रम विचलतम् । विकरधना विचलनम्

बना बेग्डीसहारे । भीम । शास श्रम्य ! सन्तरिपु ग्याशा यत्र बद्धा सुतैस्ते

तुर्गामव परिभूतो यस्य गर्वेण लोग । रखशिरशि निहन्ता सस्य राधासतस्य

प्रसामित वितरी वा मध्यम पाण्डवीध्यम् ॥ प्रिचातात<sup>ा</sup>

च्ििताक्षेपकौरस्य श्रीवो द्वासनामृजा। भड्क्ता सुवाधनस्योवीभीभोज्य दिरसाञ्ज्वति ॥ इरमनन विजयकोजानुगतस्वगुणाविध्यरणाद् विकलनमिति । वदा व

रत्नारम्बाम् । योगधरायसः ।

ररनावलीवसुभूनिवाश्रव्यादीनामधीना मुखसत्व्यादिषु प्रकीर्णानां वचराउँ। बनाबांबरतम् । वसुभूति । मागरिका निवंध्यांऽपवार्यः । बाभध्य पुरुर्शीय

राजपुत्र्या इत्यादिना द्वितिमिति निवेह्रणुसन्धि ।

धय तदञ्जानि । सन्धिविद्योषोः\*\*\*\* चतुर्देश ॥४४॥

ययोद्देश सक्षणमाह। श निपर्शे जीपगमन

इति । यदा रत्नावन्याम् । वसुभूतिः । वाभव्य सुगद्शीय राजपुणा । बाजम्य । ममाञ्येवमेव प्रतिभातीस्यनेन नायिवाबीजीपयमान् सन्पर्धिः।

सपा च वैएरीसहारे । भीम भवति यज्ञवैदिसम्भवे स्मरति भवती सर् <sup>हर</sup>

मबोदउम् ।

चञ्चदमञभ्रमित-दण्डगदाभियात

शञ्जूणितोदयुगलस्य गुवीधनस्य ।

स्यानावबद्धपनगोरिएतगोरूपा शिर्

इतंगियव्यति बचारतव देवि भीव ॥

ग्रप विशेष ।

इ.स.च मुक्कोपश्चिम्बस्य पुनरप्रयमान् सन्धिरिति ।

टु गासनसांतिकोहिनेन पालिना पाज्यात्या दुःग्रामनावर्ड्डण्डे केहस्त्वम् । युविध्वित्रः सक्टनु सवान् । अनुसवतु तपस्त्रिनी वेगीसहारिसयनेन वेयसयसननार्यस्थान्वयसान् विवोध इति ।

ग्रम ग्रथनम् ।

प्रयम तरुपक्षेषी
यथा रुनावन्याम् । योगम्यरायम् । देश शम्यता यद् देवस्याजिनेवयः
सर्वतम् इतिस्यनेन व सरायस्य रुनावकी-प्राप्तकार्योशसेनाद् प्रयनम् ।
यथा च वेशीसहारे । जीम । पाजवाति न वल् मयि बीविन सहर्तम्यः

दु गामनदिनुतिना देशियामपालिना । विष्ठतु विष्ठतु । स्दयमेवास्ट् महरामीरवनेन द्वौपदीकेणस्यमनकार्यस्योपक्षेपाद् द्वपनम् ।

भय निश्च ।

### ज्जुनुनारमा सु निर्मयः ॥४६॥

यया रस्तावन्याम् । योगन्यरायएा । बृद्धान्यस्ति । देव वृद्धानिय
निहत्त्वरपुष्ट्रिता विद्धादेनेत्रोपदिच्या योज्याः पारित प्रश्चीन्यित सः सार्वमौती रात्रा भनिवन्ति । वन्तरसमाद्यमानि स्वान्यस्य बहुता प्राप्यमानार्वत्रः
विहत्त्वरेत्रा देव्याः वामवदनायादिवनक्षेत्रः परिस्ट्रा यदा न स्ता तदा
भाविषिके देवी दर्ग्यति प्रश्चिद्धनुन्यास् वदनित्तः साम्यस्य प्रस्ति इत्यर्थनः
योगन्यरायमः स्वानुसूत्रवर्षः स्वापितवानिति निर्मेषः । यदा स्व वेपीनहारि ।
मौत्र । देव देव सत्रान्यायो ववाद्याति दृष्यपनहुद्धः । मया हि तस्य
दर्गान्यः ।

हुमी तिज्बा द्यारि निहित्तियसमृत्युवन्दतान विजये बदमीराये निवित्ता चनुदद्यियसभीमया प्रायेनुस्या । मृत्या निवाणि योषा मृत्युत्तमस्य दस्यसेत्यस्यान्ते नामेत् यद् बद्योषि जिनित तद्युता धाउँगप्ट्रस्य नेयन् ॥

रण्यतेन स्वानुभूतायेक्यनान् निर्धय शक्ति । सम्परिकायराम् ।

परिमाण भियो जन्म ।

727 दशस्पक

यथा रत्नावल्याम् । रत्नावनी । धारमयनम् । विद्यादराष्टा देवीए -ए। सम्कुलोभि मुह दनिदु । वासवदत्ता । सास्त्रम् । पुनर्वाह प्रसार्य । 'एहि ग्रांय लिठउरे इदाली वि बन्धतिलोह दत्तेहि ! ग्रववार्य । ग्रज्जदत्त लज्जानि ब्लुअह् इमिणा णिससत्तर्णेण ता लहु अवणेहि से बन्ध्मा। राजा। मयाऽइह देवी बन्धनमयनयति । वासयदत्ता । वस्पूर्ति निदिश्य । <sup>1</sup>मन्य ग्रमण्ययोग्न्धरावस्रोण दुञ्जसीयदिन्ह जेगा जाजन्तेण वि शाविवदिन त्यनेनाऽज्यात्यवचनान् परिभाषणम् । यथा च वेखीसहार । भीम ।

कृष्टा येमाऽसि राज्ञा सदसि नृपद्गृना तेन दुशासनेन। इत्यादिना क्वाऽमी भानुमती नोपहस्रति पाण्डयदारानित्यन्तेन भाषणात् परिभाषसम् ।

ध्य प्रसाद ।

प्रसाद पर्युपासनस् ।

इति । यथा रत्नावत्वाम् । देव क्षम्यताभित्यादि दक्षितम् । यथा च वेसी स हारे । भीन । द्रौपदी मुपमृत्य । देवि पाञ्चालराजतनये दिग्टमा वर्षे रिपुषु लक्षयेनत्यनेन डीपचा भीमसेनेनाऽऽराधितत्वात् प्रसाद इति ।

ध्याऽतस्य ।

**धानन्दो वाञ्चित्रता**वाप्तिः

**इति । म**शा रत्नावल्याम् । राजा । यथाऽऽह देवी । रत्नावली गृह्णाति । यथा च वेशीसहारे । द्रीपदी । वणाध विस्मिरिदिन्हि एव वादार णायस्त पसादेण पुर्णा निवित्तसम । कैशान् वधनानि । इत्याभ्या प्राधितरत्नावसी प्राप्तिवेदासयनवयो र्यत्सराज्द्रीपदीभ्या प्राप्तत्वादादन्द ।

झाम्यं समात्ययोग धरायणेत युर्शतीष्ट्रतास्मि येन जानताऽपि नार्थः

धितमि<sup>द्</sup>त ।

श्रय समय ।

र कृतापराचा देव्या न शक्तोनि मूख दर्शयितुम् ।

२ एहि समि निस्टुरे इदानीयपि बन्धुरतेह वर्शय। साम्बंदुत्र लाग्ने धान् **ध**हननेन नृशहत्वेन तत्सपु प्रप व्यास्था बन्धनम् ।

## समयो दु स्तिगंम ॥४७॥

इति । यया रत्नावत्याम् । वारावदत्ता । रत्नावतीमानिङ्गम् । <sup>9</sup>समससस समस्यम् विश्विण्ड् वनेन अणिन्योर्ग्योन्यममागमेन दु लिन्गमान् समय । यया च वेणीसहार । भगवन् शुनस्तस्य विजयादन्यद् यस्य भगवान पुराण-पुराय स्वयमेन नारावणो मयलान्यासाहने ।

इत्युष्मट्वादिखोभसम्भूनमूनि गुग्नितमुद्यनासस्यानहेतु प्रवानास् । प्रजममरमित्त्य विन्तयि वार्यप न त्वा भवति जगति दु सी हि पुत्रदेव दृष्ट्वा ॥

इत्यनेन युधिव्हिरदु लापगम दर्शयनि ।

ग्रय सृति । स्रतिलंब्यार्थशनन

इति । यथा रस्ताबस्याम् । शाता । भा देख्या प्रसाद न सन् मन्यते । बासव-स्ता । <sup>व</sup>स्रज्ञत्वत दूर से मादुवल ता तथा भरेसु प्रधा सन्धु प्रण न मुमरेशीयम्बान्यवस्ता लायामा रत्ताबस्या राक्षः सुस्तिष्टये उपसमनात् इतिरिति । यथा चलित्तिस्त्रारे । इटण । एते सन्धु मगदन्ती व्यासवास्मी-भीग्यादिनाऽमिन्नव मारव्यवन्तिसिट्यती यनेन प्राप्तराज्यस्वाऽमिन्नेन मुली स्थितिकरण गति ।

मय भाषणम् ।

मानाद्याप्तिस्च भाषसम् ।

दिन । यया रत्नावन्याम् । राजा । प्रतत्परमपि विवयमित । यातो विवयमग्रहरात्मममता प्राप्तयमुर्वीतने सार सारारिना सत्तापरमहोत्राप्त्यनट्नु प्रिया ।

१ समादवसिहि समादवसिटि भगिनिके इति ।

र मार्प्यपुत्र हुरे बात्या मातृतुस तसवा बुरस्य यथा बन्युननं न

देवी घीतिमुपागता च भगिनीसाभाज् जिता वोशलाः कि नार्वस्त स्वीय सत्यभारयवृषये यस्म करोमि स्पृहाम् ॥ इत्यनेन वामार्थमानादिसामाद भाषणमिति ।

मथ पूर्वभावोपगृहने ।

कार्यदृष्टच०\*\*\*\*\* • १ गूहने ।

इति । कार्यदर्शन पूर्वभाव । यथा रत्नावत्याम् । योगन्वरायण । एर विज्ञाय मिनव्या सम्प्रति कराणीये देवी प्रमाणम् । वासवदत्ता । पद्म उजेव कि एर भरोसि पिडवाएहि से रक्षणमान्त्र ति इरयोन दत्सरायण् रत्नावनी दीवतामिति कार्यस्य यौगन्यरायणामित्रायानुप्रविष्टस्य वार्ग-वदत्तया दर्शनात् पूर्वभाव इति । प्रद्मुत्प्राप्तिक्ष्यपूह्तम् । यथा वेर्षे-सहारे । नेपथ्ये । महासमरानवदम्बद्याया स्वस्ति सवने राजन्यतोशय ।

नोधान्धैर्यस्य मोक्षात् स्रतनरपतिभि पाण्डुपुर्नैः इतानि प्रत्यादा मुनतकेशान्यनुदिनसम्बना पाधिवान्त पुरास्ति । दृष्णाया केशपादा बुणितयससक्षे धूमवेन् कृष्टसा

हण्याया कथायाश बुग्यवमसक्षा घूमवनु कुरुए।
दिट्टण वद प्रजाना विरमतु निधन स्वस्ति राजत्यकेम्य ।!
पूर्णिक्ट । देवि एप वे मूर्देजाना सहारोऽभवन्दितो नघरतत्वारित्रां
विद्वजनेनेत्येनेनाऽद्भुतार्यप्राप्तिरुग्गृहन्मिति । लस्थार्यश्चमनात् वृतिरि

भवति ।

मय काव्यसहार । वरान्तिः काव्यसहारः

इति । यश । हि ते मुक्तः त्रिवनुरहरीनी व्यक्तेन काव्या रेसहरणान् काव्य महार इति ।

भय प्रशस्ति ।

श्रदास्तिः शुभशंसनम् ॥४८॥ -इति । यथा वेणीसहारे । श्रीततरदनेद् भवानु तदिदमेवमस्तु ।

१.म्पुटमेव हि न भ्रमासि प्रतिपावयास्य शतनगाताचिति ।

ष्ठरपरामित नाम जीव्यान् अन पुरपायुप भवतु मगवन् भनिनद्वत विना पुरपोत्तमे । मनितम्बनो विद्वद्वन्त्रभूष्णेषु विद्यपविन् ष्ठतमुङ्गी भूगाद् भूग प्रशाधिनमण्डल ॥

इति गुमगसनान् प्रशस्ति ।

दस्येतानि चनुदंश निवंहणाङ्गानि ।

मृब चतुः पञ्चाङ्गसमन्विताः पञ्चसन्वयः प्रतिपादिताः । पद्धनार चाऽञ्जाना प्रयोजनमित्याहः ।

उक्ताद्वानाः "प्रयोजनम् ।

इति । कानि पुनस्तानि पद्ययोजनानि ।

इप्टस्या॰\*\*\*\*\* ०नुपश्चय श्र४हाः

इति । विविधितार्वेतिकन्तन गोष्पार्वगोषन प्रवास्थार्पप्रकाशनमित्रवेषराग-षृद्धिस्वमरतारित्त च बाज्यस्येतिवृत्तस्य विस्तर हत्यङ्गै पट्प्रयोजनानि सम्बादन इति ।

पुनर्वस्नुविभागमार् ।

द्वेषा •••••०परम् ॥५०॥

दिति । मोद्रमः मूच्यः कोद्रम् दुव्यश्रव्यमित्याहः । नौरसोः ..... । भिरम्तरः ॥५१॥

इति मुष्यम्य प्रतिपादनप्रकारमाह ।

मर्थोप०•••••व्यवेशकैः ॥५२॥

इति । तत्र विप्तम्म ।

युसरवित ० • • अयोश्रितः।

दिति । धनीताना पारियतो च नधायपवाना जापको मध्यमेन अध्यमान्या या पाराभ्या प्रयोजिती विध्वस्थान इति ।

म दिनिष भुद्ध सङ्की देवे पाह ।

एका॰ '''नीवमध्यमे ॥१३॥

रित । एरेन द्वार्थ्या व बच्चमयात्राध्या एडो मर्ग-। मध्यमापम-

पात्रे बुंगपत् प्रयोजित सङ्कीणं इति ।

ग्रथ प्रवेशकी। १

तद्वदेवा॰ ''ै' '॰ सुचक ॥५४॥

तद्वदेवेति भूतमनिष्यदर्यज्ञापकस्यमतिदिस्यते । श्रनुदात्तोक्तया नीचेन नीचैर्वा पात्रं प्रयोजित इति विष्यम्भलक्षरा।पवार । प्रदूदसमान्ते इति प्रयमाञ्चे प्रतिपेध इति ।

प्रथ चूलिका।

भन्तमंदिनिका '' सुचना।

नेपव्यवानेणाऽयसूचन चूलिका । यथोत्तरचरितेद्वितीयाङ्कस्याऽधी । नपथ्ये । स्वागत तपोधनाया । सत प्रविश्वति तपोधना इति । नपय्य पात्रेस वासन्तिकया भात्रेयीनूचनाच् चुसिका । यदा दा बीरवस्ति चतुर्वाञ्कस्याऽऽदौ । नेपथ्ये । मौ भौ दैमानिका प्रवर्त्यन्ता प्रवर्त्यन्ता मञ्जलानि ।

कृशास्त्रान्तेवासी जयति भगवान् कौशिकमुनि सहस्रादोवैशे जगति विअगि शत्रमधुना । विनेता क्षत्रारेजगदभवदानवत्तपर

शरण्यो लोनाना दिनकरकुलेन्दुर्विजयते ॥ इत्यम नेपय्यवात्रीदेवं रामेण परगुरामो जित इति स्वताच् चूलिका। मयाऽह्यास्यम् ।

मञ्जान्तः '''' व्ययमुचनात् ॥१४॥ मञ्जान्ते एव पात्रमञ्जातपात्र तेन विस्तिप्टस्योत्तराङ्गुसस्य सूचन तद्वरोनोत्तराङ्कावतारोऽङ्कास्यमिति । यया वीरचरिते दितीयाः दुान्ते । प्रविश्य मुखन्त्रः । भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ भवत सभागं वानाहूयतः । इतरे । क्व भगवन्तौ । सुमन्त्रः । महाराजदसरयस्यार्जन्तके । इतरे । तदनुरोपात् तत्रैव गन्छाम इत्यसमाप्तौ । सत प्रविशन्त्युपविष्टा वसिष्टविदवामित्रपरशुरामा इत्यत्र पूर्वाङ्कान्त एव प्रविच्टेन गुम त्रपातेरा भतानन्दज्ञ स्वयम्पर्यविष्छेद उत्तराङ्कमुखसूचनादद्वास्यमिति ।

ययाऽज्ञावनारः।

प्रञ्जा०''''' • प्रदर्शयेत् ॥५६॥

यत्र प्रविष्टवारेण् भूचितमेव यूर्वीकृतिचित्रन्तार्थतर्ववारङ्कान्तरमान्तरित प्रवेशविच्यान्त्रमादिश्चयः भोरङ्कावतारः । यदा मात्रविकाणिननित्रे प्रयमाञ्चान्ते । विश्रवरः । 'वेख हि दुवेवि देवीष् वेषवारेष्ठ्रं
गत्रम महीरोत्यमरणः वरिष्यं नत्यमवदी दृदं विद्यानेष । समया मृदङ्गपदी गत्रेयं या उत्यावविद्यावीन्त्रयन्त्रम् मृद्द्वान्त्रस्यत्वाद्वरन्त्रद स्वायेष्यं
पात्राणि प्रयमाञ्चयनान्त्रावस्य इत्यानिक्यान्त्रम् । हित्तया द्वादावारमन्त्र इति ।
प्रयमाञ्चरविद्यदेनीय दिनीयाङ्कर्यान्तराष्ट्रावनार इति ।

पुरुम्प्रिया बस्तुविभागमाह ।

माट्य•\*\*\*\*\* त्रिपेय्यते । नैन प्रनारेगा त्रैधं तदाह ।

सर्वेदां ..... धारदमधास्त्रमेव स ॥१७॥

त्रय ।

सर्वेद्राध्यं \*\*\*\*\* स्वगतं मतम् ।

द्रीति । सर्वेशास्य यद् बस्तु तन् प्रकाशमिन्युच्यते । यन् तु सर्वेस्याज्यान्यं तन् स्वगनमिनिराज्यमिययम् ।

नियतभाज्यमार ।

द्विचाप्रवन् ••••• ववारितम् ॥१६॥

दित । मन्यत् तु तियतयाच्य द्विमनार जनान्तिनाभवारित भेदेन ।

नत जनान्तिकमाह।

त्रिपतारावरेला० ..... तस्त्रनान्तियम् ॥

देति । यस्य न श्राब्य तस्याप्रतर् छन्दं सर्वोर्गुनः बद्यानामिननिवर्गा-बालक्षण कर कृत्वाप्रयेज सह यन् मन्त्र्यने तज्यनान्तिकमिति ।

तेन हि द्वाविव देव्याः प्रसागेहं यन्त्रा सङ्गीतकोपण्यलं कृत्वा तप्रमञ्जो दूर्व, विवर्त्यत् । प्रयश्च मृदद्वराज्य एवनमुख्यापित्वाति ।

मया अवारितम् ।

रहस्यं .....परावृत्त्याऽपदारितम् ॥५६॥

परावृत्याज्यस्य रहस्यक्यनमपवारितमिति ।

नाट्यधमेत्रसङ्गादानासभावितमाह ।

कि बदोब्ये० ..... ० मावितम् ॥६०॥

इति । स्पष्टार्ये । सन्यास्यपि नाट्ययमाँहिए प्रयमकत्पादीनि कैटिकटुराहुतानि । तेपाममाष्टोपस्थान् नापमालाप्रसिद्धाना केपाध्यस्य देगभाधासमस्यार

नाट्यभनेत्वामावान् सक्षण मोननभित्युपसहरति ।
इत्याद्० ...... ० अपञ्चेः ॥६१॥
इति । बन्दुविभेदजान वस्तु वर्गानीय तस्य विभेदजान नामभेदा ।
रामायणादि बृहत्वया च गुणाद्यनिमिता विभाष्य वालोस्य । तर्दु

पतुत्तरम् । नैविति । नेता वरवमाणनशणः रसास्य तेषानास्य । तत्र एतुत्तरम् । नैविति । नेता वरवमाणनशणः रसास्य तेषामानुगुष्याष् वित्र चित्रस्या नयामान्यासिनाम् । चारुणि यानि वयानि तेषा प्रपत्ने वित्यारेः भागूनवेन् सनुवर्षयेन् । तत्र श्रृष्टन्यामूस मुहाराक्षाः चाहाय-नाम्ना तेनाययवटासगृहेरह हत्या विषाय शहना सनुगो निहनो मृष् ।

योगानन्दयस राचे पूर्वनन्दगुतस्तत ।

चाद्रगुप्त हतो राजा चागुवयेन महीत्रसा ।। वृहस्तवामा सूचित श्रीरामायणावन रामक्यादि ज्ञेय

इति बृहस्त्वामा सूचित धीरामायणानत रामक्यादि जेवम्। इति धीरिष्णुमूनोर्धनिकस्य कृती दशक्यावलोके प्रवस्त्रवादाः समाप्तः।

## द्वितीयः प्रकाशः

रूपकारामिन्योन्य वेदसिद्धये वस्तुभेद प्रतिपाधेदानीं नायक्भेद. प्रतिपाधते ।

नैता०\*\*\*\*\*\*०युदा ११११। बुद्युरसाहम्म्०\*\*\*\*\* व्यक्तिकः ।

मेठा नायको बिनवादिगुणसम्पन्नो भवतीति ।

सत्र विनीतः । यथा वीरचरिते ।

यद ब्रह्मवादिभिरमासितवन्तवादे

विद्यानपोन्नतिम्यी तपा। वरिष्ठे ।

दैवान् ष्टतस्त्वयि मया विनवायचार-

स्तर प्रसीद भगवन्तवमञ्जीतम्ते ॥

मधुर. त्रियदर्शन । यथा तत्रीय ।

राम राम नवनाभिरामताम्

भारायस्य सद्गी समुद्रहत् ।

**य**प्रतक्षं गुग्तरामग्रीयकः

मर्विव हृदयन्नगीर्शन मे ॥

रयामी सर्वेश्वदायकः । सथा । रवच कर्णः शिविमाँगः जीव जीमृतदाहनः ।

ददौ दवीचिरस्थीनि नाष्ट्रम्यदेव महामनाम् ॥ दक्षा शिवस्ती । वदा वीरचरिते ।

> म्फूनंद्वज्ञसहस्यनिमित्तियः त्राहुनंबायप्रतो रामस्य त्रिपुरान्तहर् दिविषदा तेजोनिस्दि धनु ।

शुण्डार न समेन यहदचले व मेन दोईण्डक

तस्मिन्नाहित एव गर्जितगुर्ण बच्छ च मग्न च तेत् । प्रियवद प्रियमाणी । यथा तत्रैब ।

> उत्पत्तिजंमदिग्नित स सगवात् देव पिनावी मुक् वींसे सत् तु न तद् गिरा पींच नतु व्यक्त हि तत् वर्मीम । रमाणः सन्तसमुद्रमुद्रितमहीनिव्यांनदानावींप

सत्यवहातपीनिधेभेगवत विवान सोवीतरम् ।। सत्यवहातपीनिधेभेगवत विवान सोवीतरम् ।। रवतलोरः । यथा तर्जव ।

नय्यस्त्राता यस्तवाध्य तनूब स्तेनाऽश्चैव स्थामिनस्ते प्रसादात् ।

राजन्यत्यो रामभद्रेश राज्ञा सञ्चलेमा पूर्यकामारक्याम । एक वीकारिकामराक्यांग । जिल्हानीय जास स्कोर्वसंस्थारिक

एव शौवादिष्यपुदाहार्थ्यम् । [तत्र शौच नाम मनोनैम्मंत्यादिना कामाग्रनिममूतत्वम् । यथा रधौ ।

> नास्त्र शुभे कस्य परिग्रहो बा किंवा मदभ्यागमकारण ते। श्रामक्ष्य भरवा वशिना रघूएा।

मन परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति ॥

वाड्मी । यदा हनुयन्नाटने । बाह्मोबैल न विदित न च बार्युवस्य त्रैयम्बनस्य तनिमा तत एव दोप्पः ।

तन् नापल परशुराम मम क्षमस्व डिम्मस्य दुविलसितानि मुदे मुख्याम् ॥

#### रूदवद्गी यया।

ये पत्थारो दिनन् रनु वशत्रसन्वानमर्त्वी-मालान्वानस्वयनमपुषा जिल्ले राजपुत्रा । रामस्तेपामचरभभवस्ताडनानालरात्रि-प्रस्मुपोध्य सुचरितन्यानन्दतीमूसनन्द.॥] न्यिरो बाट्मन नियाभिरचञ्चल । यथा बीरचरिते । प्रायश्चित चरिष्यामि पूज्याना वो व्यतिनमात् । न स्वेबदूपिष्यामि सस्त्रयहमहाव्रतम् ॥

यया वा महंहरिरातके । प्रारम्यते न सलु विय्नप्रयोन नीर्च प्रारम्य विष्नविहता विरमन्ति मध्या । विष्ने पुन पुनरिप प्रतिह्ल्यमाना प्रारब्यमुत्तमगुराह्यमिबीटहन्ति ॥

युवा प्रसिद्ध । बुद्धिज्ञानम् । गृहीतविद्येपवरी तु प्रज्ञा । यया माल-विकासिनिपेरे ।

यद् यन् प्रयोगविषये भाविकमुपदिस्यते मया तस्यै । तन् तद् विगेपन रेशान् प्रत्युपदिसतीव मे वाला ॥

स्पप्टमन्यन् । नेतृविद्येपानाह ।

श्रय शास्त ।

भेदैश्वतुर्घा लितज्ञान्तोदात्तोद्वतेरयम् ॥२॥

यदीदेश लक्षरामाह । निश्चिती \*\* \*\*\*\* सुखी गृह ।

ारावयता गुज्ज पृष्ठ । स्वत्य गीताविकता-सिषवादिविहितयोगक्षेमस्वात् चिन्नारिष्ट्र । स्रतएव गीताविकता-विष्टोभोगप्रवणस्य गृङ्कारप्रधानस्वात् च सुक्रभारवस्त्राचारो पृष्ठुरिति स्वति । सद्या स्त्रावस्थाम् ।

> राज्य निवित्तत्रन् योग्यसिषिवे म्यन्त शनस्तो भर सम्यक्गालनलालिता प्रविमितायेगोपसर्गा प्रवा । प्रद्योतस्य सुता नसन्तसम्पस्त्व चेति नाम्ना पृति नाम काममुपैत्यय मम पुनर्मन्ये महानुतसव ।

सामान्यपुराकः दिजादिक ॥३॥ वित्रवादिनेतृसामान्यगृरायोगी धीरसान्तो हिजादिक इति विप्रवराजकः **३६२ दशहप**क

सचिवारीना प्रकराजनेतृथामुपससायम् । विवसित चैवत् <sup>।</sup> तेन मैदिकस्था-दिमुल्सम्भदेशि विदादीना शान्ततीय न सानित्यम् । यदा मानतीमाधव-मुन्छनटिनारी माधवपाहस्तारि ।

तत उदयपिरेखिक एव

स्कृष्तिगुणद्यमिसुन्दरः बलावान् ।
इह षपति महोस्सवस्य हेनु

मैयनवतामुदियाय धालचन्द्र ॥

इत्यादि । यथा वा ।

सबस्तर्रास्त्रतः गोत्रमुद्धासित यत् सदिति निविद्धरस्यद्वद्वाधोये पुरस्तात् । सम निवनदशायः सत्तेमानस्य पापै स्तदसद्दामन्द्येषेच्यने पोपणायाम् ॥

प्रवधीरोदात ।

भहासरवो • \*\*\* भीरोदासी हृद्वत ॥ ४॥

महासत्त्व योजन्नोपाद्यनिम्भूतान्त सस्य । सिवर्ययनोजनासन् स्नाधन । नितृहाहुद्धारो बिनयस्थान्तावलेष दृबन्नतोऽङ्गीरतिन्हाहर धीरोदान्त । यथा नागानन्दे । जीगूतबाहन ।

धिरामुक्तं स्थान्दतः एव रक्तम् स्रवादितं दहे यम मांसमस्ति । नृष्ति न परयामि तबैव वायत् कि सक्षणान् स्थ विरातो मरस्यन् ॥

यया चं राम त्रति।

श्राष्ट्रतस्याऽ निरोत्ताय विमुख्यस्य वनाय च ।
 स मद्या लिश्तिस्तस्य स्वन्योऽप्याशास्तिभ्रमः ।

यस्य थेपान्त्रित् रूपेयांदीना सामान्यपुरातामानि विदेवसाराने वर्गेत्र्तः सन्द्रीदेन नरोषां स्वाध्यीपक्यतिसारार्थत् । मनु च स्य जीपूतः बारसारिनांनामनासनुसान रुखुच्यते । बोदास्य हि नाम सर्वोत्त्रयोग वृत्तिः । तच् च विजिषोपुस्य एवोषपधने । जीमूदबाहनस्तु निजिशोपुतर्येयः भविना प्रतिपादितः । यथा ।

तिष्ठतु माति षितु पुरो मृति यमा सिहासते वि तथा यत् सवाह्यतः दुख हि चरणो तातम्य वि राज्यतः । कि मूक्ते भ्वतत्रये बृतिरती ख्वतोष्ठिमते या गुरो-गायातः सनु राज्यमुज्जितपुरोन्तम् नार्यन्त कश्चित् गुरा, ॥ इरवतेन ।

पित्रोबियात् गुर्खूषा स्वतन्वैव्वर्धं त्रमागतम् । वन याम्बहमप्देष यदा जीमूनवाहनः॥ हत्यनेन च । झनोऽस्याऽयन्तरामप्रयानत्वान् परमकावित्यस्याच् च वीत-राटबन् द्यानना । प्रम्यच् चाउनाऽयुक्त यन् तयामृत राज्यसुयादी निर्दाभलाव नावरम्पादायाञ्तरा तथाभृतमत्त्रयन्त्रगोपवर्णनम् । यच् शोकन सामान्यगुरुयोगी डिजादियीरसान्स टनि । तदपि पारिमापिक-स्वादबाम्तबमिन्यभेदबम् । अतो वस्तुन्धित्या बुद्धयुधिष्ठिरजीमूनवाह्नादि-ध्यबद्वारा भान्तनामाविर्मावयन्ति । अशोन्यने । यद तादद्वन सर्वो वर्षेण यृतिरौदात्यमिति । न तब् जीमूनबाहनादी परिहीयने । न ह्ये सस्पैद विजिमीयुना य. केनाप्रीय कीयरवागदयादिकाप्रधाननियते स विजिमीपुने यः परापनारेणाऽवैष्रहादित्रवृत्त । तमात्वे च मार्गद्रथनादेरपि भीरोदात्त-स्वप्रमन्ति.। रामादेरपि जगस्यासनीयमिति उच्छनिप्रहे प्रगृतस्य नान्त-रीयनन्थेन भूम्यादिसाम । श्रीमृतवाहनादिग्तु प्रागौरपि परार्थसम्पारनाद् विस्वमप्पतिशेत इन्युदासतमः । ययोवतम् । तिच्छन् भातीत्यादिना विषय-मुखपराङ्मुसर्देनि । तन् सायम् । कार्यव्यत्तुष् स्वन्धतृष्ट्वासु निरमि-भाषा एवं जिमीयव । यद्श्तम् ।

> स्वमुखिनर्रामलापः निद्धते लोरङ्ली प्रतिदिनमध्याने वृत्तिरंविवर्धते । धनुभवति हि मूर्ज्या पाश्यम्बीक्षमुद्धाः मभयति परिताग छावशेषाधितानाम् ।।

३६४ दशहपर

इत्यादिना मसयस्वयुरागोपवर्णेन स्वद्यान्तरसाधय द्यान्तनावरता प्रस्तुन निर्पेषति । सामस्व चाऽनहर्ड्डत्व तच् च वित्रादेरीचित्यप्रान्तिनि वस्तुस्वित्या विद्यादे साम्तवा न स्वपरिमापामात्रेण् । बुद्धनीभूववादन-योस्तु कारणिकत्वाविद्ययेऽपि सनामनिष्नामकरण्यादियम्मंत्वाद् भेर । श्वतो जीमृतवाहनादेधीरोदात्तत्विमित्।

ग्रय धीरोडतः ।

वर्षमात्सयंग्रुविध्ठो ...... विकत्यन ॥ ११।

दर्पं शीयांदिनद मास्तयंभसहनता । मन्त्रवन्नेनार्जनदमान्वस्तुः प्रकासन माया । छद्म वञ्चनामानम् । चलोऽनवस्पितः चण्डो रीट स्वगुणससी विकरवन घीरोडतो मक्ति ।

सया जामहरन्य । कैलासोद्धारसारितमुबनविजय।

इत्यादि। यया च रावणः।

नैसोन्पैश्वपंसदमीहठहरणसहा बाहबी रावखस्य ।

धीरलिलतारिशम्दास्य अयोजतमुणसमारोपिताबस्याभिभामिनौ वास-मृपभमहोक्षादिवन् न जास्या वरिचदबस्यितरूपो लिलतारिशस्ति । वर्श हि महाकविप्रबन्धेषु विश्वतोनेकस्याभियानमसङ्ग्रतमेव स्थान व्यवेरत-पासिरवान् । तथा च अवभृतिनैक एव जामदान्य ।

ब्राह्मणातित्रमस्यागो भवनामेव भूतये ।

शामदम्यस्य वो मित्रमस्यया दुसेनायते ॥
द्दयादिना राजरा प्रति भीरोदाप्तत्वेत भैलासोद्धारसारेत्यादिभित्व रामादीनू प्रति प्रयम धीरोदतत्वन पुन पुण्या ब्राह्मणुकातिरित्यादिभित्व भीरदान्तत्वेनोधवर्तिण्त । न चाप्तस्थान्तराभिधानमनुवित्यमङ्ग भूतनाय नाना नायनान्तरपेदाया महासत्यादरस्थवस्थितत्वादिङ्गस्तु रामादेदेर प्रसम्भीपातान् प्रत्वेजस्प्यादारस्भीपात्तावस्थातोऽत्वस्यान्तरोपादानमन्त्रा-या-यम् । यथोदात्तत्वामिमतस्य रामर्थ स्थया बानिबधादमहासत्वतवा स्वावस्थापरित्याण इति । बरयमाग्याना थ दिशस्वाध्यस्याना पूर्वी प्रत्यन्य- याहृत इति निन्यसापेक्षत्वेनाऽऽविभावादुपातावस्यातोऽवस्यान्तगमिषान-मङ्गाद्विनोरप्यविषद्धम् ।

ग्रय शृङ्गारने त्रवस्या ।

स दक्षिए \*\*\*\* 'हुत ।

नायसप्रकर्णात् पूर्वां नायितः प्रत्यन्यवाञ्चर्वनायित्रयाञ्चरुविस्त-रूपवरूषो वश्यमाणभेवेन म चतुरबन्य । तदेव पूर्वोक्नाना चतुर्णौ प्रत्येकः चतुरवस्य वेन पोडसथा नायकः ।

षतुरवस्य वन पाइस्या नायक तन्ना

दक्षिणोऽस्या सहदय

योऽन्या ज्येष्ठामा हृदयेन सह व्यवहर्रान स दक्षिण । यथा मर्मेय । प्रसीदत्यालोने निर्माप किमीप प्रेमगुरवो

> रतिनीहा कोऽपि प्रतिदिनमपूर्वोऽस्य विनम । सविश्रमम करिवन् क्ययति च किन्वन् वरिजनो

सेविश्रम्म यादवन् यययातं च स्ताञ्चन् वारजन म चाङ् प्रत्येमि प्रिनसम्ब किमप्यस्य दिवृतिम् ॥

यया वा ।

रुचित प्रश्नयो वर विहम्तु बहुब सण्डतहेतनो हि दूपटा 1

चपत्रारिवधिमैनस्विनीना नन् पूर्वास्यधिकौदीप भावस्य ॥

मय गटा।

पूढविश्रियष्ट्रभ्यद्वरः । दक्षिस्तार्वाक नायिकान्तराषट्ट्राचित्ततया निप्तियङ्गारिन्याविद्येपेऽप् सहुरयत्वेन राठाद् विद्येष । यथा ।

श्राधान्यस्या वान्वीमितिराग्विमाकस्यं महत्या यदाऽप्रेत्तप्यत्तेव प्रीग्रियितमृत्रम्यां-यरम्बः । वदेनत् ववाञ्चस्यं यूजनपुत्तय बहुदुवद्यो-वियेपाञ्जपूर्येत्वी किवित न सक्षी से नगुप्रति । मय वृष्टः । व्यक्ताङ्गवैद्भृतो ष्टष्टो

यबाऽमस्शनने ।

यथा ।

वासातस्य नाटपट्टमभित नेमूरमुद्धा गर्ने वस्त्रे वज्जलनातिमा नयनयोस्ताम्बूलरायोऽत्यर । बृष्ट्वा कोपविषायिमण्डनित प्रातिस्वर प्रेमसी लोबातानरसोटरे मृष्ट्य दवासा समाध्यि गर्वा ॥ भेदान्तरमाह ।

**उनुकूलस्त्वेकनायिक ॥६॥** 

मद्देव सुखदु सथोरतुगत सर्वास्वसस्यासु यद विश्वामी हृदयस्य यत्र जरसा यांसमन्तहायों रसः । नामेनाऽऽवरणात्ययात् परिस्तृते यत् स्महसारे स्थित भद्र तस्य सुमानुपस्य कपमप्येषः हि तत् प्राप्यते ॥ महमनस्य पुनरेषा यत्सराजाविनातिकाताय्यः स्मादिरपुच्यते । पूर्व महप्रनातनापिकारानुरागेऽनुस्तः । परतस्तु दक्षिण् । नतु च गूर विविधसारित्वादः व्यातत्यविविधरवाष् च साट्यमाप्यपं अप वस्तान म मत्ता । त तथाविधविविधयत्थेष्यं सत्यायावेद्यायन्यसमान्तेत्रयंद्यां नाविसं प्रति सहस्य बाद दक्षिण्लव । न चौन्नयोव्यंद्यानिष्यमानीवस्य सोदेगं न मिनन्थविति वाष्यमविदीयात् । यहावविधयनपेषु च ।

रयन्त-पुरमुन्दरी प्रति मया विज्ञाय विज्ञायितं देवेनाव्यत्विश्विपुरुपनता द्वित्रा दिख्त नादिवा ॥ स्थादाबरक्षपातन सर्वेनाविष्यमु प्रतिवश्युपनिबन्धात् । तया म भरतः । मपुरम्यायो राष्ट्रं न याति मदनस्य नातिष् वरामेति ।

भवमानितरण नार्या विराज्यते स शु अवेत्र व्येष्टः ॥

स्ताना तिप्ठति मुन्ततेदवरसुता बारोऽङ्गराजस्वपु र्वत रात्रिरिय जिता समलया देवी प्रसादाञ्च च । रूपय न राप याति न भदनस्य वर्षमेतीत्वनेनाऽसापारण एकस्या स्नेहो निधिको दक्षिणस्येति । अतो बत्तराजादेराज्ञवन्यसमाप्ति स्पितं दाक्षिण्य-मिति। पोडराानामपि प्रत्येत ज्येष्ठमध्यमाघनत्वेनाऽच्चाच्त्वारिसन् नायक-नेदा मवन्ति ।

सहायानाह ।

पताकानावकस्त्यःवः.....तर्गुर्णः ।१७।।

प्रागुक्तप्राग्रङ्किकेतिक्तिविधेयः पताका तन्नायकः पीटमदैः प्रधानेति-वृत्तनायक्स्य सहायः । यथा मालतीमायवे मक्रन्दः रामायणे सुप्रीवः ।

सहायान्तरमाह ।

एकविद्योः "विह्यवः ।

गीतादिविद्याना नायकोषयोगिनीनाभेक्स्या विद्याया वेदिता विदः । हान्यकारी विदूषकः । झस्य विद्वनाकारवेषादित्व हान्यकारित्वेनैव सम्मते । यसा देखरूको नामानन्दे विदः । विदूषकः प्रसिद्ध एक ।

मय प्रतिनायरः ।

तुन्त्रो······'व्यसनी रिपुः ॥द॥

तस्य नामकस्येत्यम् मृतः प्रदिषञ्चनायको भवति । यया रामगुविष्ठिरयोः राक्णवुर्योषनी ।

भ्य सास्विका नायकगुणाः ।

द्योमा-----गुलाः ॥६॥

तेत्र ।

नीचे · · · · ः गीर्यदसतै ।

मीने युगा । यथा वीरवरिते ।

**उत्तालताहकोत्पासदर्शनेऽप्यप्रकम्पित** ।

नियुक्तन्तत्प्रमायाय संगोन विविश्वतात ॥ गुणाधिकं स्पर्धा यथा ।

एता पस्य पुरस्वासीमह बिस त्रीहाकिरातो हरः बोदण्डेन विरीहिना सरमसं चुडान्तरे वाहितः। इत्यारुष्यं कथादमुत हिमनिषावदी सुभद्रापते मंन्द मन्दमकारि येन निजयोदोंहंण्डयोमंण्डसम् ॥ शोयशोमा यथा ३ मर्मन ।

मन्ते स्वरोध सयताध्वरणो मूर्च्छाविरामक्षणे म्यायीनवणिताजु तस्यिनिविदो रोमोद्गम वर्मयन् । भग्नानुब्रक्यन् निजान् परमटान् सन्तर्ज्ञमन् निष्टुर षन्यो पाम जयस्मिय पृषुरणस्तम्भे पतानायते ॥

दक्षत्रोमा । यया बीरचिरते । स्कूबंडव्यसहसर्निमितमिव प्रादुमंबरयववी रामस्य त्रियुरान्तइड् दिविवदा वेजीभिरिद्ध चनु । गुण्डार वस्त्रमेन यद्वदबसे वरमेन दोवैण्डक स्तरिमन्ताहित एव गाँजतगुण इस्ट च स्वस् च वत् ॥

श्रय विलास । गतिः सर्वर्थाः \*\*\*\*स्तिमतं वच-॥१०॥

> दृष्टिस्मुणीकृतजगत्त्रयसरस्यारा धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरिनीम् । बीमारकेऽपि गिरिवद् गुरुता दधानी बीरो रसः विभयमेत्युत दर्ग एव ॥ ध्यस् माध्यम् ।

इलक्लो '''''सुमहत्यदि ।

महत्यपि विवारहेठी सभुरो विवारो सामुर्यम् । यथा । वर्षाले जानवया वरिकतस्मयन्तवा तिमुपि स्मरस्मेर गण्डोदह्मरपुनकं वनत्रवस्ततम् । मृहु पदस्तृ शृधन् रजनिचरसेनावस्वयः ॥ वटाबृटबन्यि दक्षणि रमुणा परिवृदः॥

अय गाम्भीर्यम् ।

वया ।

गाम्भीयँ \*\*\*\*\*\*नोपन्नक्ष्यतं ॥११॥

मुद्दविद्यारोपसम्माद् विदासान्यनव्यिरवितिमाध्यदिन्यद नाम्मीयम् । यया १

> बाहतस्याःभिवेनाय दिमृष्टस्य दनाद च । न मया सक्षितस्त्रस्य स्वन्योऽध्याकारविश्वमः ॥

ग्रथ स्थैयंग्र ।

स्ववमायादः • • • • कुनादिप ।

यथा वीरचरिते ।

प्राद्यम्बत बरिष्यामि पूज्याना वो व्यक्तित्रमान् । न त्वय दूर्पयिप्यामि शस्त्रग्रहमहात्रतम् ।

यस देवर ।

अधिक्षेपाद्यसहनं तेजः प्रात्मास्ययेष्यपि ।।१२॥ यथा ।

द्रुतः भृतनबुष्माण्डपनानाः वै भवन्त्यसी । धर्कुलीदर्शनाद् येन न जीवन्ति मनस्वितः ॥ धय ललिनम् ।

मृद्धाराकार\*\*\*\*\*\* सलितं मृद् ।

स्वामाविक शृह्वारी मृदु । तथाविधा शृह्वारवेष्टा च सनितम् ।

यदा समैव ।

नादप्यमन्ममदिलासदिज्ञ विसतेन रदामाविकेन स्त्रमारमनीहरेण। किता समेत्र सीत सोर्चन समोदहेल्या तस्दंद कि न विषम दिद्यीत तात्रम् ॥

यबीदायंग् । द्रियोत्स्या*०\*\*\*\*\**\*\*\*\* । १३॥

प्रियदचनेन सहाध्यतीवितावधैर्दानमीयार्वं सतास्पत्रहस्य । यया नागानन्दे ।

300

शिरामुखै स्यन्दत एव रक्तम् ग्रह्मार्जप देहे मम मासमन्ति। तृष्ति न परयामि तबैब ताबत वि भक्षामान् त्व विस्तो गरतमन् ॥ सद्पप्रहो यथा ।

एते वयममी दारा. वन्येय कृतजीवितम् । द्रत येनाऽत्र व कार्यमनास्था बाह्यबस्तुपु II

द्यव तायिका ।

स्वाञ्याः \*\*\*\*\*\* नायिका ज्ञिषाः।

तङ्गुरोति यथोवनसम्भवे नायकसामान्यगुणयोगिनी नाविनेति।

स्वस्त्री परस्त्री साधारणस्त्रीत्यनेन विभागेन त्रिघा। तत्र स्वीयाया विश्वायगर्ने सामान्यलक्षरामाह ।

मुग्धाः ''' '''शीलार्जनादियुक् ॥१४॥ शील गुवृत्तम् । पतिष्रताःकृटिला सञ्जावती पुरयोपचारनिपुरी

स्वीमा सामिका। तत्र शीलवती यथा ।

> <sup>९</sup>मुखवालिधाए पेच्छह जोव्वण्लाधण्विक्समविनासा । पबसन्ति ध्व पवसिए एन्ति व्व विवे घर एते ॥

धार्जनदियोगिती क्या । <sup>३</sup>हशिग्रमविद्यारमृद्ध भिमग्न विरहित्रविसासमुच्छाग्न ।

सञ्जावती यथा ।

कुप्तदातिकायाः श्रेतस्यं योवनलावच्यविश्वमधिसासाः । प्रदरान्तीय प्रथसिते झागस्यन्तीय विये गृहमागते ।।

हिततमित्रपारमुग्यं अभितं बिरहितविसासभृष्यादम्। मिर्ति स्वयाधारमं धन्यानां पृहे कमथाणां ॥

भणिय सहावसरल घणाए। घरै बलताख ।।

ैलज्जापज्जतपशाह्लाइ परतितिषिणिवासाइ । धनिलुधदुम्मे हाइ षर्णाल घरे ननताइ ॥ मा चैवविषा न्वीया मुख्यामध्याद्रगण्यानेदात् विविधा । तत्र ।

मुखा नववयः……गृदुः द्वीध । प्रमानवीर्णालकारमञ्जूषारमञ्जू कावणीला

प्रयमावतीर्णुतारम्यमनमथारमणे वानशीला मुलोरायप्रसादना मुन्ध-नायिका ।

तत्र वयोमुखा यया ।

विन्तारी स्नतभार एए गमिनो न स्वोवितामुर्लाठ रेबोक्ट्रासिङ्ग बलिप्तरमिद न स्पटनिम्मालतम् । मध्येश्रमा ऋबुरायवाञ्यकपिया रोशावती निमिना रम्म योवनदोशबस्यविकरोन्मिथ बयो बर्तने ॥

यपाचनमैद ॥

चन्द्वसम्मग्दनप्रान्तरेखमाबद्धरुट्मलम् । ग्रपर्याप्तमुरोवृद्धे सस्यम्याः स्तवद्वयम् ॥

नाममुध्या वया ।

दृष्टि सासस्ता विमति न शितुशीरामु बढारस्य स्रोने प्रेयमति प्रविज्ञसनीसम्बोगवार्गान्वपि । पुमामद्भयपेतराङ्कमयुना नाऽररोहति प्राय् यमा याना नृतनबीवनन्यितरस्यस्यमाना पर्ने ।

रनवामा यया ।

ब्बाहृता प्रतिबबी न सन्दर्भ यन्तुमैच्छद्दबलिम्बतानुका । मेबतेस्म शयन पराद्मुशी भा तथापि रतये पिगनिका ।।

सन्तापर्याप्तप्रसाधनानि परतृन्तिनिष्पपासानि ।
 पविनयदुर्मेपानि चन्यानां गृहे क्लश्रालि ॥

३७२ दशहरक मृदुः कोषे यथा । प्रथमजनिते वाला मन्यौ विकारमञ्जानती कितवचरिते नासज्याङ्के विनम्रभूनीय सा ! चिबुक्मलिक चोन्नम्योच्चैरवृत्रिमविभ्रमा

नयनसलिलस्यन्दिन्योध्ठैरुदन्त्यपि चुम्बिता ॥ एवमन्येऽपि सज्जासबृतानुरागनिबन्धना मुग्धा ध्यवहारा निबन्धनीया यथा। न मध्ये सस्कार युसुममपि बाला विषहते न निस्वासं मुभ्रूजंनयति सरङ्खयातिकरम्।

नबोडा परयन्ती लिजितमिय भर्तु प्रदिमुग प्ररोहद्रोमाञ्चा न पिवति न पात्र बलयति ॥ भ्रय मध्या ।

मन्योद्यदारः ......व्युरतदामा ॥ १४॥

सम्प्राप्ततारण्यमामा मोहान्तरतयोग्या मध्या । तत्र यीवनवती यदा ।

पालापान् भूविलासो निरसयति संसदाहविक्षिप्तियारं । नीबीबन्यि प्रथिम्ना प्रसन्यसि मनाङ् मध्यनिस्नो नितस्य.। उत्पुष्पत्याद्यंम्ब्छंत्रम् पशिलरगुरोः नूनमन्तः समरेण स्युप्टा कोदण्टकोटचा हरिणशिश्यदेशी दृश्यने शौवनधी ॥

कामवती क्या ।

स्मरनबनदीपूरेणोडा पुनर्ग्रसेनुभि यंदि विषुतास्तिष्ट स्यारादपूर्णमभोरया. । वदिषि निस्तितप्रस्थैरक्षै. वरस्वरमुन्युसा नयननविजीनावाकुष्ट विवन्ति रस प्रियाः ।

मध्यासम्बोधी बच्छ । <sup>9</sup>ताव व्यिष्य रश्यमण् महिसाण विकासा विराधन्ति ।

बाव भा बुबनवदसमध्यक्षाद भउते न्ति गुमगाद ध तावदेव रिततवये अहिलानां विश्वामा विश्वामां । यायन्त शुक्रमयदसरवरद्वभागि गुशुस्त्रन्ति मयनानि ।

चय प्रगयभा।

योवनान्याः .... रहारन्येशव्यवेतना ॥१०॥

गाड्यीकरा । यया पर्धव ।

ब्रायुन्दनस्तनमुगे नदने व दीर्षे बन्ने भ्रदावतिवसा सपन एतो भी ।

यध्योत्रीपक तनुरतीवगुर्रानदम्बो

मन्दा गृहिः विमृषि घोऽद्मृतयौद्यायाः ॥ ययाचा

स्तनतटमिदमुत्तुन्तु निम्नो मध्य समुन्ता जयनम् ३ विषमे मृगशाबाध्या बर्गुण नवे व इव न स्रामनि ॥

भावप्रगलुभा यथा ।

न जाने सम्मुसायाते द्रियास्मि बदति द्रिये । सर्वाच्याहाति कि यान्ति नेत्रताम्त क्षेताम् (६

रतप्रगम्भा बदा । नान्ते तत्पमुपागते निगलिता शीवी स्वय बन्धनान् वास प्रश्लबमेखलागुरायृत विस्तिन् वितम्ये स्थितम् । एतावन् सस्ति देखि नेवलमह तस्याऽद्गमङ्गे पुन कोऽमी काऽस्मि रत नु कि कथमिति स्वल्पाऽपि मे न स्पृति. ।।

एवमत्येऽपि परित्यक्ताहीयस्त्रणावैदरम्बद्राया प्रंगन्माव्यवहारा

बेदितस्या । यथा ।

ववचित् ताम्बूलावत ववचिदगरुपद्वाद्वमितनः वविचच्चूर्गोद्गारी वविचदिप न सालक्तवपद । बनीमञ्जामोपैरलक्पतितै शीर्खकुसुमैं: स्त्रिया सर्वावस्य कथयति रत प्रच्डदपटः ।।

ध्रयाऽस्याः कोपचेदरा ।

सावहित्यादरोदास्ते ""तं बदेश् । सहाऽवहित्येनाऽऽनारसवरएगेनाऽऽदरेख चोपचाराधिक्येन वर्तते स्रा दृष्ट्वैक।सनवरियने प्रियतमे परचादुषेत्वाऽऽरराद् एकस्या नयने निमोत्य विहितकीडानुबन्यच्छतः । दैपडक्रितवन्यर सपुतवः प्रेमोत्त्वसन्मानसाम् सन्तहीतसहरूपोतपनका धूर्वोऽजरा चूम्बति ॥

न चाऽनयोदीधाण्यप्रेमभ्यामेव व्यवहार । श्रित्त प्रेम्लार्डा । स्वा चैतत् तथोक्त दक्षिणलक्षणावक्तरे । (एया च धीरमध्याधीरमध्याधीर धीरमध्याधीरप्रगत्भाधीरप्रगत्भाधीरप्राचिप्रगक्षभोवाता प्रत्येक ज्येष्ठा-क्तिष्ठाभैवात् द्वादवाना वासवदत्तारत्वाक्षणीवद् श्रव-चनायिक्गामुद्य हरणानि महाकविश्ववध्यवनुसर्वव्यानि ।)

अयाऽ यहती ।

मन्यस्त्री ..... वृथाँवञ्जाञ्जिसध्ययम् ॥१६॥

नायकान्तरसम्बन्धिनी ग्रन्थोढा । यथा । दुष्टि है प्रतिवेशिनि शासामिहाऽन्यस्मिन् गृहे दास्यसि

प्राप्त हे भावपातान दासामहाज्ञ्यासमन् गृह दास्यास प्राप्तसारम्य हाद्यो पिता न विरसा नोपीरप पास्यति।

प्रवादिन्यिव यामि तद् बरमितः क्षोतम्तमासादुस नीरम्धास्तनुमानिसन्त जरठम्ध्रेतानसप्रस्थ ।।

द्य स्विति प्रधाने रसे व याचित् निवरधायिति न प्रपत्र्वता।

बन्यका तु भित्राद्यायसभ्यादपरिस्त्योताऽत्यायस्त्रीरमुक्यते । तस्या विधा-दिन्योतभयमानाया सुनद्वाद्यात्मि परोपरोपस्यवगन्ताभयात् प्रकानी कामिरव प्रयत्ते । यथा मालस्या माधवस्य गागरिकाया च यससरात्रस्याति । सन्दुरागस्य स्वेक्ष्यया प्रधानात्रधानस्यानमाध्ययो निवन्याये । यथा सरनावरीनामानस्यो मागरिकामलयस्यम्यास्य इति ।

द्वनरायः .....व्यव्यवाम् ॥२०। रचनेवः....मात्राविधासयेत् । छन्त ये नामवन्ते ते छन्ननामा श्रीतियवधिक्तिविद्वित्रश्चन्त्रय । सुवायोत्प्रयासावाप्तधनः मुत्रप्रयोवनो या । सत्रते पूर्व । स्वतन्त्रा निरङ्कुण । श्वत्नपुरुट्ट्त । पण्डनो बातपण्टादिः । एतान् बहुवित्तान् न्यनेव रञ्जयेरवर्षिम् । तः प्रयागत्वान् वद्वते । गृहीतावर्ति नुट्टन्यादिना निष्कास्येन् पुन प्रीनिम्बानाय । इट तासामीन्याविक रूपम् ।

त्पनेषु तु ।

रक्तंब \*\*\*\*\* दिख्यन्पाश्रये ॥२१॥

प्रह्मनबजिते प्रकरणानौ रस्तैवैषा विषेषा। यथा मृण्डकिकाया वर्षस्तिमेना चारुन्तस्य । प्रकृते त्वरक्तार्थप हास्यतेतुत्वान् । नाटकानौ तु विज्यनपनामके नैव विषेषा।

यय भैदान्तराणि।

मानामष्टा॰ \*\* \* • पतिकादिना ।

स्वाधीनपतिवा वामन्नज्जा विरहो स्टिता खब्बित एसहास्ता ता विप्रस्व मान्नपतिवा वामन्नज्जा विरहो स्वस्त्रीप्रभृतीनामयवस्या । नामिराप्रभृतीनामयवस्या स्वाधिराप्रभृतीनामयवस्या । नामिराप्रभृतीनामयवस्या स्वाधिराप्रभृतीनामयवस्या स्वाधिराप्रभृतीनामयवस्या । व्यवस्य स्वाधिर्माप्रभृतीनामयवस्या । व्यवस्य स्वाधिर्माप्रमृतीनामयवस्य । न व्यवस्य स्वाधिर्माप्रमृत्य । व्यवस्य विद्याप्रमृत्य विष्य स्वाधिर्माप्रमृत्य । व्यवस्य विद्याप्रमृत्य । व्यवस्य मान्य । व्यवस्य । व्यवस्य स्वाधिर्माप्रमृत्य प्रवस्य । व्यवस्य स्वाधिर्माप्रमृत्य प्रवस्य । व्यवस्य स्वाधिर्माप्रमृत्य प्रवस्य । व्यवस्य स्वाधिर्माप्रमृत्य प्रवस्य । व्यवस्य स्वाध्य प्रवस्य प्रवस्य । व्यवस्य स्वाध्य स्वाधिर्माप्रमृत्य प्रवस्य । व्यवस्य स्वाध्य प्रवस्य प्रवस्य । व्यवस्य स्वाध्य स्वाधिर्माप्रमृत्य प्रवस्य । व्यवस्य स्वाधिर्माप्रमृत्य प्रवस्य । व्यवस्य स्वाधिर्माप्रमृत्य व्यवस्य विद्वाप्रमृत्य । व्यवस्य विद्वाप्रमृत्य । व्यवस्य स्वाधिर्माप्रमृत्य स्वाधिर्माप्रमृत्य स्वाधिर्माप्रमृत्य स्वाधिर्माप्रमृत्य स्वाधिर्माप्रमृत्य स्वाधिर्माप्रमृत्य स्वाधिरम्पराय स्वाधिरमाय । व्यवस्य स्वाधिरमाय । व्यवस्य स्वाधिरमाय । व्यवस्य स्वाधिरमाय स्वाधिरमाय । व्यवस्य स्वाधिरमाय स्वाधिरमाय

१७६ दशहपह

```
द्यासन्नायतः • • • • • स्थाधीनभतुं का ॥२२॥
यथाः
```

मा गर्वमुद्धह वर्षोलतने भवास्ति वान्तस्वहस्तिनित्ता भव मञ्जरीति । धन्यापि जिल्लासिता भवानभीद्गाना वैरी न चेद् भवति वेपयुरन्तरायः ॥

प्रद वास्त्र सङ्जा ।

मुदा बासकसञ्जा स्व मण्डयत्येध्यति प्रिये ।

स्वमात्मान वेदम च हर्षेण भूषयत्येष्यति प्रिये । वानवस्तरका य**पा** ।

निजपाणिपत्तवतटस्खलगद् यभिनासिकाविवरमुत्पतिनै । यपरा परोधय शनकैमुं मुदे मुखबासमास्यकमनस्यस्तै ॥

ग्रम विरहोत्कण्टिता । विरयत्य॰\*\*\*\*\* • विरहोरकण्टितोन्सनाः १६२३।।

यपा ।

सित स बिजितो बीणावान्त्री क्याऽप्यपरिस्थाः
परिप्रवम्यवन् वास्या तन् श्रपावस्ति अवम् ।
नथमिवद्या सेफालीयु स्वतन्त्रुनुमास्यिः
प्रसर्वत नमोमप्येऽभीन्दी प्रियेण विसान्वपेते ।।
स्य सिष्टवा ।

भन लाग्डवा । सातेऽन्या०\*\*\*\*\*०क्ष्यायिता ।

यथा ।

नवनसपदमङ्गा गोपयस्यज्ञुनेन स्थमयसि पुनरोष्ड पाशिना दन्तदष्टम् । श्रतिदिशमपरस्त्रीसङ्गाशसी विसर्पेन् सथपरिमसगन्य बेन शक्यो वरीतुम् ॥ परिशिष्ट : धनिक की सस्कृत वृत्ति

गय क्लहान्तरिता। क्लहान्तरिता०\*\*\*\*\* ०ऽनुसर्वातियुक् ॥२४॥ यया ।

नि स्वामा बदन दहन्ति हृदय निम् समन्मध्यने निद्रा नैति न दृश्यते प्रियमुख ननतन्दिव रद्यने । ग्रज्ञ योपमुर्वति पादपतितः प्रेयास्तयोपेक्षित सरय क गुणमानलय्य दियते मान वय नारिता ।! ग्रथ विद्यलद्या ।

विप्रलब्धीदन्यमयमञाप्तेऽतिविमानिता । यथा ।

**ेतिष्ठ दृति यामी यामी यानम्तथापि नाऽऽयात** । याज्य परमधिजीवेज् जीवितनायो भवेत् तस्या ॥ मथ ग्रीपितविया।

दूरदेशान्तरस्ये .......शिवतप्रिया ।

ययाऽभरुशतके ।

माद्ध्यिप्रसरान् प्रियस्य पदवीमुद्दीश्य निर्विण्णया विश्रान्तेषु पविष्वह परिएातौ ध्वान्ते समुत्सपैति । दरवैर सञ्चा गह प्रति पद पान्यस्त्रियाऽस्मिन क्षरी माऽभूदायत इत्यमन्दवलितग्रीव पूनवीक्षितम् ॥

भयाऽभिसारिका । कामार्ताइ० \*\* \* \*\* ० इभिसारिका ॥ २ ४॥

ययाऽमध्यतने ।

उरीस निहितस्तारी हार हता जबने धन क्लक्तवती काञ्ची पादी रशस्मिशिनुपुरी। त्रिममभिसरस्बव मुख्ये त्वमाहनदिण्डिमा यदि किमधिकनासोलम्य दित समुदीक्षमे ॥

ययाचा

न च मेऽनमच्छिति यथा नषुता करुएा यथा च कुरुते स समि । निषुएा तथैनमुपगम्य घदे रभिद्रति चाचिदिति सन्दिदिये ॥

त्र ।

चिन्तानि इरासः \*\*\* क्रीडीइज्यस्यप्रहर्षिते ॥२६॥

परिन्यमे तु बन्यबाढे । सद्भात पूर्व बिरहोत्विक्ति परमाद् विदृषः बादिना महाऽभित्तरस्याभिकारिके । मुद्रोऽपि सप्ट्रेक्स्यानमाभि नायके विप्रविक्ये इति व्यवस्थितवाज्योरिति । सरवाधीनिश्रवयोरवस्यान्तराथे-गात् । यत् तु मालविकाभित्रमादो योऽप्येय धीर सोऽपि बृद्य देखाः प्रस्त इति मासविकाववनानन्तरम् । राजा

दाक्षिण्य नाम विम्बोरिट गायकाना मुलबतम् । तन् मे बीर्घाक्षि ये प्राशास्त स्वदाद्यानिबन्धनाः ॥

इत्यादि तत् न स्विन्तानुननाभित्रावेणाऽपितु सर्ववा मम हेन्यपीतस्तरीन सङ्क्ष्प निराता मात्रुदिनि वन्याविश्वश्रमसावित । तवाञ्चुपसन्तातनावन-गमानमाया वेनान्नस्यवधानेऽप्युत्रपिटतात्ववेवेति न प्रोपितप्रियास्य मनायस्त्रियत्वाहेवित ॥

भयाऽसा सहाद्यित्व ।

दूरयो · · · नेतृमित्रगुलान्विता ॥२७॥

बामी परिवारिका। सती रनेष्टुनिकडा। बार रज्नीप्रशुर्त । मात्रेपी कामागुमुता। प्रतिबेशिता प्रतिवृह्णि। विज्ञिनी विशुक्वादिता। तिर्हिपती चित्रवासादित्त्री। स्वयं चेति द्वतीविशेषा । नायविभाषां पीटमर्दादीना निमृद्दार्थत्वादिता गुरुगेन युवना । तथा च मात्रतीमाप्ये पामन्दवी प्रति।

धास्त्रेषु तिष्ठा सहजरम बोध प्रामल्यमभ्यस्तमृत्या च बाली नानातुरोन प्रतिभावबस्त्रमेत मुला नामदुषा विमातु॥ तत्र सखी । बवा ।

मृगीरापुद्धन्तम्यान्ताप क्य क्ययामि ते दर्नपनिता दृष्टा मूर्तिमंगा न हि वैचवी । इति तु विदिन भारीरूप स सोक्द्या सुवा तब प्राटनमा मिल्पोरक्यों विपविषटियाने ।।

भयाचा

"सच्य जाण्ड स्ट्ड् सरिसम्मि जल्मिम जुज्यए राख्रो । मरु ण तुम भिल्हम मरुण पि सलाहणिज्य स ॥

स्वय दूनी। यया ।

रमहु एहि कि शिवालस हरीन शिव्र वाउ जई वि मे सिन्छ । माहमि क्स्म मुन्दर हुरे गामो सह एक्का ॥

इत्याद्य हाम् ।

द्मय योगिदसङ्कारा । योवने .....ंटरानि ।

यौवनं मस्बोद्भृता विज्ञतिरलङ्कारा स्वीरा। भवन्ति ।

त्तन ।

भावीः .....शरीरका ॥२८॥ शोमा.....झदत्नका ॥२६॥

तत्र मावहायहेलास्त्रयोऽङ्ग् गः । शोमा बान्तिर्दीप्तिनीषुर्यं प्रागत्स्य-भौदायंषैर्यनित्ययल्या सन्त ।

भवायथयानस्ययत्नद्धाः सप्तः।

लीला \*\*\*\*\*स्वमावजाः ॥३०॥ सानेय निर्दिशति ।

निविकारात्मकात्० \*\*\*\* \* ० ऽऽद्यविकिया ।

!- सत्यं जानाति इष्ट्रं सद्धे जने युज्यते शगः । श्रियता न स्दा अशिष्ट्यामि अरणमणि इलाघनीयमस्याः ॥

 मुहुरेहि कि निवारक हरसि निजं वायो यद्यपि मे सिबय । सायधानि यस्य सुन्दर हरे ग्रामोऽहमेका ।) तत्र विकारहेती सत्यपि श्रविकारक सत्त्वम् । यया मुमारसम्बरे । श्रुतात्मरोगीतिरपि सणेऽस्मिन् हर प्रसङ्ख्यानपरो वसूत । सारमेश्वरणां न हि जातु विध्ना.

तस्मादविकाररूपात् सस्याद् य प्रथमो विकारोऽन्तर्विपरिवर्ती बीज-

स्योच्छनतेवसभाव। यथा।

दृष्टि. सालसता विभात न शिशुक्री द्वासू गढादरा स्रोने प्रेपनित प्रवित्ततससीसम्मोगवार्तास्विष । पुतामकूमपेतशाकुमधुना नाऽऽरोहति प्राक् येपा बाला नृत्वस्थीयनव्यतिच एक्टच्यमाना सनैः ।!

यथा वा कुमारसम्भवे ।

हरस्तु किन्नित् परिलुप्तर्पर्यं ध्वन्द्रोद्दयारम्भ ध्वाउम्बुराधि । उमामुने विम्बपलाधरोप्ठे स्वापारवाहास विलोचनाति ॥

यमा का ममैब ।

ैत निषम यम्रण ते क्लेच लोग्रणे दाव्यण पि त क्लेम । भएग मरणुक्तलब्दी मण व्लिम कि पि साहेद ।

भय हावः।

हैयाकसस्तुः·····विकारकृत् ॥३१॥ प्रतिनियताङ्ग विकारकारी शृङ्कारः स्वभावविशेषो

हावः । यथा मर्मेव ।

सदेव षचनं ते भैव लोचने यौवनमपि तदेव।
 मन्यानञ्जलक्षीर्न्यदेव किम्पि लावयति ॥

ेव वि पि पेन्छमान भरामाता रे ज्हा तह च्वेच । त्रिब्माय रोहमुद वद्मन्त मुद्ध रिह्मच्छेहि ॥

यय हता।

स एवं हेला .....मूचिना ।

हाब एव स्वय्टमुगोविकारस्वान् युव्यक्तश्रद्वारस्तनूचको

हैना। यस ममैव।

<sup>२</sup>तह मति से पत्रना समङ्ग विव्यमा बर्गुवेन्ट् । सवद्यवानमावा होइ विर जह भ्रहीस्स वि ॥ स्रवाद्यनदाः नम्ब । तब सोसा ।

स्पोपभोग० "" ० विजूषणम् ॥३२॥

येना हुनारसम्मवे ।

ना प्रार्मुखीं तत्र निवेश्य बाता था। व्यवस्थान पुरी निष्णु । भूतार्यगोमाहितमागनेता प्रसायने मन्तिहित्रेशि नार्य ॥

इ गादि। यया च शाहुन्तने ।

सनाधात पुष्पं विसायमम् न वरहर रनाविद्धः रत्न सम् नवसनान्यादितरसम् । समयः पुष्पाना प्रश्निव प तद्रपननय न कार्त्र मोशनार परिवृद्ध समुख्यात्यति दिवि ॥

भेय कान्ति ।

मन्त्रयाथापितच्याया सैव शान्तिरिति समृता । गोमव रागावतारधनीवृता नान्त्रि । यथा ।

- र यन् किमिव श्रेलमाला भ्रषमाना रे यथा तर्थव । निर्म्याय स्नेहमुन्या ययस्त्र मुख्या परव ॥
- तथा महित्यस्थाः प्रवृत्ताः सर्वोङ्गः विश्वमा स्तनोद्भेदे
  सम्मिनवालमावा मर्वति विरं यथा ससीनामनि

उन्मीलइदनेन्द्रदीप्तिवसरैद्धं रे समुरमारिस भिन्न पीननुचस्थलस्य च ध्वा हस्तप्रमाभिर्हतम् । एतस्या वसविज् कण्टनदर्शीवस्य मिलत्वीतृनाद् द्यप्राप्ताञ्जसून रुपेंद सहसा केरीप लग्न तम ॥

यया हि महादवेतावर्णनावसरे भट्टवागुस्य । भय माध्यम् ।

धनुस्वत्तस्य माधुर्ये

यथा शाकु नले।

सरसिजमनुबिद्ध सैबलेनाऽपि रम्य मलिनमपि हिमाशोलंध्य लक्ष्मी तनोति । इसमधिकमनीज्ञा चल्कलेनाऽपि तन्वी दिनिव हि मधुराएग मण्डन नाऽउहतीनाम् ॥ श्रय दीफिः।

दीप्तः काम्तेस्तु बिस्परः ॥३३॥

यया १

<sup>१</sup>देशः परित्र णिबन्तसुमुह्नसिओण्ट्राविसुत्ततमणिवहे । महिनारियाण विष्ध करसि मण्लाख विहमासे !!

घय प्रावल्भ्यम् ।

नि.साध्यसस्य त्राचलस्यं

मन शीमपूर्वकोऽङ्गसाद साध्वस तदगाव प्रावतम्बर् । वदा អភិន ៖

> तया सीडा विधेशकीर तथा मुग्याकी मृत्वरी । रताप्रयोगचातुर्ये समास्वाचार्यक गता ॥

प्रयोदायम् । धौदावं प्रथय सदा ।

देवात् हष्ट्राः नितान्तगुमुखदाक्षित्रश्रीतृस्वाविसुप्तमीनियहे । प्रभिक्तारिकाला विध्न करोपि श्रान्यासां विहताते ॥

यया १

भेदियह न् दनिनयार् समाप बाहनः मेहदावार ।

गरएवि मञ्जूद्रस्ये चरिको पायन्तकतम्म ॥

यया वा । ऋभन्ने भहनोदरते यादि ।

मय धैयंत्र । चापनाइबिहता०\*\*\*\*\*\* ०विङ्खाना ११३४॥

चापसानुपहता मनोकृतिसारमगुणानामनास्यादिका धैर्यमिति । यथा मासतीमाधवे ॥

ज्दलनु गगने हाती रातादखण्डस्त. शशी दहन् मदनः निजा मृत्योः परेण विद्यान्यति ।

मम त् द्रयितः स्लाध्यम्तातो जनस्यमलान्बमा क्रानम्बर्धिन न स्देवाज्य एको न च जीवितम् ॥

**प्रय** स्वाभाजिता दश । तत्र

वियानकरच०·····०विवेष्टितं ।

प्रियहताना बाग्येषयेष्टाना शृद्धारिगीनान हुनानिरसुर रए सीमा । यया मर्मद ।

ेतह दिरठ तह मनिय ताए शिषदं तहा वहां सीए। धवलोटम सटराह सदिस्मम यह सबनीहि। यदा वा १

देनोदित बददि यादि तया बदानी ।

दृत्यादि ।

ध्य जिलाम ।

तात्कालियो०\*\*\*\*\*\*\* ० जियादिय ॥३४॥

रै. दिदग सनु द्रु धिनाचा सन्तरं हृहेवा गृहस्थापा**र ।** 

गुरुग्वरि मन्प्रदृष्टे भरिना पादान्ते स्पास्य ॥ २. तया ह्ट तथा प्रतिनं तवा नियतं तया तथा झीर्छ ।

भवतोरित सदस्यं सविश्रमं यथा सदस्वीनिः ॥

**रे**न्द् दशस्पक

दीयताबलीवनादिकालेऽङ्गे शियाया वचने च स्नातिदायविदेशेपोलिति विलास । यथा मालवीमाधवे ।

म्रज्ञान्तरे किमिंप याग्यिभवातिवृत्तः वैविज्यमुरक्षितिविज्ञममायतास्याः ।
तद् भूरितात्विकविकारिविज्ञेषरस्यम्
मावार्यक विजयि मान्यपमाविरासीत् ॥
स्य विव्छितिः ।
स्राक्षक्वरुवनावः
स्रोकोशि वेषो बहुतरममनीयताकारी विव्छिति । स्या कुमार्रः
सम्भवे ।
कर्णापितो रोञ्जकपायकशे
गोरोवनाभेदिनिज्ञानारी ।

तस्या वयोते परमागक्षामाद् बतन्य चलूषि यवप्ररोह मय विश्वम । विश्वमस्वरमाः विषयंगः ॥३६॥

विभ्रमस्त्वरमाः विषयंगः । । १६ ६।। यथा । प्रभृत्वृत् विशिति वैशासकान्तद्वी-

सलापसयिततलोषनमानसाभि । भगाहि मण्डनियायितप्रीतभूषाः विन्यसहासितसकीजनमञ्जनाभि ॥ समा वा मर्गव ।

श्रुतवाऽत्यात वहि शा-तमसमाप्तिवभूषया । भानेऽञ्जन दृशोलांक्षा गणोले तिसकः रूत ॥

मप क्लिकिटिवतम् । कोवायुः ः किटिधतम् ।

यया मसैव ।

रतित्रीडाञ्चते वयमपि समासाध समय मया सन्ये तस्मा नविश्तिवस्तरण्डापंस्परे । इत्तअस्मङ्गाऽदी प्रवटितविससापंरिदत-स्मितशोषोद्द्रशान्त पुगरिप विदय्यान् सिंव मुखम् ॥

श्रथ मोट्टावितम्।

मोट्टावितः....क्यादिवु ॥३७॥

इंग्टनचारियु प्रियनमनपानुन रणारियु प्रियानुरागेर्ण मानितान्त्र नरणस्य मोद्राधितम् । यथा पदामुप्तस्य ।

वित्रवर्तिन्यपि नृपे तत्वावेशेन चेतसि । श्रीक्षार्यवितित चत्रे मुखेन्द्रमवर्शय सा ॥

यया या १

मात न हदवे नियाय सुचिर रोमाञ्चिता ही मुह-ज्ष्मानन्यरनारना मुस्तिताराङ्गा स्थाना दृशम् । मुप्तेवाऽऽतिक्षितेव ग्रुग्यहृदया लेखावयेपीमव-स्यात्मश्रोहिंगि वि हिया यथय मे गुढी निहाँन्त स्मर ॥

यथादा समैव ।

स्मरदवयुनिमित्तः गृदयुन्नेनुषस्याः सुमग् तव नथाया प्रस्तुताया समीपि । भवनि विवतपुष्ठारस्तपीनन्तनाया तवनियतवाहुर्गृष्मितः साङ्गचङ्गी ॥

हतवलायतबाहुन् म्मतः सा ह भप गुटुमितम् । सानस्दाप्ततः \*\*\*\*\*\*\* हेदााघरग्रहे ।

यया ।

नान्दीपदानि रतिनाटन विश्वमाखाम् ब्राह्मसराणि वरमाध्ययवा स्मरस्य । दण्टऽपरे त्रमधिना विद्युताव्रपाणेः मीत्नारनुष्टरदिवानि जयन्ति नार्मा ॥ रैयम दशहपर

सञ्चात्र तिसकासकान् विरसयम् सोनार्गुतिः सस्युधन् सारवारमुदञ्चयन् भुचयुगप्रोदिन्यती साञ्चसम्। यद् भ्रूमञ्जतरञ्जिताञ्चितदृशा सावसमारोहितम् तद्गवीदवधीरिसोर्डस्म न पुनः कान्ते कृतार्गीकृत ॥

भ्रथ लखितम्।

सुकुनाराङ्गः .....भयेत्। यथा ममैन।

ममैन। सभ्यभद्भाक्षाकरकितलयावर्तनैरालयन्ती

सा पश्यन्ती श्रानितलित तीषनस्याऽञ्चलेन । विन्यस्यन्ती चरणकमले तीलया स्वर्थाती-निसङ्गीत प्रयमवयसा नीतदा पञ्चनाक्षी ।।

स्य विह्रुतम् ।

प्राप्तकाल न · · · हि तत्।।३६॥

प्राप्तकाल न पर्माह तत् ॥ १६॥ प्राप्तायसरस्याजीय वानयस्य लज्जया यद्वचन तद् विहृतम् । यदा । पादागुप्ठेन भूमि किसलयरुचिता सापदेश सिखन्सी

भूयो भूय क्षिपन्ती मिम सितद्यक्ष्ते लोचने सोसतारे। वनेत्र हीनस्रमीयत्-फुरवश्रपुट यावयगर्भं दयाना यन् सा गोवाच किञ्चित् स्थितमपि हृदये सारस तर्हुनोति।

ग्रय नेतु कार्यान्तरसहायानाह । मन्त्री०\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* व्हास्याऽयंख्यिन्तने ।

तस्य नतुरर्थविन्ताया सन्यावापादितस्यक्षाया मन्त्री बाऽज्या बोप्रव या सहाव ।

तथ विभागमाह ।

गन्त्रिया \*\* \*\*\*\*\*सिद्धयः ॥४०॥

वंदत्तवक्रीडितं '''''विहितं त्रिया ॥४५॥ मारमेपक्षेप सम्मोगमानैः'''''मार्गिष्टादशघोदितम् ॥४६॥

ग्रग्राम्य इष्टजनावर्जनरूप परिहासी नर्म । तन्त्र पुद्धहास्येन स राङ्गारहास्येन समयहास्येन च रन्तिन त्रिविषम् । राङ्गारवदिष स्वानुराग-निवेदननम्मोयेन्ज्ञप्रकाशनसापरायत्रियत्रतियेदनैहित्रविषयेत । प्रय-नर्मार्जप युद्ध रसास्तराङ्गमायाद् द्विविषम् । एव पङ्कियस्य प्रत्येक

वाग्वेषचेट्टा व्यक्तिकरेणाऽस्टादराविषत्वम् । तत्र वचोडास्यवर्षे यथा ।

> परबुः शिरवधन्द्रकलामनेन स्पृशेति सस्या परिहासपूर्वम् । सार-ज्जविश्वा धरगो क्षताशी-

मोत्येन ता निवंधन जधान ॥ वेदनमं यथा नागानन्दे विदूषकशेखरकव्यतिकरे । क्रियानमं यथा

मालविकानिमित्रे उत्स्वन्तायमानस्य विद्ययकस्योपरि निपुरिएका सर्प-ऋमकारस्य दण्डकाण्ड पातयति । एव वस्यमास्रोप्यस्य वागवेषवेष्टापरस्वर्रः दाहायम् ।

श्रद्धारबद्धान्मोपक्षेवनमं यथा।

मध्याङ्गं ममय त्यन थमजन स्थितन पदः पीयता मा पूर्वित विमुज्य पान्य विवता तीतः प्रधामण्डयः । तामव समर पद्मारसम्बद्धारतस्ता निजन्नेवती त्रिक्तित तुं न राज्यसन्ति पथिकः प्रायः प्रधासानिकाः ॥ सम्मोनसम्बद्धाः

भातीए विवध मूरे परिएरी परसाधिधस्य धेलूख । गुज्डन्तस्य वि पाए पुधद हमन्ती हसन्तस्य ॥

माननमं यथा । १. सासोरे एव मुखं मृहिरणी गृहस्वामिकस्य गृहीस्वा । प्रमिश्यतोजि पारी युनीति हसस्ती हसतः ।। तदवितयमवादीयम् भमः स्व प्रिपेनि प्रियजनपरिमुक्तः यद् दुकूतः दथानः । मदिषवमृति मागाः कामिना मण्डनश्री-प्रदेशितः हि मफ्तन्य बन्दमासीकनेतः ॥

मयनमं यथा रन्ताबन्याम।लेन्यदर्शनाववरे । सुन द्वारा । श्वाणिद्रो मए एसो सन्दो सुतन्त्रो सम वितायसहएए ता देवीए निवेदहस्म-मिन्याटि ।

श्वद्वाराज्य मदनमं । यथा मसैव ।

यानियन्त्रातीनः सन्यविषयोगायविषयः दिवर ध्यात्वा सद्य इतङ्कतनस्यमितुपम् । द्रय पुळे पुळे विभिद्यमिति सन्यास्य सह्वा इतार्थिय युके स्थितसयुर्मातिङ्गति वसूस् ॥

प्रय नर्मस्थित्रज्ञः ।

नर्मस्थिक्तरः.....नदसङ्गमे ।

यया मानविकान्तिमित्रे सङ्केते नायकमित्रमृतायानायिकाया नायकः । विमृत मुन्दरि सङ्गमसाम्बन्त

ननु चिरान् प्रमृति प्रस्पेनमुखे ।

परिगृहाण गते सह रारता

स्वमतिमुन्जनताचरित श्रमि ॥ भाविका । "अट्टा देवीए भवेण श्रत्ताणो वि विद्य कार ए

पारेमीत्वादि ।

धय नमें स्होट ।

नर्मस्दीटस्नु सर्वे. ॥४७॥

यया मानतीमाववे । मनरन्द ।

रै- जातो मर्पेष सर्वो चुतान्तः सह चित्रफलकेन तन् देव्यं निवेदिष्ट्यामि । रे- मर्ने, देव्या मयेनात्मनोऽपि वियं कर्त्तं म पारयामि । ३६२

गमनमलस शून्या दृष्टि दारीरमसौष्ठव व्यक्तिसमिक कि स्वेतत् स्यात् विगन्यदतोः यद्याः । भ्रमति मुक्ते कन्दर्भाज्ञा विकारि च यौवन लस्तिसमुरास्ते ते भावा क्षिपन्ति च यीरताम् ॥ व गमनादिशियांवनेज्ञसमिवस्य मालत्याननुराण स्तोक

प्रकारयते । ग्रय नमंगभं.।

छन्तनेत्र०ःःःकैशिकी ॥४≈॥

ययाऽमहशतके ।

एससके । दृष्ट्वैनासनसस्थिते त्रियसमे परचादुपैत्याऽऽदराद एवसमा मुग्ने निर्माका निरुष्ट केरामुकान्यतः ।

एवस्या नवने निमीत्य विहित् श्रीडानुबन्यच्छतः ! ईपद्यनितकन्वरः सपुलकः प्रेमीरतसन्मानसाम् पन्तर्हाससस्तकपोसफसकः पूर्वोऽपरा चुम्बति ।। यवा प्रियद्यिकाया गर्माङ्के बहुसराजवेपसमञ्ज्ञतस्थाने साक्षा

यया प्रयस्य वतसराजप्रदेश ।

ग्रम सात्त्वती ।

विशोका "" परिवर्तकः ॥४६॥

सोकहीन सत्त्वशीर्यस्याग्दयाह्वांदिभावोत्तरो नायबच्यापार सास्वती । तदङ्गानि च सलापोत्यापकसाङ्गारयपरिवर्तकास्यानि ।

तत्र ।

यथा वीरपरिते। राम । धय स य वित्त सपरिजाराति<sup>तेव</sup> विजयाविज्ञतेन अथवता नीससोहितेन परिवस्सरसहसान्तेवासिने सुम्य प्रसादीहृत- परंबु । परंबुरामः । राम राम दाशरथे स एवाऽयमावार्य-

पादाना त्रिय परसु । धस्त्रप्रयोगसुरसीक्सहे गरााना सँ-मँबुँतो विजित एव मया दुमार । एनाबनाऽपि परिरन्स कृतप्रसादः प्रादादम् प्रियगुणो भगवान् गुरम् ॥ दत्यादिनानाप्रवारभादन्येन रामपरक्रामयोरन्योन्यनभीरववसा

सलाप इति । धर्मास्यापकः ।

बस्यापत्रस्तुः ....परम् ।।५०॥

यया वीरचरिते ।

स्नानन्त्राय च विस्मयाय च मया दृष्टोऽसि दुःसाय वा वैनृष्य्यं नु पुतोज्य सम्प्रति सम स्वद्यंने चतुप । स्वत्सा नृत्यमुग्दस्य नाऽदिम विषय कि वा बहुव्याहुनै-रिसम् विश्वतुत्रामदान्यविषये वाही धनुवृक्तसताम् ॥ सम् साह्यास्य ।

मन्त्रार्थः .... सङ्घनेदनम् ।

मन्त्रपत्र या । यया मुटाराक्षप्ते राक्षसस्यायातीता चाएवयेन स्वतुद्धा भेदनम् । स्रवंशस्या तत्रैव । यथा पर्वतकाभरणस्य राक्षस-ह्यत्तपमेन मनवकेतुमहोत्यायिभेदनम् । वैदादत्या तु । यथा रामायछै रामस्य देवशस्या राक्णाल् विभीषणस्य भेत इत्यादि ।

भय परिवर्तक ।

प्रारक्षोत्यानः ••••••परिवर्तकः ॥५१॥ प्रस्तुतस्योद्योगकार्यस्य परिस्थागेन नार्यान्तरकरणः परिवर्तकः । यपा वीरचरितः ।

हेरम्बदन्तमुससोन्सिकतंगभित्त-वदो विज्ञासविद्यास्त्रस्यसम्बद्धन मे । रोमाञ्चवञ्च्युनितमद्भुतसीरसाभाद् यत् सरयम्बद्धरितम्बद्धित त्याम् ॥ राम । ममन् परिरम्मणमिति प्रस्तुतप्रतीपमेदित्यादि । सार्चतीमुपसहरनारमटीवासपुमाह । ३६४ दशरूपरु

एभिरड्गेश्च• '' '''वस्तूत्यानावपातने ॥५२॥ मायामन्त्रवलेनाऽविद्यमानवस्तुप्रकाशनम् । तन्त्रवलादिन्द्रजालम् ।

₹

तत्र । सड्कष्यक्तत्तुः '''नेत्रन्तरपरिधह, ॥१३॥

मुद्दादलनमीदिद्रक्योगेन वस्तूत्यापन सहिद्यन्ति । यमोद्दनपरिते विति-ज्ञहस्तिप्रयोग । पूर्वनायकावस्यानिवृत्याऽवस्यान्तरपरिप्रहमन्ते सहिक्षान्तिका मन्यन्ते । यया बालिनिवृत्त्या सुवीव । यथा च परसूराम-

स्योद्धस्यनिवृत्त्मा सान्तत्वापादन पुण्या ब्राह्मणजातिरित्दादिना ।

श्रव सम्फेट । सम्फेटस्तुःःः सरच्योईंग्रोः ।

यया माधवायोरघण्टयोमीलतीमाधवे । इन्द्रजिल्लक्ष्मस्यौर्व रामायणप्रतिवद्धवस्तुषु ।

मय वस्तृस्थापनम् ।

मायाद्युश्यापित वस्तू बस्तूरथापनिष्ठयते । यथोदात्तराधवे ।

जीवन्ते जविनोऽपि सान्द्रतिमिश्वातैवियत्क्यापिनिः मस्वन्त सवलारवैरपि रुच वस्मादकस्मादमी ।

एतारचोप्रकतन्थरन्ध्र रुधिरैराध्यायमानोदरी मुझ्चन्यानवकन्दरानलमुखस्तीवा रवा फेरवा ॥

इत्यादि । स्याऽवपात ।

भवपातस्तुःःःःःवद्यवद्यैः ॥५४॥

यया रस्नावस्थाम् । बच्छे मृत्याज्यदेशेष वनक्षयमध शृद्धलादाम वर्षेन् त्रान्त्वा द्वाराणि हेताचलचरणवलित्विकुणीचजवासः ।

दत्तात द्वौ गजानामनुमृतसरणि सम्धमादस्यपासैः

प्रश्नष्टीज्य प्लवङ्गः प्रविश्वति नृषतेर्वन्दिर मन्दुरात, ॥

नष्ट वर्षवर्रमंनुष्यम्। नामानः । ग्रन्तः कञ्चुकि कञ्चुकस्य विश्वति त्रामादय वामनः । पर्यन्ताययिक्रिनिजन्य सद्दा नाम्नः किरातैः कृत मुच्या नीपतयैव यान्ति शनकरात्मेशसासद्भनः ॥ यया च प्रयदर्शनाया प्रयमेष्ठक्षे विन्स्योतस्वतस्त्रन्दे ।

चपसहरति ।

एभिरङ्ग श्च० .....नाटकलक्षर्णे ॥५५॥

कैशिकों ····प्रतिजानते ॥५६॥

सा तु तस्ये बनिचरि न बृदयेने न घोषपद्यते रखेषु हान्यादीना भारत्यात्मकृत्वात् । नीरमस्य च कान्यायम्य चाऽमानान् । तिन एवैता भिषेत्रस्य । भारती तु सन्दर्शति रासम्बनगतनान् तनैव वाच्या ।

वृत्तिनियममाह ।

मृङ्गारे.....मारती ॥५७॥

देशभेदभिन्नवेषादिस्तु नायकादिब्यापार प्रवृतिरित्याह ।

देशमाया० ..... प्रयोजयेत् ॥ ५८॥

तन पाठ्य प्रति विशेष. ।

पाठ्यः ..... कविवत् ।।५६॥ स्विविदिति देवीप्रभतीना सम्बन्धः ।

स्त्रीसा """द्वीरसेम्बरमेषु च ।

प्रकृतेरागतः प्रावृतम् । प्रकृतिः सस्कृतं तद्भव तत्समः देशीरयनेक-प्रकारम् । सुरक्षेती मागधी च न्यदास्त्रनियते ।

पित्राचा॰\*\*\*\*तया ॥६०॥

यहेश \*\*\*\*\* भाषाव्यतिकमः ॥६१॥

स्पष्टार्यंमेतत् ।

मामन्त्र्यामन्त्रकौचित्येनाऽऽमन्त्रणमाह ।

भगवन्तोः मगवन्ताः ॥६२॥

यार्थाविति सम्बन्ध ।

दशस्यर 33€

रथोः….नै: ॥६३॥

द्यपिशस्त्रात् पूज्येन शिष्यारमजानुजास्तातीत वाच्याः । सोऽपि तैस्ताः

तेति सुगृहीतनामा चेति ।

माबोऽनुगेन .....च । सूत्रधार पारिपादवंकेन भाव इति वनतन्य । स च सूत्रिणामार्प इति। देव \*\*\*\*\*चाघमेः ॥६४॥

धामन्त्रजीवा \*\*\*\*\* स्थिवः ।

विद्वह वादिस्त्रियो मतुंबदेव देवरादिभिवाच्याः।

सत्र स्त्रिय प्रति विदेश ।

समाः सथा ॥६४॥

कृट्टिस्यम्बे० \*\*\* ज्ञारवचते ॥६६॥

पुज्या जरती धम्बेति । स्पष्टमन्यत् ।

चेष्टानृशो०\*\*\*\* इक्षिखण्डमीलि. ॥६७॥

दिइमात्र दशितमित्यर्थ । चेप्टा कीनाचा गुणा विनयाचाः उदी-द्दतय संस्कृतप्राकृताचा उनतम संस्व निविधारात्मक मनीभाव सरवस्य प्रथमोनिकार तेन हावादयो ह्य पलिसता ।

> इति श्रीविष्णुमुनोर्धनिवस्य वृतौ दशस्पादलोकै नेतृप्रवाशी नाम द्वितीयत्रकाश समाप्तः।

## वृतीयः प्रकाशः

बहुबन्तन्थतया रमविचारातिलञ्चनेन बस्तुनेतृरसाना विभज्य नाटला-रिपूपयोग प्रतिपाद्यते ।

प्रष्टुति०\*\*\*\*\* नाटकमुख्यते ॥१॥

चहिष्टयमेर्न हि नाटकमनुदिष्टयमाँका प्रश्रतादीना प्रश्रति । धेव प्रतीतम् ।

तन ।

पूर्वरङ्ग \*\*\*\*\* ०नट ॥२॥

पूर्वे रज्यनेप्रीमिनानि पूर्वरङ्गो नान्यसासा । तत्स्यप्रयमप्रयोग-गुरुषापनादी पूर्वरङ्गाता । त विधाय थिनिगेते प्रयम मूत्रधारे तहदव वैद्याबस्थाननादिनो प्रतिद्याऽयों नट काब्याव स्थापवन् । स च ना यार्थ स्वापनात् सुबनात स्थापनः ।

दिव्यमत्यें ""पात्रमयापि वा तद्या

म स्वापको दिव्य बस्तु निब्बो भूरवा मार्थे च मर्त्यरूपो मूरवा मिद्य च निब्बमरवंबोरन्यतरी भूरवा सूच्येत् । वस्तु बीज मुख पात्र वा । बस्तु बयोदास्तराधवे ।

रामो मूर्फिन निषाय नातनमणन् मालामिनाऽज्ञा गुरो-स्तद्दनमण्या मर्रतन् राज्यमस्ति मात्रा सहैबीज्यसम् । तौ सुत्रविद्योपणावनुगतौ नीतौ परा सम्पद प्रोहीस्ता दशक्यरअभृतयो ध्वस्ता तमस्ता द्विप ।। वीव यथा रत्नावरयाम् ।

दोर्घपादिवसंपेरा परिज्ञमो वैद्यावस्थानकप् । द्यादिशस्यात् ताण्ड-वादिना परिक्रमो रोद्रमिति सस्यवित् दिश्यमो द्वीपादन्यस्मादिष मध्यादिष जलनिर्धेदिशोऽप्यन्तात् । मानीय मटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥

मुख यथा।

भासादितप्रकटनिर्मसचन्द्रहास<sup>\*</sup> त्राप्त दारत्समय एप विज्ञद्वकान्त ।

उत्लाय गाढतमस घनकालमुद्र रामो दशास्यमिव सम्मृतबन्धुजीव ॥

पात्र यया शाकुरतले।

तवाऽस्मि गीतरागेशा हारिएा प्रसम हुता।

एप राजेव दुष्यन्त सारञ्जेषार्थनरहसा ॥

रङ्ग'....ब्रह्मिमाधयेत् ॥४॥

रङ्गस्य प्रशस्ति काव्यार्यानुवतार्थे क्लोकै कृत्वा । भीतमुक्येन कृतत्वरा सहभुवा व्यावर्तभाना हिया

र्षेस्तेबेन्ध्वयूजनस्य यचनेनीताऽऽभिमुख्य पुन । दृष्ट्वाग्रे वरमात्तसाष्ट्रसरसा गौरी नवे सङ्गमे

सरोहत्पुलका हरेला हसता शिलच्या शिवा पातु व ।।

इस्पादिभिरेव भारती वृत्तिमाश्रयेत् ।

सात् ।

भारती''''' श्रहतनामुखे ॥५॥ पुरुषिदिशेषप्रमीवम सस्कृतबहुती वाबप्रधानी नटाधवा व्यापारी

भारती । प्ररोधना बीर्याप्रहसनामुखानि चाप्रयामञ्जाति । ययोदेश सक्ष्मणमाह।

उन्मुक्तीकरण\*\*\*\*\*प्ररोधना ।

प्रस्तृतार्यप्रधमनेन थोतृत्वा प्रवृत्युनमुखीवरण प्ररोधना। दश

रस्तावस्याम् ।

श्रीह्यों नियुग, बन्नि परिचद्रप्येया गुगमाहिएते मोने हारि च व सध्य परित्र साटये च टक्षा वयम् । बस्तेक्षेक्सपीह बाज्छितक्षतप्राप्ते पद कि पुन-मेंद्राग्योरचयादय समुदितः सर्वे गुराका प्रसा

बीयो ' ' ' ततु युनः ॥६॥

मूत्रपारोः…सदामुखम् ॥ ॥।

प्रस्तावनाः अयोदश शना

तन वयोद्यातः ।

स्वेतिवृत्तममः " द्विधैव सः ॥६॥

बाक्य यया रस्नावन्याम् । योगन्यगयः । द्वीपादन्यस्मादपीति ।

वाक्यार्थं समा वेखीसहारे । मूत्रवार ।

निर्वापवैरिदहना प्रथमादरीया नन्दन्तु पाच्दुतनया सह केंग्रदेन । रक्तप्रसावितभुव क्षतविग्रहास्व

स्वस्था भवन्तु हुदराजमुदी सभुता ॥

हर्तोऽर्येनाऽऽह । भीमः ।

साक्षागृहानसिषपान्तसमाप्रवेरी प्रास्तेषु विस्तिनचयेषु च नः प्रहृत्य । स्राङ्गच्यपण्डवन्नपुरिषानस्या स्वस्था भवन्तु गयि जीवित वार्यराष्ट्रा ॥

भय प्रवृत्तकम् ।

रातसम्ब॰\*\*\*\* प्रवृतकम् ।

प्रवृत्तकालसमारगुपवणनया मूचितपात्रप्रवेश प्रवृत्तक यया ।

धासादितप्रकटिनमैत्तचन्द्रहासः प्राप्त दानसम्बद्ध एव विगुद्धकानः । स्त्वाय गादतमम् धनकालमुद्ध रामो स्टाम्यिविव सम्मुदकस्युवीव ॥

प्रविश्वति वदानिर्दिष्टो रामः ।

सय प्रयोगाविश्य ।

दशरूपक

एषोऽयमित्यु० \*\*\*\* मत ॥१०॥ यया एष राजेव दुष्यन्त इति । ग्रय बीध्यङ्गानि ।

उद्घात्यशावत्तविते\*\*\*\* त्रवोदश ॥११॥

तन्न । गुढार्थवद० " तदच्यते ॥१२॥

गूढार्थं पथ तत्वर्यायस्चेत्यव माला । प्रश्नोत्तर चेत्येत वा माता । हयोधिनत्रत्युक्ती तद् द्विविधमुद्धात्यकम् । तत्राऽऽख विश्रमोवंदया यथा । विदूषक । भी वद्यस्त वो एसो कामो जेए। तुम पि दूमियनसे सो रि पुरिसो बाद इत्विधनि । राजा । सखे ।

मनोजातिरनाधीना सुबेध्वेष प्रवर्तते ।

स्नेहस्य पलितो मार्ग नाम इत्यभिशीयते ॥ बिदूपर । <sup>३</sup>एव पि एा जारो । राजा । वयस्य इच्छाप्रस<sup>व स</sup>

इति । यिद्रपनः । <sup>३</sup>विं जो जद्दछदि सो त कामेदिसि । राजा। मय विम् । सिटूपन । वता जाणिद जह शह स्मग्रारसालाए भीगरा दच्छामि ।

दितीय यथा पाण्डवानस्य ।

या दलाच्या गुणिना क्षमा परिभव दी स स्वयूर्व हुत जिंदु स परसथमा जगति व इलाच्यो स बाधीयते ।

**वा मृ**त्युव्यसन बुध जहति वे यीतिज्ञता रात्रव वैविज्ञातमिद दिराटनगर छन्नस्थिते, पाण्डवै: ॥

एवगरि न जानानि ।

रि यो यदिष्ट्ति त तत् वानवसीति । : रण्डास ययार् गुपरारक्षाकायाँ भीजानिसदर्शन **।** 

भी वयस्य व एप नानो येन त्यमपि दूवशे श कि पुरशीत्वश स्थोति ।

¥02 दशरपर

वर्त्ता चृतच्छलाना जतुमयशरणोहीषन सोऽभिमानी राजा दु मामनादेर्गुहरनुजरातस्याऽङ्ग राजस्य कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनपद्व पाण्डवा बस्य दासा. मवाऽऽन्ते दुर्वोधनोऽसी नथयत पुरुषा द्रव्युमभ्यागती स्व ॥ प्रय वादकेली।

वितिरु \*\*\* • प्रिवित्र वा

अस्पेति बाक्यस्य प्रकान्तस्य सावाङ्शस्य विनिवनंन वाक्तेती हित्रिर्वा उक्तिप्रत्युक्तय । तत्राऽऽद्या यथोत्तरचरिते । बासन्ती । स्व जीवित त्वमसि मे हृदय द्वितीय

त्व कौमुदी नवनयोरमृत त्वमङ्गे। इत्यादिभि प्रियशतैरनुरुव्य मुग्धा तामेव सान्तमधवा किमतः परेए।।

उदितप्रत्युदिततो यथा रत्नावल्याम् । विदूषकः । <sup>१</sup>भोदि मद्यणिए म पि एद वर्ष्चार सिवलावेहि । मदनिका । हदास ए। वस्तु एसा वत्वरी दूर्वदिखण्डम क्लु एदम् । बिदूषक । भीदि कि एदिणा खण्डेगा मोदमा

करीम्रन्ति । सदनिका । ए। हि पढीम्रदि वस्तु एदमित्यादि । ग्रयाऽधिबलम् ।

**भ**ग्योग्य० भवेत ।

यथा वैशीसहारे । द्यर्जुन ।

सकलरिपुजयाशा यत्र यदा सुर्तस्ते तृरुमिव परिभूतो यस्य गर्वेस लोक ।

रशिश्रित निहन्ता तस्य राधासुतस्य प्रणमति पितरौ वा मध्यम पाण्डुपुत्र ॥

इत्युपत्रमे । राजा । धरे नाऽह भवानिव विकत्यनाप्रगत्म । किन्तु । मवित मदिनिके मामप्येतां चर्चरी शिक्षय।—हताश न सतु एवा

पर्नरी द्विपदीसण्डक सस्वेतत्।—मवति किमेतेन सन्देन मोदका क्रियन्ते ।---म हि, पठ्यते सस्वेतत् ।

उग्रज्माग्रो जाणादि कि पि अम्हारिमा जणा जास्मन्ति । शिष्य । किम-स्मदुपाध्यायस्य सर्वज्ञत्वमपहर्त्मिच्छसि । चर । यदि दे उवरमामा मन जाणादि ता जागाादु दाव कम्सा चन्दी धणभिष्पेदोत्ति । शिष्य । शिमना नातेन भवतीत्पृषक्रमे । चाएक्य । चन्द्रगुप्तादपरक्तान् पुरपान जानामी त्युवत भवति ।

भयाऽसस्त्रलाप ।

द्यसम्बद्ध यथोत्तरः।

मनु चाऽसम्बद्धाथत्वऽसङ्गतिर्माम व्यव्यदीष उनत । तन् न उन्दरनायितमदोग्मादरौशवादीनामसम्बद्धप्रलापितैव दिशाव । यथा ।

ग्राचिष्मिन्त विदायं वस्त्रकुहराण्यासृक्कती वासुके रडगुल्या विषयर्त्तुरान गरायतः सस्पृथ्य दन्तार्कुरान्।

एक श्रीण नवाउण्ट सप्तपिडिति प्रध्वस्तसङ्ख्यात्रमा बाच त्रौञ्चरियो शिशुत्वविकला श्रेवासि पुरुएान्तु व ॥

यथा च । हम प्रयच्छ म भान्ता यतिस्तस्यास्तवया हता ।

देव यदभियुज्यते ॥ विभावितैकदरोग वया वा ।

भुश्ता हि मया विरय श्नातोऽह बिह्नना विदामि दियत् । न्रयामि ॥ हरिहर**हिरण्य** भी **मत्पूत्रास्त्रेन** ध्यं व्याहार ।

ग्रन्थायं ० বর 1 यया मालविकास्निमित्र लास्यप्रयोगावसान । मालविका निवर्ष

मिन्छति । विदूपकः । भग दाव एवएसमुद्धा मगिस्तसीस्युपयमे गणदाम

टुरार जना कानस्ति।---वदित उपाध्यायः सर्वे जानति तस्त्रा<sup>ता</sup>, तावत बस्य चम्बोऽननिष्ठे र इति ।

१. मा शाबद्वदेशसुद्धा गनिव्यति ।

यजेतिवृत्ते सत्यवामसवादकारिगीतिधास्त्रप्रसिद्धाभगामिवारियुरीः युवतो रामायसमहाभारतारिश्रसिद्धो भीरोदात्तो राजीर्घाटको वा नावनः सन्धरयातमेवाऽन नाटके श्राधिकारिक वस्त विषयमिति ।

यत्....प्रकत्यवेत् ॥२२॥

यया छत्रना बालिवधो मायुराजेनोदात्तराधवे परित्यनत । वीर-चरिते सु रावणसोहुदेन बासी रामवधार्यमागतो रामेण हत स्त्रन्यसाहत ।

आद्यन्तमेव · · · · खण्डयेत् ॥२३॥

मतौचित्यरस्विरोधपरिहारपरिद्युद्धीवृत्तं सूषनीयदर्गनीयवस्तुविभागः फलानुसारेणोपवसूप्तबीजविन्दुपताकाप्रकरीकाय्येसस्यायंश्रवृत्तिक पञ्चाः वस्यानुमुख्येन पञ्चषा विश्वेत् । पुनरिप चैकैवस्य भागस्य द्वादरा वर्षोः दश चतुर्देवेत्येवमञ्जसनातृ सन्धीना विभागान् वृत्यत् ।

चत्.यद्वित्रस्तुःःःग्यसेत् ॥२४॥

चतु.यारुह्युः "म्यस्त् ॥२४११ पररापि प्रासिङ्ग् वितिवृत्तमेकार्थरमुसन्यिमम्यू निर्मित प्रयोतिः वृत्तादेवदिनिचुर्तुमस्मुसन्यम्यम् व यताकेतिवृत्त स्यसमीयम् । मङ्गानि व प्रयोगाविरोयेन ययालाश्र स्यसनीयानि प्रकरीतिवृत्त स्वरिद्यूर्णसीय विश्वमः ।

तमैद विभवते । प्रादौ .... कार्यवृदिततः।

इयमत्र कार्य्यवित ।

**प्र**पेक्षितं \*\*\* ०र्संधवः ॥२५-२६॥

सपादात ः व्सम्बद्धारश्रूष्ट् सचा

प्रत्यक्ष ॰ \*\*\*\* •साधवः ॥२७॥

रङ्ग प्रवेदी साधात् निदिश्यमाननायवच्यापारो विन्द्रपक्षेपार्थपरिमितीः जीवन्त्रभीजनगविधानरसाधिवरस्य उत्सङ्घ इवाइद्घ ।

तत्र च ।

धनुभाव • \* \* \* \* परिपोष लघु ॥ २ द्या

महिन एवार्रिहरसस्यायिनः मवहान् स्यायिनेति रसान्तरस्याः

एव च कुळना वेश्या उमयमिति घेवा प्रकरणे नायिका ! यदा वेशीय तरद्गदत कुलजेव पुष्पद्द्वितके । ते द्वेषी भृष्ठकटिकायामिति ! कित-वयुतकारियुर्तमञ्जूष तु मुख्यहटिकादिवत् सञ्जीर्वप्रकरणमिति ।

ग्रय नाटिका।

लक्ष्यते ..... ० वृत्तये ।

ग्रत्र देवित्।

सन्योश्च बन्धयोगादेको गेद प्रयोक्तुभित्रय ।
प्रव्यातस्वितरो वा नाटीसञ्ज्ञाश्चिते काव्य ॥
इरसमु भरतीय स्लोबमेको भेद प्रत्यातो माटिक्तको इतरस्वप्रयात
प्रवरिष्णासन्त्र नाटीसञ्ज्ञया हे वृत्ये साधिते इति व्यावसाराग प्रकरिण्डामिय मन्यन्ते । तवसन् । उद्देशन्यस्त्योरनिध्यातात् समानकावा ।
वा भेदाभावात् । वस्तुरसनायकाना प्रकरणाभेदात् प्रवरिष्णामा
प्रतोजुदिष्टाया नाटिकाया यन् मुनिना सद्यर कृत तत्राध्यमिभग्नम ।
प्रतोजुदिष्टाया नाटिकाया यन् मुनिना सद्यर कृत तत्राध्यमिभग्नम ।
प्रताजुदिष्टाया नाटिकाया यन् मुनिना सद्यर कृत्यं व्यक्तियानि नाटिकव

तमेव संखुर दर्शयति । तत्रःःः समक्षण ॥३६॥

तत्र सिक्षम् ॥ वर।। उत्पाद्यतिवृत्तस्य प्रकरणधर्मः प्रव्यातनृपनाथवादिस्य तु नाटकपर्वे इति । एव च नाटचप्रवरणनाटिनातिरेवेण वस्स्वादे प्रकरिणनायानमा-

बाद द्वापात्रभेदान् यदि भेद ।

तन ।

स्त्रीप्राय०\*\*\*\*\* ०ऽनन्तश्चता ॥४०॥

तत्र नाटिने नि स्त्रीममाग्ययोजित्यप्राप्तः स्त्रीयधानत्यम् । इतिनी वृहसाऽत्यम् यान् च तदङ्गसद्भूषयाद्रपावनसँखेन चतुरद्भूत्वमप्पीदय प्राप्तमेव ।

विशेषस्तु ।

देवी-----वनेतृसङ्गमः ॥४१॥

प्राप्या तु । सारिकाः

नापिका .....०मनोहरा ।

सार्गीति न्यवश्यक्यादियमीतिरेग ।

पन्न-०\*\*\*\* । ४२॥

पन्तगोः ःः ।

तन्या मुप्तनायिकायामन्तपुरसम्बन्धसङ्गीनत्रसम्बन्धदिना प्रत्याः सन्ताया नासनस्य देवीप्रनिद्ययान्तरितः सन्तरोत्तरो नवाबस्यानुरामो

निबन्धनीय ।

कैशिक्य०\*\*\*\*\*नाटिका ॥४३॥

प्रायद्भागनिषद्धानिहिननक्षरानिशिक्यद्भवतुष्टयवनी मारिकेति ।

यय मारा ।

मारास्तु """विटः शर्थना

सम्बोधनो०\*\*\*\*\*०स्तवैः ॥४१॥ भूगमाः\*\*\*\*दत्ताऽवि च ॥४६॥

इति । पूर्वास्त्रोरम् ननाराहयः तेषा चरित यत्रैक एव विदः स्वष्टत परहत चौरवर्णयनि म भारतोवृत्तित्रमानत्वाद् भारतः । एवत्म बोक्तित्र पुक्तय भारागमापितैरानाङ्कितान्त्वेत भवन्ति । धन्पध्टन्वाच् च बौरस्य द्वारी भौभाष्यगौर्योवर्णस्य मुबनीयो ।

नास्याङ्गानि । पेयः ''हिगूडहम् ॥४७॥ उत्तमोठ' '''ठहत्यनम् ॥४८॥ देश स्टप्टमिति ।

भव प्रहतनम् ।

तदृत् \*\*\*\*\*•सङ्गुरै ॥

नद्रदिति मागवद् बस्तुसन्तिमन्त्रद्वतान्यादीनामविदेशः । तत्र शदः तावन् ।

पात्रविद्वः "" व्यवी-वनम् ॥४६॥

४१०

पाखण्डिन शाक्यनिश्रंन्यप्रभृतय । विधादचाऽत्यन्तमृजव । जाति-मात्रोपजीविनो वा । प्रहसनाङ्गिहास्यविभावास्तेषा च ययावत् स्वव्यापा-रोपनिबन्धन चेटचेटी व्यवहारयुक्त शुद्ध प्रहसनम् ।

विकृत तु।

कामुका०… ''धूर्तसङ्खु लस् ।

कामुकादयो भुजङ्कचारमटाचा तहे पभाषादियोगिनो यत्र पण्डकच्चु-कितापसवृद्धादयस्त्रहिष्टतस् । स्वस्वरूपप्रच्युत्तयिभावत्वात् । बीध्यर्ज्जरतु सङ्कीर्गंत्वात् सङ्कीर्गंम् ।

रसस्तुः… एव तु ॥५०॥

इति स्पष्टम् ।

भय डिम ।

डिमे'''''० बुद्धता ।। ५१॥

रसंर॰… • चेष्टितंः० ॥४२॥

चन्द्र० : :: स्मृत ।।५३॥

डिमसङ्खात इति नायकसञ्चातस्यापारात्मकरवाड् डिम । तत्रेतिहास-प्रसिद्धमितिवृत्तम् । बृत्तयक्च कैशिकीवर्जास्तिसः । रसारच वीररीह्रवी-भत्साद्भृतवरुणस्यानना पट्। स्थायी तु रौडो न्यायत्रधानो विमर्शरहिता मुखप्रतिमुखगर्भनिबंहरणारयास्वत्वारः सन्धयः साङ्गा । मापेन्द्रजान लावनुभावसमाध्यया । शेष प्रस्तावादिनाटकवत् । एतव् च

इद निपुरदाहेतु लक्षण ब्रह्मशोदितम्।

ततस्त्रपुरदाहरूच डिमसञ्ज प्रयोजित ॥ इति भरतमुनिना स्वयमेव त्रिषुरदाहेतिवृत्तस्य बुल्यस्व दक्षितम् । भय व्यामीत ।

रवातेति • • • • रसाः ॥१४॥

**घ**स्त्री• · · · · बहुक्षिनंदैः ॥५५॥

स्मायुज्यन्तेऽस्मिन् बहवः पुरथा इति व्यायोगः । तत्र हिमदर् स्मा पद् हास्यशृह्वार रहिता । वृष्टमारमण्डवाच् च पसानामवचनेःवि वैशिवीः परिशिष्ट - घनिक की सस्कृत वृत्ति

रिहेनेतरवृत्तित्व रसददेर लम्यते ग्रस्तीनिमित्तदबाऽन मग्राम । यथा परमुरामेल वितृबधकोषात् सहस्रार्जुनस्य कृत । लेप स्वप्टम् ।

यय समदनार ।
कार्य .....सन्यय ॥४६॥
बृत्तवो.....पृथक् ॥४७॥
बहुवोरः .....०स्त्रविद्वतः ॥४८॥
द्वतियः .....०सहयस् ॥४६॥
बत्तुस्यमायः .....०सहयस् ॥४६॥

पर्मार्थः \*\*\* राज्या ११ हरे।।

गमवरीयैन्तर्भमनायां दित समयरार । तत्र नाटकादिवदामुलमिनि समस्तरपराणामामुलप्रापणम् । विनयंत्रीजतादक्तार मण्ययः । देवामुरा-दयो द्वादानायकः । तेषा च फलानि पृयक् पृष्यं भवन्ति । यया समुद्र-मन्यने बामुदेवादीना लक्ष्म्यादिलामा । बीरदक्षाद्रङ्गी प्रद्रभूता सर्वे रणा । त्रयोऽद्भा । तेषा प्रयमो द्वादानातिकानित्रं निति ब्रह्ममाण् । ययामद्भुष चतुद्विनानिकावत्यो नातिका च पिट्याद्रयम् । प्रयङ्क च ययासद्भुष नदरा-। तथा नगरोपरोधयुद्धवानान्यादिवद्वारा मध्ये एकैं वो विद्रव वार्षः प्रमार्थकामन्द्रज्ञारानाभिकेक स्पृङ्गार । प्रयङ्कपेव विवान तथा । योद्यन्द्वानि च ययाताम नार्याणि । विन्दुवदेदाको नाटकोननाविन

मय वीधी ।

बीयो · · · · रसान्तरम् ॥६२॥ पुरुता · · ०प्रयोजितर ॥६३॥

बीपीयर बीपीमानं ब्रङ्गाना पट्नियां माणवत् वायाः । विरोधस्तु रम रह्नारः प्रपरिपूर्णत्माः भूवता सुच्यः । रमान्तराष्ट्रपि स्तोर स्पर्धनीयानि । वीपान् स्पर्धनीयानि । वीपान् स्

ययाज्य ।

417 दशस्पक

उत्मृद्धिः • • • नराः ॥६४॥ भारावत् · · · · • पराजयौ ॥६५॥ उत्मृष्टिनाङ्क इति नाटकान्तर्गताङ्कव्यवच्देदार्थम् । दोप प्रतीन-

वस्तु भन्त्य प्रतिनायको विषयांक्षाद् विषयंयज्ञानादयुवतकारी विधेय ।

स्पष्टमन्यत् ।

स्पष्टम् ।

इति श्रीविष्णुसूनोर्धनिकस्य कृतौ दशरूपावलोके रूपक्रसक्षणप्रकाशो नाम व्रतीयप्रकाशः समाप्तः ।

इत्यं '''''रकुटमन्दवृत्तीः ॥६६॥

मिथ० · · · · • नायकौ ॥६६॥ रयातौः .... ० दिनेच्छत ॥६७॥ भृज्ञारामा०"""महात्मन ॥६॥॥ मृगवदसभ्या नायिका नायकोऽस्मिन्नीहते इतीहामृगः । स्यातास्यात

अथेहामृग ।

मिति।

## चतुर्थः प्रकाशः

मयेदानी रसभेदः प्रदर्शते । विनावरः • • • • • स्मृतः ॥१॥

वर्ष्यमाण्यस्यभावित्रभावानुमावव्यभिषारिसारिवर्कः शब्योपात्तैरिधन-योपर्यवितेवां योतृश्रेसकालामन्तविपरिवर्तमानोरस्पादिवंश्यमाणसर्ला स्वापी स्वारगोचरना निर्मरानन्दस्विदारमतामानीयमानो रस्र । तेन रिवना सम्मानिका । काव्य तु तथाविद्यानन्दस्विदुर्गोलनहेतुम्भवेव रसवदायुष्ट्रं तिनिरमारिक्यपदेशकत ।

सत्र विभाव, ।

श्रायमानतयाः व्याप्तिया ॥२॥

एसमयमेवभियमित्वतिष्ठायोतितरूपनाध्यस्यापाराहितविधिष्टर पतमा श्रायमानी विभाव्यमान, मन्त्रालस्वतिष्ठोहीपनत्येन वा यो नायकादिर-भिमतदराकालादिवां स विभाव । यदुन्त विभाव इति विज्ञातार्य इति । तास्य ययास्य यथानसर च रसेयूयपादयिय्याम । स्रमीया चाड्मपेशितवा-स्वत्यामा द्वारतेप्रधानादेवाऽभादिततद्भावाना सामान्यात्मना स्वस्वसम्ब-न्यिरवेन विभाविताना साक्षाद्भावक्षेत्रसि विषरिवर्तवानामालम्बनादि-

भाव इति न वस्तु शून्यता । तदुश्न भर्तृहरिणा ।

श्चन्दोपहितरपास्तान् बुद्धेविषयता यतान् । प्रत्यक्षमिव वसार्थान् माधनत्वेन मन्यते ॥ स्वरुपनिस्म । प्रसार्थन् सामा-सामाग्रोगीन नसा निष्यस्त

प्रस्यकाशय व सादान् सायनस्यन सम्यतः । इति । षट्सहस्रोष्ट्रताऽप्युवनस् । एम्यदेव सामान्यगुरुयोगेन रमा निष्पदन्तः इति ।

तत्राऽऽनम्बन्धिभावो यया ।

ग्रस्या सर्गविधौ प्रजापतिरभूत् चन्द्रोनुकान्तिप्रद शृङ्गारैकनिधि स्वयं गुमदनो मासो नुपुष्पानरः । वेदाभ्यासजड क्य नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो

निर्मातु प्रभवेन मनोहरमिद रूप पुराशो मुनि ॥ उद्दीपनविभावो यथा ।

ग्रयमुदयसि चन्द्रश्चन्द्रिशाबौतविदव परिरातिवमिनिम्न ब्याम्नि क्पूँरगौर । ऋजुरजतशलाकास्पविभिवंग्य पादै जंगदमलमृणाली पञ्जरस्य विभाति ।

धनुभावो · · • सूचनात्मक ।

स्यायिभावाननुभावयत सामाजिकान् सभूविक्षेपकटाक्षादयो रस-पोपकारिणोऽनुभावा । एव चाऽभिनयकाथ्ययोरप्यनुभाववता साक्षाद् भावकानुभवकम्मतवाऽनुभूयन्त इत्यनुभवनमिति चाउनुभावा रसिनेषु व्यपदिक्यन्ते । विकारो भावससूचनात्मक इति तु लौकिकरसापेक्षया **इह** तु तेपा कारए।स्वमेव यथा मर्भद ।

उज्जृम्माननमुल्लसत्तु चतट लोसभ्रमद्भू तत स्वेदाम्म स्नविताङ्गयध्टिनगलद्धीहः सरोमाञ्चया। धन्य. कोऽपि युवा स यस्य वदने व्यापारिता सस्पृह मुम्बे दुग्धमहाव्धिकेनपटलप्रस्या कटासच्छटा ।।

इत्यादि ययारसमुदाहरिच्याम ।

हेत्कार्यातमनो · · · सब्यवहारत ॥३॥ तयोविभावानुभावयोनीिककरस प्रतिहेत्कार्यभूतयो सन्यवहारादेव सिद्धत्वान् न पृथम् सदारामुपयुज्यते । तदुक्तम् । विभावानुभावौ सोव-संसिद्धी लोक्यात्रानुगामिनी लोक्स्वभावोपगतत्वान् च न पृथम् लक्षणः मुच्यत इति ।

मुलदु ला॰ • • • भावनम् ।

मनुहार्म्यात्रयन्वेनोपतिकथमानं मृतदृ हादिन्यं मार्वस्त्रहो भावन वासन मार्व । तट्टकाम् । अहो हार्वन रखेन गन्धेन वा सर्वनेतर् मार्वित वासित्रमिति । यन् तु रसात्र मार्व्यन् नाव इति । वचन्तर्वेन मार्वित वासित्रमिति । यन् तु रसात्र मार्व्यन् नाव इति । वचन्तर्वेन मार्व भावस्त्र मार्वित्रस्य मार्वस्त्रस्य मार्वस्त्रस्य प्रवृत्तिनिमित्तर्वयनम् ।

वे च स्यायिनो व्यक्तिचारिसाइचेति वरयमासा ।

ष्ट्रियम् \*\*\*\* भावनम् ॥४॥
परगवद्व सहियादिमावनायामस्यन्तानुन् लाम्नक् रगः व सन्वम् । मदाह ।
सन्त नाम मन प्रभव तब् च समाहिनमनम्नाहुन्यवने । एतदवाद्रम्
मन्त यत विन्नेन प्रहायिनेन चाध्युरोमान्न्वादयो निर्वर्यनेत तैन सन्तेन निर्वृत्ताः माहिनवाम्म एव भावास्तन वस्ययमानस्वादयुत्रम्नयोऽपि मावा मावस्त्रम्वरा महिनवास्य वस्तुभावा इति द्वैरूपमेषाम् ।

ते च । स्तम्म०ः----मुब्यश्तसक्षरणा ॥४॥ यया।

भोना जाता ।

'वेबइ क्षेत्रदवदशे रोमाञ्चिय पतिए बबह । बिसतुन्द्र तु बनम्र सह बारोम्बलीए रखेनि ॥ मृहक्र सामति होई खखे बिमुच्छद विद्याचेन । मृद्धा मृहन्ती तुम वेम्मेण मावि च बिज्जद ॥ म्रव व्यक्तिसारिया । तुन सामाज्यस्यलम् ॥

एक प्रिक्त सावक केट्रा विस्तः सम्भाव्यते । वेगने स्वेदवरना रोमाञ्च यात्रे यपति । विनोत्तस्ततो वस्त्रो समु वाहुबस्त्या रएति ॥ मुन द्यामलं मवनि सम् विमुद्दिनि विदय्येन । मुग्या मुनयन्ती तर प्रेव्हा सावि न पैये शरीति ॥ दनोशद्वयस्तानतिमुगम वात् मिट्रयस्ताच्यास्य व्यास्य न सर्या- 886 टशस्पर

बिहोताव .....खारिकी ॥६॥

यशा बारिधी सत्येव वल्लोसा छद्भवन्ति विसीयन्ते च सहरेव रत्यादी स्थायिनि सत्येवाऽऽविभावितरोभावाभ्यामःभिमुस्येन घरती वर्तमाना निर्वेदादयो व्यक्तिचारिणो भावा । ते च ।

निर्वेद०\*\*\*\*\* त्रयश्च ॥७॥ तत्र निर्वेद: ।

तस्व०\*\*\*\*\*•वीनसा ॥द्या

त्तरवज्ञानान् निवेदो यथा ।

प्राप्ता. थियः सकननामदुधास्ततः रि दत्त पद शिरसि विद्विपता तत किम्। सम्प्रीणिता प्रण्यिनी विभवस्तत कि मस्य स्थित तनुशृता तनुभिस्ततः सिम्।। `

द्यापदी यथा । राज्ञो विपद् बम्बुवियोगदु स

देशच्युतिद्रंगंममागंसेद । श्रास्वाद्यतेऽस्या क्टुनिष्फलायाः फल समैतत् चिरजीवितामा

ईर्घातो बचा ।

धिक धिक् शक्तित प्रबोधिसवता कि बुस्भरणेंन वा

स्वर्गद्रायटिकाविस् ण्टनपरैः पीनै किमेमिर्भुनैः । न्यस्कारी ह्ययमेव मे यदरयस्तजाऽप्यसी तापसः सोऽप्यत्रैव निहन्ति राक्षसमटान् जीवत्यहो रावण ।

वीरशृङ्कारबोध्यंभिचारी निवेदी वया । ये बाहवी न युधि वैरिनठोरनष्ठ-पौठारछलद्ग्रुधिरराजिविराजितासाः ।

नाऽपि प्रियापृषुपयोधरपत्रभङ्ग-सङ्घानतपृष्ट्यमरसा सन् निष्यतास्ते ।

दशहपद ४१६

> हन्ता सुवाहोरिप ताहनारि स राजपुत्रो हृदि वाधने माम्।

धनया दिशाञ्चदनुसर्तन्यम् ।

ग्रय श्रम

थम \*\*\*\* सर्वेनादय ।

मध्वतो यथोत्तररामचरिते ।

ब्रलसनुनितमुग्धान्यध्वसञ्जातसेदा-

दशियिलपरिरम्भैदंत्तसवाहनानि ।

परिमृदितमृगालीदुवंलाम्यञ्जवानि त्वम्रासि मम कृता यत्र निद्रामंबाप्ता ॥

रतिश्रमी यथा माधे।

प्राप्य मन्मधरसादतिभूमि दुर्बहस्तनभरा. सुरतस्य ।

दाश्रम् थमजलाईललाटश्लिब्टकेशमसितायतकेरयः ॥

हत्याच् तुत्रेदयम् ।

धय पृति ।

बृद्धोऽन्य पतिरेष मञ्चक्तात स्यूणावदेष गृहं
कासोऽन्यणं बतासम मुद्धांतिनी वत्सस्य वार्ताऽपि नो ।
सत्तान् सन्चितंतिवन्दुमिका भानेति पर्याद्वता
दृष्ट्वा गर्भेभरात्वता सुतथ्यः श्वश्र्षेत्वर रोदिति ॥
देश पूर्वेवत् ।
सर्वेष्ठपम् ।
सुद्देवः ।।१४॥
यया त्रीरचितं जामदन्य ।
उत्हरस्योनृहृद्ध ममांगिष दाक्तवत सन्नसन्तानरोपाद्
स्दामस्यैकविद्यास्यविधि विद्यात्त सर्वेता राजवश्यान् ।
पिन्ध सद्वन्तपृश्ंह्वरस्यनमञ्जातम्दमन्दायमानप्रोपान् मुर्येतो मे न एत्तु न विदितः सर्वसूनं. स्वभावः ॥
स्व चिन्ता ।

च्यानं \*\*\*\*\* ०तापहर् । यथाः ।

न्तर्भाषधिताय्विन्दुनिनरेषु बताप्रतस्पिधिः नुर्वेन्दा हरहासहोरि हृदये हारावसीयुष्टमम् । साते बामगृष्णावनावरमयामञ्जारमाने परे बित्यस्याऽनरमायताति सुरती वोध्य स्वयं सम्यंवे॥

ददा या ।

धरतमितविषयसङ्गाः मुकुतितनयनोत्पता बहुदविनताः । ध्यायति विभाग्यसदय बासा योगाभियुवतेवः ॥

भव नासः ।

र्गोजता॰\*\*\*\*\*०तास्य ॥१५॥

यवा माये।

त्रस्यन्तीः चसरापारीविषट्टिनोर-वांगोक्षरियदमातः विश्ववस्य ६ परिज्ञिष्ट : यनिष्ट की संस्कृत वृत्ति

सुम्यन्ति प्रमममहो विनाःपि हेतो-सींसामि विमुसति वारणे रमप्य ॥

श्रमाञ्जूषा । परोत्सर्याः \*\*\*\*\* वतानि च ॥१६॥ गर्वे यथा जीरचरिते ।

> स्रिक्तं प्रकटीकृतेऽपि न एसप्राप्ति प्रसो प्रस्कृत श्रुष्ट्यन् दासर्राष्ट्रिक्टवरितो युक्तन्त्रया कन्यमा । उन्कर्षे व परस्य मानयदानीवित्र सन वाऽदरेन स्त्रीरत्न च जगत्वतिदेशसूनो दुष्टा कथ मुख्यते ।।

रीकेन्याद् यथा । यदि परमूला न सम्बन्ने बनस्वगुलाकेने नहि परयज्ञो निन्दाच्याकेन्स परिमाखितुम् । विरमसि न चेदिन्द्राडे पप्रसन्तमनोरयो दिनवरकरान् शालिण्डकेन्द्रेतन् सम्मेष्यस्य ।।

मन्युजा ययाऽमरशतके ।

पुरस्तन्ता गोतम्बलनक्षितीः तत्तुत्वः प्रदृत्तो बैलस्यात् विमपि लिचित् दैवहत्व । म्यूटो देलात्यात् विमपि लिचित् दैवहत्व । म्यूटो देलात्यातः वचमपि स सादृक् परित्यतो गता येन व्यक्ति पुनर्वयवे मैव तह्यो ॥ तत्त्वाऽभावा म्यूटरस्याण्डस्यत्ववा । स्तिद्वा शेषप्रस्थास्यताः यृत्यदिवा । म्यूटिवा विमप्ताः युव्यदिवा । म्यूटी चित्र विव स्पूटीमपि निम्साऽप्युवजुष स्या ब्रह्मास्य मे सिर्गति निम्साऽप्युवजुष स्या ब्रह्मास्य मे सिर्गति निविद्यो वामचर्यः ॥

मयान्तर्यः । मधिसेव्यस्य ॥१७॥ प्रमाबीरवस्ति ॥ ४२२ दशस्य

प्राथश्चित्तं चरिष्यामि पुज्याना वो व्यतिश्रमात् । न त्येव दूर्पायच्यामि शस्त्रग्रहमहाद्वराम् ॥

यथा वा वेग्गीसहारे।

युष्पच्छासनसङ्घनाम्यसि यया मनेन नाम स्थित प्राप्ता नाम विगर्देणा स्थितिमता मध्येऽनुतानामपि । त्रोघोल्लासितघोणिताल्एगदस्योच्छित्वत कीरबान् श्रर्शं क दिवस ममाऽसि न गुल्लाऽह विषयस्तव ॥

अध गर्व।

गर्वो० ..... ० बीक्षणम् ॥१८॥

यया वीरवरिते।

मुनिरयमय बीरस्तादृत्यस्तत्त्रिय मे विरमतु परिकम्प कातरे क्षत्रियाऽसि । तपति विततकीतिर्वपैकण्डूलदोटण परिचरणसमयों रावव, क्षत्रियोऽहुम् ॥

यया वा तत्रैव।

साह्यणातित्रमत्यागी भवतामेव भूग्ये । जामदण्यरच वो मित्रमन्यया दुर्मनायते ॥

भय स्मृति । सद्ग्रः------०नादयः ।

यया ३

मैनाव विभव रणिंद्ध गगने मन्मागंमव्याहन द्यक्तिस्तरम् बुतः स वञ्चवतनाद् भीतो महेन्द्रादि । हार्स्व सोऽपि सम निजेन विभूता जानाति मा रावण्य

म्रा ज्ञान स चटायुरेर जरता निलटो वय बाञ्छति । यथा वा मारावीमापचे । मापय । भम हि प्रावनतीरत्तम्भवम्मा विवासमन्मनः सस्नारस्याजनस्तप्रयोधात् प्रवायमानस्तर्द्वहरूपै प्रत्ययान्तरैरतिरस्कृनप्रवाह प्रियतमास्मृतिप्रत्ययोत्पत्तिसन्दानस्तन्मयमिव करोति वृत्तिसारूप्यतर्वतन्यम् ।

लोनेव प्रतिविध्यतेव लिखितेवोत्कीस्ग्रहपेव च प्रत्युप्नेव च बखसारषटितेवाऽन्तर्गित्वातेव च । सा नरचेतिस कौलितेव विधिगैरचेतोमुव: पञ्चीन-रिचन्तासन्तितन्तुजालनिविडस्यूनेव सम्मा प्रिया ॥ श्रव मरणम् ।

मरण० .....०नोच्यते ॥ १६ ॥

भा । सम्प्राप्तऽत्रिवासरे क्षणमनु रंबद्वःभंबातायन चार बारम्पेस्य निध्त्रियनया निश्चित्य किञ्चन्विदरम् ।

सम्प्रत्यव निवेश केलिनुररी साम्न सनीभ्य शिशो-मोधस्या सहकारकेण करण पाणिप्रहो निमित ॥

त्रावचन सर्कारम् ए करण पाण्यक्षा विश्वतः। इत्यादिक् ग्रङ्काराश्रयातम्बनत्त्वेन गरेगो व्यवसायमात्रमुपनिबन् म्यनीयम् । ग्रन्यत्र वामचार. । यथा शीरचरिते । पर्व्यतु भवन्तस्ताङ-वाम् ।

> ह्न्ममेभेदिवतदुत्वटकङ्कप्य-सवेगतन्क्षणग्रतस्कुरद्भमङ्गाः नासाकुटीरकुह्रद्वयतुत्यनियंद् उद्युद्वुद्ध्वनस्थनदमृक्षसराः कृतेव ॥

म्रथ मद । हर्षोन्कर्षो० \*\*\*\*\* ०थमादिषु । यथा मार्च ।

हानहारि हिनत बचनाना कौडल दृति विचारविकेषा । चित्ररे मृतमृत्रोरिष बच्ना किमिनेव तरणेत सदेन ॥ इरसादि ।

मय सुप्तम् ।

सुप्त० \*\*\*\* ०५२५ ॥ २० ॥ यथा ।

> लपुनि नृराजुटीरे क्षेत्रकोरो यवाना नवक्तमपसासस्तरे सौपमाने । परिहरति मुगुप्त हालिकडन्डमारात् मुनकलवामहोष्माबद्धरेलस्तुपार ॥

भ्रम निद्रा । भ्रम:•'''' व्यादय ॥

यया ।

निहाभैमीसित्रह्को मदमन्थराणि नाऽत्यर्थबन्ति न च यानि निर्यक्षानि । भ्रताऽपि मे मृषद्धो मधुराणि तस्या-स्तान्यसराणि हृदये क्रिमेष ध्वनन्ति ।

ययाच मांघ।

प्रहरकमपनीय स्व तिदिशसतीच्वै प्रतिपदमुषहृत नेनिचज्जागृहीति । मुहृददिसदवर्गा निदया शूल्यसूल्या दददीप गिरमन्तुवंध्यते नी मनुष्य ॥

सर विवोध । विक्षोपः ०मर्वने ॥ २१॥

यथा मार्थे।

विरागितपरिषेदप्राप्तिन्द्राष्ट्रभाना चरममपि द्यवित्वा पूनवेव प्रबुद्धाः । चर्चात्पितित्वात्राः मुचेते न प्रिभाणाम् प्राणिदासूनवनास्त्वेपजेद तस्यः ॥ धर्म दौराः । दुराबारावः ...... व्यक्षादिति ॥ २२ ॥ यषाञ्चह्यवन् ।

पटासमे पत्वी नमयनि मृत जातविनमा हठादनेष बान्ष्टर्न्यपहरित गाद्यारि निमृतम् । न सक्तोरवास्यान् म्मितमुबम्बीदननवमा हित्वा वाम्यायन प्रयमपरिहास नदबब् ॥ प्रवादस्यानः ।

प्रावदाोठ \*\*\*\* वमादय ॥ २३॥

यया माघै 1

धारितप्टमूमि रिवतारमुर्डने लॉलक्क्रूबानारबृहत्तरङ्गम् । फेनायमान पनिमापयानाम् श्रक्षावपस्मारिसामाग्राङ्के ॥

भय मोहा

मोहो० ..... ०वर्शनावय ॥ २४॥

यया कुमारसम्भवे ।

तीयाभिप हुप्रमवेन वृत्ति
मोहेन मस्तम्भवतेन्द्रियाराम् ।
मज्ञातमतृंव्यतना मुहुतं
कतोपनारेव रतिवंभव ॥

यया चोत्तररामचरित । दिनित्चेतु शक्यो न सुलमिति वा दुर्खमिति वा प्रमोहो निद्रा वा विमु विपवितर्षः विमु मद

तव स्पर्ने स्पर्ये मम हि परिमूडेन्द्रियगरा। विकार कोऽप्यन्तर्वेडयति च ताप च नुरते ॥ भग मति ।

मान्ति॰\*\*\* '०घोर्मति ।

यया किसर्ति ।

४२६ दग्नहपक

सहसा विद्योत न शियामिववेक. परमापदा पदम् । वृण्ते हि विमृत्य कारिए गुराजुन्या. स्वयमेव सम्पदः ॥ यया च ।

> न पण्डिता साहिसका भवन्ति श्रुत्वाऽभि ते सन्तुलयन्ति तत्त्वम् । तत्त्व समादाय समाचरन्ति स्वार्थ प्रकुर्वन्ति परस्य चाऽर्थम् ॥

सवाऽऽत्रस्यम् । मासस्य \*\*\*\* • विमत् ॥ २५ ॥ यथा ममैव ।

चलति कथञ्चित् पृष्टा यञ्जति बचन कथञ्चितालीनाम् । स्रासितुमेव हि मनुते

गुरुगर्भभराससा सुतनु ॥ प्रयाऽऽदेग ।

प्रपाऽयमः ।

प्रावेगः:

प्रावेगः

दायादि ।

तनुत्राण तनुत्राण चस्त्र चस्त्र रषो रष-। इति सुधृविरे विष्वगुद्धदाः सुभटोक्तय ॥ यषा वा ॥

> प्रारब्धा सरपुत्रकेषु सहसा सन्त्यज्य सेनित्रयाम् एवास्तापसनग्यकाः निमिदमित्यासोनयन्त्यासुताः।

स्रारोहल्युटजद्भगास्य बटको बाचयमा स्रप्यामी संबो मुक्तसमाययो निजनृपीप्येयोज्यपाद स्थिता । बातावेगो यथा ।

वाताहत वसनमाक्लम्त्तरीयम् ।

इत्यादि ।

वर्षेत्रो सया ।

देवे बर्पत्यवानपवगब्याशृना बिह्नह्तोः-महाद् गेह फश्रकनिष्यत्रे सेतुमि पद्भमीता । नीम्प्रमान्तानविरलजलात् पाणिभिस्ताडयित्वा मुर्यच्छनस्यिमित्तविरनो योपितः मञ्चरन्ति ॥

उत्पातजो यया ।

पौलस्त्ययीनभूजसम्पद्धतस्यमान-कैनासमम्भमनिनोत्तवृतः प्रियाया । श्रेयासि वो दिशतु निह्नुतकोपचिह्नम् स्रालिङ्गनोन्पुलकमासितमिन्द्रगौते ॥

भारतः तुः भारतः विकासः स्वातः स्वातः स्वातः मिन्नः महित्वहतः विकासः विकासः स्वातः स्व

मृगन्य परित्यज्य विधाय विकट वपु । नीयने रक्षमाञ्चन सक्ष्मणी सुधि सद्मासम् ॥

राम ।

बरमस्याज्यवास्थि प्रतिभय मन्ये रच राक्षसात् प्रस्तद्वेष मुनिविद्येति मनमस्वाज्ञस्येव मे सञ्जय । माहासीजनसात्मवामिति मृत् स्नेहार् गुरुवांचते न म्यानु न च गानुमामुलयनम् इस्य मे निश्चेष ॥

रत्यनोनाऽनिष्टप्राप्तिञ्चतसम्भ्रम ।

इट्याध्निहतो समाज्येत । प्रविश्य पद्मक्षरेश सम्प्रान्तो बानरः ।

४२६ दशस्यक

वानर । महाराम् एद स्व पनसासान्द्रशायमशोसा पृष्टिरसेत्यादि देवस्स हिम्रमासान्द्रजसास विम्नावद सङ्ग्रमाधित्यन्त्रम् ।

यया वा वीरवरिते।

एह्ये हि बत्स रघुनन्दन पूर्णचन्द्र चुम्बामि मूर्धनि चिरस्य परिष्यजे स्वाम् । ग्रारोप्य वा हृदि दिवानिदामुद्वहामि

वन्देऽभवा चरणपुष्करकदृय ते ॥ बह्निजो सथाऽमरशतके।

सित्तो हस्तावनम् प्रसममित्रहतोऽप्यादवागोऽयुकान्त गृह्मन् केशेष्यपास्तरचरणानपतितो नैक्षितः सम्प्रमेणः । मानिङ्गम् योऽवपूतिकपुरयुविभिः सायुवेगोत्पनाभिः कामीवाऽप्राचराय स सहतु दृरितः शास्त्रयो व शासीनः । यपा वा रत्नावस्थानः ।

विरम विरम बहु भुज्य धूपायुन्तस्य प्रमरयसि विभुज्वेरिवण चन्नवालम् । विरहरूतमुजाऽह् यो न दस्य प्रियायाः प्रतयदहनभाता तस्य वि त्य वरोषि ॥

षरिजो यद्या रघुवसे । मश्च्छिनबन्धदृतसुग्यद्यस्य भग्नाक्षपर्यस्तरथ क्षणोत ।

भग्नाक्षपर्यस्तरम् अस्ते । रामापरिपास्त्रिक्तियोष गैनानिवेदा तुमुन परार ॥ गरिष्रहस् थ्यानोषस्थानार्थम् । तेन व्याद्मपूर्वरवानस्रिप्रमेवा

घावेगा व्यास्याता ।

द्यय वितरं ।

१. महाराजतम् सामु वदननन्दनात्मनेन प्रत्यत्वादि, वेवस्य हुरवानार-जनन विवतिकं मधुवनिवत्वात् । परिषिष्ट : घनिक की संस्कृत वृत्ति

तकों \*\*\*\* ०नर्तकः ।

यया ।

कि सोभेन विलक्षित स भरनी येनंतदेव ३३ सत्त स्त्रीलपुना यना विषयवा मानव से सन्त्रमा । मिप्पैतन् मम विन्तित द्वितवपन्यार्धानुजोऽभी मुस्-मौनातातस्त्रमध्यमुचिन मन्ये विषाता इतम् ॥

भववा ।

क ममुबितामियेकादायँ प्रश्वावयेद् गुणन्यध्म् । मन्ये ममैप पुष्पे सेवावस्य छता विधिना ।।

ग्रमाऽवहित्यम् ।

लज्जा० ' ः । ० विकिया।

यया बुमारमध्ये ।

ध्व बादिनि देवपी पारवें पिनुरघोमुखी । सीलाक्मलपत्राशि गणयामास पावेती ॥

ग्रय ब्याधि ।

व्यापयः ""विस्तरः ॥२७॥

दिङ्गात्र तु यथा।

प्रक्टिन्न नवनास्त्रु वश्युष् कृत चिन्ना युरुस्योऽपिता यत्त दैश्यमरोषतः परिजने ताप समीव्याहितः । प्रच स्व परिनित्रुं ति त्रवति सा स्वासं पर खिवते विप्रकरो भव विप्रयोगवनित्र दुख विभन्त तथा ॥ भयोत्मादः ।

अवास्ताद । स्टेड्य

मत्रेक्षा॰\*\*\*\*\*•सितादय ॥२८॥

यया । द्या बुद्रराक्षतः तिष्ठ निष्ठ वत्र मे प्रियतमामादाय गच्छ-मीपुपत्रमे । वयम् ।

नवजनघर सम्मद्धोऽय न दृष्तिनिधाचरः सुरघनुरिद दूराञ्चन्ट न तस्य द्यरासनम् । ४३० दशहपक

स्रवमिष पटुर्धारासारो न वारापरम्परा कनकनिकपस्तिग्धा विद्यतु प्रिया न मगोवंशी ॥

इत्यादि ।

श्रम विषाद ।

प्रारम्य • • • • • दिकृत् ॥२६॥

यथा वीरवरिते। हा श्राय ताडके कि हि नामैतत्। प्रम्तुनि मञ्जन

त्यसावृति ग्रादास प्लवन्ते ।

नन्येय राज्ञसपते स्वतितः प्रतापः प्राप्तोऽरमृतः परिममो हि मनुष्यपोतात् । दृष्टः स्थितेन च मया स्यवनप्रभाषी दैन्य जरा च निरुएद्धि कर करोमि ॥

ग्रयीत्सुनयम् ।

कालास०\*\*\*\* ०विश्रमाः ॥३०॥

यया कमारसम्भवे।

षारमानमालोवय च शोभमानम् षादशैविष्वे स्तिमितायताक्षी । हरीपयाने त्वरिता अभूव स्त्रीएमा प्रियालोकफलो हि वेष ॥

यया वातत्रैव।

वज्ञपतिरिष<sup>®</sup>तान्यहानि कृष्णाद् श्रानिनयदिद्रसुतासमागमोत्वः । कमपरमवस विश्वकृष्ट्वी विश्वमुष्टित सदसी स्पृतन्ति भावा ॥

ग्रय चापला ।

मारसर्यं०\*\*\*\*\*\*० चरलादयः ॥३१॥

यथा विकटनितम्भाया ।

परिशिष्ट : यनिक की संस्कृत वृत्ति

धंन्याम् नावद्यमदंशहान् गृङ्क नोन विनोदय मनः सुमनोलनाम् । बारामवानस्त्रम् कलिसामस्यो व्ययं शदयंयमि हि नवमल्लिसायाः॥

यया वा ।

विनिक्षण्यसम्बद्धाः त्रक्षविद्यञ्चटक्त्ररोदराण् । ब्रह्महमिक्षा पतन्तु कोपान् सममध्नेष क्षित्र मन्यूनानि ॥

ग्रम्या । प्रम्तुतमेव तावत् मृचिहित वरिष्य इति । भग्ये च चिनवृत्तिविद्येषा एतेषामेव विभावानुमावस्वर्धानुप्रवेशान् न पृषम् वाच्या ।

स्य स्थायी ।

विवद् • • • • लबस्तावरः ।।३२॥

835

भावाना सहानवस्थानम् । वाध्यमाधकभावस्तु भावान्तरभावान्तरिकः स्कारः । स च व्यभिचारिणाः स्यापिनामविषद्धव्यभिचारिभिः स्यापिनीः विरद्धास्तेषामञ्जल्यान् प्रधानविषद्धस्य चाऽङ्गत्यायोगादानन्तर्गविरोपिः स्वमन्यनेन प्रकारिणाऽगस्न भवति । तथा च भावतीभाषवे मृज्वारानग्तर

सम्भेदेन तथाविधानन्दसर्विदुन्यीलनहेत् सम्पद्यते । तरमान् न सावद्

धीमत्तोषांनवन्वेऽपि न बिज्यित वैरहय त्रेवमेव हियते विरुद्धरक्षावर लक्ष्यतत्वमेव विरोध हेतु । सत्यविरुद्धरतान्तरच्यवधानेनोपविवध्यमानी न विरोधी । यथा ।

ऋणहरणाहमहेसिमहुजुट्दपरिमतुसुद्रबन्धः । मुहुकन्तह अगरवणहमञ्जूण फिट्टइ गन्यु ॥ इरयम वीभस्सरसस्याऽज्ञु भूतरसान्तरच्यवद्यागन ग्रङ्कारसमावेद्यो न विहढ

प्रकारान्तरेपीकाश्रयविरोधी परिहर्तव्य । तनु यत्रैकतारपर्येणतरेषा विरुद्धानामविरुद्धाना च न्यग्भूतत्वेनोपादात तन भवस्यञ्जरवेनाधीवरोष । यत्र तु समप्रधानत्वेनाध्नेकस्य भावस्योपनिवन्धन तत्र रूपम् । यथा ।

तु समप्रधानत्वनाऽनकस्य भावस्थापानवन्धन तत्र वयः
"एककत्तो रुम्बद्द पिमा प्रगत्तो समरत्र्राग्म्थोसो ।

ैएनकत्तो रुमह पिशा मण्ता समस्तूरील्य्यो पेम्नेण रणरसेल् भ भडस्स डोलाइम हिसस ॥

इत्यादौ रत्युत्साहयो । यथा वा । मारसर्यमुत्सायिवचार्यकार्यम् सामा समगोवमिव वदन्तु ।

सेव्या वितम्बा किमु भूधराणाम् उत समरस्भेरिवलासिनीनाम् ॥ इत्यादी रतिसमयो । यथा च ।

इत्यादी रतिसमयो । यथा च । इस सा सोलाक्षी त्रिगुवनलसामैनवसति से चाऽम दुण्डातमा स्वसूरपद्दत येन मम तत् ।

रे एक्तो रोदिति प्रियाज्यतः समरतूर्वनिर्धोप । प्रेम्पा रणस्तित च नटस्य दोलावित ट्रवम् ॥

इतस्तीव कामो गुरुरयमित श्रोधदहन कतो वेपश्चाऽय कथमिदमिति भ्राम्यति मन ॥ इत्यादी तु रतिकोषयो ।

ग्रन्त्रे कल्पितञ्जलप्रतिसरा स्त्रीहस्तरक्तोत्पल-व्यक्तोत्त समृत विनद्धशिरसा हृत्युण्डरीकस्रजः। एता. शोग्तिपञ्चकुङ्कुमजुष सम्भूयकान्तं पिव-न्त्यस्यिस्नेहसुरा क्यालचपकं प्रीता विशाचाञ्जना ।।

इत्यादावेकाश्रयस्वेत रसिजुगुप्सयो ।

एक घ्याननिमीलनान् मुकुलित चक्षुर्वितीय पुनः पावंत्या वदनाम्बुजस्तनतटे शृङ्कारमाराससम्। प्रन्यदृदुर विकृष्टचाषमदनकोषाननोहीपिन शम्मोभिन्नरस समाधिसमये नेत्रत्रय पातु व ।।

इत्यादी शमरतिकोषानाम् । एकेनाध्रणा प्रवित्तत्रदया बीक्षते व्योगसस्य

मानोविम्ब सजलल्लितेनाऽपरेखाऽऽन्मकान्तम् । महरथेदे दयितविरहाशां जुनी चक्रवाकी द्वी सङ्कोर्णी रचर्यात रसी नर्तनीय प्रगत्भा॥ इत्मादी रतिद्योर कोद्याना समप्राधान्येनीपनिबन्धस्तत् कथ न विरोध:। अनोच्यते। बनाऽप्येक एव स्थायी। तथाहि। एवनतो रमद पिमा हत्यादी स्यामिभूतोत्साहत्यभिचारिलक्षण्वितः भावहेतुसन्देहमारणतया करणसप्रामतूर्वयोष्ट्रपादान वीरमेव पुष्णातीति मटस्येत्यनेन पदेन प्रति-पादितम्। न च द्वयो समप्रधानयौरन्योन्यमुपकार्योपकारकमावरहित-योरेन वाक्यमावी युज्यते । विञ्चीपकान्ते सङ्ग्रामे सुमटाना कार्यान्तर- रिएन प्रस्तुतसङ्ग्रामीदासीन्येन महदनीचित्यम् । अतो अर्तु सङ्ग्रामैक-रिधकतमा शौर्यमेव प्रकाशमन् श्रियतमाकरूणो भीरमेव पुरुशाति । एव मात्सर्यमित्यादाविष चिरप्रवृत्तरिवासनाया हेयतयोपादानात् धर्मक-परत्वमार्या समर्थादमित्यनेन प्रकाशितम् । एवमिय सा लोलाक्षात्या-

दशह्य≸

दावपि रावणस्य प्रतिपक्षनायशत्तया निदाःचरत्वेन महयाप्रधानत्त्वा र

रोद्र-यभिचारिविषादविभाविवतर्य हेतुत्वया रतियोधयोश्यादात्र रोद्रथरमेव।
भन्ते न विदतमञ्जल्ञात्तारा इत्यादी हास्यरमेव परत्वमेव। एक ध्यान
निमी ननादित्यादी धा-मार्भावान्तरैरनाजिष्यत्या झक्तस्यस्याऽपि दोम्पन्तरः
समान् वैलक्षस्यप्रतिपादनेन समैनपरतैव समाधिसमय इत्यनेन स्कृतीहत्त
एकेनाऽश्रगेत्यादी तु समस्तमिष नावय भविष्यदिश्रमान्मविषयमिति न
नविवनेकतारपर्यम्। यत्र तु स्तेयादिवावदेष्वनेवतारपर्यमिषि सत्र वानवार्यः
भेवेन स्वतन्त्रतया चार्यद्वयपरतेत्यदोषः। यथा।
स्वाप्याद्यायत्तु सुदर्शनस्य स्वर्धाञ्जलिकाितन्
नैतिवया चरस्यार्यिन्दस्तितेनाऽङ्गात्यत्यक्ति हिर्दे।
विभाषा मुख्यिनदुसुन्दरस्य चन्द्रासम्बद्धदैषत्
स्वाने या स्वतारिवस्यद्विनका सा स्विनयपी योजनात्॥
इत्यादी तदेवसुक्तप्रकारस्यविका सा स्वनयपी योजनात्॥
इत्यादी तदेवसुक्तप्रकारस्यविका सा स्वनयपी योजनात्॥

ते च। रत्युरसाह• \* \* नैतस्य ॥३३॥

838

रह सान्तर अतिवादिनामनेत्र विधा विप्रतिपत्तय । तत्र केषिवाह ।
नाऽस्त्येव सान्तो रत्त । तस्याऽऽवायेण विभावावप्रतिपादनावृत्तवार्थः
क्'रणात् । मन्ये तु वस्नुतस्तस्याऽभाव वर्णयन्ति । भनादिकावप्रवादार्थः
सरागद्रेपपोरच्येतुमध्वध्यवात् । धन्ये तु वीरवीभत्तादायन्तर्भाव वर्णः
सरिन । एव घटन्त सम्मपि नेच्छन्ति । धवा—त्याऽस्तु । तर्वयं
नाटमादावभिनवात्भानि स्थायित्यमस्याभि समस्य निविध्यने । तत्व समस्यशापाप्रविष्यवप्रसाधिनमायोभात् । यत् तु केदियन् नार्णा-गन्दादौ समस्य स्थायित्यमुप्यण्तितत्त तु सम्ववस्यपुरागेणाञ्चरणः
प्रवृतेन विद्यायरचन्त्रपतिव्यक्षस्य। । स्थं कानुनार्थदिभावः
सम्यानित्यमुरागायद्यसम्यान्यस्य स्याविद्यम् । त्व वर्षा वर्षानुवाद्यदिभावः
सम्यानित्यमुरागायद्यसम्यान्यस्य स्याविद्यम् । वर्षा वर्षानुत्रविद्यान्यस्य

भूयमाण रत्यादिपदेष्यपि वावयेषु तत्रैव तात्पर्यं तथाऽये दर्शयिष्यामः ।

विरोधादीप्तितमेव च सवंत्र वर्तव्यभिति परोपकारप्रवृत्तस्य विजिगीर्धा-गीन्तरीयर वेन फल सम्पद्यत इत्यावेदितमेव प्राव् । म्रातोप्रदार्थव । स्माप्ति । ननु च रसनाइ रत्यत्वमेतेषा मधुरादीनामिवोष्ठतमात्मावः । | निवंदादित्वपि तृत् प्रवाममस्त्रीति तेऽपि रसा इत्यादिना रसान्तराणाम-प्यार्थे रम्युपणन्तवात् स्यादिनोऽप्याये वन्तिना इति व्यवधारणानुपदिन । प्रशेष्टाने ।

## निवदाः मता. ११३४॥

विरुद्धाविरुद्धाविरुद्धेदिरवस्य निर्वेदाधीनाममाबादस्यायिरवम् । घतएव ते जिन्मादिस्वस्बब्यमिचार्यन्तरिता ग्रपि परिपोप नीयमाना वैरहयमाध-हिन्त । न च निष्प्रनावमानत्वमेतेपामस्यापि वनिवन्वन हास्याधीना-मप्यम्यावित्वप्रसङ्गात् । पारम्पर्वेण तु निर्वेदारीनामपि एलवस्वान् । मतो निध्यलत्वमस्यायि वे प्रयोजन न सवति । तिन्तु विरदीरविरदीर्मा-वैरितिरस्ट्रतत्वम् । न च निर्वेदादीनामिति न ते स्थायिन । उतो रस व-मपि न तेपामुच्यने । घनोऽन्यायित्वादेवैनेषामरसता । 🖭 पुनरेनेपा वाध्येनादिष सम्बन्ध । न तादद वाच्यदासक्त्राव स्वयञ्चेरनावेदित-लात्। न हि शृङ्कारादिग्नेषु वार्थ्येषु शृङ्कारादिशन्दा रत्यादिशन्दा वा श्रूयन्ते । येन तेषा तत्वरियोषस्य बाडिनधेयत्व स्यान् । यद्वाडिप च श्रूपन्ते तत्राजीप विभावाधिद्वारकमेव रस्तवमेतेषा न स्वसन्दामिथेयस्य-मात्रेस । नाऽपि सस्यतदानभावस्तत्मामान्याभिषायिनस्तु ससनस्य पदम्याध्ययोगान् । नार्धव लक्षित्तलक्षणमा दत्यतिवत्ति । यथा गङ्गाया भौष दरवादौ । तत्र हि स्वार्ये स्रोतीलक्षण शोषस्याऽबस्थानासम्भवात् स्वार्ये म्यलदमतिगंञ्जाशन्दः स्वार्यं चिना मृतार्योपसस्तित तटमुपलक्षपति । यत्र तु नामकादिराब्दाः स्वार्येऽस्मलदगत्तयः क्यमिवाऽर्यान्तरमुपलक्षयेषु । को दा निमित्तप्रयोजनाभ्या विना मुख्ये सत्युपचरित प्रयुज्जीत । सिंही मारण्वन इत्यादिवत् । श्रतएव गुणवृष्त्यार्थपं नेय प्रतीति । यदि वाच्य-रदेन रसप्रतिपत्ति स्वान् तदा नैयलवाच्यवाचनभावमात्रव्यद्यन्तचेत-सामप्यरिक्ताना रमाम्बादी भवेतु । न च बान्यनिक्त्वमिवगानेन सर्व-

358 दशस्पर् सहृदयाना रशास्वादोद्भतः । प्रतः नेजिदिभिधासक्षणार्गाशीःयो बाच्यानः

रपरिकल्पितशक्तिभयो व्यतिरिक्त व्यञ्जवस्वसङ्ख्या शब्दव्यापार रहा लङ्कारबस्तुविषयमिच्छन्ति । तथाहि । विभावानुभावव्यभिचारिमुछेन रसादिप्रतिरत्तिरुपजायमाना वयमित्र वाच्या स्यात् यया दुमारहम्भवे। विवृष्वती शैलसुताऽपि भावम्

ग्रङ्गी स्फुटद्वालकदम्बनस्य । साचीकृता चारतरेण तस्थी मुखेन पर्यस्तविसोचनेन #

इत्यादावनुरागज-बावस्थाविश्रेषानुष्राववद् गिरिजालक्षस्यविभादोपवर्णना-देवाऽशस्त्राःपि श्रुङ्कारप्रतीतिरदेति । रसान्तरेष्यच्ययमेव स्यायः । न नवस

रसेप्वेब यावद् बस्तुमानेऽपि । यथा । <sup>1</sup>मम घम्मिश्र वीसदो सो स्एाही घरन मारिश्रो तेए।

गोलाणइकच्छन्डङ्गवासिसा दरिस्रसोहेग ॥ इत्यादी नियेषप्रतिपत्तिरशस्दार्थप व्यञ्जनशक्ति मूर्तंव। तथाऽलङ्कारेष्वपि ।

लावण्यकान्तिपरिपूरितदिङ् मुखेऽस्मिन् स्मेरेऽधुना तव मुखे तरलायताक्षिः।

क्षोम बदेति न मनागयि तेन मन्य मुब्यवनमेव जलराशिरय पयोधि ॥ इत्यादिषु चन्द्रतुल्य सन्वीवदनारविन्दिमस्याश्चमग्रश्चसङ्कारप्रतिपत्तिः

व्यञ्जनस्वनिबन्धनीति । न नाऽसावर्धापत्तिजन्या । धनुपपद्यमानार्धाः पैक्षाभावात्। नाऽपि वास्यायस्य व्यङ्गभस्य तृतीयक्षाविषयस्यात्। तमाहि 1 भ्रम थामिकेत्यादौ पदाथविषयाभिधालक्षणप्रयमकक्षातिभानी-त्रियान र वससर्गः मन विधिविषयनावयार्थक सातित्रान्ततृतीयक सात्रान्ती निषेधातमा ब्याङ्गपलक्षाणोऽर्थो व्यञ्जनगल्पधीन स्फूटमेबाऽवभासते।

रे. भ्रम धार्मिक विधव्य ॥ श्वाऽच सारितस्तेन । गोरावरीनदीशच्छष्टदङ्कवासिना धरीसिहेन ॥ भती नाजी बाबरायं । ननु च तृतीयक्साविषयत्वमधूममाण्यदापं-तात्ययेषु विष मुर्भत्यादिवावयेषु निषेधायं विषयेषु प्रतीयत एव वाक्यायं । न बाज्य व्यञ्जवत्ववादिवाऽपि वाक्यायंत्व नेप्यने तात्यमंदरयत्वाद् ष्वते । तम स्वापंत्य द्वितीयक्सामामविद्यान्तस्य तृतीयक्साभावात् । वैव विषय क्सा तत्र द्वितीयक्साविद्यान्तस्य तृतीयकस्याभावात् । प्रकरणात् पितरि वक्तरि पुत्रस्य विषयक्षण्यानियोवाभावान् । रस्वद् वाक्येषु च विभावस्यात्वाद्यात्वाद्यात्वास्य रमनवगमात् । तदुक्नम् ।

मप्रतिष्ठमिषधान्तः स्वायं यत्परतामिदम् । बावय विगाहते तत्र न्याच्या तत्परताऽस्य सा ॥ यत्र तु स्वार्यविधान्तः प्रतिष्ठाः तावदागतम् । तत्र प्रमर्वेति तत्र स्यान् सर्वत्र व्यक्तिना स्थिति ॥

वर् अन्यता वन स्थान् एवन स्वाना स्थान । इत्तेन सर्वत्र कार्ना व्यञ्जस्यक्षेत्र । वस्त्ववञ्जारवीसु व्यविद् बाच्यत्व वर्षाबद् व्यञ्जपत्वम् । तत्राविद यह व्यञ्जपत्य प्राचायिन प्रतिचसिसस्येन स्वतिस्थार गुणीभृतव्यञ्जनवम् । स्वतुस्तम् ।

यत्राज्यं सन्दो वा यत्रधंमुपसजेतीकृतस्वार्थो । व्यक्तः काञ्यविशेष स ध्वनिरिति सूरिभि कथित ॥

प्रधानेश्च्यत्र वाक्याये यत्राऽङ्ग तु रतादयः। नान्ये तस्मिन्नलङ्कारो रतादिरिति मे मनिः।।

षणा । चपोडरामेश्रीत्यादि । तस्य च ध्वतेविविक्षतवाच्याविविक्षतवा-च्यत्वेत दैविष्यम् । प्रविवक्षितवाज्योऽपत्यस्तितरस्ट्रतस्वाभोऽप्यत्यस्वेति पिठवाज्यस्वेति द्विया । विवक्षितवाज्यस्य ध्यसलिक्षत्रमः कम्योध्यस्वेति दिविय । तत्र रमादीनामसलस्यम्मे ध्यनित्व प्रावान्यप्रतीतौ सर्या-

मङ्गित्व । तत्र रमाद्यानामसलस्यमम् च्वानत्त्र प्राचीन्यप्रताता सर्याः मङ्गत्वेन प्रतीतौ रमवदलङ्कार इति । मत्रोच्यते ।

वाच्या ""मानस्तयेतरी ॥३१॥

(पंचा तौनिकवाक्येषु श्रूयमाणिकयेषु गामन्याजेत्यादिष्वश्रूयमाण-त्रियेषु च द्वार द्वारीमत्यादिषु स्वसन्दोपादानान् प्रकरणादिवसाद् बुद्धि- यावस्मार्थभारितंत्वान् वात्तर्यं न त्वाय्वम् ।।
अमधारिनविष्यस्यीमीत स्रीमञ्ज्ञास्परे ।
निन्धांनृति क्य वास्य निपेधमुरपर्धनि ॥
प्रतिपात्रस्य विद्यान्तिरपेशापूरणाट् यदि ।
वस्तुविवतितप्राप्तरविद्यान्तिनं वा वद्यम् ॥
पीरुपेयस्य वास्यस्य विषता परतन्त्रता ।
वस्त्रमित्रेतस्य वास्यस्य विषता परतन्त्रता ।

इति । भ्रता न रसादीना नाम्येन सह स्वजु घर्यप्यवन्त्रभाव । नि सहि मान्यमाद्यस्य स्वास्य हि मान्यमाद्यस्य । ते हि स्वनी मान्यस्य एत मान्यस्य हार्य हि मान्यस्य । ते हि स्वनी मान्यस्य एत मान्यस्य प्राप्त नि नाम्यस्य एत्यस्य स्वास्य प्राप्त न नाम्यस्य प्राप्त न स्वयस्य स्वयस्य मान्यस्य स्वयस्य स्याप्त स्वयस्य स्ययस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य

भाषाभिनयसम्बन्धान् भावयन्ति रसानिमान् । यस्मात् तस्मादमी भावा विज्ञेया नार्ययोजन्ति ॥

इति । कय पुनरगृहीतवान्त्रन्येन्य पदेन्य स्थाप्यादिप्रतिविधिते चेन् लोके त्रपादियवेष्टायुक्तस्त्रीयुसादियु स्त्याद्यविनामावदर्यनायिहार्नीप वैषोपनिक्यं सति रस्याद्यविनामृत्येष्टादिप्रतिपादकसन्द्र्यविषादिमधेया विनामावेन लाक्षणिकी रस्यादिप्रतीति । यथा च बाब्यायंस्य रसमावकस्य उत्पाप्री वस्त्राम् ।

रसः " परत्वतः ॥३६॥

द्रेष्टुः''' ''दशैनात् ॥३७॥

विद्यासँप्रप्ताविनो रासिन्थती रायादि स्वाधीभाव स इति प्रति-निदिस्यने । स च स्वाधता निर्भरानन्दसविदात्मतामाधाउमानो रसो रिस्ववर्तीति वर्नमानत्वान् नाड्युनार्यसाधिवर्ती वृत्तस्वार्य् तस्य । ध्रय सन्दोगित्तदस्यत्वेनाऽवर्नमानस्यापि वर्तमानवद्वसासन्धिप्यतः एव । त्याप्रिय तदवमासस्याप्न्यदादिभिरमुभूयमानत्वादस्वस्यवैकास्यार प्रति ४३८ दशरूपर सनिवेशिनी त्रियेव सारकोपचिता वावशार्यस्तया बाब्येध्टपि स्वशस्त्री-

पादानात् वयनित् प्रीत्यै नवोद्धा प्रियेत्येवमादी वयनित् च प्रकररणादिवधान् नियताविहितविभावाद्यविनाभावाद वा साक्षाद भावकचेतिस विपरिवर्त-रत्यादि स्यायी स्वस्वविभावानुभावन्यभिचारिभिस्त-शच्छरदोववीतैः सस्कारपरम्परया पर श्रोडिमानीयमानो रत्यादि-वाक्यार्थः । नचाऽपदार्थस्य वास्यार्थस्य नास्तीति बाच्यम् । कार्थपर्य-बसायित्वात् तात्वयंशकते ) तथाहि <u>वेशैरुवेयम्</u>यौरुवेय बा<u>वय सर्वे</u> मार्यपरम् । <u>ग्रतत्परत्वेऽनुपादेयत्वादग्मतादिवाक्यवत्</u> काध्यरा<u>न्दा</u>ना चाऽन्वय-पतिरेकाभ्या निरतिशयसुखास्वादव्यतिरेकेण प्रतिपाद्यप्रतिः पादकयोः प्रवृत्तिबियुपयो प्रयोजनान्तरामुपसन्ये स्वानन्दोद्ध्रतिरेव नाुर्यादेनाऽवधारयंते । तदुङ्क् तिनिभित्तत्व च विभावादिससृष्टस्य स्पापिन तत्तत्त्वार्यापेशितावान्तरविभावादिप्रतिपादनद्वारा स्वपर्यवसायितामा-नीयते । तत्र विभावादय पदार्थस्थानीयास्तत्सपुच्टोरस्यादिवन्यार्थे । सदेतत् कान्यवावयम् । यदीय ताविमी पदार्थवावयायौ । न चैव सति गीतादिवन् सुखत्रनशस्तेऽपि वाच्यवाचकभावानुपयोग ।विशिष्टविभावादि-सामग्रीविद्यामेय तथाविधरस्यादिशावनावतामेव स्वादोद्भृतेस्तरने-नाऽतिप्रसङ्कोऽपि निरस्त । ईदशि च वावयार्यनिरूपणे परिकरिपता-मिधादिशक्तिकार्वेव समस्त्रवाक्यार्थावगते वाक्तधन्तरपरिकरपन प्रथासः

यथाऽबीदाम मान्यनिर्णये । ता<u>रप्रयोगतिरेकाच् च व्यञ्जवस्यस्य न घ्वनिः</u>। निमुक्त स्वादश्रुतार्यतास्यग्रंज्योनितरुपिणि ।। विष मक्षय पूर्वो यस्कैव परगुतादिषु । प्रमहाते प्रधानस्याद् ध्वनिस्त केन वार्यते ॥ ध्वनिदक्ते प्रधानस्याद् ध्वनिस्त केन वार्यते ॥ ध्वनिदक्ते स्वायंविश्रान्त वाक्यमधीनतस्ययम् । तस्यस्य स्वविद्यान्ती सन् ग विश्वान्यसम्मयात् ॥ एतावस्येव विद्यान्तिस्तास्पर्यस्यिति कि कृतम् । वावन्तार्यप्रसारिर्वायन् तास्त्यं स तुन्नायृत्म् ॥

प्रमधानिकविष्यव्यगिति अविश्वतास्त्यः ।

निव्यवित्तं क्य वास्य निषयपुरसर्पति ॥

प्रनिपान्नस्य विष्यान्तररेशापुरणाद सदि ।

सन्तुविविद्यान्तर्यविद्यान्तिकं वा स्थम् ॥

पौरपेरस्य वाक्यस्य विद्या परतन्त्रता ।

क्रमिन्नेतनान्यस्ति नास्त्रस्य पुज्यते ॥

इति । <u>वती न स्मारीना काव्येन मह व्यक्त व्यय्जवक्षाव</u> । कि तिह्

माध्यमावक्रसंक्त्य काव्य हि मावक्स् । माध्यम स्तादम । ते हि स्वता

"मवन्त एव मावकेषु विशिष्टविषम जादिमता काव्येन साव्यम्ते " साऽयम राव्यास्तरिषु माव्यमाववक्षत्रस्यस्यस्यमावात् काव्यन्य देव्यति तमा माध्य-मिति बाज्यम् । मावनाष्ठियावादिमिस्तयाऽङ्गीकृतत्वात् । किञ्च मा नाज्यम् तवाहस्त्वनवव्यविरेकाम्यामिह तयाऽवस्तात् । तक्ष्यम् मा

भावामिनयसम्बन्धान् भावयन्ति रसानिमान् । यस्मान् तस्मादमी भावा विजेपा नाट्ययोग्तुमि ।।

दिना । क्य पुनरमुहीनसम्बर्धम् पदेम्य स्वाय्यादिमापतिसिति चेन्न् तोके त्याविच्चेच्याचुननस्त्रीयुमादिषु रत्यायादिमापादसँगादिहाऽपि स्योपनिक्यं सति रत्यायदिमाभूतचेट्यादिमतिपादक्य रश्वयादिमधेया विनामादेन लाझणिकी रत्यादिश्रनीति । यथा च सन्यायंस्य रसमावसस्य स्वायंत्री बहागमः ।

रसः \*\*\* परस्वतः ॥३६॥ इप्टः \*\*\*\*दर्शनात् ॥३७॥

भाव्यापारण्याविनां रिमिक्वतीं रत्यादि स्वायीमाव स इति प्रतिनिर्दिरम्ते । स च स्वाद्यना निर्मरानन्दमविदा मतानापादमानी रसी
रितिकवर्तीति वर्तमानत्वान् नाज्नुनायरामादिवर्ती नृस्तत्वात् राज्य । प्रय शर्वारहितरूपतेनाञ्जनेमानस्यापि वर्तमानवद्वमाननिष्यत एव । स्यापीर तदवमासस्याज्यस्यापि वर्तमानवद्वमाननिष्यत एव । ४४० इशहपक

विभावस्तेन तु रामादेवंतमानवरवभागनिष्णत एव । विश्व न वास्य रामादोना रक्षेपजननाय विविधः भवरखे । व्यक्ति सहस्यानानग्द्यितुम् । स्व समस्यभावकस्वस्येव एव । विद् वाध्युवार्यस्य रामादे शृङ्कार स्यात् तवो नाटकारी वहस्येन सीनिक इय नायके शृङ्कारिण स्वत्रात्वात्त तवो नाटकारी वहस्येन सीनिक श्रेक्षनणा प्रविविधान भवेन् न रसाना स्वाद सस्युवराणा व कण्येतरेया स्वस्यानुरागायहारिक्यास्य प्रसम्ययेत् । एव च सित रसादोना व्यङ्कारत्वास्य । अन्यतो लब्धासाना वस्त्यत्वाधिक अध्यक्ती । अर्थयेते लब्धासाना वस्त्यत्वाधिक अध्यक्ती । अर्थयेते वस्त्रात्वाभिक्यास्य स्वस्त्यत्वाधिक अध्यक्ती । अर्थयेते वस्त्रात्वाभिक्यास्य स्वस्त्यत्वाधिक अध्यक्ती । अर्थयेते व विभाविधि अस्त्रवेषु रसा इत्याविद्यनेष ।

नमुच सामाजिकाध्येषु रसेषु को विभावः। क्य च सीतादीनाः च देवीना विभावलेनाऽविरोधः उच्यते।

थीरोदात्ता•···· रसिकस्य ते ॥३८॥

न हि कवयो योगिन इय ध्यानवश्रुषा ध्यात्वा प्रातिस्विरी पामा-वीनामवस्या इतिहासबदुपनिवध्यन्ति । कि तीह सर्वलोकसामारणा स्वोन् प्रेसाङ्कसन्निषयो घीरोवासायवस्या यर्वाच्याश्ययात्रयास्यि इपति ।

ता ····रसहेतव ।

तत्र सीतादिशस्या परित्यक्तजनकतनयादिविशेषा स्त्रीमात्रवाचिनः किमिवाऽनिष्ट कुर्यु । विभिन्नं तहा पादीयस्य इति चेदुच्यते ।

एतदुनन भवति । नाऽत्र लौनिकशुद्धारादिवत् स्थादिविभावा-दीनामुपयोप । कि तर्हि प्रतिपादितप्रकारेण सोकिकरस्रविलक्षण्टव नाटपरसानाम् । यदाह । ब्रप्टो नाटपरसा स्मृता इति ।

काय्यायं ० \*\*\* वायते ।

कीइताः\*\*\*\*दिभिः ॥३१॥

नसंकोऽपि न लीनिक रहेन रहवान् भवति । तदानि भोग्यरिन स्वमहिलादेरग्रहणात् नाव्यार्थभावनया स्वस्मदादिवत् नाव्यरसास्वादीः अयापि न वार्वते । कथ च काव्यान् स्वादोद्गूतिः विमातमा चाऽपाविति ब्युत्पाद्यने । स्वाद ·····ःसमुद्भवः ॥४०॥

विकास - ज्यात् ॥४१॥

हास्याद्युतः "धारत्म् ॥४२॥

काव्यार्येन विभावादि समुष्टस्थाय्यासक्षेत्र प्रावक्षेत्रतः सम्भेदेऽन्योत्य-स्थलने प्रत्यस्तम्बद्धवरिवमागे सित प्रवलतस्वानन्दीद्मृतिः स्वादः । सस्य ष सामान्यात्यकःचेऽपि प्रातिनिवाधिकावादिकारत्यन्त्रत्यन्तेत सम्भेदेन षत्यां चित्तमूमयो मवन्ति । तद् यथा । शृङ्कारे विकासी बीरे विस्तरो सीमस्त सीमो रौडे विकास इति तदन्येषा चनुर्णी हास्याद्मृतमयानक-कर्रणानाः स्वसामग्रीजन्यपरियोगाणा स एव चत्वारो विकासाग्रास्वेत्रस् सम्भेदा । प्रनणव ।

शृङ्गरादि भवेदास्यो रीतान् न करुणो रस । धीरान् भैवाश्न्मुकोत्पतिश्रीभरमान् न भयानक ॥ इति । हेतृहेतुमद्भाव एवं सम्भेदापेक्षया दिवती व नार्य कारणभावा-भिप्रायेण तथा कारणान्तरजन्यस्वात् ।

मृज्जारानुकृतियां तु स हास्य इनि वीसित ।

रहारिता विकासीदमभ्येदेवलस्थैव स्कृतीकरणादवबारणसम्पात्वा प्राप्टा-विति सम्मेदाना भावान् । नतु व मुक्त रहाद्वारित्य प्रमोदा-स्वतेत सम्मेदाना भावान् । नतु व मुक्त रहाद्वारा सुरु स्वास्त्रस्व कम्प्र-मिवाउमी प्राष्ट्रप्यान् । तथाहि । तम करणास्मककाव्यभवणाद् दुःसावि-भावाउमी प्राष्ट्रप्यान् । तथाहि । तम करणास्मककाव्यभवणाद् दुःसावि-भावाउम्प्रत्याद्वारम्व रिवनतापित प्राष्टुमेवनि । न चैतदानन्दारमक्त्व सिन युक्तते । संप्योतन् । क्वित् ताद्व एवाप्र्यावान्य सुखदुःसारमको यया प्रद्रशाविषु सम्मोगावस्याया पृत्तिक त्रीरुगानन्यस्य नौक्तिकात् करणात् काव्यक्त । तथास्योतात्यार रस्तिमा प्रवृत्तव । यदि वा विकायकाव्यक्त रसाय स्वामायस्थात्यस्यान व्याप्त विकायस्य प्रवृत्तव । यदि वा तत्व कारुप्यकरसावा रामायस्थादिमहस्यवन्यानापुरुवेद एव मवेदस्याता-रयस्वित वृत्तवस्थानाक्षत्वन विनिपानितषु लोकिकवैनकव्यस्थानादिवत् ४४२ दशरूपैक

प्रेक्षकाणा प्रादुर्भवन्तो न विरुध्यन्ते । तस्माद् रसान्तरवत् करणस्याऽप्या-नन्दात्मवरवमेव ।

नतु सान्तरसस्याऽनिभयेयत्वाद्यविष् नाट्येऽनुभवेशो नाऽस्ति तयाऽपि सूक्ष्मातीतादिवस्तूना सर्वेषामपि शब्दप्रतिपाश्चतामा विश्वमार्गस्यात् वाव्या-विषयस्य च निवाय्येते । श्रतस्तदुरुयते ।

शम•\*\*\*तदात्मसा ।

शमणात्वासमसा । शमतो हि यदि तावतु ।

> न यथ दुख न सुख न चिल्ता न देपरागीन च काचिदिच्छा।

न द्वपरागा न च कामचादच्छा रसस्तु शान्त कथितो मुनीनद्रै

रसंस्तु थान्तः वर्षियतो मुनीन्द्रं सर्वेषु भावेषु श्रमभ्रथानः ॥ इस्रिव लक्षणस्तदा तस्य मोक्षावस्थायामेबाऽऽस्मस्यष्ट्यापत्तिस्रस्यामा मार्ड-

र्माबात् तस्य च स्वरूपेणाऽनिवंचनीयता । तवाहि श्रृतिर्दार्थ स एय नेति नत्यन्यापोहरूपेणाऽञ्च न च तथाभृतस्य सान्तरसस्य सहृदया स्वार्दायतारः सन्त्यम तहुपायभूतो मृदितायैत्रीनक्षणोपेशादिसक्षणस्तस्य च विदास-

विस्तारक्षोभविक्षेपरूपवैवेति । सदुवत्यैव धान्तरसास्वादो तिरूपित । इसानी विभावादिविषयावान्तरबाध्यव्यापारप्रदर्शनपूर्वक प्रवर्णेनी-पसहार प्रतिपायते ।

पदार्थे० "गतः ॥४३॥

भावित " " व्यक्तिशिततः।

द्यतिदायोनितरूपवाध्यव्यापाराहितविदोवदेवन्द्राचे स्हीपनविमावै प्रम-दाप्रभृतिभिराजन्वनविमावैनिवैदाधिभिश्वेमिचारिभावे शैमाञ्चायुग् धपरटादाायेरनुमावैरवान्तरव्यापारतया पदार्थीकृतैवांवदार्थ स्यायोभायो विमादितो नावरूपनामानीत स्वदने ग रस इति प्राव प्रनुपर्यो ताल्यम् ।

विशेषसंधान्युच्यन्ते । तत्राक्ष्णवर्षेण स्थाविना रत्यावीना शृङ्का-रादीना च प्रवत् संधाणानि विभाषादिप्रतिपादनेनोदितानि । पत्र हु ।

सदार्गंदय ... ० दयो ॥ ४४॥

```
£¥¥
```

ियत इति वास्यक्षेप । तत्र तावन् शृङ्कार । रम्पदेशः । विकेटितं ॥४१।

रम्पदेशः -- विवेटितं ॥४१॥ इत्यमु पनिदम्यमान काव्य श्रृतारास्वाराय प्रभववीति । कव्युपदेश-

इत्यमुपनिप्रध्यमान क परमेतन् ।

तत्र देशविभावो यथोत्तररामचरित । स्मरसि मुतनु तस्मिन् पदन सदमस्पेन

प्रतिबिहित्तनपर्यासुन्ययोस्तान्यहानि । स्मरनि सरसर्वीरा तत्र गोदावरी वा

स्मर्गतः च तदुपान्नेष्वाबयोर्बर्नमानि ॥ क्लाविभानो यया ।

हस्नैरन्निनिहितवचनै मूचित सम्यगर्य पादन्यासैलंबमुपगस्तन्त्रपत्त्व रसेपु ।

द्यानायोनिमृंदुरभिनय पहिंदनन्त्रोजुङ्क्तै-भवि भावे नुदति विषयान् रागवन्य स एव ॥

यथाच ।

व्यक्तित्व्यंञ्जनमातुना दशविषेनाज्यत्र सव्याऽमुना विस्वय्दो द्रुतमध्यलस्वितयरिन्छिनस्याज्य स्याः ।

मोनुष्ठप्रमुना कर्मण गतयस्तिलोशीप सम्यादिता-स्तर्त्वाधानुगतास्च बाद्यविषय सम्यन् त्रयो श्रेरिता ॥ मालविमानी यथा हुमारसम्पर्व ।

म्रमून सद्यं बुसुमान्यद्योक स्वन्धात् प्रभृत्येव सपल्लवानि । पादेन चाऽपेक्षत सुन्दरीणासम्पर्नमासिन्नितमूपुरेला ॥

इत्युपक्रमे ।

मधु हिरेप' हुसुमैनपाने पपौ प्रिया स्वामनुबर्तमान । शृद्धौरा सस्पर्धनिमीतिवासी मुगोमनप्डूयत हुप्रासर ॥ XXX दशरूपक

वेत्रविभागो एक सर्वेत ।

ग्रशोकनिर्म स्तितपदाराग भाक्ष्यहमज्ञतित्रणिकारम् । मुक्ताकनापीकृतसिन्द्रवार वसन्तपुष्पाभरण वहन्ति ॥

उपभोगविभावो यथा ।

चञ्जर्द्यमधीकण कवलितस्ताम्बूसरागोऽघरे विधान्ता कवरी वपानकसके लुप्तव गात्रश्रुति । जाने सम्प्रति मानिनि प्रशुविना कॅरप्युपायक्रमै-

भंग्नो मानमहातहस्तर्शणते चेत स्थलीवर्षित ॥

प्रमोदास्मा रितयंथा मालतीमाघवे ।

जगति ज्ञायनस्ते ते भावा नवेन्द्रकलादय प्रकृतिमधूरा सन्त्येवा प्रये मनी मदयन्ति वे । मम सु यदिय याता लोके विसोचनचन्द्रिका

नयनविषय जन्मन्येक स एव महोतसब ॥ युवतिविभावो यथा मालविकान्तिमित्र ।

दीर्घाञ्च शरदिन्दुकान्तिवदन बाहु नतावसयो सक्षिप्त निविधाननतस्नमुर पाहवे प्रमृष्टे इव ।

मध्य पाणिभिती नितम्ब जघन पादावरासाङ्ग सी छन्दी नर्तियत्ववंधेय मनस स्पष्ट तथा असा वपु ।।

यूनोविभावी तया मालतीमाघवे । भयो भय सविधनगरीरध्यया पर्यटन्त

> दृष्ट्वा दृष्ट्वा भवनवलभीतुःङ्गवातायनस्या । साक्षात काम नदिव रितर्मालदी माधव यद गाडोत्रण्ठालुलितललिवैरङ्गभैस्ताम्यतीति ॥

प्रत्योत्यानुरागी यया तत्रीय ।

यान्त्या मृतुर्वेषितकन्यरमानन तद् धावृत्तवृत्तरानपत्रनिम बहन्त्या । दिग्योऽमृतेन च विषेण च प्रमनाद्या गाँउ निवात ६व में हृदये कटाक्ष ॥

मधुरा द्विचेप्टित यथा तत्रैव ।

न्तिमितविकसितानामुभ्यसम्हभूननाता ममूर्णमुकुलिताना प्रान्तविकारमानाम् । प्रतिनयननिपाते विभिन्नदाकुर्श्यस्तानाः विविधमहममूब पात्रमालोक्तितानाम् ॥

ये सस्वज्ञा ॰ \* \* भिष्टम् ॥ ४६ ॥

त्रयस्त्रियाद्य्यमिबारिणस्वाऽप्टी स्थामित ग्रप्टी सान्विकारनेत्येवोम-प्रध्वाधात् । युक्ताऽङ्गत्वेनीनिवय्यमाना स्युद्धार सम्पादयन्यानार्यो-प्रयनुगुस्तामरत्यादीन्येकासम्यन्तिमाक्षाय्यत्वेन सासाद्यत्त्वेन चोपनि-वक्षमानानि विक्य्यन्ते । प्रकारान्तरेत्य पार्ववरोध प्राक् प्रतिपादित एव ।

विभागस्तु ।

ग्रदोगोः विघा।

ष्रयोगिविष्रयोगिविषे ०.त्याद् विश्वक्ष्यर्थवत् सामान्यानिषायि वेत विप्रसम्प्रसन्द उपचरितवृत्तिर्मापूर्विति न प्रयुवन । तथाहि । दस्या उन्हे-तमप्रान्तेष्ट्रय्यतिष्ठमे सान्येन नायिकान्तरानुसरणाच् च विप्रचन्त्रया दस्य कृत्यप्रयोगो बञ्चनार्थरवात् ।

सत्राव्याव्यावसङ्घ ॥ ४७ ॥

योगं ज्यो प्रस्तेनारम्बरभावन्त्योग । पारत्नवेष वित्रवर्षांद् देव-पित्राद्यायस्त्वान् मानिस्थामाल योवंत्मराज माधवाम्यामिव देवाद् गौगै-विवयोत्तिवाज्ञमालभोज्योग ।

दत्तावस्य \*\*\*\* यथोसरम् ॥ ४८ ॥ अभितायः\*\*\*\*\*\*\*\* ॥ ४१ ॥

```
दशरूपक
```

```
४४६
```

यषा वा।

सानु०\*\*\*\*\*• • दक्षिताः । गुणकीर्तन तु स्पष्टत्वान् न व्यास्थातम् । दक्षा०\*\*\*\*\* तदनन्तता ॥ ४१ ॥

```
साक्षावु *** • गुगस्त्ते ।। ५० ।।
भभिलापो यया ञाकुन्तले ।
               चसशय क्षत्रपरिषद्क्षमा
               यदार्थमस्यामभिलावि मे भनः।
                सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
                त्रमाणमन्त करणप्रवृत्तय ॥
बिस्मयो यथा ।
      स्तनावालोक्य तन्वज्ञधा शिर कम्पन्नते युवा।
      तयोरन्तरनिर्मग्ना द्विश्मृत्याटयम्निद् ।।
ब्यानन्दो यया विद्वहालमञ्जिकायाम् ।
      सुघाबद्वग्रासै ६पवन चको रै कवलिता
      किरन् ज्योत्स्नामच्छा सवलिकनपाकप्रणयिनीम् ।
      उरप्राकाराग्र प्रहिला नयने तकंय मनाग्
       भनाकारो कोऽय गलितहरिए। शीतकिरएः।।
साध्वस यथा कुमारसम्भवे ।
             त बीध्य वेषधमती सरसाञ्जयब्टि-
             निक्षेपगाय पदमुद्धतमुद्धहन्ती ।
             मार्गाचनव्यतिकराञ्चलिनेव सिन्ध्
             दौलाधिराजतनया न ययो न सस्थी ॥
```

व्याह्ता प्रतिवधी न सन्दर्भ भन्तुमैन्छदवलम्बिताशुना । सेवते सम द्यान पराड्मुखी सा तयाऽपि रत्तये पिनाकिनः ॥ दिद्मात्र तु । हरदे\*\*\*\*\*\* विचतनात् ॥ १२ ॥ शेष प्रच्ठननर्गाभनादि नामसूत्रादवगन्तव्यम् । स्रष विद्योग ।

मय विप्रयोग । विप्रयोगस्तु \*\*\* प्रणेयेटर्ययो ॥ ५३ ॥

ेप्राप्तयोग्यार्ट्याव्यविद्ययोग । तस्य हो भेदो मान प्रवासस्य । मानवि-

प्रयोगोऽपि द्विविध , प्रश्ययमान ईप्यांमानदचेति । सर्वः .... १ व्योद्धे यो ।

तत्र ...... व्यक्षिया । प्रेमपूर्वको बसीकार प्रस्पयस्नद्भाङ्गो मान प्रस्पयमान । ॥ च

ढपोर्नावनयोर्भवति । तत्र नायनस्य यथोत्तररामचरिते । प्राप्तमनेव लनागृहे स्थमभवस्तन्मार्गदत्तेशस्य

सा हुष्टै कृतकीनुका विरमभूत् गोदावरीक्षेक्ते । मायान्या परिदुर्मनाधितीमव स्वा वीदय बद्धस्तमा सातर्यादरविन्दबृदुमलिमो मुख्य प्रएमाप्जलि ॥

नायिकाया यद्या श्रीवाक् पनि राजदेवस्य ।

प्रशासनुभिता दृष्टा देवी ससम्भ्रमविस्मित-स्त्रिमुबनगुरुमीरया सध्य प्रणामपरीऽमवत् । स्वित्रशिरमो सन्धानीते तथा चरसाहता

मितितिरसो यङ्गालोरे तया चरणाह्ना बदतु भवनम्यशस्यैतद् विलक्षमविम्यतम् ॥ समयो प्रणुक्मानो वया ।

'पराप्रदुविमाण दोष्ट्वि मितमम्मुताम मागदन्तामाम् ।

णिस्वलिपद्धणीसामदिस्म घत्माण को मन्तो ॥ स्त्रीरागिक्तान् ॥ १४॥

चन्स्वरनाठः.... व्योवर ॥ ४१ ॥ इस्योमान पुन स्त्रीणानेव नारिकाननस्सत्निनि स्वकानी वयनको

१. प्रश्ययद्वितयोर्द्धं योरम्यतीरप्रमुप्तयोर्मीनवनी । निद्यसनिष्टनिद्यासदतकर्णयो. वो मत्सः ॥ ४४६ इत्तरप्र

गरयन्यासङ्ग खुती वाञ्चुनिती दृष्टी वा स्मान् । तत्र धवन धनीवनतान् तस्या विद्वास्त्रन्यान् । यदा मधैव ।

मुपु स्व नवनीवकन्यहृदया बेनाऽदि दुर्गिन्तवा निर्यंव त्रियनारिक्षा मधुमुनेनाऽस्थामु वस्त्रीकृता । कि रवेनट् विमृत दाल प्रलब्दिनामेगादि कस्ते हिन कि यात्रीतनया यय विमु सती किया किमसममुहन् ॥

उत्स्वप्नायिती यथा रहस्य ।

ित्यमेनन सवाज्यसि स्वरभरादाशीनमातिङ्गिता बेनाज्यीनमद तवाज्य कवित राष ! मुवा ताम्यति । इर्युन्द्वप्यरम्परामु रायने पृत्वा वव शाङ्गिणः मध्यान शिविनीहत नमतवा वण्टाह पातु व ॥ भोगान्द्रानितो यवा ।

नवनसपदमङ्ग गोपयम्पशुकेन

स्वगयसि पुनरोस्त पालिनः दन्तक्ष्यम् । प्रतिदिशमपरस्त्रीसङ्गशसी विसर्पन् नवपरिमलयन्य केन सक्यो वरीतुम् ॥

गोतस्ससनगरिपतो यथा ।

**े देलीगोत्तरसम्**शै विकुप्पर् केंग्रव ग्रद्याणन्ती ।

दुटु उम्रतु परिहास जामा सन्व विम्न परन्मा ।। दुथ्टो यया श्रीमुञ्जस्य ।

प्रणयकुषिता दृष्ट्वा देवी ससम्भ्रमविस्मित-स्त्रिमुबनगुरुर्भीत्या सद्य प्रणामपरोऽभवन ।

नमित्रश्चिरसो गङ्गालोके तया चरसाहता-बवतु मवतस्यक्षस्यतद् विवसमवस्थितम् ॥

एपाम् ।

१ केलीगीजस्वलन विकुप्यति केतवमजानन्ती । दुष्ट पदय परिहास जाया सत्यद्भिव प्रवदिता । ययोत्तरं\*\*\*\*\*\*रसान्तरं\* ॥ ५६ ॥ तत्र\*\*\*\*\*\*नतिः ॥ ५७ ॥ सामारो\*\*\*\*\*\*पादिताः ॥ ५८ ॥

सामारोः पादिताः ॥ ४८ ॥ सत्र प्रियवष माम यथा पर्मय ।

स्मिरज्योत्म्नामिन्ने घषनयति विश्व मुश्याजी द्वास्ते पीयूषत्रवमिव विमुज्यन्ति परितः । थपुस्ते सावष्य निरति मधुर दिश्न तदिद

कुतम्मे पारस्य मुतनु हृदयेनाज्य मुश्तितम् ॥ ियमा वा ।

इन्देविरेण नवन भुगमस्युजेन बुन्देन दस्तमधर नवगम्मवेन । सङ्गाति चम्पवदर्शः म विद्यास वेद्याः सम्ते वय रिवनवानुपतेन चेतः ]

नायिकाससीममावर्जनभेदो यथा मर्मव । इतेऽप्यानाभञ्जे स्थमिव मया वे प्रश्ततयो

युना स्मित्वा हस्ने विमृत्रीत वय मुभ्रः बहुरा । प्रकोप कोऽत्यन्य पुनरयमनीमाऽच गुलितो

वृद्य यत्र न्याचाः त्रियम्हन्दरीमामपि विर ॥

दान व्याजेन भृषाहेय्यंगा मापे । महरपहरिनामिकाः निनादे-

वितरित व विविद्या हिम्म्पेमेनाम् । प्राधिरणेनि गतेन थाम्नि तस्याः राज बनिरेव महास्वमाध्य दन ॥

पादयो. पतन निर्विथा । "गोउरकोटिविसम्य चिहुर दृद्यम्म पापपटियम्म ।

रिक्रम मालुपबस्य उम्मोग्रति व्यिम नहेइ ॥

नृपुरकोटि वित्तन्तं चितुर विवतस्य पादपतितस्य ।
 हृदय भारपदीत्यमुन्युक्तमित्येव क्यापाति ।।

उपेक्षा तदबधीरका यथा ।

कि गतेन न हि बुक्तमुपैत नेहबरे परुपता संखि साध्वीं ! पानवैनमन्त्रीय वथ वा विशियाणि जनयन्त्रनेय ॥

रमस्त्रासहपदि रसान्तरात्नोपभ्र शो यथा मसैव ।

प्रभिद्यक्तासीय सक्तविफलीपावविभय-

दिचर ध्याः वा सद्य जुतज्ञतन सरम्भनिप्राम । इत पुष्ठे पुष्ठे किमिदिमिति सन्त्रास्य सहसा

कृताश्लेषा धृतं स्मितमधुरमालिङ्गति वधुम् ॥ द्यय प्रदासविष्ययोग ।

हिला ११५ है।

पुर्यक ।

म्राद्य कार्यंज समुद्रगमनसेवादिकार्य्यंवशप्रवृक्ती वृद्धिपूर्वनत्वात्

भूतभविष्यदूर्तमानतया भिविष ।

तत्र ग्राम्पत्यवासी ग्रहा ।

'होन्तपहिमस्स जामा बाउच्छण्जीमधारणरहस्सम् । पुच्छन्ती भमइ घर घरेस विग्रविरहसहिरीया।।

गच्छत्प्रवासी यथाऽमध्यतके ।

प्रहरविरती मध्ये वाऽह्नस्ततोऽपि परेऽयथा दिनकृति गते बाऽस्त नाथ स्वमद्य समेप्यसि । इति दिनदातप्राप्य देश प्रियस्य विद्यासती

हरति गमन बालाऽऽनापै सवाध्यगसञ्जलै ।।

धया या तर्त्रव 🗟 देशैरन्तरिता श्रतैश्च सरिवामुर्व्वामृता काननै-धत्नेनाऽपि न याति लोचनपय बान्तेति जानत्त्रपि ।

 भविष्यत्पविषस्य जावा आयु क्षाम्जीवघारम्परहर्वम् । प्रच्छन्तो भ्रमति बहादगृहेषु प्रियधिरहसङ्गीका ॥

चद्ग्रोवस्परणाधंरद्ववन्ध कृत्वाऽश्रपुर्ले दश्ती तामाद्यापविकस्तथाऽपि किमपि ध्यात्वा विर निष्ठति ॥

गतप्रवासी यया मेघटते ।

उतसङ्घे या मलिनवयने सीम्य निश्चिय वीषा मञ्जोताञ्च जिरनितपद गेयमदगातकामा । तन्त्रीमाद्री नयनसलिले सार्यास्त्रा कवञ्चिद

भूयो भूय स्वयमि इना मूर्च्छना विस्मरन्ती । मागच्छदागनमोस्तु प्रवामाभाषादेष्यत्त्रवामस्य च गनप्रवासाविदेशानु त्रीविध्यमेव युक्तम् ।

डितीय \*\*\*\*\* वातु ।

उ.पानिमानवादिजन्यविष्नवान् परस्रकादिजन्यविष्सवाद बाज्रहि-पुर्वकत्वादेकाचा एव सम्झमना प्रवासा । यथोर्वशीपुरूरवसीविकमोर्वस्याम् । चवा च चपालरु ध्रवापहृताया मालत्या मालतीमायवयो ।

स्वरुपाठ \*\*\*\*\* विवि ॥६०॥

यदा कादम्बरमी वैद्यम्पायनस्येति । मृते'''''नेतर ।।६१॥

मयेन्दुमनीमरणादञस्य वरुल एउ रघुवनै । वादस्यस्पीतु प्रथम करण मानागसरम्बनीवचनातुर्वं प्रवासश्याद्वार एयेति ।

तत्र नायिका प्रति नियमः।

प्रसम्बार्वः व्याप्तिका ।।६२॥

प्रथ सम्बोग ।

प्रवृक्ष्यी \*\*\*\*महाहन्वित ॥६३॥ ययोत्तरशमचरिने ।

क्मिनि विमनि मन्द मन्दमानतियोगाद प्रविरक्तिकारील जलपनीरप्रमेख ।

सन्दरपरिरम्य वापृत्रेवीव दोव्यो

रविदिनयनवामा रात्रिरेव व्यरनीन् ॥

रहार प्रक

उपेक्षा तदबधीरमा यथा ।

कि गतेन न हि युवनमुपैन नेश्वरे परुपता सखि साध्वी ।

मानवैनमनुनीय स्य वा विशियाणि जनयन्तनुनेय ।।

रभसवासहपदि रसान्तरात्नीपभ्रश्ची यथा ममैव।

च्यभिरवन्तासोक सम्लविक्रसोपावविभव दिचर ध्यात्वा सद्य कृतकृतवसरम्भनिप्राम् ।

इत पृष्ठ पृष्ठे किमिदमिति सन्त्रास्य सहसा

ष्ट्रताक्ष्तेपा धृतं स्मितमध्रमालिज्ञति वधुम् ॥ स्य प्रवासविष्रयोग ।

តារវិក दिता ॥४१॥

पुर्वक ।

काय्यज समुद्रगमनसेवादिकाय्यवश्रद्रवृत्ती बुद्धिपूर्वकरवात् भूतमविष्यद्वतमानत्या त्रिविष ।

तत्र यास्यत्प्रवासो यथा ।

<sup>९</sup>होन्तपहिश्रस्त जाम्रा श्राउच्छएाजीन्नधारणरहससम् । पुच्छन्ती भगइ घर घरेन पिग्नविरहसहिरीमा ॥

गच्छ दप्रवासी यथाऽमञ्जातक ।

[ प्रहर्रावरती मध्ये वाऽह्नस्ततोऽपि परेऽयवा दिनकृति गते वाऽस्त नाथ स्वमद्य समेध्यसि । इति दिनशतप्राध्य देश प्रियस्य वियासती

हरति गमन बालाऽऽनापै सवाष्पगलकाली ।।

यया वा तत्रैय। दर्शरन्तरिता वर्तश्च सरितामुर्ध्वीभृता काननै-

यत्नेदार्शय न याति जोजनस्य कालेति जाननापि ।

भविष्यत्पविकस्य जाया आयु क्षामुजीवधारसरहस्यम् । **9्रद्धती भ्रमति गृहाद्**ग्हेषु प्रियविरहसङ्खीका ध

४५२ दशहपरू

ग्रयवाः। प्रिये क्मितत् । विनिद्दचेतु शक्यो न सुखमिति वा दु खमिति वा प्रमोदो निद्रावा किमुविषविषर्षं किमुमद ।

तन स्पर्धो स्पर्धो मन हि परिमूदेन्द्रियगणे विकार कोऽध्यन्तर्श्वद्रीत स ताप च क्रते ॥

ययाच समैव।

त्तावण्यामृतविधि प्रतिदिशं कृष्णागरस्यामने वर्षाणामिन ते पयोधरमरे तन्यिङ्गं दूरोन्तते । नासावशमनोज्ञनेतनतनुभू पत्रमभौत्नसत्

पुरुपक्षीस्त्रवक्ष सहेलमलकँमूँ क्रूँरिवाऽप्रीयते ॥ चेटास्त्रव \*\*\*\*प्रति ॥६४॥

तास्च सीदाहृतयो मायकप्रकाशे दशिता ।

रमयेषु न च ॥६४॥

ग्राम्य सम्मोग रङ्गो निविद्धोऽपि काब्येऽपि न कर्त्तव्य इति पुनर्निन विष्यते । यथा रस्तावस्याम् ।

स्पृष्टस्त्ववैष दिवते समरपूजान्यापृतेन इस्तेन ।

उद्भिनापरमृहुतरिमसलय इव सध्यते ज्ञोक ॥ इत्यादि । नायननायिनाकीक्षकीवृत्तिनाटकनाटिनाक्षसणाद् युवन कविन

इत्यादि । नायननायिनाक्रीशिकीवृत्तिनाटकशादिनास्रशस्याद् युवन कोयन् परम्परावनतः स्वयमीनित्वसम्भावनानुगुष्येनोक्ष्मेक्षतः चार्ब्यसन्दयानः सुक्षि गृङ्कारमुपनिवय्नीयात् ।

सम वीर ।

थीर .... '०प्रहर्षा ॥६६॥

प्रतापवित्यादिमाविमावित पहणायुद्धानार्धरनुषावितो गर्वपृति-हृषांनपंग्मृतिमतिवितवंप्रमृतिभिर्मावित उत्साह स्थाप्यी स्वरते मावर-मनोविस्तापतन्याय प्रमृत्तिविद्याये थीर । तत्र स्था थीरो प्रधा नागानग्दे जीमृतवाहनस्य । युद्धवीरो थीरचित्ति रामस्य । दानवीर परशुराम-विद्यमृतीनाम् । न्याग-प्रत्तसमुद्दपुदिनमहीनिव्योत्रदानायधि • । इति । सर्वयोग्यविमुदगसियविष्ठसद्वसः स्पृरत्कौस्तुस निर्वस्मामिसरोजनुद्दमसनुद्वीयम्त्रीरसामप्यति । पात्रावाग्विसमुत्सुकैन वस्तिना सानन्दमासीकित पायाद् व त्रपवर्षमानमहिमास्वयं मुरारेर्वनु ॥

ययाच ममैव।

तःमीपयोषरोन्सङ्गङ्कः मारुणितो हरे । यतिरेष च येनाञ्च मिक्षापानीहृतः नर ॥

विनयादिषु यूर्वेश्वराहतमनुष्ठाययम् । प्रतारनुषावर्जनादिना धीरामा-मपि भाषान् भैव प्रामोवादः । प्रस्वेदरसम्बदननयनादिकोषानुभावरहित्वो युद्धवीरोऽयया रौद्र ।

झय बीमन्त्रः । बीमस्सः \*\*\*\*\*दादवः ।

भरयन्ताहृर्वं द्विभित्रिगिन्धिप्रायिषमावैश्दभूतो जुगुप्तास्याधिमाव-परिपोषणनसम् उद्देगी बीमन्सः । यया मासतीमाववे ।

उन्हर्नोस्ट्रस्य द्वाँत प्रमानय पृष्कोपम्यावि माण स्वतन्त्रिकृष्ट्रप्रिण्डाश्ययनुत्रमान्युष्ठ्तीन जग्प्याः । मार्तं पर्यमानेत प्रमित्तवान प्रेतरक्तु नरक्काद् प्रदुत्यादिनश्य स्पष्टुट्यतमि प्रन्यस्यप्रमितः ॥ रापरान्यस्यानेतम्मासाविधमाय सोमर्गो बीमस्यः । यदा वीर्चारंते ।

भ्रत्वत्रोत्त्रवृहत्वपानतसः ब्रूलनएस द्वूल-भ्रावनीतृत्वभूरिष्वरादेवराधीयतः सम्बन्धः । योगोन्द्र्यदेवरवद्वर्यभणत्राग्वाराधीयस्याद-भ्रावीनस्त्रनारार्थरवत्त्रुवृत्योद्धतः यावति ॥ रभ्रोवनि रमगीवत्रभनस्त्रातिषु वैराज्यद्व पृत्यानुद्वो बीजन्तः ।

यदा ।

दशस्परः

ग्रयवा । प्रिये किमेतन् ।

विनिद्येतु शवयो न सुखमिति वा दु समिति वा प्रमोदो निद्रा वा किमु विषविसर्थ किम् मद । तव स्पर्धे स्पर्धे मम हि परिमृद्धेन्द्रियगणे विकार कोऽप्यन्तर्जंडयति च ताप च क्रुरते ॥

यथाच मनैव ।

लाबण्यामृतबर्षिणि प्रतिदिश कृष्णागरुश्यामले वर्षासामित्र ते पयोधरभरे तन्वाङ्क दूरोन्नते । नासावशमनोज्ञदेतकतनुर्भ्यं पत्रगर्भोल्ससत्

पुष्पश्रीस्तिलक सहेलमलकँ मूँ क्लीरिवाऽऽपीयते ॥

चेव्टास्तंत्र · ' प्रति ॥६४॥ तास्य सोदाहतयो नायकप्रकाशे दशिता ।

रमयेच 🔧 न च ॥६१॥

प्राप्य सम्भोग रङ्गे निविद्धोऽवि काश्येऽपि न कर्सव्य इति पुनिन• विभ्यते । यथा रत्नावल्याम ।

स्पृष्टस्त्वयैष दिवते समरपूजाव्यापृतेन हस्तेन ।

उद्भिनापरमृदुतरिक्सलय इव सथ्यनेऽयोक ।। इत्यादि । नायत्रनायिकाकैशिकीवृत्तिनाटकनाटिकालक्ष्माद् युनेन कवि-

परम्परावगत स्वयमीचित्वसम्भावनानुगुण्येनोश्त्रेक्षित चान्तुसन्दधानः सुकवि शृङ्गारम्पनिवध्नीयात् ।

द्यय बीर ।

धीर '''' ०ग्रहर्षा ॥६६॥

प्रतापविनयादिभिविभावित व क्षायुद्धदानाधैरनुभावितो गर्वपृति-हर्षामपंग्मृतिमतिविवर्षेत्रमृतिभिन्नायित उत्साह स्वायी स्वदेने भावह-मनोविस्तारानन्दाय प्रभवतीत्येष बीर । तत्र दया बीरो यदा नागानन्दे षीमृतवाहनस्य । युद्धवीरो वीरवस्ति रामस्य । दाववीर परगुराम-बसिद्रभृतीनाम् ।

न्यागःश्वरत्तमुद्रमुद्रितपहीनिव्योत्रदानाविच । इति । सर्वयन्यितमुक्तसान्यिविचसद्वसः स्फूरत्यौस्तुम निर्वयनामिसरोजनुद्रमलहुटोगम्भोरसामध्वति । पात्रावाध्तिसमुत्सुकेन बत्तिना सानस्वमातोनिद पायाद् च त्रमवर्यमानमहिसास्वयं मुरारिवेषु ।।

यया च ममैत्र ( लदमीपयोषरोन्सङ्ग हुङ्क, मारुखिनो हरे । बलिरेव च बेनाऽस्य मिशावाशीङतः बरः ॥

विनयादिषु पूर्वेश्वदाहतमनुबन्येयम् । प्रतारमुणावर्जनादिना घीराणा-मि भावात् श्रेथः प्रायोवादः । प्रस्वेदरक्नवदननयनादिशेयानुमावरहिञ्जो यदवीरोऽन्यमा रौडः ।

भप वीमतः।

बोमत्तः\*\*\*\*\* शङ्कादयः ।

मत्यन्ताह्यं प्रमित्रनिगित्रप्रायविभावेश्द्भूतो युगुप्नास्यायिभाव-परिपोपणलक्षण छडेगी योभत्सः । यथा मालतीमायवे ।

उन्हरवोरहरव कृति प्रयमभय पृष्ट्योपभूषानि मामा न्यमस्कर्पृट्टाविण्डाधवयवमुलमान्युयपूरीनि जम्हवा । मानं पर्यरतनेव प्रपटितदमन प्रतरङ्क सरद्वार् खटन्याटनियमस्य रखन्यतमपि स्वयेगस्यपमित ।।

श्रद्भुन्यादित्वस्य रचपुटगतमपि प्रव्यमन्यवमस्ति ।। रुपिरान्त्रदक्षातीकम्मासादिविभाव शोमर्गो सीमरनः। यदा वीरचरिते ।

भन्त्रभोत्रबृहत्त्रपातनतम् ब्रूपनरहत्त् द्भुष-भावनेद्भित नृतिभूषसर्वराधीयस्वत्मनसम् । भीतोन्द्रदितस्वत्त्वर्वस्वपनभाग्मारसो रोल्लास्-व्यासोनस्वत्तमार्शस्वत्युर्वन्धोद्धतः धावनि ॥ रम्भेन्द्रभित्तम्भार्त्वस्वत्वारिष् चैतासात् भूगासुद्धो बीमस्त. ।

यदा ।

दशरूपक

लाला वनगातव देति मारुपिण्डी पयोधरी । मासास्थिन्द्र जधन जन नामग्रहातुर ॥ न चाऽय द्यान्य एवं विरक्तो यतो बीमत्त्रमानो विरज्यते । ग्रथ रीद्र ॥

स्रोघो... विगादय ॥६८॥

828

मात्सयंविभावो रौडो यथा घीरचरित ।

व ब्रह्मवर्चसघरी यदि वर्नमानो

यद्वा स्वजातिसमयेन धनुधंर स्या ।

उपेए। भोस्तव वपस्तपसा दहामि

पक्षान्तरस्य सद्ध परग्न करोति ॥

वैरिवें हुनादिवंचा वेशी सहारे ।

ताक्षागृहानलविषाननसभाववेशै प्रारोप् विक्तनिचमेषु च न प्रहत्य ।

प्राराणु । वत्तानचयपु च न प्रहृत्य । स्रारुष्टपाण्डवस्थपरिधानकेशा

स्वस्मा भवन्तु मिय जीवति धार्तराष्ट्रा ॥

रस्येयमादिविभावं प्रस्थेदन्त्रस्यदन्त्रस्याटर्मार्थं इम्प्रीदिस्यान् पारिति त्रोपपरियोगो रोड । परसुरामभीतसेतदुर्योधनादिस्यदहारेषु

बीरचरितवैर्णामहारादेरनुमन्तस्य । द्यम हास्य ।

विष्टताः ' स्मृत ॥६१॥

भारतस्यान् विष्ठतवेषभाषातीच् परस्थान् वः विभागानवसम्बनातो हासस्तर्यारियोगारमा हारमो रणा इयिन्द्रातो भवति । स पौत्तमस्य-मापन्प्रहृतिनेदान् पहविष ।

द्यारमधी यदा रादम ।

बात में परवेण भागरणा सब् बन्दतीद्वरत हारो बसनि महत्त्रमुचित दिल्प्टा ज्हाः बुलाया । परिशिष्ट : धन्दि की संस्कृत वृत्ति

YYY

रुद्रार्श्व मक्त्र सरत्नवलय चित्रायुक बन्धल मीतालोचनहारि कल्पिनमहो रम्य वप कामिन ॥

परम्थो यया ।

मिसी मामनिपेवए प्रकुरपे नि तेन मद विना वि ते मधमपि प्रिय प्रियमही वारा हुनामि सह । वेस्या द्रव्यद्वि वृतस्तव घन धूर्वेन चौद्रें वा चौर्यवसपरिप्रहोऽपि मवतो दासस्य नाऽचा गति ॥

स्मितमिहः हिसनम् ॥७०॥

द्यपष्टिततं .....क्रमदा ॥७१॥ उत्तमन्य स्वारस्यविकारदर्शनान् स्मिनहतिने मध्यमस्य विद्वतिने-पहिसनेऽपमस्याऽपहिसतातिहसिसे । उदाहृतय स्वयमुत्येश्या । ध्यमि-

चारिएहचाऽस्य ।

निद्रा०\*\*\*\*\*भारिता ।।७३॥ लोब मीमाति गुत्तपदार्थवर्णनादिविमावित मायुवादा धनुभावपरिष्ठी

विस्मय स्यायिभावी हर्षावेगादिमावितो रसीऽद्भुत । यया । दोदंग्डाञ्चितचन्द्रशेखर्षमुदंग्डायमगोद्धत-

ष्टद्वारध्वनिरार्वबालमरितप्रस्तावनाडिण्डिम । द्राकपर्याग्तरपालसम्पुटमिलद्बह्याग्डभाण्डोदर-

धारम्यात्यविद्यत्वविद्या रचमभी नाःवाद्रीय विद्यार्ग्यति ॥

इस्यादि ।

भय भयानक ।

विष्ट्रस० .... सहोदरः ॥ ७४॥ रोद्रशब्दश्रवणाद् रोद्रशस्वदर्शनाच् च भवस्याविमावत्रमयो भवानको रंग । तत्र मर्वाङ्गवेषय् प्रभृतयोऽतुमावा । दंग्यादयन्तु ध्वक्षिपारिगाः।

मयानको यथा प्रायुदाहुत । शस्त्रमेतन् समृत्गृत्व बुल्बीभूय शनै दनै । यपायपागतेनैव यदि शानोपि गम्यताम ॥

४५६ दशह्यरः

यमा च रत्नावत्याम् । तस्य वर्षवर्रीयत्यादि । यमा च । स्वगेहात् पन्यान तत चपचित साननमधो विरि तत्थात् सान्द्रद्रमगहनमस्मादिष गृहाम् । तदन्बङ्गान्य क्रीरिवित्यामानो न गणय-स्यराति स्वानीये तव विजयवाद्या चरित्यो ॥

भ्रय करण ।

इष्ट० \*\*\*\* पितादयः ॥७५॥

स्वापाप०'''''चारित् ॥७६॥

इष्टरस्य बन्धुत्रभृतेविनाशादिष्टरस्य हुं बन्धनादेः प्राप्त्या स्रोक्तवर्णस्य करुणः । तमन्त्रिति तदनुभावनि स्वासादिषयनम् । व्यभिनारिस्परस्य स्वापायस्मारादयः । इष्टनाशात् करुणो यथा क्रुमारसम्पर्वे ।

अयि जीवितनाथ जीवसीत्यभिधायोत्यितया तया पुर ।

द्वती पुरुषाङ्गति क्षिती हरनोपानलमस्म केवलम् ॥ इत्यादि रतिप्रनाप । प्रनिष्टावाप्ते सागरिनामा बन्धनाद यदा

रत्नायस्याम् ।

प्रोति॰ \*\*\* कोतिता. ॥७७॥

स्पष्टम् ।

षट्० .... तेषु च । १७६॥

विभूषण चाञ्सरसहित्स्व शोभागिमानी गुणकवीतैन च ।

इरयेवमादीनि पट्वितारसाध्यक्तसाणानि । साम भेदः प्रदान चैरयेव-मादीनि सन्धन्तराण्येकविश्वितिहथमादिब्बिवाऽसङ्कारेषु हर्षो साहादि-ध्यन्तर्मावान् न पृथग्वतानि ।

रम्यःःःसोके ॥७६॥

विष्णो .... मेतत् ॥५०॥

इति श्रीविष्युसूनोर्वनिकस्य कृतौ दशरपावलोरे रसविचारो नाम चतुर्व प्रकाश समाप्त ।